एचडी–01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

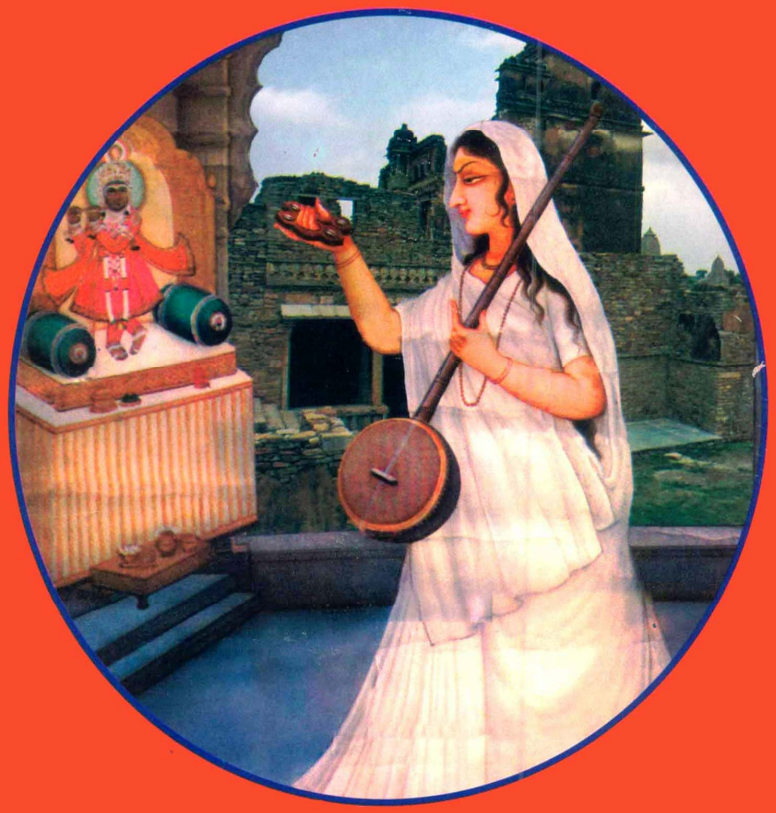

हरि ! आप हरो जन री भीर।
द्रोपदी री लाज राखी, आप बढायो चीर।
भगत कारण रूप नरहरि, धार्‌यो आप सरीर।
डूबतो गजराज राख्यो, काटी कुंजर पीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर, हरो म्हारी भीर।

हिन्दी पद्य भाग–1
(प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य)

एचडी – 01

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

हिन्दी पद्य भाग–1
(प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक / समन्वयक

प्रो.(डॉ.) कुमार कृष्ण
विभगाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिमांचल विश्वविद्यालय
शिमला

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

सदस्य

प्रो.(डॉ.) जबरीमल पारख
अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो.(डॉ.) सुदेश बत्रा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

प्रो.(डॉ.) नन्दलाल कल्ला
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर

डॉ. नवलकिशोर भाभड़ा
प्राचार्य
राज. कन्या महाविद्यालय
अजमेर

डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा
पूर्व प्राचार्य,
राजकीय महाविद्यालय,
सरदार शहर(चुरू)

सम्पादन एवं पाठ लेखन

सम्पादक

डॉ. प्रेम प्रकाश भट्ट
से.नि. एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठ-लेखक	इकाई सं.	पाठ-लेखक	इकाई सं.
डॉ. मन्जू चतुर्वेदी अध्यक्ष, हिन्दी विभाग मीरा राजकीय महाविद्यालय उदयपुर	1	**प्रो.(डॉ.) लल्लन राय** हिन्दी विभाग हिमांचल विश्वविद्यालय शिमला	7,9
डॉ.सत्यनारायण शर्मा व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा	2,3	**डॉ. मदन केवलिया** पूर्व उपाचार्य रा.स्ना. इंगर महाविद्यालय, बीकानेर	8
डॉ. रेखा मिश्रा व्याख्याता, हिन्दी विभाग खण्डेलवाल महिला महाविद्यालय जयपुर	4	**डॉ. टी.सी. गुप्ता** पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय, कोटा	10, 11
डॉ. हेतु भारद्वाज पूर्व प्राचार्य पारीक कॉलेज, जयपुर	5,6	**प्रो.(डॉ.) सुदेश बत्रा** पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	12,13,16
डॉ. पल्लव व्याख्याता, हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय, उदयपुर	14,15		

डॉ. प्रेम प्रकाश भट्ट 17,19
रीडर, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल 18
सेवानिवृत्त संयुक्त निदेशक,
आयुक्तलय, उच्च शिक्षा, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**अकादमिक**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन अगस्त 2012 ISBN No- 13/978-81-8496-084-6

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड - 1

आदिकालीन काव्य

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	आदिकाल की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ	10–24
इकाई - 2	चंदवरदाई का काव्य	25–49

खण्ड - 2

भक्तिकालीन काव्य

इकाई - 3	भक्तिकाल की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ	50–65
इकाई - 4	कबीर का काव्य	66–83
इकाई - 5	दादू दयाल का काव्य...	84–101
इकाई - 6	जायसी का काव्य	102–123

खण्ड - 3

भक्तिकालीन काव्य -II

इकाई - 7	तुलसीदास का काव्य	124–150
इकाई - 8	सूरदास का काव्य	151–168
इकाई - 9	मीराबाई का काव्य	169–186
इकाई - 10	रसखान का काव्य	187–203
इकाई - 11	रहीम का काव्य	204–221

खण्ड-4

रीतिकालीन काव्य

इकाई - 12	रीतिकालीन काव्य की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ	222–237
इकाई - 13	केशवदास का काव्य	238–255
इकाई - 14	बिहारी का काव्य	256–279
इकाई - 15	घनानन्द का काव्य	280–297

खण्ड- 5

काव्य अंगों का परिचय

इकाई - 16	रस, अलंकार और छंद रस-स्वरूप, रस के अवयव, रस के भेद अलंकार-परिभाषा, भेद, प्रमुख अलंकार - 1 अनुप्रास, 2.	298–317

यमक, 3. श्लेष, 4. वक्रोक्ति, 5. उपमा, 6. रूपक, 7. भ्रान्ति मान, 8. सन्देह, 9. विरोधाभास, 10. विभावना
छंद-परिभाषा, छंद के उपकरण, गण विधान, भेद,
प्रमुख छंद - 1. इन्द्र वज्रा, 2. उपेन्द्र वज्रा, 3. मालिन, 4 दोहा 5. रोला, 6. सोरठा, 7. चौपाई, 8. बरवै, 9. कुण्डलिया, 10. छप्पय

इकाई - 17 शब्द शक्ति, गुण एवं दोष 318–331
शब्द शक्ति - 1. अभिधा, 2. लक्षणा, 3. व्यंजना
गुण - 1 माधुर्य, 2. ओज, 3. प्रसाद
दोष - 1. श्रुतिकटु, 2. च्युत संस्कृति, 3. अक्रमत्व, 4. दुष्क्रमत्व, 5. ग्राम्यत्व, 6. अश्लीलत्व, 7. पुनरुक्त, 8. संदिग्ध, 9. अप्रतीतत्व 10. क्लिष्टत्व

खण्ड-परिचय

आपके अध्ययन हेतु 'प्राचीन व मध्यकालीन काव्य' की सामग्री प्रस्तुत है । आप जहाँ एक ओर हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी के व्याकरणिक रूप, राजभाषा के रूप में संवैधानिक स्थिति का परिचय प्राप्त कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं से भी परिचित हो रहे हैं ।

पाठय सामग्री का यह खण्ड आपको हिन्दी भाषा में रचित आदिकाल से रीतिकाल तक की साहित्य सृष्टि में उल्लेखनीय कवियों की रचनाओं तथा उनके कलात्मक वैशिष्टय से साक्षात्कार करवायेगा ।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का प्रमुख स्वर वीर रसात्मक गाथाओं में गूंजित हुआ है । वि.स. 1050 से वि. 1375 की कालावधि विदेशी आक्रमणों से ग्रस्त है और इसी. कालाखण्ड में महाकवि चंदवरदाई 'पृथ्वीराजरासो' जैसा महाकाव्य की रचना करते हैं । खण्ड- 1 की इकाई संख्या 1 तथा 2 में आप क्रमश: आदिकालीन काव्य की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ तथा चन्दवरदाई के काव्य का संक्षिप्त में अध्ययन करेंगे ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'स्वर्णकाल' के रूप में विख्यात भक्तिकाल वि.स. 1325 से वि. 1700 की दीर्घ अवधि का युग है । इसी काल में महान् मानवतावादी तथा क्रांतिकारी सुधारक कबीर हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रबल समन्वयकर्ता सूफी कवि जायसी, निर्गुण संत परम्परा के ही दादू दयाल की वाणी के उस युग की जनता को जहाँ एक ओर सामाजिक समानता का संदेश दिया वहीं दूसरी ओर शास्त्र के स्थान पर लोक के व्यावहारिक सत्य के प्रति अपना आग्रह प्रकट किया । खण्ड- 2 भक्तिकालीन काव्य में आप इकाई संख्या 4, 5 तथा 6 में कबीर, जायसी व दादूदयाल के काव्य का अध्ययन करेंगे । भक्तिकालीन काव्य की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों की जानकारी इकाई संख्या 3 में प्राप्त करेंगे ।

भक्तिकाल का तृतीय सोपान सगुण भक्ति काव्य है तथा इस पाठ्य सामग्री का तृतीय खण्ड- भक्तिकालीन काव्य (भाग- 2) है जिसमें इकाई संख्या 7, 8, 9, 10 व 11 में आप क्रमश: लोक मंगल की साधनावस्था के उपासक गोस्वामी तुलसीदास, लोक अनुरंजनकारी पुष्टिमार्गी कवि श्रेष्ठ सूरदास, अपूर्व क्रांतिकारी महिला भक्त मीराँ तथा भक्ति रस की खान 'रसखान'' व 'रहीम' के काव्य का अध्ययन किया गया है । भक्तिकालीन साहित्य ने तत्कालीन- समाज की निराशा और जड़ता को दूर किया, अंधविश्वास व रुढ़ियों पर प्रहार किया, सामुदायिक एकता का दिव्य संदेश दिया तथा लोक समन्वय की विराट चेष्टा का भाव प्रदर्शित किया । निश्चय ही यह युग हिन्दी साहित्य के इतिहास का 'स्वर्णकाल' है ।

खण्ड-चार रीतिकालीन काव्य में आप सर्वप्रथम इकाई- 12 में रीतिकालीन काव्य की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों की जानकारी का अध्ययन करेंगे । वि.स. 1700 से वि. 1900 तक की दो शताब्दियाँ दरबारी संस्कृति की चमक दमक एवं विलासिता से प्रभावित है । मुगलों का चरम उत्कर्ष देशी राजपूत नरेशों को आकर्षित करने लगा । यद्ध नगण्य हो गये तो दरबारों में सुरा सुन्दरी का प्रभाव बढ़ने लगा । काव्य का स्वर सर्वजन हिताय न रह कर

'स्वामिनसुखाय' हो गया । काव्य में कलात्मकता, अलंकरण प्रवृत्ति तथा पांडित्य प्रदर्शन की भावना में वृद्धि हुई । कविता जन समाज से दूर होकर राजदरबारों में सिमटती गई । ऐसे में आचार्य केशव ने एक तरफ ' समयचन्द्रिका' जैसी उत्कृष्ट मुक्तक रचना प्रस्तुत की तो बिहारी ने 'सतसई' जैसी उत्कृष्ट मुक्तक रचना प्रस्तुत की । घनानंद ने प्रेम भावना का स्वच्छंद का प्रदर्शन किया । इन सबका अध्ययन आप इकाई सं. 13, 14 व 15 में करेंगे। खण्ड - 5 में काव्य अंगों का परिचय दिया गया है जिसमें इकाई सं. 16 में रस, अलंकार व छंद तथा इकाई सं. 17 में शब्द शक्ति, गुण व दोष का अध्ययन किया गया है । शब्द व अर्थ की सामंजस्यता तथा काव्य के भाव-बोध के साथ-साथ कला-बोध का भी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । यह सर्वविदित है कि किसी भी काव्य के भाव पक्ष के साथ-साथ कला पक्ष की विवेचना के बिना काव्य का अध्ययन अधूरा है । इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण इकाईयाँ हैं।

इकाई-1

आदिकालीन साहित्य की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि : परिस्थितियाँ

- 1.2.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ
- 1.2.2 सामाजिक परिस्थितियाँ
- 1.2.3 धार्मिक परिस्थितियाँ
- 1.2.4 कलात्मक व साहित्यिक परिस्थितियाँ

1.3 आदिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ

- 1.3.1 जैन काव्य धारा
- 1.3.2 सिद्ध काव्य धारा
- 1.3.3 नाथ साहित्य
- 1.3.4 वीर काव्य धारा
- 1.3.5 रासो काव्य

1.4 आदिकालीन वीरगाथात्मक काव्यों की प्रवृत्तियाँ

1.5 सारांश

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.7 बोध प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

आधार पाठ्यक्रम की पूर्व इकाई में आप हिन्दी साहित्य इतिहास की लेखन परम्परा, नामकरण एवं काल विभाजन की जानकारी प्राप्त कर चुके है । ऐच्छिक हिन्दी की इस इकाई में आदिकाल की परिस्थिति एवं विशेषताओं की जानकारी के बाद आप :

- आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- आदिकाल की धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- आदिकाल की जैन काव्य धारा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- आदिकाल की नाथ काव्य धारा का परिचय जान सकेंगे ।
- आदिकाल की सिद्ध काव्य धारा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- आदिकाल की रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- आदिकालीन वीरगाथात्मक काव्य की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है । आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ इनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थिति के अनुसार होती है । अत: इन परिस्थितियों का सिंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है । इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के आदिकाल का विवेचन करने में यह बात ध्यान रखनी होगी कि किसी विशेष समय में लोगों में रुचि-विशेष का संचार और पोषण कहाँ से और किस प्रकार हुआ । यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है ।

1.2 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि : परिस्थितियाँ

प्रत्येक युग का साहित्य युगीन परिस्थितियों की उपज होता है । आदिकालीन साहित्य के विविध रूपों पर विचार करने से पूर्व उन परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है जिनमें इस काल के साहित्य की रचना हुई ।

1.2.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ

आठवीं शती से 15 वीं शती तक का समय भारतीय इतिहास में उथल-पुथल, विश्रृंखलता और अस्थिरता का समय है । 647 ई. में सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् भारत की केन्द्रीय राज्य सत्ता कमजोर हो गयी और देश में अनेक सत्ता केन्द्र बनते चले गये । कश्मीर, अजमेर, दिल्ली, मालवा, ग्वालियर, बुन्देलखण्ड, गुजरात आदि में बिखर गया । आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मौखरी शासक यशोवर्मन (कान्यकुब्ज) की वीरता से राजनीतिक दृढ़ता की जो सम्भावना बनी थी वह भी कश्मीर के राजा ललितादित्य की विजय से क्षीण हो गयी । अलग-अलग सत्ता केन्द्रों से सम्बद्ध राजवंशों में पारस्परिक अन्विति का अभाव तो था ही, उलटे आपस में छोटी-छोटी बातों के लिये उनमें संघर्ष चलता रहता था - देश को एक सूत्र में बाँधने वाली चक्रवर्तित्व शासन पद्धति तो खत्म हो ही गयी, प्राचीन गणराज्यों की व्यवस्था भी समाप्त हो गयी । राजनीतिक व्यवस्था की विश्रृंखलता के परिणामस्वरूप सामन्ती प्रथा बलवती हो गयी । अब जनता के भाग्य विधाता यही सामन्त ही थे । सामन्तगण अपने छोटे-छोटे स्वार्थ तथा सुख की उपलब्धि के लिए सामान्य जनता की कल्याण भावना से विरत तो थे ही, आपस में मिथ्या स्वाभिमान के लिए लड़ाई करने से भी नहीं चूकते थे । इतिहास में जिन सामन्तों की वीरता की कोई विशेष ख्याति नहीं है उन्हें भी कवियों की लेखनी ने अमर बना दिया । राजनीति में जनता की सीधी साझेदारी नहीं रह गयी । जनता में राजनीतिक चेतना का अभाव भारत के लिए बहुत दुःखदायी रहा है ।

जनता के मनोबल के निर्बल होने से तथा विभिन्न सामन्तों के परस्पर युद्धरत रहने से देश कमजोर होने लगा, मुस्लिम आक्रमणों का सिलसिला भी आरम्भ हो गया । आठवीं सदी के

आरम्भ में सिन्ध में देवल के नौ-सैनिकों ने अरब के कुछ जहाजों को लूट लिया था । इराक के शासक हज्जाज ने अपने सेनापति मुहम्मद बिन कासिम को देवल नरेश दाहिल को दण्ड देने भेजा, जिसने सिन्ध विजय की तथा कुछ दिन के लिए शासन भी कायम कर लिया । 988 ई. तथा 1991 ई. में गजनी का दास शासक सुबुक्तगीन ने पंजाब के राजा जयपाल पर आक्रमण किया । दूसरी बार सुबुक्तगीन विजयी हुआ । इसके पुत्र महमूद गजनवी (997 ई. - 1060 ई.) ने भारत पर सत्रह आक्रमण किये । इसके आक्रमण का दायरा सिन्ध तथा पंजाब तक सीमित नहीं था, बल्कि मध्य देश की सीमा में बहुत दूर तक फैल गया । भारत पर महमूद के आक्रमण का मुख्य उद्देश्य मन्दिरों तथा शहरों को लूटना तथा राजाओं को संगठित होने से रोकना था । सोमनाथ के मन्दिर की अपार सम्पत्ति को इसने बिना किसी प्रतिरोध के लूटा ।

1192 ई. और 1206 ई. तक गंगा-यमुना का दोआब तथा उसके आसपास का क्षेत्र तुर्कों के अधिकार में आ गये और इसके बाद शीघ्र ही बंगाल और बिहार भी विजित हो गये । 1200-1400 ई. तक तुर्कों को अपने राज्य की सुरक्षा के लिए विदेशी आक्रमणों तथा आंतरिक भेदों का सामना करना पड़ा । इस बीच राजपूत शासक अपने राज्य को पाने के लिए पूरी तरह सक्रिय तथा संघर्षशील थे । लगभग दो शताब्दियों तक गुलाम वंश, खिलजी वंश तथा तुगलक वंश का व्यापक राजनीतिक अधिकार रहा ।

इस काल में जो भी राजनैतिक संघर्ष हुए उनके प्रति जनता पूरी तरह उदासीन थी । परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के अनुसार देश की रक्षा का दायित्व क्षत्रियों का था । आत्मरक्षा तथा देशरक्षा का संकट समूचे भारत पर था, किन्तु पश्चिम से विदेशी आक्रान्ताओं का प्रवेश होने के कारण सीमावर्ती क्षेत्रों में संकट और गहरा था । सामन्त दर्प में चूर थे तथा उनके आश्रय में पलने वाले कवि अपने आश्रय दाताओं को युद्ध के लिये उत्प्रेरित भी करते थे । अत: वीर रस की कविता के लिए यह वातावरण बहुत अनुकूल था ।

1.2.2 सामाजिक परिस्थितियां

राजनीतिक अस्थिरता तथा विश्रृंखलता का अभाव तत्कालीन समाज पर भी पड़ा । प्राचीन वर्ण-व्यवस्था जाति-प्रथा के रूप मे और घनीभूत हो गयी थी । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णो के अलावा तत्कालिन समाज अनेक जाति-उपजातियों में विभक्त था । वर्ण और जाति का निर्धारण जन्म के आधार पर ही होता था । समाज में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता कायम थी, पर वे कृषि जैसे व्यवसाय भी करने लगे थे ।

क्षत्रियों का कर्त्तव्य था - धर्म और प्रजा की रक्षा । शूद्रों की स्थिति और बन्धनों में यथास्थिति बनी रही । वेदों का पठन-पाठन उनके लिए अब भी निषिद्ध था । वे पुराणों का पठन-पाठन कर सकते थे । शूद्र के साथ भोजन करना ही नहीं, बल्कि मकान में एक साथ रहना, एक ही गाड़ी में यात्रा करना तथा विद्वान शूद्र से शिक्षा लेना भी वर्जित था । चाण्डालों से मिलना-जुलना एकदम निषिद्ध था । खान-पान के साथ वैवाहिक सम्बन्धों में भी प्रतिबन्ध था अन्तर्जातीय विवाह प्राय: निषिद्ध था । उच्च वर्ण के लोग विशेष परिस्थितियों में निम्न वर्ग की कन्या से विवाह कर सकते थे ।

समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी । बाल-विवाह की प्रथा बहुत सामान्य थी । पति सेवा ही स्त्री का परम धर्म माना जाता था । विधवा-विवाह निषिद्ध था । सती-प्रथा का प्रचलन था। इब्नबतूता ने नगाड़ों की ध्वनि के बीच एक स्त्री द्वारा अपने पति की चिता पर आरोहण का रोमांचकारी वर्णन किया है । सामन्ती व्यवस्था में नारी को भोग्य सामग्री समझने की भावना बढ़ती जा रही थी । स्त्री के लिए लड़ाई-झगड़े होते रहते थे । राजाओं तथा सामन्तों में बहु-विवाह प्रचलित था । स्त्रियों की दैहिक पवित्रता की रक्षा के लिए परिवार के लिए किसी-न-किसी पुरूष का उस पर नियन्त्रण रहता था । घर के अन्दर उसका सम्मान था । स्त्रियों में पर्दा प्रथा का प्रचलन था । मुसलमानों के प्रभाव के कारण यह प्रथा और मजबूत होती जा रही थी । स्त्रियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी । निम्न जातियों की स्त्रियों की दशा तो और भी शोचनीय थी । गाँवों में पढ़ना-लिखना ब्राह्मण सिखाता था । मन्दिरों में भी शिक्षा दी जाती थी । आदिकाल के आरम्भिक समय में उच्च शिक्षा के केन्द्र के रूप में नालन्दा विश्वविद्यालय, विक्रमशिला का उल्लेख किया जा सकता है । शिक्षित वर्ग, विशेषकर ब्राह्मणों की संकीर्णता का उल्लेख अलबरूनी ने किया है । वे अपना ज्ञान वितरित करने में बड़े कंजूस थे । शिक्षा देने में जाति-पाँति का भी ध्यान रखते थे ।

मल्लयुद्ध, घुड़सवारी, जुआ, संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे । समाज में मदिरापान, भाँग तथा अफीम का सेवन बहुत आम था । समाज सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं और अंधविश्वासों में जकड़ा था ।

मुसलमानों के आगमन तथा सम्पर्क से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन तो हुआ पर बहुत कम । मुस्लिम समाज भी नस्ल और जाति वर्गो में बँटा हुआ था । तुर्की, ईरानी, अफगानी तथा भारतीय मुसलमानों के बीच परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं थे । अपवादों को छोड़कर हिन्दू-मुसलमानों के बीच भी खान-पान तथा वैवाहिक सम्बन्ध नहीं थे । उस काल के समाज को हम एक पिछड़ा हुआ समाज ही कह सकते हैं ।

1.2.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

इस काल में बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा था । हर्ष के समय में ही बौद्ध धर्म की महायान शाखा हीनयान शाखा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो गयी थी । बौद्ध धर्म में भी भक्ति का प्रचलन हो गया था तथा भगवान बुद्ध की मूर्ति की पूजा होने लगी थी । हिन्दू धर्म में बुद्ध को भी एक अवतार के रूप में सम्मिलित कर लिया गया । इसी अवतार भावना के कारण बौद्ध धर्म में भी चौबीस अतीत बुद्ध, चौबीस वर्तमान बुद्ध, चौबीस भावी बुद्धों की कल्पना की गई । इसमें बोधिसत्वों तथा तान्त्रिक देवियों को भी सम्मिलित किया गया । बौद्ध भिक्षुओं ने सन्यास की अनिवार्यता को समाप्त करके गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी भक्ति मार्ग द्वारा निर्वाण प्राप्ति को सम्भव सिद्ध किया । इन मान्यताओं के प्रसारक्रम में महायान हिन्दू धर्म के प्रभाव से आक्रान्त होता चला गया । धीरे-धीरे दोनों में इतनी अधिक समानता हो गयी कि दोनों में प्रचलित दन्तकथाओं को अलग-अलग करना कठिन हो गया ।

शंकराचार्य के आन्दोलन ने भी बौद्ध धर्म को पतन की ओर धकेला । हताश बौद्धानुयायी अनेक प्रकार की चमत्कारिक सिद्धियों की ओर प्रवृत्त हुए । बज्रयान में बोद्धिसत्वों की दशभूमि पारमिताओं की साधना के वजाय प्रज्ञोपाय साधना विकसित हुई तथा देवताओं की वृद्धि एवं

उनकी शक्तिरूप देवियों की परिकल्पना समृद्ध हुई । अर्थात् इसमें तान्त्रिक पद्धतियों का समावेश हो गया । धीरे-धीरे दर्शन की अपेक्षा क्रिया, चर्या, अभ्यास, अनुष्ठान एवं रहस्य साधनाओं को अधिक महत्व मिल गया । इन्हीं क्रियाओं के आधार पर सिद्धि का प्रचार करने वाले सरहपा आदि सिद्धों का सम्बन्ध इसी शाखा से है । सिद्धों में कुछ ऐसी उक्तियाँ मिलती हैं जिनमें तन्त्र-मन्त्र को छोड़कर सहजसाधना का भी समर्थन किया गया है । इस सम्प्रदाय का प्रभाव पूर्वी भारत में अधिक था । सिद्धों की परम्परा शैव मत तथा योग परम्परा से प्रभावित होकर नाथ सम्प्रदाय में परिणत हो गयी ।

छठी से बारहवीं शताब्दी में जैन धर्म का प्रचार दक्षिणी भारत तथा हिन्दी प्रदेश के सीमान्तों पर था । जैनों में भी ब्राह्मण धर्म की पौराणिक प्रवृत्ति का समावेश हो गया था । उनमें मूर्ति-पूजा का प्रचार होने लगा था । दशवीं से बारहवीं के बीच दक्षिण तथा पूर्व में जैन धर्म का राज्याश्रय समाप्त होता गया । ब्राह्मण धर्म (शैव, वैष्णव) के प्रचार से इसका ह्रास होने लगा । जिस समय दक्षिण में इसका ह्रास हो रहा था उस समय पश्चिम में इसे समृद्धि का अवसर मिला । जैन धर्म की वृद्धि में जैनाचार्य हेमचन्द्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । हेमचन्द्र का जन्म गुजरात में 1084 ई. में हुआ था । गुजरात के राजा जयसिंह (सिद्धराज) और कुमारपाल इससे बहुत प्रभावित थे ।

बौद्ध तथा जैन धर्म के क्षीण होने से हिन्दू धर्म तीव्र गति से उन्नतशील हुआ । लेकिन इसके विकास के साथ ही इसमें अनेक मत तथा समुदाय भी बनते गये । विष्णु और शिव को आराध्य मानकर दो सम्प्रदाय विकसित हुए - वैष्णव और शैव । वैष्णव के चार प्रमुख सम्प्रदाय थे - श्रीसम्प्रदाय, ब्रह्मसम्प्रदाय, रूद्र-सम्प्रदाय, सनकादिक सम्प्रदाय । शैव सम्प्रदाय भी अनेक शाखाओं में विभक्त होता गया । वेदों का महत्व समाज में घटने लगा तथा समाज में पौराणिक देवताओं की उपासना-पूजा बढ़ गयी । मन्दिरों और मठों की खूब स्थापना हुई । अनेक व्रतों, उपवासों तथा पूजा पद्धतियों को धर्म का अंग मान लिया गया । इससे समाज में अन्धविश्वास, संकीर्णताएँ तथा रूढ़ियाँ बढ़ती गयीं । समाज विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया और इन सम्प्रदायों के बीच सौहार्द का पूर्णत: अभाव था ।

इन विषम परिस्थितियों के बीच विदेशी आक्रान्ताओं ने हिन्दुओं के पूजा स्थलों को ध्वस्त किया और उन्हें लूटा । एक ओर भारतीय समाज मे मूर्ति पूजा की बढ़ती भावना और दूसरी ओर आक्रान्ताओं द्वारा मूर्तियों का तोड़ा जाना - यह एक कठिन स्थिति थी । सिद्धों और नाथों की मानसिक साधना इन परिस्थितियों में राहत दे सकती थीं । जनता में भी आडम्बरहीन पूजा विधि के द्वारा भगवतकृपा प्राप्त करने की भावना का संचार हुआ, जिसका पूर्ण विकास भक्तिकाल में हुआ । धार्मिक दृष्टि से यह काल ऊहापोहों और परस्पर असहिष्णुता से भरा है । इस्लाम के आगमन ने हिन्दू धर्म के समक्ष संकट पैदा कर दिया था । फिर भी पुनर्जागरण की चेतना अन्त:सलिल के रूप में बहने लगी थी जो भक्तिकाल में उजागर हो गई । पर आदिकाल में समाज में प्रचलित सभी मत-मतान्तरों में एक मंच पर संगठित होकर एक महाधारा (विचारधारा) के रूप में परिणत होने की आन्तरिक बेचैनी दृष्टिगोचर होने लगी थी।

1.2.4 कलात्मक और साहित्यिक परिस्थितियाँ

कला और साहित्य की दृष्टि से यह काल बहुत समृद्ध है । आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक स्थापत्य, वास्तुकला आदि के क्षेत्र में भारत ने बहुत प्रगति की ।

दक्षिण के चोल, चालुक्य और होयसलों ने मन्दिर निर्माण तथा प्रतिमा निर्माण में विशेष रूचि प्रदर्शित की । इससे निरन्तर स्थापत्य तथा वास्तुकलाओं में निखार तथा सूक्ष्मता आई । मन्दिरों में देवी-देवताओं के साथ रानियों की भी प्रतिमाएँ रखी जाती थीं । मूर्तियों के अलावा चित्रपट भी होते थे, जिनमें नृत्य, संगीत, युद्ध और प्रणय के दृश्य उत्कीर्ण थे । उत्तरी भारत में भी इस काल में बड़े-बड़े श्रेष्ठ मन्दिरों के निर्माण कराये गये । खजुराहों, भुवनेश्वर, पुरी, कोणार्क, मथुरा, वाराणसी, दिलवाड़ा में सुप्रसिद्ध मन्दिरों का निर्माण इसी काल में हुआ । दक्षिण और उत्तर के इन मन्दिरों में अपार धन-सम्पत्ति एकत्रित थी । ये मन्दिर सामाजिक और सांस्कृतिक केन्द्र भी थे । सोमनाथ मन्दिर का कई गाँवों पर शासन था तथा व्यापार में भी इसकी हिस्सेदारी थी । ये मन्दिर मुस्लिम आक्रमणकारियों की धन-लिप्सा की तृप्ति के साधन बन गये ।

साहित्यिक दृष्टि से इस काल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में साहित्य-सृजन हो रहा था । यद्यपि यह अवहट्ठ-अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी का काल है तथापि इस काल में संस्कृत में विभिन्न विधाओं में उत्कृष्ट रचनाएँ लिखी गयीं । कुछ रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं - कविराज लिखित राघवपाण्डवीय, अभिनवकृत रामचरित, अमरचन्द सूरीकृत बालभारत, रत्नाकरकृत हरि विजय, शिव स्वामीकृत कष्किणाभ्यूदय, क्षेमेन्द्र कृत रामायण मंजरी, बृहत्कथा मंजरी, श्रीहर्ष रचित नैषधीय चरित जैसे अनेक ग्रन्थ इस काल में रचे गये । संस्कृत में गद्य काव्य का उत्कर्ष भी इसी काल में हुआ । बाणभट्ट की "कादम्बरी" इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है । धनपाल रचित तिलकमंजरी भी एक उल्लेखनीय रचना है । इसी काल में त्रिविक्रमभट्ट कृत 'नल-चम्पू', सोमदेव रचित 'यशस्तितल-चम्पू' हरिशचन्द्र रचित 'जीवन्धर-चम्पू' आदि चम्पू काव्य भी लिखे गये । सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' की रचना भी इसी काल में की । राजशेखर कृत 'बाल रामायण' और 'बाल भारत', जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव', रविवर्मा कृत 'प्रदुम्नाभ्युद', जयसिंह सूरी रचित 'हम्मीर मदमर्दन' जैसे नाटक भी इस काल में लिखे गये ।

इन सभी प्रवृत्तियों का प्रभाव अपभ्रंश (पुरानी हिन्दी) में रचनाकर्म पर भी पड़ा । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है - "आधुनिक युग आरम्भ होने के पहले हिन्दी कविता के प्राय: छ: अंग थे-डिंगल कवियों की वीर गाथाएँ, निर्गुणिया सन्तों की वाणियाँ, कृष्ण भक्त या रागानुगा भक्तिमार्ग के साधकों के पद, रामभक्त या वैधी भक्ति मार्ग के उपासकों की कविताएँ, सूफी साधना से पुष्ट मुसलमान कवियों के साथ ऐतिहासिक हिन्दू कवियों के रोमांस और रीति काव्य । हम इन छहों धाराओं की आलोचना अलग-अलग करें तो देखेंगे कि ये छहों धाराएँ अपभ्रंश कविता का स्वाभाविक विकास है ।" जैनों, बौद्ध सिद्धों की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश अवहट्ठ भाषा में निबद्ध है । नीतिपरक, श्रृंगारपरक उत्कृष्ट अपभ्रंश के दोहे मुक्तक

काव्य परम्परा की अनुपम कड़ी के रूप में उपलब्ध हैं । शिथिल प्रबन्धधर्मी रासक काव्यों में "संदेशरासक" अवहट्ठ भाषा की श्रेष्ठ रचना है ।

1.3 आदिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएँ

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि आदिकाल में काव्य की इतनी प्रवृत्तियाँ हैं कि उन्हें एक नाम से सम्बोधित नहीं किया जा सकता । इसीलिये इसे आदिकाल के नाम से ही पुकारना समीचीन रहेगा । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीर काव्य के अतिरिक्त काव्य धाराओं को "धार्मिक काव्य" कहकर साहित्य की मुख्य धारा से बाहर रखा । इसीलिये इस काल को वीरगाथाकाल कहा । किन्तु आचार्य शुक्ल ने परवर्ती समीक्षकों और साहित्यकारों ने पाया कि जिन काव्यधाराओं की शुक्ल जी ने धार्मिक साहित्य कहकर उपेक्षा की थी, उनका भी उतना ही महत्व जिनका वीरगाथा काव्यधारा का । इस काल की विभिन्न काव्यधाराएँ हिन्दी साहित्य के विकास की आधारभूमि तैयार करती हैं अत: इन सभी प्रवृत्तियों का अध्ययन करना जरूरी है । यहाँ हम आदिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराओं का परिचय दे रहे हैं-

1.3.1 जैन काव्यधारा

प्राचीनकाल में भारतवर्ष में जैन धर्म का उन्मेष बौद्ध धर्म के उन्मेष के साथ ही हुआ । यह अलग बात है कि बौद्ध धर्म का प्रसार भारत के अलावा विदेशों में भी हुआ, जबकि जैन धर्म का विस्तार देश के पश्चिमी भाग अर्थात् राजस्थान, गुजरात आदि तक सीमित रहा । बौद्धों की तरह जैन धर्मावलम्बियों ने भी अपने धर्म का प्रचार आम बोलचाल की भाषा में ही किया । साथ ही जैन धर्म के कवियों ने परम्परा में प्रचलित कथाओं तथा स्वकल्पित कथाओं को अपने धर्म प्रचार का माध्यम बनाया । 13 वीं शताब्दी के आसपास जैन कवियों द्वारा रचित अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं जिनकी भाषा अपभ्रंश है । जैन धर्म से सम्बद्ध अनेक रचनाएँ संस्कृत तथा प्राकृत में भी लिखी गयीं, किन्तु जैन कवियों की जो रचनाएँ आदिकाल की अवधि में आती हैं, उनकी भाषा अपभ्रंश है । पश्चिमी भारत के चालुक्य, सोलंकी तथा राष्ट्रकूट राजाओं के संरक्षण में जैन कवियों ने जिन रचनाओं का प्रणयन किया, वे काव्यत्व, भाषा, छन्द आदि की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य के उत्कर्ष की ओर संकेत करती हैं ।

1.3.2 सिद्ध काव्यधारा

सामान्यत:, 'सिद्ध' शब्द का प्रयोग योगसाधना में निष्णात, अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न तथा अति प्राकृतिक और चामत्कारिक गुणों से युक्त व्यक्ति के लिए किया जाता है, किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सिद्ध' शब्द बौद्ध धर्म की ही एक विकृत शाखा 'वज्रयान' से सम्बन्धित योगियों के लिए रूढ़ हो गया है ।

वैदिक कर्मकाण्ड की जटिलता और रूढ़िवादिता और उसमें निहित हिंसा के विरूद्ध छठी शताब्दी ई.पू. में बौद्ध धर्म का उदय हुआ जिसने बहुत जल्दी एक जनआन्दोलन का रूप ले लिया । इसके मानवतापरक सिद्धान्तों की लोकप्रियता के कारण यह धर्म दो अखाड़ों में बँट गया - महायान और हीनयान । महायान बौद्ध धर्म की आधारभूत मान्यताओं, स्थापनाओं पर बल देता रहा तथा व्यावहारिक, सहज और सरल जीवन अपनाने को प्रधानता देता रहा । जबकि

हीनयान में ज्ञानार्जन, पाण्डित्य, व्रत, नियम, तप, विरक्ति जैसे तत्वों पर अधिक बल दिया जाने लगा । धीरे-धीरे हीनयान विरक्तों और सन्यासियों का सम्प्रदाय बन गया, जबकि महायान, गृहस्थ, विरक्त, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े सभी का धर्म बना रहा ।

बौद्ध धर्म के इन दोनों खेमों के बीच मतभेद होते गये और गुप्त नरेशों की वैष्णव धर्म के प्रति गहरी आस्था ने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय से दूर कर दिया । साथ ही 8वी-9वीं शताब्दी में शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के बौद्ध धर्म विरोधी प्रखर अभियान ने भारत में इस धर्म की जड़ें हिला दीं । इस स्थिति में अपना योगसाधनाओं अस्तित्व बनाये रखने के लिए बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने जन्त्र, तन्त्र, मन्त्र की सिद्धयों तथा चामत्कारिक का सहारा लेना आरम्भ कर दिया । इन सिद्धियों का कोई सुदृढ़ सैद्धान्तिक आधार नहीं था, अत: धीरे-धीरे माँस-भक्षण, मदिरा सेवन, उन्मुक्त यौनाचार जैसे पतनशील तत्त्व इस धर्म में आते गये ।

400 ई. के लगभग महायान की एक अन्य शाखा मन्त्रयान का विकास हुआ, जिसमें योग और तन्त्र दोनों को स्थान दिया गया । यह शाखा न भोगवाद पर बल देती थी, न तान्त्रिक साधनाओं पर । आगे चलकर बज्रयान, सहजयान, तन्त्रयान जैसे सम्प्रदाय मन्त्रयान से ही विकसित हुए । हिन्दी सिद्ध कव्यिों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म की बज्रयान शाखा के सिद्धों की साधना-जन्त्र-मन्त्र, डाकिनी-शाकिनी, मद्य-मैथुन तथा समाधि में भटक कर रह गयी । बुद्ध को ईश्वर मानकर पूजा जाने लगा तथा बज्रयान तक पहुँचतेपहुँचते सिद्धों का एकमात्र लक्ष्य मन्त्रों की सिद्धि रह गया ।

आदिकालीन साहित्य में सिद्ध कवियों की रचनाओं का विशेष महत्त्व है, क्योंकि सिद्ध कवि सामान्य जन-जीवन से जुड़े हुए थे । अत उनकी रचनाओं में तत्कालीन सामंती संस्कृति के प्रति विरोध का स्वर मिलता है ।

1.3.3 नाथ साहित्य

नाथ सम्प्रदाय का उद्भव बौद्ध धर्म की वज्रयानी परम्परा से हुआ । वज्रयानी सिद्धों की सहज साधना के साथ शैवमत की मान्यताओं को मिलाने से नाथपंत विकसित हुआ । नाथपंत का जन्म तो बज्रयान से हुआ, किन्तु उसका पोषण शैवमत की गोद में हुआ । वस्तुत सिद्धों की विकृत काव्यधारा और तान्त्रिक साधना का परिष्कृत रूप नाथ योगियों ने प्रस्तुत किया । नाथपंत के प्रवर्तक आदिनाथ अर्थात् शिव माने जाते है जिनके प्रमुख शिष्य के रूप में मत्स्येन्द्रनाथ का नाम आता है । मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) के शिष्यों की परम्परा काफी विस्तृत है, किन्तु उनके प्रमुख शिष्य गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) थे, जिन्होंने नाथपंत का इतना उत्कर्ष किया कि यह पंथ सम्पूर्ण भारतवर्ष, नेपाल और अफगानिस्तान तक फैला । नाथपंत को विस्तार देने में जालन्धरनाथ, गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ तथा कृष्णनाथ योगियों का विशेष योगदान रहा है । इन चारों विषय में अनेक किंवदंतियाँ और दंतकथाएँ आज भी प्रचलित हैं। नाथ योगियों ने बज्रयान को विकृतियों से मुक्त कर शैवमत के आधार पर शुद्ध यौगिक सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित किया । नाथ योगियों ने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मो के लोगों को अपने पंथ में शामिल किया । साथ ही निम्न जाति के लोगों को भी नाथपंत का अनुयायी

बनाया । नाथ योगियों ने भारत की योग परम्परा को प्रतिष्ठित कर इस पंथ को सामान्य जन से जोड़ दिया । इस सम्प्रदाय में दीक्षित साधु अपने नाम के आगे नाथ शब्द जोड़ते हैं। नाथपंथ को अनेक नामों से पुकारा जाता है - कान छिदवाने के कारण कनफटा सम्प्रदाय, योग मत, योग सम्प्रदाय, अवधूत सम्प्रदाय आदि । किन्तु नाथ सम्प्रदाय सबसे लोकप्रिय नाम हैं ।

1.3.4 वीर काव्यधारा (रासो काव्यधारा अथवा चारण काव्यधारा)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल को वीरगाथाकाल नाम दिया था, क्योंकि उनके अनुसार इस काल में वीरगाथात्मक ग्रन्थों की प्रचुरता थी । वीरगाथात्मक काव्य में इतर इस काल के साहित्य को शुक्ल जी ने धार्मिक या साम्प्रदायिक साहित्य कहकर अलग रख दिया । उन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से लिखा - "आदिकाल का नाम मैंने वीरगाथाकाल रखा हैं । उक्त काल के भीतर दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं - अपभ्रंश की और देश भाषा (बोलचाल) की । अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धर्मतत्व निरूपण सम्बन्धी हैं जो साहित्य की कोटि में नहीं आतीं और जिनका उल्लेख यह दिखाने के लिए किया गया है कि अपभ्रंश भाषा का व्यवहार कबसे हो रहा था । साहित्य कोटि में कुछ तो भिन्न-भिन्न विषयों पर फुटकर दोहे हैं जिनके अनुसार उस काल की कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं हो सकती ।"

आचार्य शुक्ल ने आदिकाल के लक्षण निरूपण के सन्दर्भ में इन बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया- विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, सुभानरासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द्रप्रकाश, जयमयंक जसचन्द्रिका, परमालरासो, खुसरो की पहेलियाँ, विद्यापति पदावली । इनमें से विद्यापति पदावली तथा खुसरो को शुक्लजी ने वीरगाथा काव्य से अलग माना है, किन्तु वीरगाथात्मक काव्य अथवा रासो काव्य परम्परा आदिकाल की एक प्रमुख काव्य प्रवृत्ति है ।

1.3.5 रासो काव्य

रासो या रासक नाम की कृतियाँ पहले-पहले अपभ्रंश भाषा में मिलती है । रासो शब्द की व्युत्पत्ति जिन शब्दों से मानी गयी है, उनमें राजसूय, रसायण, रहस्य, रसिक, रास या रासक आदि प्रमुख हैं । संस्कृत साहित्य में 18 उपरूपकों में 'नाट्यरासक' भी एक भेद है । अपभ्रंश काव्यों में रासो कहे जाने वाले गीत-नृत्य परम्परा के रासो काव्यों का सम्बन्ध भी इसी नाट्य रासक से रहा होगा । डी. माताप्रसाद गुप्त ने इसी दृष्टि से लिखा है- "इस धारा की कृतियाँ विशेष अवसरों पर या पर्वों पर नृत्य-वाद्यादि के साथ गायी ही नहीं जाती थी, कभी-कभी अभिनीत भी होती थीं । इस तथ्य के प्रमाण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं और इन कृतियों में प्राय: इनके गाये जाने और नृत्य के साथ प्रस्तुत किये जाने का महात्म्य भी ग्रन्थान्त में कहा गया है ।" इस परम्परा की कृतियों के लिए 'रासकरास', 'रासो', 'रासा' कई प्रकार के नाम मिलते हैं । इन विभिन्न नामों में तात्त्विक रूप से कोई भेद नहीं है ।

अपभ्रंश काव्य परम्परा में 'रासा' एक छन्द का नाम भी है । विरहांक के अनुसार जिन रचनाओं में अडिल्ला, दोहा, धन्ता, रड्डा और ढोसा छन्द बहुतायत से मिलते हों, उसे रासक काव्य कहते हैं ।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इस विषय में लिखा है - "यह 'रासक' गीत, नृत्य, अभिनय द्वारा प्रस्तुत न होकर भासित मात्र ही होता था । इस परम्परा की सबसे प्रमुख प्राचीन रचना 'सन्देशरासक' में एक स्थान पर नगर-वर्णन के प्रसंग में जो - 'कहुँ बहुरूविणिवद्धउ रासक, भाषियउ' कहा गया है, वह इसी परम्परा के बहु (विविध) रूप-निबद्ध (रूपक-छन्द) 'रासक' के भाषित होने के सम्बन्ध में है ।"

रासो काव्य के विषय की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं - "रासो काव्य में विषयवस्तु, रस, शैली आदि का कोई प्रतिबन्ध नहीं है । उनके विषय धार्मिक भी हैं और लौकिक भी । जहाँ एक ओर शान्त रस ही एकमात्र रस है, वही दूसरी ओर वीर और श्रृंगार भी अंगी रस है । रचनाएँ एक ओर कथानक का विकास करती हैं तो दूसरी ओर कोई कथानक उनमें है ही है, तो कभी-कभी कल्पित है । कोई रचनाएँ 100-125 पंक्तियों की हैं तो कोई 50,000 पंक्तियों की ।"

किन्तु आदिकालीन जिन ग्रन्थों के लिए 'रासो' शब्द रूढ़ हो गया, उनमें प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं - चन्दरबरदाईकृत 'पृथ्वीराज रासो, मेरूतुंगकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि', अब्दुल रहमानकृत 'संदेशरासक', व्रह्माभट्टकृत 'हम्मीर रासो', कल्हणकृत 'बुद्धिरासो', जगनिककृत 'परमाल रासो', नल्लसिंहकृत 'विजयपाल रासो', माधवदास चारणकृत 'रामरासो', दयाल कविकृत 'राणा रासो', कुम्भर्णकृत 'रतनरासो', न्यामत खाँ 'आन'-कृत 'कायम रासो', रावडूँगरसीकृत 'शत्रुसाल रासो', कीर्तिसुन्दरकृत 'माँकण रासो'- इसमें मत्कुण (खटमल) का चरित्र वर्णित है, जोधराजकृत 'हम्मीर रासो', गिरिधर चारणकृत 'सगतसिंह रासो', दलपतिकृत 'खुमाण रासो' इत्यादि। इन्हीं ग्रन्थों को वीरगाथात्मक काव्य, वीर काव्य, चारण काव्य कहते हैं । इनके आधार पर ही वीर काव्यधारा की विशेषताएँ समझी जा सकती है ।

1.4 आदिकालीन वीरगाथात्मक काव्यों की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी साहित्य के आदि काल में वीरगाथाओं का युग राजनीतिक दृष्टि से पतनोन्मुख, सामाजिक रूप से दीन-हीन तथा धार्मिक दृष्टि से क्षीण काल है । इस काल में जहाँ एक ओर जैन, नाथ और सिद्ध साहित्य का निर्माण हुआ वही दूसरी ओर राजस्थान में चारण कवियों द्वारा चरित काव्य भी रचे गये । इनका प्रधान विषय वीरगाथाओं से सम्बद्ध है अत: इन्हें वीरगाथा काव्य भी कहते हैं । यहां हम इन वीरगाथाओं की सामान्य प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का विवेचन करेंगे ।

1. संदिग्ध रचनाएँ - इस काल में उपलब्ध होने वाली प्राय: सभी वीरगाथाओं की प्रामाणिकता सन्देह की दृष्टि से देखी जाती हैं । इस काल में रचित चार काव्य प्राप्त हुए हैं- खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो । भाषा, शैली और विषय सामग्री की दृष्टि से इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इनमें निरन्तर कई शताब्दियों तक परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे हैं । यह परिवर्तन और परिवर्द्धन का कार्य इतनी प्रचुर मात्रा में हुआ

है कि इसका मूल रूप भी दब गया है । ये सम्बन्धित आश्रयदाताओं के काल में ही लिखी गई । इस बात को निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है । खुमाण रासो में 16 वीं शती तक की सामग्री का समावेश कर लिया गया है । परमाल रासो का स्वरूप आल्ह खण्ड से कितना ही बदला हुआ है । पृथ्वीराज रासो की भी यही स्थिति है । हाँ, बीसलदेव रासो के लघु काव्य होने के कारण उसमें अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तन नहीं हुए । समष्टि रूप से इन ग्रन्थों के मूल रूप की पहचान एक अत्यन्त दुष्कर कार्य हो गया है ।

2. ऐतिहासिकता का अभाव - इन रचनाओं में इतिहास-प्रसिद्ध चरित्र-नायकों को लिया गया है किन्तु उनका वर्णन शुद्ध इतिहास की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता । इन कवियों के द्वारा दिये गए संवत् और तिथियां इतिहास से मेल नहीं खाती बल्कि उस समय में लिखे गये संस्कृत काव्यों में दिए गए संवर्ती और घटनाओं में भी इनका मेल नहीं बन पाता । इन काव्यों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का बाहुल्य है । इतिहास के विषय को लेकर चलने वाले कवि में जो सावधानता अपेक्षित होती है, वह इन काव्य-निर्माताओं में नहीं । अतिरंजनापूर्ण शैली इस दिशा में एक और महाव्याधान सिद्ध हुई है । इन चारण क्ही कवियों को आश्रयदाताओं को राम, कृष्ण, नल, युधिष्ठिर आदि से उत्कृष्ट बताना एवं सर्वविजेता करना अभिप्रेत था, अत: इतिहास को अतिशयोक्ति तथा कल्पना पर न्यौछावर कर दिया सा । यहां तक कि पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज को उन राजाओं का भी विजेता कहा गया है जो उससे कई शताब्दियों पूर्व अथवा पश्चात् विद्यमान थे । अस्तु ! इस दिशा में संस्कृत साहित्य का जागरूक कवि भी सफल नहीं उतर सका है फिर ह्रासोन्मुख काल के चारण कवि से इसकी क्या आशा की जा सकती है । आदर्शवाद का दृष्टिकोण इस दिशा में पग-पग पर आकर अड़ गया है ।

3. युद्धों का सजीव वर्णन - युद्धों का वर्णन इन ग्रन्थों का प्रमुख विषय है और यह वर्णन इतना सजीव बन पड़ा है कि कदाचित् संस्कृत साहित्य भी इस दिशा में इन काव्यों की होड़ नहीं कर सकता । इन काव्यों में युद्ध का वर्णन अत्यन्त मूर्तिमान बिम्बग्राही रूप से हुआ है कारण चारण कवि केवल मसि-जीवी नहीं था करवाल-ग्राही भी था । आवश्यकता पड़ने पर वह स्वयं भी समरस्थल में जूझा और युद्ध के विकट दृश्यों को अपनी खुली आँखों से देखा। वह समय भीतरी कलहों और बाहरी आक्रमणों का समय था, अत: अपने आश्रयदाताओं को युद्धों के लिए उत्तेजित करना उस काल के कवि का प्रमुख कर्त्तव्य-सा बन गया था । आचार्य हजारीप्रसाद इस सम्बन्ध मे लिखते हैं - "लड़ने वालों की संख्या कम थी क्योंकि लड़ाई भी जाति विशेष का पेशा मान ली गई थी । देश रक्षा के लिए या धर्म रक्षा के लिए समूची जनता के सन्नद्ध हो जाने का विचार ही नहीं उठता था । लोग क्रमश: जातियों और उपजातियों, सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों में विभक्त होते जा रहे थे । लड़ने वाली जाति के लिए सचमुच चैन से रहना असम्मव हो गया था । क्योंकि उत्तर, पूरब, दक्षिण, पश्चिम सब ओर से आक्रमण की सम्भावना थी । निरन्तर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था । चारण इसी श्रेणी के लोग हैं । उनका कार्य ही था हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना-योजना का आविष्कार । "

इन चारण कवियों' ने युद्धों के कारण के लिए किसी न किसी स्त्री की कल्पना कर ली है । उसकी प्राप्ति के लिए युद्ध हो जाया करते थे । यह उस समय की प्रचलित काव्य परिपाटी

थी । रूकमणी और उषा आदि के हरण के पौराणिक वृतान्त उस समय भी लोगों को भूले नहीं थे । उस समय के संस्कृत कवि विल्हणकृत विक्रमांकदेव चरित में भी विवाहों और युद्धों का खुलकर वर्णन है । कहीं-कहीं पर ऐसे वर्णनों में वर्णात्मक वस्तु परिगणन शैली को अपनाया गया है । ऐसे वर्णनों में भावोन्मेष की कमी है । निःसन्देह यही युद्धों का मूल कारण नारी है । किन्तु उसे केवल रमणी रूप में ही प्रस्तुत नहीं किया, उसका वीर महिला रूप भी दर्शाया गया है ।

4. संकुचित राष्ट्रीयता - चारण कवियों ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा का मुक्त कण्ठ से गान किया है । जीविका प्राप्ति के लिए उसने अनाधिकार राजाओं एवं सामन्तों की भी प्रशंसा की है । देशद्रोही जयचन्द के गुणानुवादक भी उस समय विद्यमान थे । भट्ट केदार ने "जयचन्द प्रकाश" लिखा और मधुकर ने "जयमयंक जस चन्द्रिका" नामक ग्रन्थ लिखा । उस समय राष्ट्र शब्द से समूचा भारत नहीं लिया गया बल्कि अपना-अपना प्रदेश एवं राज्य का ही ग्रहण किया गया । अजमेर और दिल्ली के राज-कवि को नन्नौज अथवा कालिंजर के समृद्ध अथवा उजड़ जाने पर कोई हर्ष एवं विषाद नहीं होता था । उस समय के राजाओं ने अपने सौ-पचास गाँवों को राष्ट्र समझ रखा था, तो फिर उनके आश्रित कवियों को उन्हीं के पद-चिन्हों पर चलना था । वस्तुतः यह देश का एक महादुर्भाग्य था । यदि उस समय राष्ट्रीयता का व्यापक रूप होता तो निश्चय था कि हमारे देश का मानचित्र आज कुछ और होता ।

5. वीर और श्रृंगार रस - इन वीर गाथाओं में वीर तथा श्रृंगार रस का अद्भुत सम्मिश्रण है। वीर रस का तो इतना सुन्दर परिपाक हुआ है कि कदाचित् परवर्ती हिन्दी साहित्य में वीर रस का इतना पुष्ट रूप मिलना दुर्लभ है । उस समय युद्ध का बाजार चारों ओर गर्म था । आबाल वृद्ध में युद्ध के लिए एक अदम्य उत्साह था । उस समय की वीरता का आदर्श निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हो जाता है -

बारह बरस लै कूकर जिये, और तेरह लै जिये सियार ।
बरस अठारह क्षत्रीय जिये, आगे जीवन को धिक्कार । ।

युद्धों का मूल कारण नारी को कल्पित कर लिया गया । अतः श्रृंगार रस का भी इस साहित्य में जमकर वर्णन मिलता है । रासो ग्रन्थों में चर्चित नर-नारी प्रेम विलास या वासना से ऊपर नहीं उठ सका है । वीर रस की दीप्ति के लिये लिखे गये वीरता के पद भी वासनात्मक प्रवृत्ति को उत्तेजित करने के हेतु आये हैं । युद्धों का एकमात्र कारण नारी लिप्सा है । उक्त ग्रंथों में निरूपित युद्धों के मूल में उदात्त-प्रेम भावना या राष्ट्रीयता का सहज उल्लास नहीं है । अस्तु! वीर और श्रृंगार जैसे दो विरोधी रसों का समावेश इस साहित्य में इतने सुन्दर ढंग से किया गया है कि कहीं भी विरोध अभाषित नहीं होता । वस्तुतः यह बात उस समय के कलाकार की जागरूकता की परिचायक है ।

वीर गाथाओं में शान्त तथा हास्य रस को छोड़कर अन्य सभी रसों का समावेश है । श्रृंगार रस के वर्णन के अन्तर्गत इन्होंने षट्-ऋतु वर्णन, नख-शिख वर्णन आदि काव्य रूढ़ियों का भी सम्यक् निरूपण किया है ।

6. प्रकृति-चित्रण - इस साहित्य में प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में चित्रण मिलता है । नगर, नदी, पर्वत आदि का वस्तु वर्णन भी शोभन बन पड़ा है । प्रकृति के स्वतन्त्र

रूप में चित्रण के स्थल इन काव्यों में थोड़े ही मिलते हैं, अधिकतर उसका उपयोग उद्दीपन रूप में किया है । प्रकृति-चित्रण की जो उदात्त शैली छायावादी युग में मिलती है वह इस काल में नहीं । कहीं-कहीं तो इन्होंने प्रकृति-चित्रण में नाम परिगणन शैली को अपनाया है जहाँ रसोद्रेक के स्थान पर नीरसता आ गई है ।

7. रासो ग्रन्थ - इस साहित्य के सभी ग्रन्थों के नाम के साथ रासो शब्द जुड़ा हुआ है जो कि काव्य शब्द का पर्यायवाची है । कुछ लोग रासो का सम्बन्ध रहस्य अथवा रसायन से जोड़ते हैं किन्तु यह भ्रमिक है । मूल रूप में रासक एक छन्द है जिसका प्रयोग अपभ्रंश साहित्य में संदेश रासक आदि ग्रन्थों में मिलता है । फिर इसका प्रयोग गेयरूपक के अर्थ में होने लगा । पीछे इस शब्द का प्रयोग चरित काव्य एवं कथा काव्य के लिए होने लगा । रासो नाम के चरित काव्यों में से कुछ का उपयोग गाने के लिए अधिकतर होने लगा । इससे जनवाणी ने इनको धीर-धीरे अपने-अपने समय के अनुरूप करते-करते इनका पुराना रूप ही बदल दिया इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आल्ह खण्ड है ।

8. काव्य के दो रूप - वीर गाथाएँ मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में मिलती है । प्रथम रूप का प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ बीसलदेव रासो है और दूसरे का प्राचीन ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो । इन दो रूपों के अतिरिक्त उस साहित्य में और दूसरा काव्य का कोई रूप नहीं है । उसमें काव्य रूपों की विविधता का अभाव है । न तो उस समय दृश्य काव्य था और न ही गद्य कर प्रचलन था । उस समय की कुछ रचनाएँ अप्रामाणिक और कुछ अर्द्ध-प्रामाणिक और नोटिस मात्र हैं। भट्ट केदार का "जयचन्द प्रकाश" तथा मधुकर प्रणीत "जयमयंक जस चन्द्रिका" दोनों इसी कोटि के ग्रंथ हैं । इनका उल्लेख मात्र ही "राठौड़ा री ख्यात" में मिलता है ।

9. इस काल के काव्य के उक्त दो रूपों के अतिरिक्त फुटकर- रूप में गद्य लिखे जाने के भी संकेत हैं । राउलवेल (चम्पू) उक्ति-व्यक्ति प्रकरण तथा वर्ण-रत्नाकर नामक रचनाएँ इस दिशा में उल्लेखनीय हैं । राउलवेल में राजकुमारी के नख-शिख का वर्णन है । उक्ति व्यक्ति प्रकरण व्याकरण सम्बन्धी-ग्रंथ है और वर्णरत्नाकर तत्कालीन भारत का कोणात्मक ग्रन्थ है । इन गन्थों से गद्य धारा की अखण्डता सूचित होती है ।

10. जनजीवन से सम्पर्क नहीं - इन ग्रन्थों में सामन्ती जीवन उभर आया है । इनका जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । राजदरबारी कवि से जन-जीवन की विस्तृत व्याख्या की आशा भी नहीं की जा सकती है । वीर गाथाओं तथा रीतिग्रन्थों के कवियों ने स्वामिन: सुखाय काव्यों की सृष्टि की है, अत: उनमें साधारण जनजीवन के घात-प्रतिघातों का अभाव हैं ।

11. छन्दों का विविधमुखी प्रयोग - इस साहित्य में छन्द क्षेत्र में तो मानों एक क्रान्ति ही हो गयी । छन्दों का जितना विविधमुखी प्रयोग इस साहित्य में हुआ है, उतना इसके पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं हुआ । दोहा, तोटक तोमर, गाथा, गाहा पद्धरि, आर्या, सट्टक, रोला, उल्लाला और कुण्डलिया आदि छन्दों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता के साथ किया गया है । यहाँ छन्द परिवर्तन केशव की रामचन्द्रिका के समान चमत्कार-प्रदर्शन के लिये नहीं हुआ प्रत्युत् अतिशय भाव द्योतन के लिए हुआ है । इस परिवर्तन में कहो भी अस्वाभाविकता नहीं है । आचार्य हजारी प्रसाद के शब्दों में "रासो के छन्द जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसांगानुकूल नवीन कम्पन उत्पन्न करते हैं ।"

12. डिंगल और पिंगल भाषा - इन काव्यों की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है डिंगल भाषा का प्रयोग । उस समय की साहित्यिक राजस्थानी भाषा को आज के विद्वान डिंगल नाम से अभिहित करते हैं । यह भाषा वीरत्व के स्वर के लिये बहुत उपयुक्त भाषा है । चारण अपनी विधा को बहुत ऊँचे स्वर में पढ़ते थे और डिंगल भाषा उसके उपयुक्त थी । उस समय की अपभ्रंश मिश्रित साहित्यिक बृज भाषा पिंगल के नाम से अभिहित की जाती है । इन काव्यों में संस्कृत के तत्सम तथा तदभव शब्दों के अतिरिक्त अरबी और फारसी के भी शब्द पाये जाते हैं । तद्भव शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है क्योंकि यह प्रवृत्ति डिंगल भाषा के अनुकूल पड़ती है । संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के समान डिंगल भाषा के अधिकांश रूप संश्लिष्ट हैं ।

इन वीर काव्यों की परम्परा अगली कई शताब्दियों तक चलती रही । भक्ति काल में पृथ्वीराज, दुरसा जी, बांकीदास और सूर्यमल्ल ने डिंगल भाषा में वीर काव्य प्रस्तुत किये । केशव और तुलसी के काव्यों में भी वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है । इस दिशा में रीतिकाल में भूषण, सूदन और लाल के अतिरिक्त पदमाकर, गुरू गोबिन्द सिंह, सबलसिंह, गोकुलनाथ, श्रीधर, जोधराज और चन्द्रशेखर के नाम उल्लेखनीय हैं । आधुनिक युग में मैथिलीशरण गुप्त और रामधारीसिंह दिनकर राष्ट्रीय कवि कहलाते हैं । वियोगी हरि और श्याम नारायण पाण्डे में वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है । प्रगतिवादी साहित्य में भी वीररस का सराहनीय प्रयोग हुआ है ।

महत्व - इस साहित्य का ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से महत्व है । भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह साहित्य अत्यन्त उपादेय है । इसमें वीर तथा श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक बन पड़ा है । निःसन्देह इन ग्रन्थों में अतिरंजना पूर्ण शैली के प्रयोग से इतिहास दब-सा गया है परन्तु फिर भी राजस्थान का इतिहास इन ग्रन्थों में अवश्य निहित है, जिसका उपयोग थोड़ी सतर्कता के साथ किया जा सकता है । डॉ. श्यामसुन्दरदास के इस वीर गाथा साहित्य के सम्बन्ध में कहे गये शब्द विशेष महत्व पूर्ण बन पड़े हैं - "इस काल के कवियों का युद्ध वर्णन इतना मार्मिक तथा सजीव हुआ है कि इसके सामने पीछे के कवियों की अनुप्राश गर्भित, किन्तु निर्जीव रचनाएँ नकल-सी जान पड़ती हैं। कर्कश पदावली के बीच वीर भावों से भरी हिन्दी के आदि युग की यह कविता सारे हिन्दी साहित्य में अपनी क्षमता नहीं रखती ।"

इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखते हैं -

"भक्ति साहित्य हमें प्रत्येक प्रान्त में मिलता है । सभी स्थानों के कवियों ने अपने ढंग से राधा और कृष्ण के गीतों का गान किया है, परन्तु अपने रक्त से राजस्थान ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है और उसका कारण भी है । राजपूताने के कवियों ने जीवन की कठोर वास्तविकताओं का स्वयं सामना करते हुए युद्धों के नक्कारों की ध्वनि के साथ स्वाभाविक काव्य गान किया । उन्होंने अपने सामने साक्षात् शिव के ताण्डव की तरह प्रकृति का नृत्य देखा था । क्या कोई कल्पना द्वारा उस कोटि के काव्य की कल्पना कर सकता है ? राजस्थानी भाषा के प्रत्येक दोहे में जो वीरत्व की भावना है और उमंग है, यह राजस्थान

की मौलिक निधि है और समस्त भारतवर्ष के गौरव का विषय है । यह स्वाभाविक, सच्ची और प्रकृत है ।"

1.5 सारांश

आदिकाल में काव्य की इतनी प्रवृत्तियाँ है कि उन्हें एक नाम से सम्बोधित नहीं किया जा सकता । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीर काव्य के अतिरिक्त काव्यधाराओं की धार्मिक काव्य कहकर साहित्य की मुख्यधारा से बाहर रखा । इस कारण इस काल की वीरगाथा काल कहा । किन्तु आचार्य शुक्ल के परवर्ती समीक्षकों और साहित्यकारों ने पाया कि जिन काव्य धाराओं की शुक्ल जी ने धार्मिक साहित्य कहकर उपेक्षा की थी उनका भी उतना ही महत्व है जितना वीरगाथा काव्य धारा का । इस काल की विभिन्न काव्य धाराएँ हिन्दी साहित्य के विकास की आधारभूमि तैयार करती है । जैन काव्य धारा, सिद्ध काव्य धारा, नाथ साहित्य एवं रासो काव्य धारा सभी काव्य धारा अपनी प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं के साथ साहित्य को समृद्ध करते हुए आदिकाल की एक मजबूत आधार स्तम्भ प्रदान करती है ।

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का इतिहास	–	डॉनगेन्द्र .
हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	–	डॉशिवकुमार शर्मा .
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	–	डॉहजारी प्रसाद द्विवेदी .
हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास	–	डॉबच्चन सिंह .
हिन्दी साहित्य का इतिहास	–	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का इतिहास	–	डॉश्यामचन्द्र कपूर .
हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास	–	डॉ लक्ष्मीलाल बैरागी .

1.7 बोध प्रश्न

- आदिकाल की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति का चित्रण कीजिए ।
- आदिकाल की धार्मिक व साहित्यिक परिस्थिति का वर्णन करो ।
- जैन काव्य धारा का संक्षिप्त लेख लिखिये ।
- नाथ काव्य धारा पर संक्षिप्त लेख लिखिये ।
- सिद्ध काव्य धारा पर टिप्पणी लिखिये ।
- आदिकालीन वीरगाथात्मक काव्य की विशेषताओं का चित्रण करो ।

इकाई-2

चन्दवरदाई का काव्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 युग परिवेश

2.3 रासो शब्द की व्युपत्ति एवं अर्थ

2.4 रासो काव्य परम्परा

2.5 पृथ्वीराज रासो का रचयिता-चन्दवरदाई: जीवन परिचय एवं रचनाएँ

2.6 पृथ्वीराज रासो: संक्षिप्त कथा

2.7 विविध रूपान्तर

2.8 प्रामाणिकता

2.9 पृथ्वीराज रासो का भाव पक्ष

2.9.1 वीर रस

2.9.2 श्रृंगार एवं अन्य रस

2.9.3 प्रकृति चित्रण

2.9.4 वस्तु वर्णन एवं काव्य रूढियाँ

2.9.5 चरित्र चित्रण

2.10 पृथ्वीराज रासो का अभिव्यंजना पक्ष

2.10.1 काव्य रूप

2.10.2 काव्य भाषा

2.10.3 अलंकार

2.10.4 छंद विधान

2.11 वाचन एवं व्याख्या

2.12 मूल्यांकन

2.13 सारांश

2.14 संदर्भ ग्रन्थ

2.15 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

चन्दवरदाई विरचित 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रतिनिधि रचना है । इस इकाई में पृथ्वीराज रासो को आदिकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है । इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी-

1. हिन्दी साहित्य के उद्भव काल अर्थात् आदिकालीन सामाजिक, राजनीतिक व साहित्यिक परिवेश को समझ सकेंगे ।

2. चन्दवरदाई के व्यक्तित्व एवं पृथ्वीराज रासो के विविध साहित्यिक पक्षों को जान सकेंगे।
3. आदिकालीन रासो काव्य परम्परा की महत्वपूर्ण रचनाओं के साथ बहु चर्चित एवं विचारणीय महाकाव्य पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता एवं विविध रूपान्तरों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
4. पृथ्वीराज रासो के भाव सौन्दर्य एवं शिल्प सौन्दर्य का आस्वादन तथा भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में पृथ्वीराज रासो का महत्वांकन करते हुए पृथ्वीराज रासो के महत्वपूर्ण पदों की सन्दर्भ सहित व्याख्या भी कर सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

चन्दवरदाई अजमेर के शासक पृथ्वीराज तृतीय के मित्र, सामन्त एवं राजकवि थे । उनके द्वारा रचित **पृथ्वीराज रासो** न केवल आदिकालीन वीर रसात्मक चरित काव्यों अपितु समग्र भारतीय भाषा साहित्य में अद्वितीय है । यह काव्य भारत की जातीय परम्परा एवं सांस्कृतिक आदर्शो को निरूपित करता है । इस पाठ में हम रासो काव्य परम्परा का परिचय देते हुए पृथ्वीराज रासो के सांस्कृतिक एवं कलात्मक महत्व संबंधी जानकारी प्रदान करेंगे । इस पाठ के अध्ययन से पूर्व इस तथ्य को जान लेना जरूरी है कि आदिकालीन रचनाएँ प्राय: संदिग्ध है, उनमें घटनाओं, कालक्रम एवं भाषा की दृष्टि से अनेक ऐतिहासिक असंगतियां है लेकिन इससे किसी रचना का साहित्यिक गौरव कम नहीं हो जाता । पृथ्वीराज रासो में भी ऐसी अनेक असंगतियाँ है जिनकी जानकारी रखते हुए भी आपका लक्ष्य इस रचना में निहित भाव सौन्दर्य, प्रबन्ध सौष्ठव, वर्णन सौन्दर्य, भाषा सौन्दर्य, उत्कृष्ट छंदविधान एवं अप्रस्तुत योजना का सम्यक् अनुशीलन होना चाहिए । पृथ्वीराज रासो के कुछ विशिष्ट पदों का वाचन एवं व्याख्या इस उद्देश्य से की गई है कि आप पदों की व्याख्या के माध्यम से रचना के मर्म-उद्घाटन की कला सीख सकें ।

2.2 युग-परिवेश

जिस काल में पृथ्वीराज रासो की रचना हुई वह काल राजनीतिक दृष्टि से भारत में मुस्लिम आक्रमणों का था । देशी राजपूत राजा अपने-अपने स्वार्थो और ईर्ष्या में धंसे हुए परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते थे जिसका लाभ मोहम्मद गोरी जैसे आक्रमणकारियों को मिला । ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में तोमरों का, अजमेर में चौहानों का और कन्नोज में गहड़वालों का शासन था बाद में दिल्ली भी अजमेर राज्य के अन्तर्गत आ गया । मोहम्मद गोरी तराइन की प्रथम लड़ाई में दिल्ली व अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान से हार गया था किन्तु तराइन की दूसरी लड़ाई में गोरी ने कन्नोज के राजा जयचन्द और पृथ्वीराज की शत्रुता का लाभ उठाकर पृथ्वीराज को परास्त कर मार डाला । फिर धीरे- धीरे अन्य देशी राज्यों का भी पतन हो गया ।

धार्मिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह युग हलचलयुक्त था । अधिकांश राजपूत राजा शैव-वैष्णव धर्म के अनुयायी थे । एक ओर बौद्ध सिद्धों की वाममार्गी साधना पद्धति की ओर जनता आकर्षित हो रही थी तो वहीं उसके प्रत्युत्तर में विकसित नाथों की वैराग्यमूलक साधना पद्धति ने अपने प्रभाव का विस्तार किया । उत्तरी पश्चिमी भारत में जैन धर्म भी काफी ख्यात था । इसी

समय एक नये धर्म-इस्लाम का आगमन भी हुआ जिसके साथ स्थानीय जातियों, मतों और आचार-विचारों के मिश्रण की प्रक्रिया चल पड़ी, किन्तु जनता में गहरे असन्तोष और क्षोभ के भाव विकसित हो रहे थे ।

सामाजिक दृष्टि से यह युग घोर अध: पतन का युग था । वर्ण व्यवस्था एवं जाति-भेद के बंधन अत्यधिक कड़े हो रहे थे । सामन्ती परिवेश में नारी की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई । वह भोग-विलास की प्रतीक मात्र रह गई । बालविवाह, वैधव्य, अशिक्षा से आक्रान्त नारीजीवन अभिशाप से कम न था । क्षत्रिय वर्ग का जीवन भोग-विलास में डूबा हुआ था । युद्धक्षेत्र में जूझते हुए प्राण दे देना ही उसका आदर्श था ।

साहित्यिक दृष्टि से यह युग अत्यन्त समृद्ध था । कश्मीर और कन्नोज जैसे राज्यों में संस्कृत भाषा एवं साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ । वहीं अन्य देशी दरबारों में रासो काव्य का सृजन हुआ जिसमें डिंगल (प्राचीन राजस्थानी) पिंगल (ब्रज भाषा) भाषाओं का खूब प्रयोग हुआ । राजपूत राजाओं के दरबार में रहने वाले चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में जिन वीरगाथाओं की रचना की वैसी रचनाएँ विश्व साहित्य में दुर्लभ है । वीरगाथाओं के प्राचुर्य एवं प्रधानता के कारण ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग को 'वीरगाथा काल' नाम दिया था । बौद्ध, सिद्धों, जैन मत के अनुयायियों एवं नाथों ने अपभ्रंश के उत्तरवर्ती रूप-अवहट्ट या पुरानी हिन्दी में रचनाएँ लिखी ।

बोध प्रश्न- क

सही उत्तर पर निशान लगाइये-

1. चन्दवरदाई निम्नलिखित में से किस राजा के राजकवि थे?
   (अ) राणा अमरसिंह
   (ब) जयचन्द
   (स) जयसिंह
   (द)पृथ्वीराज चौहान
2. कवि चन्दवरदाई के जीवन एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
   .....
   .....
   .....
   .....
   .....
3. पृथ्वीराज चौहान निम्नलिखित में से कहां के राजा थे?
   (अ) जयपुर (ब) ग्वालियर
   (स) दिल्ली-अजमेर (द) कन्नोज
4. आदिकालीन साहित्य की सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.3 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं । इसकी व्युत्पत्ति 'राजसूय' (गार्सा-द-तासी) रसिक (नरोत्तम दास स्वामी) रासक (चन्द्रबली पाण्डेय) रसायन (रामचन्द्र शुक्ल) रस (पोपटलाल शाह) आदि शब्दों से मानी गई है । विष्णु लाल पंड्या 'रासो' शब्द को संस्कृत के 'रास' या 'रासक' शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं । संस्कृत का 'रासक' शब्द ही अपभ्रंश में 'रासक' हुआ। मध्यकालीन राजस्थानी तथा ब्रजभाषा में रासो व आधुनिक काल तक आते-आते 'रासो' हो गया । कही-कहीं 'रासो' शब्द का 'राइसौ' या 'रायसौ' रूप भी मिलता है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'रासक' एक छन्द भी है और काव्य रूप भी । इस काव्य रूप में अनेक छन्दों का प्रयोग होता था । यही मत सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है ।

'रासो' शब्द का अर्थ

'रास' या 'रासक' का अर्थ नृत्य है । यह नृत्य ताल के साथ किया जाता था और दण्डों के साथ भी । मध्यकाल में ताला-रास और लगुड़ रास या दंडिक-रास काफी प्रचलित थे । प्रारम्भ में रास के साथ विविध रागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की गीत गाए जाते थे । धीरे-धीरे इनमें नृत्य का अंश गौण होता गया और कथा की प्रधानता हुई जिसे 'रास' कहा जाने लगा । ये कथा-काव्य पढ़े जाने के लिए ही लिखे गये । इस प्रकार के कथा-काव्य प्राचीन राजस्थानी एवं गुजराती में प्रचुर मात्रा में लिखे गये । जैन विद्वानों द्वारा लिखा गया रास साहित्य उसी का प्रमाण है । भाटों व चारणों ने जो शैली अपनाई वह जैनों की रास-रचना शैली से ही ग्रहण की गई थी परन्तु राजदरबारों से सम्बद्ध होने के कारण चारण व भाटों के रासो काव्यों में युद्ध एवं वीरतापूर्ण कृत्यों की प्रमुखता थी । इस प्रकार रासो संज्ञक काव्यों का अर्थ ऐसी रचनाओं से लिया जाने लगा जिनमें युद्धों का वर्णन हो ।

2.4 'रासो' काव्य परम्परा

रासो काव्य परम्परा की दो शैलियां विकसित हुई, जिन्हें डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने नृत्य गीतपरक एवं छन्द वैविध्यपरक परम्परा का नाम दिया है । नृत्यगीतपरक धारा की रचनाओं में भरतेश्वर बाहु बली रास (शालिभद्र सूरी) चन्दनबाला रास (आसगु) जम्बू स्वामी रास (धर्म सूरि) रेवन्तगिरि रास (विजय सेन सूरि) नेमिनाथ रास (सुमतिगणि) स्थूलिभद्र रास (जिनधर्मसूरी) आदि मुख्य है ।

छन्द वैविध्यपरक धारा में मुख्यत: वीरगाथात्मक रचनाएं आती है । ये रचनाएं मध्यकालीन वीर सेना नायकों के जीवन चरित पर आधारित है एवं इनके प्रधान रस वीर एवं श्रृंगार है । इन रचनाओं में युद्धों का ओजस्वी वर्णन हुआ है । कवियों ने अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से अपने

आश्रयदाता राजाओं व सामन्तों का यशोगान किया है । इस धारा की मुख्य रचनाएं इस प्रकार हैं:

1. खुमाण रासो-इसके रचयिता नवीं सदी के कवि दलपति विजय माने गये हैं । इसमें चित्तोड़ के राणा खुमाणसिंह के युद्धों का विस्तार से वर्णन है । भाव एवं कला की दृष्टि से यह एक अनुपम कृति है ।
2. हम्मीर रासो- इस काव्य ग्रंथ के रचयिता शाङर्गधर हैं । इसमें रणथम्भौर के चौहान नरेश हम्मीर और अलाउद्दीन खिलजी के युद्धों का ओजस्वी वर्णन है । राहुल सांकृत्यायन ने जज्जल को तथा कुछ विद्वानों ने जोधराज को भी इसका रचयिता माना है ।
3. बीसलदेव रासो- संवत् 1272 में रचित नरपतिनाल्ह की इस रचना में सांभर नरेश बीसलदेव एवं रानी राजमती के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की सरस गाथा अंकित है। इसकी भावभूमि सरस प्रणय से आप्लावित है ।
4. परमार रासो- इसका रचयिता जगनिक परमर्दिदेव चन्देल का दरबारी कवि था । इस रचना में जगनिक ने आल्हा और ऊदल नामक दो वीर सेनानायकों के वीरत्वपूर्ण युद्धों का वर्णन किया है । यह काव्य मूल रूप से एक लोक गेय-काव्य था । उत्तर प्रदेश में इसे आज भी किसानों द्वारा गाया जाता है । इसे 'आल्हाखण्ड' भी कहते हैं ।
5. पृथ्वीराज रासो- इस ग्रन्थ के रचयिता चन्दवरदाई हैं । रासो काव्य परम्परा का यह अत्यन्त प्रसिद्ध किन्तु विवादास्पद ग्रन्थ है । इस काव्य ग्रन्थ में पृथ्वीराज चौहान के अनेक विवाहों एवं युद्धों के चित्रण में श्रृंगार एवं वीर रस की अद्भुत व्यंजना हुई है ।

इन महत्वपूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त विजयपाल रासो (नलसिंह) शत्रुसाल रासो (डूंगर सी) रतनरासो (कुम्भकरण) आदि रचनाएं भी इस धारा में आती हैं ।

रासो काव्य परम्परा पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट पता चलता है कि गीत नृत्यपरक परम्परा की रचनाएं छोटी है, इनका प्रचार जैन धर्मावलम्बियों में अधिक रहा एवं ये पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में लिखी गई जबकि छन्द वैविध्यपरक परम्परा में लघु एवं वृहद् दोनों प्रकार की रचनाएं मिलती हैं जिनकी रचना हिन्दी प्रदेश में हुई । ये काव्यत्व की दृष्टि से भी उत्कृष्ट रचनाएं हैं ।

2.5 पृथ्वीराज रासो का रचयिता-चन्दवरदाई : जीवन परिचय एवं रचनाएं

चन्द के जीवन के विषय में निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है । जन अनुश्रुति में बहुत सी धारणाएं प्रचलित हैं । वह जाति से ब्रह्मभट्ट था तथा अजमेर-दिल्ली के चौहान राजा पृथ्वीराज तृतीय तथा कन्नोज के गहड़वाल राजा जयचन्द के समकालीन था । 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के एक बंदीजन का नाम पृथ्वीभट्ट दिया गया है, जिसके आधार पर कुछ विद्वान उसी के चन्द होने का अनुमान लगाते हैं । मुनिजिन विजय द्वारा सम्पादित 'प्रबन्ध संग्रह' में चन्द का उल्लेख मिलता है । इसके प्रबन्धों के नाम 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' एवं 'जयचन्द प्रबन्ध' है । 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के अनुसार चन्द पृथ्वीराज का द्वारभट्ट था । कहा जाता है कि जब पृथ्वीराज ने अपने मंत्री कदम्बवास पर अप्रसन्न होकर बाण चलाया तो उसका निशाना चूक गया । चन्द को इस बात का पता चल गया व उसने दो पद्य लिख कर राजा को फटकारा

। राजा ने उसे कैद कर लिया परन्तु बाद में छोड़ दिया । चन्द ने राजा से कहा कि'तुम शीघ्र ही म्लेच्छों द्वारा कैद कर के मारे जाओगे' और वह काशी चला गया ।

इसके पश्चात् सूरदास की 'साहित्य लहरी' के पद में भी चन्द का उल्लेख मिलता है । किन्तु विद्वानों ने इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह किया है । इस पद के अनुसार पृथु के यज्ञ से पुरूष का जन्म हुआ । ब्रह्मा ने जिसको ब्रह्मराव नाम दिया व दुर्गा ने उसे स्तनपान कराया । इस दुर्गा पुत्र के वंश में चन्द हुआ । उसके चार पुत्रों में दूसरे पुत्र के वंश में सूर पैदा हुए । इसके पश्चात् बूंदी के राजा सुरजन और भोज के दरबारी कवि चन्द्रशेखर के 'सुरजन चरित' काव्य में भी चन्द का उल्लेख मिलता है । इस काव्य के अनुसार चन्द बन्दीजन था । राजा के गजनी में बन्दी होने पर वह सुल्तान से पृथ्वीराज के अंधा होने पर भी बाण से सात लोहे के कड़ाहों को एक साथ बेधने की करामात दिखाने के लिए राजी कर लेता है । इस तरह षड्यंत्र में सुल्तान मारा जाता है व चन्द पृथ्वीराज को कुरूजांगल देश में लौटा लाता है । कवि पुहकर ने भी संवत् 1676 में अपने 'रस रतन' कथा काव्य में चन्दवरदाई का उल्लेख किया है । महाराणा राजसिंह द्वारा राजसमंद पर खुदवाई गई राज प्रशस्ति में भी रासो का संदर्भ आता है ।

चन्द की जीवनी से सम्बन्धित बहुत सी बातों का उल्लेख रासो के वृहद संस्करण में भी मिलता है । इसमें वर्णित है कि चन्द जगात गौत्र का भाट था । उसके पूर्वज पंजाब के थे । उसका जन्म लाहौर में हुआ था । उसके पिता का नाम वेण व गुरू का नाम गुरू प्रसाद मिलता है । चन्द व पृथ्वीराज का जन्म व मरण एक ही दिन हुआ था । 'पृथ्वीराज रासो' के चारों रूपान्तरों में यह कथा भी पायी जाती है कि पृथ्वीराज-गोरी युद्ध के समय विश्वासघाती सामन्त ने चन्द को देवी मन्दिर में कैद कर रखा था । कैद से छुटने के बाद चन्द ने गजनी पहुंच कर षड्यंत्र से गोरी का वध करवाया व इसके पश्चात् चन्द व पृथ्वीराज दोनों ने प्राणान्त किया ।

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चन्द के दस पुत्र तथा एक पुत्री थी । एक पुत्र का नाम जल्ह था जिसे गजनी जाते समय चन्द ने अपनी रचना को पूर्ण करने के लिए सौंप दिया । इस संबंध में 'पुस्तक जल्हण हाथ दे चलि गज्जन नृप काज' उक्ति काफी प्रसिद्ध है । चन्द के वंशजों के बारे में भी अनेक किंवदतियां है । कहा जाता है कि जल्ह के वंशज मेवाड़ में विद्यमान है । हरप्रसाद शास्त्री ने भी अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि नागौर के नानूराम भट्ट ने बताया कि चन्द के चार पुत्र थे जिनमें चौथा जल्ह था जिसका वंश नागौर में है । सूरदास का जन्म भी इसी वंश में हुआ ।

रचनाएं - चन्द वरदाई की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना 'पृथ्वीराज रासो' है । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकें भी चन्द के नाम से मिली हैं इनमें महोबा का समयौ, महोबा खण्ड, कनवज खण्ड, पीरखण्ड या अजमेर खण्ड मुख्य है, लेकिन इन रचनाओं का स्वतंत्र अस्तित्व संदिग्ध हैं ।

2.6 पृथ्वीराज रासो: संक्षिप्त कथा

'पृथ्वीराज रासो' एक चरित काव्य है जिसका चरित नायक पृथ्वीराज चौहान है । रासो के लघु व विविध रूपान्तरों में कई स्थलों पर भिन्न-भिन्न घटनाओं का उल्लेख मिलता है । इसके बावजूद आधिकारिक कथा पृथ्वीराज से सम्बन्धित है ।

लघु रूपान्तर के अनुसार रासो की कथा :

इस रूपान्तर में उन्नीस खण्ड हैं । प्रथम खण्ड में गणेश, सरस्वती व शिव की वन्दना के पश्चात् दशावतारों की कथा का उल्लेख है । द्वितीय खण्ड में ब्रह्मा के यज्ञ से चौहान मानिक राय के उत्पन्न होने, उसके पौत्र आनल व आनल के प्रपौत्र सोमेश्वर, सोमेश्वर की रानी तोमर राजकुमारी एवं उसके गर्भ से पृथ्वीराज के जन्म की कथाएं चलती है । तृतीय खण्ड में कन्नोज के राजा विजयपाल के पुत्र जयचन्द, उसके विवाह एवं पुत्री संयोगिता की कथा कही गई है । शुक-शुकी से पृथ्वीराज का चरित्र सुनकर संयोगिता द्वारा उसे वरण करने के निश्चय की कथा भी इसी खण्ड में मिलती है । खण्ड चार में आबू के अधिपति शलख परमार की इच्छिनी नामक कन्या की कथा है । खण्ड पांच में कैमास व भीम के युद्ध की कथा वर्णित है । जयचन्द का राजसूय यज्ञ, पृथ्वीराज द्वारा कैमास को शब्दवेधी बाण से मारना, पृथ्वीराज का सेवक रूप में कन्नोज जाना, जयचन्द को सेवक के रूप में पृथ्वीराज होने का सन्देह होना एवं युद्ध, संयोगिता से विवाह करना और दिल्ली जाने की कथा आगे के खण्डों में वर्णित है । खण्ड तेरह में धीर की वीरता एवं गोरी को पकड़ने की प्रतिज्ञा पूरी करने के वर्णन हैं । खण्ड चौदह से अट्ठारह में गोरी द्वारा पृथ्वीराज पर आक्रमण एवं पृथ्वीराज के पकड़े जाने पर संयोगिता का प्राण त्यागना एवं चन्द द्वारा साधु वेश धारण करने की कथा वर्णित है । खण्ड उन्नीस में चन्द गोरी के पास जाकर पृथ्वीराज की शब्दभेधी बाण कला को देखने की अन्तिम इच्छा जताते हैं तथा षड्यंत्र से गोरी को अपने मुंह से तीन फरमान जारी करने की बात कहते है । गोरी के ऐसा करते ही पृथ्वीराज बाण छोड़ते हैं जो गोरी को जा लगता है । इसके पश्चात् पृथ्वीराज व चन्द दोनों भी मृत्यु का आलिंगन करते हैं ।

वृहद् रूपान्तर की कथा :

रासो के वृहद् रूपान्तर में युद्ध, विवाहों एवं आखेटों के प्रसंग अधिक मिलते हैं । इसमें पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का वर्णन है । इसमें आखेट से सम्बन्धित पांच खण्ड हैं । पृथ्वीराज के युद्धों में शहाबुद्दीन सम्बन्धी 23 युद्धों का वर्णन है । युद्धों में दस युद्ध विवाह प्रसंगों से जुड़े हैं, जो वधू पक्ष तथा प्रतिद्वंद्वी वर पक्ष के साथ होते हैं । युद्धों के अतिरिक्त आदि पर्व खण्ड, दशावतार खण्ड, दिल्ली-किल्ली खण्ड, लोहाना आज्जानबाह खण्ड, चित्र रेखा खण्ड, दिल्लीदान खण्ड, पृथा विवाह खण्ड, होली कथा, दीपावली कथा, चन्द द्वारका गमन खण्ड, संयोगिता पूर्व जन्म खण्ड, शुकवर्णन खण्ड, संयोगिता नेत्र खण्ड, कैमास वध खण्ड, दिल्ली वर्णन खण्ड, षट्)तु वर्णन खण्ड, बाणबेध खण्ड आदि की रचना कर कथा को विस्तार दिया गया है ।

2.7 विविध रूपान्तर

रासो के चार रूपान्तर उपलब्ध हुए हैं, यथा-

1. वृहद् रूपान्तर-इस रूपान्तर की प्रतियां उदयपुर राज्य में मिली है । बंगाल की एशियाटिक सोसायटी तथा सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण इसी रूपान्तर के हैं । इसमें 69 समय एवं 16306 छन्द हैं । 'समय' को 'प्रस्ताव' भी कहा गया है । वृहद् रूपान्तर के संग्रह एवं परिवर्धन का कार्य उदयपुर के महाराणाओं के राज्यकाल में हुआ ।

2. मध्यम रूपान्तर- मध्यम रूपान्तर की एक प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के अभय जैन ग्रन्थालय में है । दूसरी अबोहर के साहित्य सदन, तीसरी बीकानेर, चौथी पंजाब विश्व विद्यालय एवं पांचवी उदयपुर के ग्रंथालय में है । पहली प्रति में 46, दूसरी में 43, तीसरी में 42 चौथी में 41 एवं पांचवी में 45 खण्ड हैं ।
3. लघु रूपान्तर-लघु रूपान्तर की तीन प्रतियाँ बीकानेर के अनूपसंस्कृत पुस्तकालय में एक मोती चन्द खजान्ची के संग्रहालय और दो अगरचन्द नाहटा के अभय जैन ग्रन्थालय में है । इस रूपान्तर में उन्नीस खण्ड और 3500 श्लोक है । माना जाता है कि इस रूपान्तर का संग्रह आमेर के प्रसिद्ध महाराजा मानसिंह के छोटे भाई सूरसिंह के पुत्र चन्द्र सिंह ने करवाया था ।
4. लघुतम रूपान्तर- लघुतम रूपान्तर की दो प्रतियां मिली हैं । पहली प्रति बीकानेर के महाराजा राय सिंह के छोटे भाई भाण के पुत्र भगवान दास के पठनार्थ तैयार की गई थी जो गुजरात के धारणोज गांव से प्राप्त हुई है । काल की दृष्टि से (1667द्ध यह रासो की प्राचीनतम प्रति है । इसमें 1300 श्लोक है । इसमें संयोगिता की कथा व गोरी के युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन है । इसे खण्डों में विभाजित नहीं किया गया है । दूसरी प्रति का लिपि काल संवत् 1697 है जो अगरचन्द नाहटा के द्वारा प्रकाश में लाई गई । इस रूपान्तर की दोनों प्रतियां मुनिजिन विजय के संग्रह में है ।

2.8 प्रामाणिकता

'पृथ्वीराज रासो' की प्रमाणिकता को लेकर विद्वानों में मतभेद है । प्रारम्भ में यह ग्रन्थ विवादास्पद नहीं था । इसके काव्य सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कर्नल टॉड ने इसके तीस हजार छन्दों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया तथा कलकत्ता एशियाटिक सोसायटी इसे प्रकाशित करने की योजना बना रही थी तभी सन् 1875 में वूलर को कश्मीरी पंडित जयानक विरचित पृथ्वीराज विजय' नामक संस्कृत ग्रन्थ प्राप्त हुआ। इसी ग्रन्थ के आधार पर वूलर ने 'पृथ्वीराज रासो' को एक अनैतिहासिक रचना घोषित किया । सोसायटी ने भी उसके प्रकाशन पर रोक लगा दी । कालान्तर में रासो की ऐतिहासिकता को लेकर विद्वान कई वर्गो में विभक्त हो गये । रासो की अप्रामाणिकता-पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक रचना मानने वालों में कवि राजा श्यामलदान, डॉ. वूलर, मुंशी-देवीप्रसाद, डॉ. गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, आचार्य रामचन्द शुक्ल आदि विद्वान प्रमुख हैं । इन्होंने रासो की अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क दिये हैं-

1. "पृथ्वीराज रासो" में परमार, चालुक्य और चौहानों को अग्निवंशी क्षत्रिय माना गया है जबकि शिलालेखों और ऐतिहासिक ग्रन्थों से वे सूर्यवंशी प्रमाणित होते हैं ।
2. 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज चौहान की माँ का नाम कमला बताया गया है जबकि 'पृथ्वीराज विजय' में उसका नाम कर्पूरीदेवी दिया गया है ।
3. पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राणा समरसिंह के साथ होना भी अप्रामाणिक है क्योंकि समरसिंह पृथ्वीराज चौहान के पचास वर्षो बाद भी जीवित थे ।

4. 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज को दिल्ली नरेश अनंग पाल तोमर का दौहित्र बताया गया है । इतिहास इस तथ्य की पुष्टि नहीं करता ।
5. गुजरात के राजा भीमसिंह का पृथ्वीराज द्वारा वध किया जाना भी अनैतिहासिक है क्योंकि भीम चालुक्य पृथ्वीराज के बाद भी जीवित था ।
6. शहाबुद्दीन द्वारा समरसिंह का वध और पृथ्वीराज के हाथों सोमेश्वर की मृत्यु के प्रसंग भी अनैतिहासिक है ।
7. रासो में मोहम्मद गोरी की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथों हुई बतायी गई है जबकि इतिहास इस तथ्य की स्थापना करता है कि गोरी की मृत्यु गक्खर जाति के लोगों द्वारा हुई थी।
8. रासो में वर्णित पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का प्रसंग भी इतिहास सम्मत नहीं है । ये विवाह छत्तीस वर्ष की अल्पायु में किया जाना कपोल कल्पित लगता है ।
9. संयोगिता स्वयंवर तथा पृथ्वीराज के दिल्ली के तोमर राजा के गोद जाने का प्रसंग भी इतिहास विरूद्ध है ।
10. रासो की तिथियों और ऐतिहासिक तिथियों में 90 से 100 वर्ष का अन्तर पाया गया है।
11. रासो की भाषा में अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता है । जो उसके पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी की रचना होने की पुष्टि करते हैं ।

रासो की प्रामाणिकता

डॉ. श्यामसुन्दरदास, मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या, कर्नल टॉड, मिश्र बन्धु आदि ने 'पृथ्वीराज रासो' के नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण को प्रामाणिक माना है । मुनिजिन विजय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं सुनीति कुमार चटर्जी ने भी यह माना है कि पृथ्वीराज चौहान के दरबार में चन्द नामक कवि अवश्य थे जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' नामक ग्रन्थ लिखा था । नरोत्तमदास स्वामी का मत है कि पृथ्वीराज के दरबारी कवि चन्द ने इस ग्रन्थ की रचना मुक्तक काव्य के रूप में की थी । डॉ. दशरथ शर्मा ने रासो के लघुतम रूपान्तर को ही प्रामाणिक माना है । इन विद्वानों के मतों का सार इस प्रकार है-

1. डॉ. दशरथ शर्मा ने रासो के लघुतम संस्करण के आधार पर घटना वैषम्य, काल वैषम्य एवं भाषा वैषम्य सम्बन्धी शंकाओं का निवारण किया । इस प्रति में राजपूतों के अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने का प्रसंग नही है । पृथ्वीराज की बहिन पृथा व मेवाड़ के राणा समरसिंह के विवाह, भीम-सोमेश्वर, पृथ्वीराज-सोमेश्वर एवं शहाबुद्दीन-समरसिंह के युद्धों का वर्णन भी इस प्रति में नहीं है ।
2. पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने 'अनन्द संवत्' की कल्पना से तिथि विषयक अन्तर का समाधान किया है । अनन्द अर्थात अत्र0 (शून्य) एवं नन्दत्र9 (नौ) को जोड़ने पर 90 वर्षो का अन्तराल नही रहता । पण्ड्या जी के अनुसार पृथ्वीराज रासो में 'अनन्द संवत्' का प्रयोग हुआ है ।
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रासो की भाषा में आयी संयुक्ताक्षरमयी अनुस्वारान्त प्रवृत्ति के आधार पर उसे बारहवीं शताब्दी में रचित ग्रंथ माना है क्योंकि भाषा की यह प्रवृत्ति बारहवीं शताब्दी में ही प्रचलित थी ।

4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार मूल रासो की रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में हुई थी, इसलिए जिन सर्गो में यह शैली मिलती है वे ही प्रामाणिक है । इस दृष्टि से निम्नलिखित अंश प्रामाणिक सिद्ध होते हैं-

   (1) प्रारम्भिक अंश (2) इच्छिनी विवाह (3) शशिव्रता का गन्धर्व विवाह (4) तोमर पाहार का शहाबुदीन को पकड़ना (5) संयोगिता स्वयंवर (6) कैमास वध आदि ।

5. चन्द लाहौर का रहने वाला था और लाहौर में मुसलमानों का प्रभाव था, इसलिए उसकी भाषा में अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता होनी स्वाभाक्कि है । इस आधार पर इस रचना को सोलहवीं शताब्दी की रचना नही माना जा सकता ।

उपर्युक्त तर्कों के अनुशीलन से यही सिद्ध होता है कि चन्दवरदाई पृथ्वीराज चौहान का समकालीन कवि था उसके द्वारा रचित मूल रासो प्रक्षेपों में छिपा हुआ है । दूसरे, यह ग्रन्थ कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं है, काव्य ग्रन्थ है । अत : उसमें ऐतिहासिक सत्य न मिलने पर अप्रामाणिक ठहराना अनुचित है ।

2.9 'पृथ्वीराज रासो का भाव पक्ष'

'पृथ्वीराज रासो' की रचना ऐसे काल में हुई थी जब हिन्दी भाषा और साहित्य का उदभव हो ही रहा था । निस्सन्देह चन्दवरदाई एक महान एवं प्रतिभाशाली कवि थे । रासो की रचना करते समय उन्होंने काव्य शास्त्र के उदात्त तत्वों को समाहित कर काव्य के लक्षणों को नवीन दिशा दी । भाव एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है ।

2.9.1 वीर रस -

रासो में युद्ध की प्रधानता है अतएव उसमें वीर रस एवं उसके स्थायी भाव, उत्साह की प्रधानता है । युद्ध के लिए उद्धत वीरों की गर्जना, शस्त्रों की झंकार रासो में जहां-तहां सुनाई पड़ती है । वीरों के युद्ध कौशल एवं क्षत्रियोचित दर्प की अपूर्व झांकी दिखाई देती है । रासो में वीरों ने अनेक स्थानों पर वीर पुरूषों की तरह युद्ध में प्राण देने को सम्मानजनक माना है:
यथा-

- राजपूत मरन संसार वर ।
- सा पुरूष का जीवनां थोड़ा ही है भल्लां ।
- क्षणे विध्वंसिनी काया, का चिता मरणें रणे ।

'पृथ्वीराज रासो' में निडरता, युद्ध-त्वरा, अदम्यता, शक्ति प्रदर्शन, आत्म बलिदान के भाव जहां-तहां दिखाई देते हैं । इस काव्य के नायक पृथ्वीराज के युद्ध प्रसंगों में वीरता का उत्कर्ष दिखाई देता है । पृथ्वीराज के साथ अनेक युद्धों में भाग लेने के कारण ही चंद को वीर रस के चित्रण में इतनी सफलता मिली है ।

चन्दवरदाई ने युद्ध-क्षेत्र के सांगोपांग चित्र प्रस्तुत किए है । यवन सेना का एक जगह इस प्रकार संश्लिष्ट चित्र खींचा है-

खुरासान मुलतान षंधार मीरं । वलख स्यौ वलं तेग अच्चूक तीरं ।।

फिरगी हलबी समानी । ठठी ठटठ बल्लोच ढाल निसानी ।।
मंजारी चषी मुष्ष जंबुक लारी । हजार-हजारी हुक जोध भारी ॥
तिन पष्यरं पीठ हय जीन सालं । फिरगी कसी पास सुकलात लालं ।।

हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, शस्त्रों की खनखनाहट, वीरों की भंगिमाओं एवं युद्ध के प्रति अद्भुत उत्साह को कवि ने साकार किया है । पृथ्वीराज चौहान की त्वरा एवं अदम्यता का वर्णन करते हुए कवि लिखता हैं-

उट्ठि राज, प्रिथिराज बाग मनों लग्ग वीर नट ।
कढ़त तेग मन वेग लगत मनो वीजु झट्ट घट ।।

रासो में युद्धवीर के अतिरिक्त दानवीर, धर्मवीर एवं दयावीर के उदाहरण भी मिलते हैं । पृथ्वीराज द्वारा शहाबुद्दीन को हर बार छोड़ देना उनके दयाधर्म का उदाहरण है । धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करना भी उनमें धर्मवीरता का परिचायक है तो निम्न पंक्तियों में दानवीरता का उदाहरण द्रष्टव्य है-

कर सन न गंगोद कह दिय सुगाह दस दान ।
दस तोला तुलि हमे अर्नदान अपनान ।।

2.9.2 श्रृंगार एवं अन्य रस-

पृथ्वीराज रासो में वीर के साथ-साथ श्रृंगार रस के भी अपूर्व चित्र मिलते हैं । इस ग्रंथ में पृथ्वीराज के अनेक विवाहों को चित्रित किया गया है । कवि ने नख-शिख वर्णन द्वारा सूक्ष्म मनोभावों को अभिव्यक्ति दी है । इस काव्य में युगीन प्रवृति के अनुसार युद्धों को भी सुन्दरी के श्रृंगार से संयुक्त कर प्रस्तुत किया है । इच्छिनी, पृथा, संयोगिता एवं पदमावती का रूप वर्णन एवं सौन्दर्य चित्रण अत्यन्त नवीनता एवं सजीवता लिये हुए है । नख शिख चित्रण में चन्दवरदाई ने नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों का सरस चित्रण किया है । जैसे-

– उपमा नैन ऐन सी, मनौं कि मौन मैन सी ।
  कवी निसंक जानयौ उपम्म चित मानयो ।
– रन्नत बिम्ब जानय सु चन्द बौ अमानयं ।
  त्रिबल्लि ग्रीव सोभई, जुयोति पुंज लोमई ।

चन्दवरदाई ने वय संधि के भी सुंदर चित्र अंकित किए हैं । इसके अतिरिक्त नायिका भेद का रसमय चित्रण हैं । कवि ने पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी स्त्रियों के चित्रण के साथ-साथ, अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना, मुग्धा, वाकससज्जा इत्यादि नायिकाओं की दशा का भी सजीव चित्रण किया हैं, जो इस प्रकार है-

पदमिनी-

कुट्टिल केस पदमिनी, चक्र हस्तन तन सोभा ।
स्निग्ध दंत सोभा विसाल, गंध पद्म अलोभा ।

हस्तिनी-

उर्द्ध केस हस्तिनी वक्र अस्तन दसन दुति ।
मधुर गंध गरनाट भुल्लि भ्रम काम वाम रति ।।

चित्रिणी-

दीर्घ केस चित्रिणी, चित हरनी चन्द्रानन ।
गंध म्रग चित्र निद्र, कोक सब्दन उच्चारन ।।

शंखिनी-

आचार घ्रंन नही सुद्धपन, विधि विचार विभचार मन ।
आसंघ संषिनिगु ननि सुष्ष नाह पावे न तन ।।

कवि ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का अंकन किया है । संयोग श्रृंगार में नायक-नायिका के परस्पर आकर्षण चित्रण भी हुआ है, जो सामंती युग की विलासिता के अनुसार ही है । वियोग श्रृंगार में नायिकाओं की व्यथा एवं चिंता का अंकन ही प्रमुख रूप से हो पाया है । विरह दशा के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी मिलते हैं ।

अन्य रस-

वीर एवं श्रृंगार रस के साथ-साथ रौद्र, वीभत्स, अद्भुत आदि अन्य रसों का चित्रण भी 'रासो' में है ।

युद्ध की भयावहता और मार-काट का एक सजीव चित्र द्रष्टव्य है जिसमे जुगुप्सा, भय एवं उत्साह तीनों भावों की व्यंजना हुई है-

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर ।
धर उप्पर भर परत, करत अति जुद्ध महाभर ।।
कहौं कमध कहौं मथ्थ कहौं कर चरन अंत रूरि ।
कहौं कंध वहि तेग, कहौं सिर जुट्टि, फुट्टि उर ।।
कहौं दंत मंत हय षुर षुपरि, कुंभ भ्रसुंडह रूंड सब ।
हिंदवान रान भय भांन मुष, गहिय तेग चहुवान जब ॥

इसके अतिरिक्त वीभत्स, अद्भुत, रौद्र आदि सभी रसों का परिपाक भी हुआ है ।

2.9.3 प्रकृति चित्रण-

प्रकृति सदैव से ही कवियों की सृजन प्रेरणा रही है । कवियों ने प्रकृति के विविध रूपों एवं व्यापारों से तादात्म्य स्थापित कर उन्हें अपने काव्य में उकेरा है । भारतीय काव्य में प्रकृति चित्रण की परम्परा का इतिहास अत्यन्त पुरातन है । उसी क्रम में कवि चन्दवरदाई के काव्य में भी प्रकृति के सभी रूपों का वर्णन मिलता है । चन्द ने आलम्बन, उद्दीपन व आलंकारिक रूपों में प्रकृति का मनोहर चित्रण किया हैं जो इस प्रकार है-

आलम्बन रूप -

राजसी वातावरण में रहनेवाले चन्द ने प्रकृति के आलम्बन रूप के सजीव चित्र उपस्थित किए हैं । जैसे-

गज्जरन दरिय सम्मीर सध । निझझरत झरय नद सैर नध ।।
निझझरहिं झरिय झरहर करूर । उभ्भरहि सलिल ललिता सपूर ।।

रासो में प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप में भी मिलता है । षट् ऋतु वर्णन परम्परा भी रासो में मिलती हैं ।

ऋतु वर्णन-

पृथ्वीराज रासो में संयोगिता हरण के लिए जाते-पृथ्वीराज को प्रत्येक रानी वियोग के कष्ट की बात समक्ष रखकर छह ऋतुओं में घर से जाने की अनुमति नहीं देती । कवि चन्द ने प्रत्येक ऋतु का वर्णन अत्यन्त कौशल से किया है । ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, हेमन्त ऋतु एवं शिशिर ऋतु वर्णनों में ऋतुओं की विशेषताओं के साथ संयोग एवं वियोग की स्थितियों का भी उल्लेख हुआ है। षट् ऋतु वर्णन में विरह के ताप एवं काम-पीड़ा का चित्रण चन्द ने सफलता पूर्वक किया है ।

ग्रीष्म ऋतु का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

पीन तरूनी तन तमें नित बाब रयन दिन ।
दिसि चारयौ परगलै नहि कहो सीत अरध बिन ।।

शिशिर-

सुनो कंत सुभ चितं कीर, सयनि गवत किम कीजिये ।
कहि नारि पीय बिन कामिनी, रिति ससहर किम जीजइय ।।

हेमन्त-

छिन्न बासुर सीस दिघ्ध निसया सोत जनेतं बने ।
सेज सज्जर बानया बनितया आनंग आलिंगने ।।

आलंकारिक रूप-

पृथ्वीराज रासो में कवि ने अलंकारों के रूप में अनूठा प्रकृति चित्रण किया है । उन्होंने प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के माध्यम से अलंकारों का निर्वाह किया हैं । यद्यपि अलंकारों से काव्य को मंडित करना कवि का उद्देश्य नहीं रहा फिर भी उत्पेक्षा, रूपक एवं उपमा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । जैसे

चंदबदन म्रिग नयनि । भोंह असित कोदण्ड बनि ।
गंग मंग तरलति तरंग । बैनी भुअंग बनि ।।

पृथ्वीराज रासो में वीर रस की प्रधानता होने के कारण प्रकृति के उद्दीपन एवं आलंकारिक रूप को ही प्रमुखता मिली है । डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार "रासोकार ने प्रकृति के स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त स्वरूप का अवलोकन तो किया है, परन्तु परम्परा के अनुसार उसने प्रकृति के आलम्बन रूप की अपेक्षा उद्दीपन रूप को ही काव्य में अधिक स्थान दिया है । उद्दीपन रूप में आने के कारण यहां प्रकृति केवल भावों को उद्दीप्त करती हुई अंकित की गई है किन्तु उसके स्वतन्त्र रूप के दर्शन रासो में कहीं भी नहीं होते हैं । प्रकृति के इस उद्दीपन रूप के अन्तर्गत कवि ने षट्ऋतुओं का वर्णन बड़े मनोयोग से किया है ।"

चरित्र चित्रण-

रासो चरित्र प्रधान महाकाव्य है । महाकाव्यों में चरित्र-चित्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इनमें चरित्र के बल पर युगीन प्रवृतियों, परिस्थितियों एवं उद्देश्यों को विस्तार दिया जाता है । चन्दवरदाई ने रासो में पृथ्वीराज चौहान के युग की समस्त प्रवृतियों, आस्थाओं, मान्यताओं एवं परम्पराओं को नायक के माध्यम से जीवंत रूप दिया है । उन्होंने पृथ्वीराज के चरित्र की धीरोदात्तता, त्याग, कार्य कुशलता, युद्ध कुशलता, रूप,उत्साह, तेजस्विता, क्षमाशीलता

शरणागत वत्सलता, दृढ प्रतिज्ञा इत्यादि गुणों को साकार किया है । कवि ने पात्रों की अन्त: प्रकृति का भी समुचित निरीक्षण किया है ।

2.9.4 वस्तु वर्णन एवं काव्य रूढ़ियाँ-

पृथ्वीराज रासो की विशेषता है कि यह एक वर्णनप्रधान काव्य है इसमें कवि ने युद्धों, नगरों, उत्सवों, पात्रों, साज-सज्जा, सूर्य, चन्द्र, संध्या, उषा आदि के भव्य चित्र उपस्थित किए हैं। युद्ध क्षेत्र में सुसज्जित घोड़ों, शस्त्रों, वीरों की वेशभूषा आदि का वर्णन अत्यन्त सजीव है वहीं राजमहल के ऐश्वर्य साधनों, वाद्यों आदि का भी मनोयोग पूर्वक वर्णन किया है । नगर वर्णन, सेना वर्णन, प्रकृति वर्णन, विवाह वर्णन कवि की वर्णन शक्ति के परिचायक हैं ।

रासो में काव्य रूढ़ियों का भी विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है । चन्द ने रासो में लिंग परिवर्तन, सांकेतिक भाषा, भविष्य-सूचक स्वप्न, पूर्वजन्म स्मृति, मंत्र-तंत्र की लड़ाई, वरदान, आकाशवाणी, मृतक का जीवित होना, शुक-शुकी वार्तालाप, नायिका अपहरण, बारहमासा, शिव-पार्वती पूजन, स्वप्न में प्रिय दर्शन इत्यादि कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है । रासो के 'पदमावती समय' में शुक सन्देश वाहक बनकर पदमावती का पत्र लेकर पृथ्वीराज के पास जाता है-

लै पत्री सुक यों चल्यो उड़यो गगन गहि बाव ।
जहॉ दिल्ली प्रथिराज नर अट्ठ जाम में जाव ।।

कथानक रूढ़ियों में शशिव्रता, संयोगिता आदि के विवाह प्रसंगों में रूप-गुण-श्रवण से प्रेम उत्पन्न दिखाया है । रासो में रूप-गुण श्रवण द्वारा अभीष्ट भाव के अनेक प्रसंग मिलते है: जैसे-

सुनत स्त्रवन प्रथिराज जस
उमंग बाल विधि अंग ।
तन मन चित्त चहुंआन पर
बस्यो सुरत्तह रंग ।।

योग्य वर प्राप्त करने के लिए शिव-पार्वती पूजन की रूढ़ि का भी रासो में निर्वाह हुआ है । पदमावती पृथ्वीराज को वर के रूप में पाने हेतु शिव-पार्वती की पूजा अर्चना करती है-

सोब्रन्न थार मोतिन भराय
झलमल करत दीपक जराय ।।
संगह सखिन लिय सहस बाल ।
रूकमानय जेम लज्जत मराल ।।

शिव मन्दिर में कन्या हरण की रूढ़ि भी अत्यन्त प्राचीन है जिसका प्रयोग चन्दवरदाई ने पदमावती, शशिव्रता व संयोगिता तीनों के विवाह प्रसंगों में किया है । पदमावती का विवाह से पूर्व अपने प्रियतम को सूचना भिजवाना तथा पृथ्वीराज द्वारा पदमावती का हरण करने में रासोकार ने इसी रूढ़ि का उपयोग किया है: यथा

कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय,
लै चल्यौ नृपति दिल्ली सुराय ।
भई षबरि नगर बाहिर सुनाय,

पदमावतिय हरि लीय जाय ।

इसके अतिरिक्त सिंहल द्वीप रूढ़ि का भी प्रयोग हुआ है जो जायसी के 'पदमावती' में से कुछ-कुछ मिलती है । भारतीय साहित्य में सिंहल देश की राजकुमारी से विवाह करने के प्रसंग काफी प्रसिद्ध रहे हैं । सिंहलद्वीप को समुद्र में स्थित माना गया है । रासो में भी इससे मिलती-जुलती रूढ़ि को इस प्रकार वर्णित किया है-

उत्तर दिसि गढ़ गढ़निपति समुद्र सिषर अति द्रग्ग।
तहॅ सु विजय सुरराज पति जादू कुलह अभग्ग ।।

रासोकार ने पदमावती द्वारा प्राण रहने तक पृथ्वीराज को ही पति रूप में मानने की रूढ़ि का प्रयोग किया है । भारतीय साहित्य में प्रिय के न मिलने पर प्राण त्यागने की कथानक रूढ़ि अत्यंत प्रसिद्ध है । पदमावती शुक से कहती है-

'आनौ तुम्ह चहुवांन वर
अस कहि इहै संदेश ।
सांस सरीरहिं जो रहैं
प्रिय प्रथिराज नरेस ।।

अत: रासो में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कथानक रूढ़ियों के प्रयोग द्वारा कथावस्तु को विस्तार प्रदान किया गया है ।

बोध प्रश्न- ख

5. सही उत्तर पर निशान लगाइये ।

(क) पृथ्वीराज रासो के कितने रूपान्तर उपलब्ध हैं?

(अ) पांच

(ब) दो

(स) आठ

(द) चार

(ख) आदिकालीन रासो काव्य परम्परा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ।

.....
.....
.....
.....
.....

6. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता पर प्रकाश डालिये ।

.....
.....
.....
.....
.....

7. पृथ्वीराज रासो का भाव सौन्दर्य उद्घाटित कीजिए । (दस पंक्तियाँ)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8. पृथ्वीराज रासो के मुख्य रसों पर सही () गलत () का निशान लगाइये।

(क) वीर एवं श्रृंगार रस

(ख) रौद्र एवं भयानक रस

(ग) शान्त एवं श्रृंगार रस

(घ) शान्त एवं वीर रस

9. पृथ्वीराज रासो के वस्तु वर्णन एवं कथानक रूढ़ियों का चार पंक्तियों में विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

10. पृथ्वीराज रासो के प्रकृति चित्रण एवं चरित्र पर प्रकाश डालिये। (पांच पंक्तियाँ)

.....

.....

.....

.....

.....

2.10 पृथ्वीराज रासो का अभिव्यंजना पक्ष-

2.10.1 काव्य रूप-

पृथ्वीराज रासो हिन्दी का आदि महाकाव्य है । इसका सर्गबद्ध कलेवर, धीरोदात्त नायक, वीर रस के रूप में अंगीरस, ऐतिहासिक वृत्त, प्रारम्भ में नमस्कार और दिए गए वस्तुनिर्देश इस रचना को विश्वनाथ द्वारा दी गई कसौटी के आधार पर महाकाव्य सिद्ध करती है परन्तु इस ग्रंथ में प्रबंध-पटुता का अभाव भी दृष्टिगत होता है । कवि ने कथा को अनावश्यक विस्तार दिया है । कवि मार्मिक स्थलों को पहचानने में सफल रहा है । इस रचना में सामन्ती जन-जीवन के आदर्श भी अंकित हुए हैं । युद्ध, स्वामिभक्ति, स्वाभिमान, प्रतिशोध व क्षमा सामन्ती जीवन के वे आदर्श हैं जो इस रचना में फलीभूत हुए हैं ।विविध वर्णनों की दृष्टि से भी यह रचना अत्यन्त सफल है । इसमें सन्ध्या, सूर्य, रजनी, वासर, वन, नदी, पर्वत, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं का भी मनोहर चित्रण हुआ है ।

कलात्मक दृष्टि से भी पृथ्वीराज रासो एक प्रौढ़ ग्रन्थ है । इसमें वीरता व्यंजक पुरूष शब्द विधान के साथ श्रृंगार व्यंजक कोमल कान्त पदावली भी प्रयुक्त हुई हैं । अलंकारों के प्राचुर्य एवं मुहावरों, कहावतों के प्रयोग से भाषा शैली अत्यन्त समृद्ध है । 'पृथ्वीराज रासो' को 'विकसनशील महाकाव्य' कहा जाता है क्योंकि इसके मूल रूप में कई शताब्दियों तक निरन्तर परिवर्धन होता रहा ।

2.10.2 काव्य भाषा-

पृथ्वीराज रासो की भाषा के विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं परन्तु अधिकांश विद्वान इसे पिंगल (ब्रजभाषा) की रचना मानते हैं । पृथ्वीराज के समय साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी किन्तु अन्य भारतीय भाषाओं में भी साहित्य रचा जा रहा था । विद्वानों में मतभेद का प्रमुख कारण 'पृथ्वीराज रासो' के समस्त रूपान्तरों की भाषा का पृथ्वीराज के काल की भाषा से साम्य न होना है ।

रासो की भाषा का अध्ययन करने वाले विद्वानों डॉ. उदयनारायण तिवारी, तासी, ग्राऊज,मोतीलाल मेनारिया, श्याम सुन्दर दास, नरोत्तमदास स्वामी, उदयपुर के कविराज मोहन सिंह ब्रह्मभट्ट आदि ने इसकी भाषा को ब्रज या पिंगल सिद्ध किया है । डॉ. दशरथ शर्मा, रामकुमार वर्मा, गुलाबराय तथा मीरानाम रंगा ने रासो को प्राचीन राजस्थानी की रचना कहा है । प्राचीन राजस्थानी के लिए 'डिंगल' का प्रयोग भी मिलता है ।

वस्तुत: रासो की भाषा न तो डिंगल अथवा प्राचीन साहित्यिक मारवाड़ी है और न अपभ्रंश । वह सोलहवीं शताब्दी के साहित्य में प्रयुक्त ब्रजभाषा (पिंगल) ही है । क्रिया और कारक के चिह्न प्रधानतः ब्रज भाषा के ही हैं । रासो के विभिन्न खण्डों में भाषागत भिन्नता भी दृष्टिगोचर होती हैं । कथात्मक प्रसंगों में सरल एवं प्रसाद गुण वाली शैली एवं वर्णनात्मक प्रसंगों के लिए संयुक्ता वर्णात्मक रूप वाली भाषा को अपनाया गया है जो स्वाभाविक है । इस ग्रंथ में ब्रज के अतिरिक्त अरबी-फारसी, मागधी पैशाची, देशज, प्राचीन राजस्थानी, संस्कृत आदि भाषाओं के शब्दों का भी व्यापक प्रयोग हुआ है ।

रासो की भाषा में व्यंजन द्वित्व (निकट-निकट्ट) स्वर परिवर्तन (निसान-नीसान) स्वरागम (अल्प-अलप) 'ण' के स्थान पर 'न' (श्रवण-स्रवन) 'श' के स्थान पर 'स' (शिष्य-सिष) अनुस्वरान्तता (मनोहर-मनोहरयं) आदि प्रवृतियां मिलती है । यह भाषा ओज गुण से परिपूर्ण है परन्तु माधुर्य और प्रसाद गुण का भी अभाव नहीं है ।

2.10.3 अलंकार-

रासो में अलंकारों की भरमार है । शब्दालंकारों में चंदवरदाई ने अनुप्रास और यमक का बहुलता से प्रयोग किया है । 'जंग- जुरन जालिम जुझार' में वर्णानुप्रास की छटा है तो 'जिम-जिम तन जर जरयौ, विहसि वर धायौ तिम-तिम' में वृत्यानुप्रास का सौन्दर्य है । "दै पानी ढिल्ली धरा मनसा पानी रष्षि' में यमक का सुंदर प्रयोग हुआ है । अर्थालंकारों में उत्पेक्षा, उपमा, दृष्टांत, प्रतीप, भ्रांतिमान अतिशयोक्ति, दीपक, रूपक, स्वाभावोक्ति आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग

हुआ है । उपमा सुकपोलन की चिलकै, जु मनो ससि ह्वे रवि में झलके' (कपोल इस प्रकार चमक रहे हैं मानो ससि सूर्य में झलक रहा हो) में उत्पेक्षा अलंकार है । 'माया मोह विरत मन, तन तिनुका सम डारि' में उपमा का सौन्दर्य है । यहां 'तन' उपमेय है, 'तिनुका' उपमान है और 'सम' वाचक शब्द है । कवि ने रूपकों का अच्छा निर्वाह किया है । उनके काव्य में कहीं आशारूपी सागर में तरंगे उठ रहीं हैं तो कहीं काव्यरूपी समुद्र ज्ञानरूपी मोती प्रदान करता है । सांगरूपक का एक उदाहरण दृष्टव्य है:

बाल नाल सरिता उतंग, आनंग अंग सुज ।
रूप सु तट मोहन तड़ाग भ्रम भए कटाच्छ दुज । ।
प्रेम पूर विस्तार जोग मनसा विध्वंसन ।
द्युति ग्रह नेह अथाह, चित करषन पिय तुट्टन ।।

यहां बाला उत्तुंग सरिता है, रूप उसका तट है, आकर्षण रूपी तड़ाग है, कटाक्षरूपी भंवर है, प्रेमरूपी विस्तार है, योगरूपी मनसा का वह विलास करने वाली है, उसकी द्युति ही ग्राह है, नेहरूपी अथाहता है । इस प्रकार नायिका में सरिता के अवयवों के आरोप से सांगरूपक का मनोहारी चित्र अंकित हुआ है ।

2.10.4 छंद विधान-

छंदो की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' एक अनुपम ग्रंथ है । इसमें कुल 72 प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है । इन छंदों में दूहा, कवित्त (छापय) पद्धरि भुजंग प्रयात आदि छंद मुख्य है । इसके अतिरिक्त चौपाई, त्रोटक, मालिनी, दुर्मिल, नराच, साटक सोरण, गाहा आदि छंद भी प्रयुक्त हुए हैं । चंद्रवरदाई को शिव सिंह सेंगर ने 'छप्पयों का राजा' कहा है । रासो के छंद-विधान की विशेषता है कि इसमें छंद परिवर्तन बहुत हुआ है । छंद परिवर्तन के सौंदर्य पर रीझते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "रासो के छंद जब बदलते है तो श्रोता के चित्र में प्रसंगानुकूल नवीन कम्पन उत्पन्न करते हैं" ।

बोध प्रश्न- ग

11. निम्नलिखित पर सही (✓) गलत (x) का निशान लगाइये ।

    पृथ्वीराज रासो का काव्यरूप:

    (अ) महाकाव्य

    (व) गीतिकाव्य

    (स) खण्डकाव्य

    (द) चम्पूकाव्य

12. चन्दवरदाई की काव्य-भाषा पर दस पंक्तियों में प्रकाश डालिये ।

    .....

    .....

    .....

    .....

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

13. पृथ्वीराज रासो में आए अलंकारों का सोदाहरण विवेचन कीजिए । (पांच पंक्तियां)

.....
.....
.....
.....
.....
.....

14. पृथ्वीराज रासो के छन्द-विधान पर पांच पंक्तियां लिखिए ।

.....
.....
.....
.....
.....

2.11 वाचन एवं व्याख्या-

(1) मन अति भयो हुलास, बिगसि जनु कोक किरन रवि ।
अरून अधर तिय सधर, बिंब फल जानि की छवि ।।
यह चाहत चष चक्रित, उह जु तक्किय झरप्पी झर ।
चंचु चहुट्टिय लोभ, लियो तब गहित अप्प कर ।।
हरषत अनन्द मन मॅह हुलस, लै जु महल भीतर गइय ।
पंजर अनूप नग मनि जटित सो तिहि यह रषतं भइय ।।

शब्दार्थ-

किरण रवि-सूर्य किरण, कोक-चकवा / कमल
अरूण-लाल, सधर-धारण करना, चष-नेत्र, चक्रित-चकित
जु-जो, तक्किय-ताकना, झरप्पि-झपट्टा मारना, चंचु-चोंच,
चहुट्टिय-चलाना, गहित-पकड़ना अप्प-अपने, कर-हाथ
पंजर-पिजरा अनूप-अनुपम, रष्षत-रक्खा ।

सन्दर्भ-

प्रस्तुत पद महाकवि चन्दवरदाई विरचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पदमावती समय' से लिया गया है ।

प्रसंग-

पदमावती ने अपनी सखियों के साथ महलों के पास उद्यान में तोता देखा, जिसे देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई । प्रसन्नता के भाव में पदमावती के अधर सौन्दर्य को देखकर तोता उसे बिम्बाफल समझ कर चोंच चलाता है तो पदमावती उसे हाथ बढ़ा कर पकड़ लेती है । उपर्युक्त छन्द में मुख्यत: तोते के भ्रम की स्थिति का चित्रण किया गया है ।

व्याख्या-

कवि कहता है कि तोते को देखकर पदमावती का मन इस प्रकार पुलकित हो उठा जिस प्रकार सूर्य की किरणों को देखकर कमल विकसित होते हैं या सूर्य के उदित होने पर चकवा पक्षी प्रसन्न हो उठता है । आगे की पंक्तियों में पदमावती के होठों का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उस स्त्री के होठ लाल-लाल थे जिन्हें देखकर तोते को बिम्बाफल का भ्रम हो जाता है और वह चकित चक्षुओं से बिम्बाफल रूप अधरों की चाह करने लगता है । तोता अधरों की छवि को निहारने लगता है और उन्हें ताक कर झपट्टा मारकर बिम्बाफल खाने के लोभ से चोंच चला देता है । इसी समय पदमावती ने उसे अपने हाथ में पकड़ लिया और हर्ष-उल्लास से भर कर तोते को महल के भीतर ले गई । वहां उसे हीरे, मणियों से जड़ित एक अनुपम पिंजरे में रखा ।

विशेष-

(1) प्रस्तुत छन्द में अनुप्रास, उत्प्रेक्षा एवं भ्रांतिमान अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

(2) तक्किय, झरप्पि, अप्प, चहुंट्टिय, रष्षत इत्यादि अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(3) प्राकृत भाषा के साथ ब्रजभाषा के रीतिकालीन श्रृंगारिक भाव को पूर्वाभ्यास देने वाली शब्दावली का सुन्दर मिश्रण है ।

(4) कवि की कल्पना शक्ति का वैभव इस छंद में दर्शनीय है ।

उद्धरण-2

मनहुँ कला ससि भानं, कला सोलह सो बन्निय ।
बाल वेस ससिता समीप, अम्रत रस पिन्निय ।।
विगसि कमल म्रिग भ्रमर, बैन खंजन मृग लुट्टिय ।
हीर-कीर अरू बिम्ब, मोति नष सिष, अहिघुट्टिय ।।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति, विह बनाय संचै सचिय ।
पदमिनिय रूप पदमावतिय, मनहुँ कांम कामिनि रचिय ।।

शब्दार्थ-

बन्निय-बनाई गई हो, वेस-आयु, तो-उसके, पिन्निय-पिया हो, बिगसि-विकसित होना, म्रिग-मृग, हरिण, बैन-बांसुरी, लुट्टिय-लूटना, कीर-तोता बिम्ब-बिम्बाफल नष-सिष-नाखून से लेकर सिर तक, अहिघुट्टिय-अभिघटित या बनाया गया, छप्पति-छिपना, गयन्द-हाथी, हरि-सिंह, विह-विधाता, संचै-सॉचा, सचिय-शची, काम-कामिनि-कामदेव की पत्नी रति ।

सन्दर्भ-

प्रस्तुत पद वीरगाथा काल के मूर्धन्य कवि चन्दवरदाई विरचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पदमावती समय' से उद्धृत है ।

प्रसंग-

समुद्र शिखर के राजा विजयपाल की रूपवती कन्या का नाम पदमावती था । यह कन्या रूप एवं गुणों की खान थी । इसका सौन्दर्य शास्त्रों में वर्णित पदमिनि नायिका के समान था । कवि ने उसके बाल्यकाल का वर्णन किया है ।

व्याख्या-

पदमावती के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि पदमावती इतनी सुंदर है मानो उसका निर्माण चन्द्रमा की सोलह कलाओं द्वारा किया गया हो अर्थात् उसका सौन्दर्य पूर्ण चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है । अभी उसकी बाल्यावस्था है परन्तु उसके सौन्दर्य को देखकर ऐसा लगता है मानों स्वयं चन्द्रमा उसके निकट जाकर उसके सौन्दर्य रूप अमृत का पान किया हो । आगे कवि कह रहे हैं कि पदमावती ने विभिन्न उपमानों से उनकी विशेषताएं छीन ली हैं । समस्त पारम्परिक उपमान पदमावती के सौन्दर्य की आभा के समक्ष कांतिहीन प्रतीत होते हैं । ऐसा लगता है केशों की श्यामलता ने भ्रमरों की श्यामलता उसकी सुरीली वाणी ने वंशी के स्वर की मधुरता, उसके नेत्रों की चंचलता ने खंजन की चपलता और मृगों के नेत्रों के सौन्दर्य को लूट लिया है । नख से शिख तक उनके सम्पूर्ण सौन्दर्य को हीरा, शुक, बिम्बाफल तथा मोती से बनाया गया है । उसके दांत हीरे के समान कान्तिमय नासिका शुक के समान, अधर बिम्बाफल के समान व नाखून मोतियों के समान सुन्दर एवं प्रभावमय है । पदमावती की चाल गर्वपूर्ण एवं मंथर है जिसे देखकर हाथी, सिंह और हंस भी लज्जित होकर छिप जाते हैं । उसकी सम्पूर्ण सुन्दरता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने उसे सांचे में ढालकर शची के समान सौन्दर्य से मण्डित किया हो । वह पदमावती पद्मिनी नारी के लक्षणों से युक्त है और उसे देखकर ऐसा आभास होता है जैसे पदमावती के रूप में रति का दूसरा रूप निर्मित किया गया हो ।

विशेष-

(1) चन्दवरदाई ने पदमावती के रूप सौन्दर्य को चित्रित करने में परम्परा युक्त शैली को अपनाया है ।

(2) इस कवित्त में उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, रूपकातिशयोक्ति एवं व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग किया गया है ।

(3) भाषा माधुर्य गुण संपन्न है ।

उद्धरण 3-

कुट्टिल केस सुदेस पौहप रचियत पिक सद ।
कमल-गंध, वयसंध, हंस गति चलत मन्द मंद ।।
सेत वस्त्र सोहे सरीर नष स्वाति बुन्द जस ।
भमर भंवहि भुल्लहिं, सुभाव मकरन्द बास रस ।।
नयन निरिष सुष पाय सुक, यह सुदिन मुरति रचिय ।

उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय ।।

शब्दार्थ-

कुटिल-घुँघराले, सुदेस-सुन्दर, पौहप-पुष्प, पिक-कोयल, सद-शब्द / बोली, वय संध-यौवन संधि, सेत-श्वेत, स्वाति-बुन्द जस-स्वाति नक्षत्र से पनप मोती जैसी, भंवहि-चक्कर काटना, भुल्लहि-विभोर होकर, सुष-सुख, सुदिन-अच्छा दिन, उमा-पार्वती, हर-शिव, प्रसाद-कृपा हेरियत-देखता है । जिय-जी, मन ।

सन्दर्भ-

प्रस्तुत पद चन्दवरदाई विरचित 'पृथ्वीराज रासो' के "पदमावती समय" से लिया गया है ।

प्रसंग-

पदमावती शुक को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसने उसे पिंजरे में रख लिया । तोते के साथ वह इस भाँति घुल-मिल गई कि अपने सभी खेल भूलकर तोते को राम-नाम पढ़ाने में रम गई । तोते ने जब राजकुमारी के शरीर की शोभा को देखा तो मन ही मन सोचा विधाता ने इसे अपने हाथों से रचा है । शुक उसके अकल्पनीय सौन्दर्य को देखकर मन ही मन उसके लिये वर के रूप में पृथ्वीराज की कल्पना करने लगा ।

व्याख्या-

पदमावती के आभायुक्त कमनीय सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि पदमावती की केश राशि घुंघराली व सौन्दर्य सम्पन्न है जिसमें पुष्प गूंथे हुए हैं । उसकी वाणी कोयल के समान है । उसका शरीर कमल की गंध से सुवासित है । वह यौवन की संधि पर खड़ी है तथा मद से भरी हुई हंस के समान मंथर गति से चलती है । श्वेत वस्त्र उसके शरीर पर सुशोभित है । उसके नाखून मोतियों के समान कांतिमय है तथा भ्रमर भूल से उसे पुष्प समझ कर सुगन्ध एवं मकरंद के लोभ से उसके चारों ओर चक्कर काटते हैं । इस प्रकार के रूप सौन्दर्य को नेत्रों से देखकर तोता सुख का अनुभव करता है व मन ही मन विचार करता है कि इस सौन्दर्य-प्रतिमा की रचना विधाता ने किसी शुभ घड़ी में की होगी । यह सोचते हुए तोता पार्वती व शिव की कृपा प्राप्त करने को आतुर, उनकी (शिव-पार्वती) ओर देखकर मन ही मन पदमावती के लिए पति के रूप में राजा पृथ्वीराज के प्राप्त होने की प्रार्थना करने लगा ।

विशेष-

1. इस पद में भ्रांतिमान, अनुप्रास, छेकानुप्रास, उपमा इत्यादि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं ।
2. पदमावती के लिए कमल-गंध शब्द का प्रयोग उसे पद्मिनी कोटि की नायिका सिद्ध करता है।
3. 'उमा प्रसाद हर हेरियत' में तोते द्वारा शिव-पार्वती की कृपा की आकांक्षा करने में परम्परा से चली आ रही शिव-पार्वती पूजा की ओर संकेत है, जिसका वर प्राप्ति हेतु अत्यन्त महत्व है ।

बोध प्रश्न- घ

निम्नलिखित पद की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

" मनहुँ कला ससि भानं, कला सोलह सो बन्निय ।

बाल वेस ससिता समीप, अम्रत रस पिन्निय ।।
विगसि कमल म्रिग भ्रमर,बैन खंजन मृग लुट्टिय ।
हीर-कीर अरू बिम्ब, मोति नष सिष, अहिघुट्टिय ।। "

2.12 मूल्यांकन-

'पृथ्वीराज रासो' साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अजश्र मूल्यवान रचना है । यह रचना मध्य कालीन सामन्ती जन-जीवन की सच्ची झांकी प्रस्तुत करती है । सामन्त-राजाओं के भोग-विलास, ऐश्वर्य-आराम, युद्धों एवं आदर्शों को व्यक्त करने में कवि चंद ने कहीं कोताही नही बरती है । कवि ने जहां उनके ठाठ-बाट, चरित्र मर्यादा एवं तलवार की भीषणता का वर्णन किया है वहीं उनकी ईर्ष्या, कलह, नारी-भोग, संकुचित राष्ट्रीयता के चित्रण से अध: पतन का संकेत भी दिया है । श्री अक्षय चन्द्र शर्मा ने लिखा है "पृथ्वीराज रासो हिन्दू साम्राज्य की अन्तिम ध्वंस कथा है, ऊर्जस्वित रणभाषा में लिखी हुई एक विषण्ण कथा । यह पृथ्वीराज की कोरी चरित गाथा नहीं, यावदार्य राजकुलों के खात्मे की कहानी है । यह सामंतयुग के ह्रासोन्मुख रूप का सवाक् चित्र है, एक उदग्र और करूण चित्र ।"

वीर और श्रृंगार रसों का जैसा मेल और परिपाक इस रचना में हुआ है वैसा बहुत कम कृतियों में है । इसके नायक पृथ्वीराज चौहान जितने वीर हैं उतने ही प्रेमी भी । कवि ने उनके पराक्रम, धैर्य, दर्प, स्फूर्ति और शक्ति का जितना चाक्षुष वर्णन किया है उतना ही सौन्दर्य प्रियता और प्रेम भावना का भी । युद्ध वर्णन में सेना-सज्जा, वीरों के उत्साह, हूंकार, कोलाहल, शस्त्रों की खनखनाहट, रण-नाद, व्यूह रचना आदि का रोमांचक वर्णन कवि ने किया है । वहीं श्रृंगार वर्णन में नायिका के रूप सौन्दर्य, वय:संधि, यौवनागम, प्रथम मिलन एवं व्रीड़ा का मनोरम अंकन भी हुआ है । इन मुख्य रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की भी प्रसंसानुसार अवतारणा हुई है । इस ग्रन्थ का महत्व इस रूप में भी है कि यह हिन्दी का आदि महाकाव्य है । मध्यकाल में लिखी गई अनेक वीरगाथाएं एवं 'रामचरित मानस' जैसे महाकाव्यों की परंपरा के मूल में पृथ्वीराज रासो ही है । इस ग्रन्थ की भाषा में भारत की गौड़ीय भाषाओं की अभिसंधि चमत्कृत करती है । इसमें वैदिक, संस्कृत, पालि पैशाची, मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, ब्रज आदि भारतीय भाषाओं का मणिकांचन संयोग हुआ है ।छन्द योजना की दृष्टि से तो यह रचना अमर है । इसमें कुल 72 प्रकार के छंद प्रयुक्त हुए है । छंदों की बहुलता के साथ-साथ छंद परिवर्तन का सौंदर्य पाठकों को मुग्ध करता है ।

सांस्कृतिक दृष्टि से इस रचना में सामन्ती-शूरमाओं के जीवन्त आदर्शों का साक्षात्कार होता है जो मध्य युग की जीवन शैली एवं संस्कृति को समझने का आधार है । इस कृति में सुभटवीरों की युद्ध लिप्सा, कीर्तिलिप्सा, निर्भयता, स्वामिभक्ति, शरणागत रक्षा, आतिथ्य सत्कार, क्षमाभाव आदि विशेषताएं चित्रित हुई है । भारतीय वीर का चरम आदर्श पृथ्वीराज के रूप में प्रचलित हुआ है । इसके अतिरिक्त भारतीय जन-जीवन के रीति-रिवाजों, विवाह-परम्पराओं, शकुनविचार मनोरंजन के साधनों, शस्त्रों, व्यूहरचना, कथानक रूढ़ियों एवं प्राकृतिक उपादानों का ज्ञान करवाने की दृष्टि से भी इस रचना का महत्व है ।

2.13 सारांश :

इस इकाई में आपने आदिकालीन रासो काव्य परम्परा की पृष्ठभूमि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए वीरत्वव्यंजक कृति'पृथ्वीराज रासो' के काव्य सौंदर्य का आस्वादन किया है, कवि चंदवरदाई के बहुमुखी व्यक्तित्व और रचनाकर्म को युगीन परिवेश के आलोक में देखा है एवं इस रचना की प्रामाणिकता का विस्तृत अध्ययन किया है । इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो चन्दवरदाई की अनमोल रचना है जिसमें भारतीय सास्कृतिक आदर्शो का बहुआयामी चित्रण हुआ है । वीर और श्रृंगार रस इस कृति के केन्द्र में हैं । इन दोनों रसों के भीतरी स्वरूप एवं सौन्दर्य से आप परिचित हो चुके हैं । पृथ्वीराज रासो के शैल्पिक सौंदर्य के उपादानों-भाषा, अलंकार, छंद काव्यरूप आदि के अध्ययन से आप भली-भाँति जान गए हैं कि यह काव्यग्रन्थ भाव और कला की दृष्टि से अनुपम है ।

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) रासो साहित्य और पृथ्वीराज रासो - नरोत्तमदास स्वामी

(2) पृथ्वीराज रासो की भाषा - नामवरसिंह

(3) पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा - मोहनलाल विष्णुलाल पन्ड्या

(4) चन्दवरदाई और उनका काव्य - विपिन बिहारी त्रिवेदी

(5) पृथ्वीराज रासो में कथानक-रूढ़ियां - ब्रजविलास श्रीवास्तव-

(6) संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो - हजारी प्रसाद द्विवेदी

(7) पृथ्वीराज रासो की विवेचना - मोहनलाल व्यास, नाथूलाल व्यास (संपादक)

(8) रासो विमर्श - डॉ. माताप्रसाद गुप्त-

(9) पृथ्वीराज रासो - कविराव मोहन सिंह

2.15 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर-

बोध प्रश्न-क

1. पृथ्वीराज चौहान
2. देखिए 2-5
3. दिल्ली-अजमेर
4. देखिए 2-2

बोध प्रश्न-ख

5. (क) चार
   (ख) देखिए 2-4
6. देखिए 2-8
7. देखिए 2-9
8. वीर एवं श्रृंगार रस

9. देखिए 2.9.4

10. देखिए 2.9.3 एवं 2.9.5

बोध प्रश्न-ग

11. महाकाव्य

12. देखिए 2.10.2

13. देखिए 2.10.3

14. देखिए 2.10.4

बोध प्रश्न-घ

15. देखिए 2.11

इकाई-3

भक्ति काल की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भक्तिकालीन साहित्य की परिस्थितियाँ

- 3.2.1 राजनीतिक परिस्थिति
- 3.2.2 धार्मिक परिस्थिति
- 3.2.3 सामाजिक परिस्थिति
- 3.2.4 साहित्यिक व सांस्कृतिक परिस्थिति

3.3 भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ

- 3.3.1 संत काव्य धारा
- 3.3.2 सूफी काव्य धारा
- 3.3.3 रामभक्ति काव्य धारा
- 3.3.4 कृष्ण भक्ति काव्य धारा

3.4 सारांश

3.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.6 बोध प्रश्न

3.0 उद्देश्य

आधार पाठ्यक्रम की पूर्व इकाई में आप हिन्दी साहित्य के आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त कर आदिकालीन जैन, सिद्ध तथा नाथ काव्यधारा की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके है । आदिकालीन वीरगाथात्मक साहित्य की विशेषताओं का अध्ययन भी आप कर चुके हैं । इस इकाई में भक्तिकाल की परिस्थिति एवं प्रवृत्तियों की जानकारी के साथ-साथ भक्ति के प्रकारों की जानकारी के बाद आप-

- भक्तिकाल की राजनीति, सामाजिक परिस्थितियों को जान सकेंगे ।
- भक्तिकाल की धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- संत काव्यधारा का परिचय एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- सूफी काव्य धारा का परिचय एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- राम काव्यधारा का परिचय एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- कृष्ण काव्य धारा का परिचय एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्ययुगीन भक्ति साहित्य का स्थान अनेक कारणों से अप्रतिम है । भक्ति के माध्यम से सामाजिक आयामों को विकृत करना इस साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता है । वस्तुत: यदि कहे कि भक्ति का साहित्य अपने निर्गुण-सगुण आराध्यों के कारण वरेण्य नहीं अपितु अपने सामाजिक सन्दर्भों की साहित्य में समेटने के कारण वरेण्य है तो अत्युक्ति नहीं होगी । कबीर, रैदास, नानक, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि का काव्य इसका प्रमाण है जिसने सामाजिक संरचना को एक नई दिशा प्रदान की ।

भक्ति काल (पूर्व मध्यकाल)

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को इतिहासकारों ने पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल में विभाजित किया है । प्रवृत्तियों के आधार पर पर्व मध्यकाल को भक्तिकाल कहा गया है, क्योंकि इस काल के साहित्य से ही नहीं, सामाजिक जीवन की सभी चेष्टाओं से यह प्रमाणित होता है कि उस काल में भक्ति की प्रधानता थी । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल की अवधि सं. 1375 से 1700 सं. तक माना है । भारतीय इतिहास में भक्ति आन्दोलन पूर्व मध्यकाल की सबसे बड़ी घटना है । विद्वानों ने इंगित किया है कि भारतीय इतिहास में समूचा देश तक भावधारा-भक्ति से आंदोलित हो उठा ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सं. 1375 से 1700 तक के काल को भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया जाता है । इस नाम को लेकर विद्वानों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है, क्योंकि इस काल में जितनी काव्यधाराएँ प्रवाहित हुई उन सबमें एक तत्त्व समान थाव्वह था भक्ति का । इस काल में मुख्यत: भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक-प्रचलित भाषाएँ भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गयीं और कालान्तर में भक्ति-विषयक विपुल साहित्यकी बाढ़-सी आ गयी । इस आन्दोलन में भारतीय धर्म साधना के विभिन्न सम्प्रदाय ही नहीं, भारत में प्रचलित विभिन्न मत भी शामिल हो गये ।

3.2 भक्तिकालीन साहित्य की परिस्थितियाँ

3.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

भक्तिकाल का समय राजनैतिक दृष्टि से दो संस्कृतियों के परस्पर संघर्ष का काल है । आदिकाल में ही भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने आरम्भ हो गये थे । छोटे-छोटे देशी राज्यों में बँटे देशी सजा परस्पर कलह के शिकार थे तथा एक-दूसरे को नीचा दिखाने में लगे रहते थे । इस आन्तरिक कलह का लाभ मुसलमान आक्रमणकारी को मिला और धीरे-धीरे मुसलमान शासकों का आधिपत्य भारतवर्ष पर होता गया । आरम्भ में मुसलमान आक्रमणकारी लूटपाट करने के लिए आते और अपने गुलामों को शासन सौंपकर लौट जाते थे ।

12 वी शताब्दी के अन्त में शहाबुददीन गौरी तो पृथ्वीराज पर विजय पाने के बाद वापस चला गया, किन्तु उसकी मृत्यु होते ही भारत में अपना शासन स्थापित कर लिया । 1206 ई. से 1526 ई. तक भारत पर क्रमश: गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश तथा लोदी

वंश का शासन रहा । किन्तु विशाल मुसलमानी राजसत्ता का 1526 ई. में बाबर द्वारा स्थापित शासन से होता है । बाबर से पूर्व का मुसलमानी शासन बहुत क्रूर और आतंक भरा था जिसमें गैर-मुस्लिम लोगों पर खूब अत्याचार हुए ।

14 वीं शती के अन्त तक भारत की हिन्दू जनता मुसलमान शासकों के क्रूर अत्याचारों में पिसती रही । 15 वीं शताब्दी के आरम्भ से ही भारत का राजनैतिक परिदृश्य बदला । 1526 ई. में बाबर द्वारा मुगल शासन की स्थापना हुई तो हिन्दू राजाओं ने भी अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने आरम्भ कर दिये । इनमें सबसे सशक्त मेवाड़ के सिसोदिया वंश के राणा थे। मालवा, गुजरात, जौनपुर, सिरहन तथा दक्षिण में कृष्णदेव राय आदि हिन्दू शासक शक्तिसम्पन्न हुए । मुसलमान भी अपने को आक्रामक न समझकर यहाँ के नागरिक के रूप में देखने लगे । मुगल शासकों हुमायूँ अकबर, शाहजहाँ आदि की उदार हिन्दू नीति ने इस भावना को और भी वेग प्रदान किया और यहाँ रहने वाले मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान और आपसी मेलजोल बढ़ाना प्रारम्भ किया । इस युग के साहित्यकारों और समाज-सुधारकों ने भी इस ओर प्रयास किया ।

3.2.2 धार्मिक परिस्थिति

भक्तिकाल की पृष्ठभूमि के रूप में तीन धर्म प्रमुख हैं -

1. बौद्ध धर्म के विकार रूप में प्रचलित सिद्धों की तान्त्रिक साधना और नाथों की विशुद्ध योगपरक साधना ।
2. पुराणों की परम्परा में विभिन्न आचार्यो द्वारा प्रसारित की गयी राम-कृष्ण, शिव आदि की भक्ति-भावना ।
3. विदेशी शासकों के साथ आया हुआ इस्लाम धर्म, जो अपने प्रसार के लिए हाथ में तलवार लेकर आगे बढ़ता हुआ भयानक रक्तपात मचा रहा था ।

किन्तु शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के हाथों बौद्ध धर्म का पराभव हो चुका था और इन्होंने अद्वैत वेदान्त की स्थापना कर दी थी । तथापि ब्राह्मण धर्म की कर्मकाण्डपरक साधना बहुदेववाद के साथ विद्यमान थी । शैव, शाक्त, वैष्णव आदि में विभक्त धर्म-साधना तान्त्रिक साधना को भी अपना रही थी । इस अस्त-व्यस्त धार्मिक परिदृश्य में इस्लाम भी अपने आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील था । अलग-अलग सम्प्रदायों में विभक्त विशाल हिन्दू धर्म इस्लाम के आवेग को रोकने में असमर्थ था । हिन्दू धर्म भी विभिन्न धाराओं के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास पहले दक्षिण के आचार्यो ने किया । शंकराचार्य द्वारा स्थापित निवृत्तिपरक अद्वैत वेदान्त को आधार बनाकर दक्षिण के चार आचायों - रामनुज, माधवाचार्य, निम्बार्क और वल्लभाचार्य ने क्रमश: विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद-इन चार दार्शनिक सम्प्रदायों की स्थापना की । इन आचार्यो ने शंकराचार्य द्वारा स्थापित द्वैत सिद्धान्त की अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार भक्तिपरक व्याख्या की । इस प्रयत्न का सुखद परिणाम यह निकला कि ज्ञान और पौराणिक भक्ति में समन्वय उपस्थित हुआ । इन आचार्यो ने पौराणिक देवताओं, विष्णु तथा उनके अवतारों राम और कृष्ण तथा शिव आदि की भक्ति की आध्यात्मिक व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं । फलत: ज्ञान की निवृत्तिपरक धारा भक्ति की

प्रवृत्तिपरक धारा के सिद्धान्तों का मूल आधार बनी । समन्वय की इसी परम्परा का विकास आगे चलकर रामानन्द के शिष्यों कबीर, तुलसी आदि ने राम की भक्ति के रूप में तथा वल्लभाचार्य के शिष्यों सूरदास आदि ने कृष्णभक्ति के रूप में किया ।

3.2.3 सामाजिक परिस्थिति

उस काल का समाज भी बहुत ही अस्त-व्यस्त था । हिन्दू मुसलमानों के बीच परस्पर घृणा पनप रही थी । हिन्दू अपने समाज में दलितों पर अत्याचार कर रहे थे । जिसके कारण लोग इस्लाम धर्म स्वीकार करने लगे थे । जाति प्रथा के नियम कठोर होते जा रहे थे । 'तारीख-ए-फीरोजशाही' में बर्नियर ने लिखा है - "उन हिन्दुओं के पास धन संचित करने के कोई साधन नहीं रह गये थे और उनमें से अधिकांश को निर्धन, अभावों एवं आजीविका के लिए निरन्तर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था । प्रजा के रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न कोटि का था । करों का सारा भार उन्हीं पर था । राज्य पद उनको अप्राप्त थे ।"

मुसलमान जितना ही हिन्दू जनता को सताते थे, हिन्दू उतने ही संकुचित होते जा रहे थे । दिनकरजी ने इस स्थिति पर लिखा है - "हिन्दू बाहर से तो दब गये, लेकिन भीतर-ही-भीतर उनकी घृणा की भावना उत्कट होती गयी । यह घृणा उन्हें केवल मुसलमानों से नहीं हुई बल्कि जो हिन्दू मुसलमानों से मेलजोल बढ़ाता, अपने मुहल्ले में वह भी घृणित समझा जाता था । मुसलमानों ने भारत में अत्याचार तो ऐसे भयानक किये जिनका दुनिया के इतिहास में कहीं सानी नहीं है, किन्तु भारत का सबसे बड़ा अकल्याण उन्होंने यह किया कि हिन्दुओं के हृदय में उन्होंने साम्प्रदायिकता की आग पैदा कर दी । धार्मिक द्वेष भारत में नहीं था । यह चीज यहाँ मुस्लिम सम्प्रदाय की देन है ।"

3.2.4 साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थिति

साहित्य, संगीत और कला तीनों दृष्टियों से यह युग बहुत ही समृद्ध है । मुगल काल में वास्तुकला, संगीत, चित्रकला आदि की आशातीत प्रगति हुई । अकबर के दरबार में सभी प्रकार के कलाकारों का सम्मान था । इस काल की पृष्ठभूमि के रूप में उपलब्ध साहित्य को हम तीन वर्गो में रख सकते हैं -

(1) संस्कृत भाषा में लिखा गया टीका साहित्य - इस युग में संस्कृत की कोई मौलिक रचना नहीं हुई, बल्कि प्राचीन ग्रन्थों पर ही टीका-टिप्पणी होती रही । भक्ति-प्रचारक दक्षिण के आचार्यो द्वारा प्रणीत मूल गन्थों पर भी टीका-टिप्पणियाँ की जाती रहीं ।

(2) भाषा साहित्य -संस्कृत से अलग हटकर लोकभाषाओं-विशेषत: 'ब्रजभाषा' 'और 'अवधी' में की गयी भक्ति-सम्बन्धी रचनाएँ इस युग की सर्वश्रेष्ठ मौलिक कृतियाँ हैं । इन्हीं कृतियों के कारण पूर्व मध्ययुग हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग भी कहा जाता है । इन भाषाओं का प्रयोग हिन्दी के आदिकाल से ही प्रारम्भ हो गया था । इस युग में 'अवधी' और 'ब्रजभाषा' अपने विकास के चरम शिखर पर पहुँच गयीं । इनमें लिखा गयाभक्त-कवियों का साहित्य सभी दृष्टियों से उच्च कोटि का है ।

(3) इस युग की तीसरे प्रकार की मौलिक रचनाएँ प्राय: गद्य में हैं । ये विभिन्न-राजाओं के दरबारों में रहने वाले अरबी और फारसी के विद्वानों द्वारा लिखे गये इतिहास-ग्रन्थ हैं । इन गन्थों से उस युग की शासन-व्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । इनमें बहुत्सी कृतियाँ एवं विवरण विदेशी विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं, परन्तु अधिकांश कृतियाँ भारतीयों द्वारा ही प्रणीत हैं । इन ऐतिहासिक और विवरणात्मक कृतियों के अतिरिक्त संस्कृत के अनेक ग्रन्थों के अरबी और फारसी में अनुवाद भी किये गये । शेरशाह तथा बाद में मुगल बादशाहों ने हिन्दी की रचनाओं को भी प्रश्रय दिया इस युग की दरबारी वातावरण में लिखी गयी नीति, श्रृंगार आदि की रचनाएँ बादशाहों के प्रोत्साहन में लिखी गयीं ।

3.3 भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ

यद्यपि अन्य युगों की भाँति भक्तिकाल में भी भक्ति काव्य के साथ-साथ अन्य प्रकार की रचनाएँ भी होती रहीं, तथापि प्रधानता भक्तिपरक रचनाओं की ही रही । इसीलिए चौदहवीं सदी के मध्य से सत्रहवीं सदी के मध्य तक के काल को भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया जाता है ।

भक्तिकाल में भक्त कवियों की दो प्रमुख शाखाएँ थीं -

1. निर्गुण भक्ति काव्यधारा
2. सगुण भक्ति काव्यधारा

निर्गुण भक्ति काव्यधारा में भी दो शाखाएँ उदित हुई- (1) संत काव्यधारा, (2) सूफी काव्यधारा । इसी प्रकार सगुण भक्ति काव्यधारा में भी - (1) राम काव्यधारा तथा (2) कृष्ण काव्यधाराओं का विकास हुआ ।

3.3.1 संत काव्यधारा

निर्गुण काव्यधारा में सबसे पहले उन सन्तों की श्रेणी आती है, जो दक्षिण के आलवार संतों से प्रभावित थे तथा जिन पर शैव-साधना का भी प्रभाव था, क्योंकि नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव उत्तर भारत में भी दूर-दूर तक था । नाथ सम्प्रदाय तथा हठयोगियों से प्रभावित संत कवियों ने सबसे अधिक व्यक्ति के आचरण की शुद्धता पर जोर दिया । यह इसलिये भी कि भारतीय समाज धर्म के जिस कर्मकाण्डीय और पाखण्डी रूप से आक्रान्त था उसमें अनेक प्रकार की विसंगतियाँ आ गयी थीं । संत कवियों ने सादा-जीवन, सहज जीवन, सामूहिक जीवन, सदाचारी जीवन, परोपकारी जीवन जैसे मानवीय तत्त्वों पर जोर दिया । इनकी दृष्टि में ईश्वर निराकर निर्गुण और सर्वव्यापी है । आत्मा उसी का अंश है तथा शुद्ध आचरण और सहज साधना द्वारा आत्मा-परमात्मा का मिलन हो सकता है । संत कवियों ने अन्धविश्वासों, धार्मिक पाखण्डों तथा कर्मकाण्ड का खुलकर विरोध किया है । संत मानव-धर्म के पक्षधर हैं जो हिन्दू-मुसलमान, गरीब-अमीर, सवर्ण-अवर्ण सबको समान मानता है ।

सन्त काव्य की विशेषताएँ :

(1) सर्व समावेशक, स्वानुभूत अध्यात्म विचार - सन्त काव्य का अध्यात्म विचार शास्त्रों पर आधारित न होकर सन्तों का स्वानुभूत है । अधिकांश संत कवि शास्त्रों से सीधे रूप में परिचित नहीं थे । वे अधिकांश अनपढ़ थे और निचली जाति के थे, इसीलिये शास्त्राध्ययन का उन्हें उस समय अधिकार नहीं था । लेकिन शास्त्र मात्र ग्रंथों में नहीं होते, किसी-न-किसी रूप में जन-मानस में भी होते हैं । सन्त-काव्य और कवि भी जन-मानस से जुड़े थे । इसीलिये उनके अध्यात्म-विचार पर उन सभी दर्शनों का अपरोक्ष प्रभाव दिखाई देता है, जो तत्कालीन जन-मानस में व्याप्त थे । सन्त-मत पर वैदिक धर्म, नाथ-पंथ, इस्लाम धर्म, सूफी-दर्शन का प्रभाव इसी रूप में था । अत: कहा जा सकता है कि सन्तों के अध्यात्म-विचार सर्वसमावेशक है । अध्यात्म-चिन्तन के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत् और माया आदि के विचार होते हैं ।

(अ) ब्रह्म विचार - सन्त निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं । उन्होंने उस ब्रह्म को राम-रूप में प्रतिष्ठित कर त्रिगुणातीत और अनिवर्चयनीय कहा है । यह सर्वान्तरयामी, घट-घट व्यापी, पाप-पुण्य से परे, ज्ञान-ध्यान से, अतीत और स्थूल सूक्ष्म से पृथक् हैं, जिसके लिए अजर, अमर, भक्त, निरंजन, अनादि सर्वशक्तिमान, अपार्थिव, प्रकाश-पुँज और अजन्मा आदि विशेषण दिए जा सकते हैं । कबीर के शब्दों में-

सन्तों धोखा का सूँ कहिए ।
गुण में निरगुण निरगुण में गुण है. बाट छांडि क्यूं बहिए ।
अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न बयणाँ जाईं ।
जाति सरूप वरन नहि जाकै, घट-घट रह्यो समाई ।

सन्तों का निर्गुण ब्रह्म-निरूपण बहुत कुछ उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप के ढंग पर हैं, किन्तु कही-कही उस पर योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षण, ज्योतिवाद सूफियों के नूरवाद, सबदवाद, शून्यवाद आदि की भी छाया दिखाई पड़ती है । भक्ति-भावना के आवेश में कहीं-कहीं निगुर्ण-ब्रह्म के लिए सगुण-भगवान के अवतारों का भी प्रयोग किया है, श्रेष्ठतम् मानव-गुणों का उन पर आरोपण भी किया है ।

(आ) आत्म-विचार - सन्तों ने आत्मा और ब्रह्म दोनों को सदैव एक रूप माना है । "आत्मा" परमात्मा का ही अंश है, किन्तु शरीरबद्ध होने के कारण आत्मा, परमात्मा से भिन्न प्रतीत होती है । कबीर ने कुम्भ के रूपक से इस बात को स्पष्ट किया है -

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी ।
फूट्यो कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तत कथौ गियानी ।।

सन्तों ने ब्रह्म और आत्मा की एकता को कई प्रतीकों के द्वारा स्पष्ट किया है, जैसे-सूत और वस्त्र, कनक और कुण्डल, जल और तरंग, पाषाण और मूर्ति आदि । उन्होंने दार्शनिक दृष्टि से जीव-आत्मा को ईश्वर का अंश माना है, किन्तु व्यावहारिकता की दृष्टि से उसे सांसारिक प्रपंचों मे फँसा हुआ तत्व स्वीकार किया है ।

(इ) माया-विचार - सन्तों ने माया को ब्रह्म और आत्मा के बीच अन्तराल उपस्थित करने वाली और विश्वासघातिनी माना है । माया का सृजनात्मक रूप सन्तों ने अस्वीकार किया

है । सन्त कवियों का "माया" विचार किसी दर्शन-विशेष का अनुसरण नहीं है, बल्कि अपने इर्द-गिर्द जो भी पतितोन्मुखी-प्रलोभन हैं, उन्हें माया के रूप में स्वीकार किया है । मन को मोहने वाले सभी तत्त्वों को माया मानकर उन्होंने उसकी कटु आलोचना की है, उसके इर्द-गिर्द-कनक और कामिनी के रूप में ही माया विद्यमान थी । इसी रूप में अधिकांश माया-निरूपण किया गया है, जैसे -

माया सांपिन सब उसै, कनक कामिनी होई ।

ब्रह्मा बिस्नु महेश लौ, दादू बचै न कोई ।।

सन्त काव्य में नारी-रूपी माया की भर्त्सना करने में कोई कसर नहीं रखी गई है, वे कनक, कामिनी के अतिरिक्त काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, आशा, तृष्णा, मद, मान, मात्सर्य और ईर्ष्या-द्वेष आदि को भी माया के ही अंग मानते हैं ।

(ई) जगत् - सन्तों ने, जो कुछ दृष्यमान है, उसे जगत् माना है । उसके अनुसार, जगत्, भ्रम, भय, चंचल और नश्वर है । धन, वैभव, आडम्बर, विलास, सुख और दुख ये सब जगत् के रूप हैं । इस जगत् के भ्रम में पड़कर ही व्यक्ति अपने मूल-रूप को भूल जाता है और दुखों की सर्जना करता है । विश्व का सारा प्रवंच संसारी जीवन का ही माया-प्रचार है । सन्तों ने जगत् के विवेचन में तत्कालिन सामाजिक और धार्मिक-परिवेश की प्रतिक्रिया पाई जाती है ।

(2) रूढ़ियों और बाह्याडम्बरों का विरोध - सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त रूढ़ियों और बाह्याडम्बरों का सन्तों ने खुलकर विरोध किया है । सामाजिक-क्षेत्र में वर्ण-व्यवस्था के आधार पर धर्म के ठेकेदार निम्न जातियों को उनके सामाजिक-धार्मिक अधिकारों से वंचित रखते थे । इसीलिये सन्तों ने वर्ण-व्यवस्था पर करारे आघात किये हैं । आधिकांश सन्त निम्न जातियों से सम्बन्धित थे, अत: वर्ण-व्यवस्था के दुष्परिणामों को उन्होंने स्वयं अनुभव किया था, अत: उस पर किये गये आघातों में यहाँ एक ओर उनका उत्पीड़न-जन्य आवेश भी है और दूसरी ओर समानता की कामना भी । "जाति-पाँति पूछै नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई ।" में यही भाव निहित है । इसलिये सन्तों का वर्ण-व्यवस्था विरोध मात्र बौद्ध, नाथ मत का अनुसरण नहीं है । सन्त हर जीव में परमात्मा का अंश पाते हैं, अत: कोई "अंश" मात्र किसी जाति विशेष में पैदा होने से उच्च और नीच कैसे हो सकेंगे ? वर्ण-व्यवस्था एक बाह्याडम्बर है । कबीर कहते हैं-

"एक ज्योति में सब उत्पना, कौ ब्राह्मण कौ सूदा ।"

(3) समन्वित-भक्ति-भावना - सन्त-साहित्य में अभिव्यक्त भक्ति--भावना पर नाथों की योग-साधना, वैष्णवों की भक्ति-महिमा सूफियों के प्रेम-तत्त्व का प्रभाव होकर भी, समन्वित होकर भी मौलिक है । इसमें कर्म,ज्ञान और योग का समन्वय है । सन्तों की भक्ति-साधना का योग मार्ग का प्रभाव है, लेकिन उसका अन्धानुकरण नहीं है । उनकी नजर में प्रेम के बिना ज्ञान और योग की क्रियाएँ व्यर्थ हैं । इस सन्दर्भ मे कबीर की मान्यता है-

मैं जान्यौ पढ़िवो भलौ, पढिबा तै मल जोग ।

राम नाम सूं प्रीति करि, भल-भल नींदो लोग ।।

(4) नाम स्मरण की महिमा - नाम-तत्त्व सन्त काव्य की विरचना का एक विशेष अंग है। संत-काव्य में वर्णित राम-नाम की साधना एक प्रकार की मन्त्र-साधना है, जिसका गुरू मंत्र स्वामी रामानन्द ने कबीर को दिया था । केवल नामोच्चारण या परम्परागत राम-नाम-साधना नहीं है, उसका सम्बन्ध जीवन की रागात्मिक वृत्ति से है । जब तक नाम साधना का परमतत्त्व हमारी प्राण-शक्ति के साथ घुल-मिल नहीं जाता, तब तक वह शब्द-ज्ञान मात्र ही बना रहता है । इसीलिए नाम-स्मरण तन-मन से एकाग्र होकर ही किया जा सकता है-

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय ।

होंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गेय ।।

(5) सतगुरू की महिमा - विश्व का शायद ही कोई ऐसा वाड्मय हो, जिसमें गुरू महिमा-गान न हुआ हो । सन्तसाहित्य के पूर्ववर्ती युगों में भी गुरू के महात्म्य के सम्बन्ध में बहुत अधिक लिखा गया है । सन्त साहित्य की पृष्ठभूमि अथवा प्रेरणा स्त्रोतों के रूप में जिन सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य की चर्चा को जाती है, उसमें भी गुरू तत्त्व की महिमा है । वस्तुतः द्रविड़ प्रदेश से कर्नाटक और महाराष्ट्र से होती हुई जो भक्तिधारा हिन्दी प्रदेशों में प्रवाहित हुई है, वह अपने मूल में ही गुरू महातम्य-ज्ञान लेकर ही आई है । हिन्दी सन्त काव्य में गुरू महातम्य की एक सुदीर्घ परम्परा रही है । लगभग सभी सन्तों ने गुरू महिमा का बखान किया है । उनके अनुसार गुरू ही अपने भीतर के बिशुद्ध आत्म-तत्त्व से परिचित करा सकते हैं । सन्त नानक देव कहते हैं -

"गुरू बिनु कितै न पाइयो, केति कहै कहाये ।

गुरू सागरो रतन गुरू तितु रतन धणोरो राम ।।"

(6) रहस्य भावना की अभिव्यक्ति - ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप से आत्मा की भावात्मक ऐक्यानुभूति का प्रकाशन रहस्यवाद है । डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के मतानुसार, "जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजाकर रखने लगता है, तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है ।" (कबीर की विचारधारा-त्रिगुणायत पृ. 168) ।

सन्त-साहित्य में भावनात्मक, साधनात्मक और अभिव्यक्तिमूलक रहस्याभिव्यक्ति के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं । भावात्मक रहस्य-भावना प्रेममूलक है, साधनात्मक रहस्य-भावना यौगिक तथा अभिव्यक्तिमूलक रहस्य-भावना पारिभाषित शब्द जनित है । सभी सन्तों में कबीर की रहस्य-भावाभिव्यक्ति अद्वैतदर्शन, सूफी-दर्शन और नाथों के योग से प्रभावित होकर भी मौलिक है । उदाहरण के लिए -

(1) प्रेममूलक रहस्याभिव्यक्ति -

बहुत दिनन में प्रीतम आये । भाग बड़े धरि बैठे पाए ।। टेक । ।

मंगलाचार माँहि मन राखौ, राम रसाइन रसना चाखौ ।

मन्दिर मांई भया उजियारा, लै सूती अपना पीव पियारा ।।

(7) शान्त और श्रृंगार रस की अबाधित धारा- यद्यपि सुन्दरदास जैसे सन्तों को छोड़कर लगभग सभी सन्त काव्य-शास्त्रीय रस-मीमांसा से अनभिज्ञ थे, परन्तु उनका काव्य सभी रसों से आप्लावित है । उनका काव्य अपनी अनुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है । उन्होंने काव्य के शिल्प-पक्ष के बाह्याडम्बरों से बचकर ही अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त किया है, इसलिये इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता "साधारणीकरण" सन्त काव्य मे विद्यमान है । सुन्दरदास ने काव्यशास्त्रीय दृष्टि अपनाई, पर भावों की सहज सम्प्रेषणशीलता से वे वंचित रहे । सन्त काव्य में प्रधानता शान्त रस को ही है, उसके बाद श्रृंगार रस का क्रम आता है । उनके दाम्पत्य प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त भावनाओं में संयोग और वियोग श्रृंगार के अनुपम चित्र मिलते हैं । चेतावनी और उपदेश की बानियों में शान्त रस है । ब्रह्म के विराट स्वरूप के वर्णन में तथा रहस्यभावाभिव्यक्ति में अद्भुत रस है । बाह्याडम्बरों के वाङ्बानों में हास्य तथा प्रेतादि के वर्णन और जीव-जगत की क्षणभंगुरता के निरूपण भी बीभत्स रस का परिपाक हुआ है ।

(8) सधुक्कड़ी भाषा - सन्तों ने जन-बोलियों मे अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। भाषा के सन्दर्भ में उनका दृष्टियोग है -

संस्किरत है कूप जल, भाषा बहता नीर ।

भाषा सतगुरू सहित है, सत मत गहिर गंभीर ।।

सन्त-कवि भ्रमणशील थे, इसीलिये ये कई स्वदेशी भाषाओं के ज्ञाता थे । सन्तों की भाषा में उस समय की समस्त भाषाओं, विभाषाओं और बोलियों का मधुर मिश्रण मिलता है। उनकी काव्य-भाषा में पंजाबी, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, मैथिली, बुन्देली आदि के साथ अन्य प्रादेशिक भाषाओं तथा अरबी-फारसी के शब्दों का सुन्दर प्रयोग प्राप्त होता' है । भाषा के इस मिले जुले रूप को "सधुक्कड़ी" की संज्ञा दी जाती है । सन्तों की भाषी सीधी-सादी, सरल और भावानुकूल है ।

(9) छन्द प्रयोग - अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सन्तों ने साकी और सबद छन्दों का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त रमैनी, चौपाई, कवित्त, सार, बसन्त आदि छन्दों का प्रयोग किया है । सुन्दरदास को छोड़कर अन्य सन्त छन्दशास्त्र से अनभिज्ञ थे । इसलिये इनके छन्दों को "सधुक्कड़ी" छन्द कहना ही समीचीन होगा ।

(10) अलंकारों का सहज एवं अनायास प्रयोग - छन्दों के समान ही सन्तों ने सहेतूक प्रयोग नहीं किये हैं, लेकिन अनायास रूप में विभिन्न अलंकार उनके काव्य में आए हैं जिनमें रूपक, उपमा, दृष्टान्त, उत्पेक्षा, श्लेष, यमक और अतिशयोक्ति प्रमुख हैं । इन अलंकारों के अतिरिक्त स्वाभावोक्ति, सहोक्ति समासोक्ति, अन्योक्ति, वक्रोक्ति, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकार भी पाये जाते हैं । सन्तों के रूपक बड़े यथार्थ और प्रभावशाली हैं । प्रतीक योजना भी परम्परागत प्रतीकों से पृथक् है । अधिकांश प्रतीक जनसामान्य में प्रचलित और परिचित हैं, इसीलिये भाषा की सम्प्रेषणशीलता को वे और भी वृद्धिगत करते हैं । सन्तों के अलंकार वाणी के आभूषण नहीं, बल्कि भावों-विचारों के सम्प्रेषण के माध्यम हैं ।

3.3.2 सूफी काव्यधारा (प्रेमकाव्य अथवा प्रेमाख्यान काव्यधारा)

मुसलमानों में सूफी सन्त भी आये जो अपना उदार और मानवीय दर्शन अपने साथ लाये । सूफी मत के अनुसार आत्मा पुरूष है और परमात्मा स्त्री । पुरूष स्त्री को प्राप्त करने का प्रयास करता है । परमात्मा को प्राप्त करने का एक ही मार्ग है - प्रेम । सूफी साधना का मार्ग प्रेम मार्ग है, इसलिये इसे प्रेम काव्यधारा भी कहते है । सूफी सन्तों ने भारतीय जीवन से अपनी कथाएँ ली हैं और उन कथाओं के माध्यम से सूफी मत को व्यक्त करने का प्रयास किया है। सूफी कवियों ने भारतीय जीवन अन्तरंग का बड़ी गहराई से अध्ययन किया था, यह उनके काव्यों से स्पष्ट होता है । सूफी सम्प्रदाय के अग्रणी कवि मलिक मौहम्मद जायसी ने "पदमावत" नामक काव्य में रतनसेन और पदमावती के प्रेम की कथा कही है, जिसमें पदमावती ईश्वर है और रतनसेन आत्मा है, नागमती दुनियादारी है, अलाउद्दीन खिलजी, जो पदमावती को प्राप्त करना चाहता था माया है, रतनसेन का मंत्री राघव चेतन शैतान है । इस प्रकार इस कथा को रूपक में ढालकर मसनवी शैली में लिखा गया है । दोहा-चौपाई शैली में लिखी गई इन प्रेम कथाओं की भाषा अवधी है । ये काव्य वर्तमान काल की स्थितियों में बहुत प्रासंगिक लगते हैं ।

सूफी काव्य की विशेषताएँ

(1) परम्परागत तथा काल्पनिक कथा स्त्रोत - इस काल-खण्ड में लिखित प्रेमाख्यान के कथा स्त्रोत मुख्यत: परमपरागत जन-मानस पर बिम्बित पौराणिक, ऐतिहासिक कथाएँ हैं, जिसका प्रयोग कल्पना के प्रचुर प्रयोग द्वारा हुआ है । अधिकांश कथाएँ हिन्दूराज-परिवार से सम्बन्धित हैं । कुछ प्रेमाख्यानों में ऐतिहासिक चरित्रों को तथा घटनाओं को अपनाया गया है, लेकिन उसमें ऐतिहासिक तथ्यों की अधिकतर उपेक्षा ही हुई है । इस रूप में "पदमावत" और "कुतुब मुश्तरी" रचनाओं को देखा जा सकता है । परम्परागत कथाओं में हिन्दू के साथ मुस्लिम-परम्परागत कथाओं का भी प्रयोग किया गया है, जैसे - युसूफ-जुलेखा, लैला-मजनूँ आदि । कभी-कभी हिन्दी में प्रख्यात प्रेमाख्यान के कथा की पुनरावृत्ति भी हुई है, जैसे- "मधुमालती" की कथावस्तु को लेकर दक्खिन में "गुलशने इश्क" लिखा गया । "माघवानल कामकदंला" का किचिंत परिवर्तन कर सात-आठ कवियों ने प्रेमाख्यान लिखे, "चन्द-लोरित" की कथा भी अलग-अलग रूप में हुई ।

(2) अलौकिक या आदर्श प्रेम की व्यंजना - इन प्रेमगाथाओं में लौकिक प्रेमकथाओं का चित्रण है. लेकिन मात्र "प्रेमकथा" कहना इनका उद्देश्य नहीं है । कुछ विद्वानों ने इन्हें मात्र लौकिक प्रेमगाथाएँ माना है और कुछ विद्वानों ने इनका उद्देश्य सूफी-मत का मात्र प्रचार एवं प्रसार माना है । हमारी नजर में ये दोनों धारणाएँ अतिवादी हैं । दोनों धारणा प्रस्तुत करने वाले विद्वान किसी-न-किसी पूर्व धारणा से ग्रसित हैं । हमारा दुर्भाग्य यह रहा है कि हमारा इतिहास, चाहे वह राजनैतिक हो, सांस्कृतिक हो या साहित्यिक एक तरह से उस पर जमातवादी दृष्टिकोण हावी है, तटस्थता का दृष्टिकोण कम ही रहा है । "प्रेमाख्यान" काव्य को लेकर भी हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भी जमातवादी दृष्टिकोण से उसके उद्देश्य का विश्लेषण किया जाता रहा है । कुछ लोग इसे पूरी तरह सूफी मानते हैं, तो कुछ लोग

पूरी तरह से भारतीय । जबकि असलियत यह है कि ये प्रेमाख्यान भारतीय और सूफी दोनों के सम्मिलित प्रभाव में लिखे गये हैं । दोनों दर्शनों में अलौकिक तथा आदर्श प्रेम प्रतिपादन की लम्बी परम्परा रही है ।

(3) मानवी हृदय की सूक्ष्म-भाव तरंगों का अंकन - इन प्रेमाख्यानों का मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम है और प्रेम के वियोग को इनमें अत्यधिक महत्व दिया गया है । वियोग-अवस्था में प्रेमी की विभिन्न मानसिक दशाओं का सूक्ष्म-अंकन इन काव्यों की अपनी विशेषता है । यहाँ का वियोग निफिय आक्रोश मात्र नहीं है, बल्कि प्रियतम को प्राप्त करने के लिये सक्रिय है इसीलिये कई बाधाओं से टकराना यहाँ अनिवार्य है, इसी परिप्रेक्ष्य में नायक-नायिका के विभिन्न-भाव दशाओं का चित्रण किया गया है, जिसमें प्रसंगवश उत्साह, द्वेष, ईर्ष्या, वैर, कपट, दया, सहृदयता और सौजन्यपरक भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है । विरह वर्णन में बारहमासा वर्णन के अपनाव के कारण इर्द-गिर्द का परिवेश और उसके चरित्र के मानस-पटल पर पड़े प्रभाव से उत्पन्न भाव-तरंगों का अंकन भी इसमें प्राप्त होता है । कहीं-कहीं विरह-वर्णन में भावातिरेक का चित्रण अतिरंजित शैली में भी हुआ है, जहाँ नायिका विरह में रक्त के आँसू बहाने लगती है, लेकिन इसे एक शैली के रूप में स्वीकार करना चाहिये, दोष के रूप में नहीं ।

(4) वर्णनात्मकता - वर्णनात्मकता प्रबन्ध-काव्य रूपों में अनिवार्य रूप से आ जाती है । प्रेमाख्यान काव्य में नायिका में सौन्दर्य का नख-शिख वर्णन हुआ है । नायिका का लोकोत्तर सौन्दर्य वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण किया जाता रहा है, जिसका एक कारण परम्परा मे देखा जा सकता है और दूसरा अलौकिक प्रेम व्यंजना के उद्देश्य में । इसमें नख-शिख, रंग-रूप और हाव-भाव के अतिरिक्त कला-विशारदता विदग्धता आदि का भी समावेश है । इन काव्यों में वस्तु, घटना, कार्य, पर्व, उत्सव आदि का भी विस्तृत -वर्णन किया गया है । प्रकृति के विभिन्न दृश्यों वन, वाटिका, समुद्र, पर्वत, सरिता, विभिन्न ऋतु आदि का विस्तृत वर्णन प्रसंगवश तथा कभी-कभी अप्रासंगिक रूप में भी किया है । नगर, पनघट आदि के साथ ही बारात, युद्ध, ज्यौनार आदि का वर्णन विशेष रूप से किया गया है । इन वर्णनों की अतिरंजितता में भी जहाँ एक ओर प्रबन्ध-परम्परा के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर दार्शनिक प्रतीकात्मकता भी देखी जा सकती है ।

(5) अद्भुत घटनाओं का चित्रण - इन प्रेमाख्यानों में अद्भुत घटनाओं का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है । इन घटनाओं के स्त्रोत भारतीय और फारसी दोनो रहे हैं । परियों, अप्सराओं, राक्षसों द्वारा नारियों का अपहरण और नायक के हाथों उसकी मृत्यु जादू द्वारा नायिका की पंछी बन जाना और उसका उद्धार, बोलने वाले पंछी, तोता, हंस के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम देवी-देवता, पीर आदि के साथ जुडी अद्भुत्कथाओं का प्रयोग भी इनमें हुआ है । इन अद्भुत पात्र एवं घटनाओं का प्रयोग कथानक की मूल आवश्यकता के अनुरूप हुआ है । इसमें भी प्रतीकात्मकता के साथ ही रूढिबद्धता दिखाई देती है ।

(6) सांस्कृतिक समन्वय का काव्य - प्रेमाख्यान हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का काव्य है, चाहे वह कृति हिन्दू ने लिखी हो या मुस्लिम कवि ने । हाँ, जहाँ मुस्लिम कवि ने

सूफी-मत की परोक्ष या प्रत्यक्षचर्चा की है, वहाँ भी उनमें साम्प्रदायिक भावों का अभाव ही है । उन्होंने कहीं भी अन्य मतों का खण्डन नहीं किया है । जहाँ इन्होंने पीर-पैगम्बर की स्तुति की है और उनकी महानता को भी अबाधित रखा है । भारतीय दर्शन और मुस्लिम-दर्शन का यहाँ टकराव नहीं, बल्कि समन्वय ही दिखाई देता है ।

3.3.3 रामभक्ति काव्य धारा

हिन्दी रामकाव्य में दो धाराएँ प्रवाहित रही हैं, तुलसी प्रणीत मर्यादावादी और अग्रदास प्रणीत रसिकोपासना रामभक्ति धारा । प्रथम धारा के सर्वेसर्वा तुलसीदास हैं, प्राणचन्द चौहान और हृदयराम तुलसी का ही अनुसरण करते हैं । शेष अधिकांश रामभक्तों ने रसिकोपासना का राम-काव्य लिखा है । आज इस धारा की ढेर सारी रचनाओं की खोज हुई है, लेकिन उनमें "मानस" जैसी कोई प्रभावी रचना नहीं है । ये रचनाएँ उपेक्षणीय नहीं हैं । इनकी उपलब्धियों पर विचार करने से स्पष्ट होगा कि वे रामकाव्य का एक जरूरी अंग है पर "रामचरित" के अनुकूल नहीं है, इसीलिये उसे रामकाव्य की मात्र एक विशेषताओं का सम्बन्ध तुलसी प्रणीत मर्यादावादी रामभक्ति साहित्य से ही है ।

रामभक्ति काव्य की विशेषताएँ :

(1) शील, शक्ति और सौन्दर्य से युक्त आराध्य राम का चित्रण - रामभक्ति साहित्य पर रामानन्द के सिद्धान्तों का प्रचुर प्रभाव विद्यमान है । रामानन्द ने राम को परब्रह्म परमात्मा, जगत् का सृष्टि, रक्षक और पालनकर्ता माना है । राम भक्त कवियों ने भी राम का यही रूप स्वीकार किया है । तुलसीदास ने तो उन्हें ऐसी उच्चतम पराकोटि पर पहुँचा दिया है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवाधि देवों की शक्तियाँ भी उनके सम्मुख कुण्ठित हो जाती हैं । वह निर्गुण भी है और सगुण भी । वे लौकिक और अलौकिक गुणों से युक्त हैं । रामभक्ति साहित्य के राम का चित्रण वाल्मीकि से लेकर तुलसी से विभिन्न धारणाओं का समन्वय के रूप में हुआ है जिसमें शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है । सौन्दर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं, शक्ति से वे दुष्टों का दलन और भक्तों का रक्षण करते हैं, वे अपने शील गुण से लोक को आचार की शिक्षा देते हैं ।

(2) आदर्शोन्मुखी काव्य - राम साहित्य आदर्शोन्मुखी साहित्य है । उसमें नैतिक आदर्श, शुद्ध-आचरण और उदात्त भावनाओं का अत्यधिक महत्व है । मूलत: रामकथा ही सभी आदर्शो का समुच्चय है । राम-काव्य के पात्र आचार और लोक-मर्यादा की आदर्श व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । राम यहाँ एक आदर्श पुत्र और एक आदर्श राजा हैं । सीता, कौशल्या आदर्श पत्नि और माता हैं, भरत, लक्ष्मण, शबरी आदर्श भक्त हैं । "राम-राज्य" एक राजनैतिक आदर्श हे । तुलसी का रामचरित मानस भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के आदर्शो का आदर्श कोष कहलाया जाता है । तुलसी प्रणीत राम-साहित्य का उद्देश्य मात्र धार्मिक नहीं है, बल्कि तत्कालीन पतनोन्मुखी जन-जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसे आदर्श प्रस्तुत करना है, जिसका सम्बल पाकर जन-जीवन उर्ध्वन्मुखी हो सके ।

(3) वैधी भक्ति का अपनाव : सर्वाङ्पूर्ण भक्ति-भावना - राम-साहित्य में निहित भक्ति-भावना अपेक्षाकृत उदार है । उनके आराध्य राम हैं, किन्तु अन्य देवता की पूजा भी उन्होंने अस्वीकृत नहीं की है । राम के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं की स्तुति भी इन कवियों ने की है । राम-भक्त कवियों के राम त्रिलोकातिशायी हैं, उनमें शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वित मर्यादा पुरूषोत्तम है । इसीलिये उनके और आराध्य के बीच सेवक-सेव्य भाव ही उनके अनुकूल हैं । अत: राम-भक्ति साहित्य में मूलत: दास्य-भाव की भक्ति का सर्वोपरि महत्व दिया जाना स्वाभाविक है, लेकिन इसके साथ ही प्रचलित सभी भक्ति-पद्धतियों का सुन्दर समन्वय राम-भक्ति साहित्य की अपनी विशेषता है । यह तुलसी की समन्वय-भावना का सफलता है ।

(4) लोक-जीवन का अंकन - रामकाव्य में एक ओर लोक-जीवन का व्यावहारिक- पक्ष मूर्तिमान हो उठा है, तो दूसरी ओर तत्कालिन-पतितोन्मुखी जन-जीवन का अंकन भी हुआ है । इस सन्दर्भ में तुलसी के मानस और कवितावली को देखा जा सकता है । मानस तथा अन्य तुलसी काव्य में लोक-जीवन में प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सांस्कृतिक आयोजनों के कई चित्र मिलते हैं, जिनमें वर्णाश्रम-धर्म की व्याख्या और षोडस संस्कारों की क्रियायें समन्वित हैं । रामचरित मानस की रामकथा में ऐसे असंख्य प्रसंग हैं, जिनमें विविध लोक-जीवन के भिन्न-भिन्न अंगों का निरूपण हुआ है ।

तत्कालिन राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक पतन का लोक-जीवन पर पड़े प्रभाव का चित्रण भी रामकाव्य से प्राप्त होता है -

"गोड गँवार नृपात महि जमन महामहिपाल ।

साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल ।।"

यह कलियुग-वर्णन के बहाने तत्कालिन मुगल साम्राज्य का ही वर्णन है । जनता की आर्थिक दशा का चित्रण करते हुए तुलसी लिखते है

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।

जीविका बिहीन लोग सीधमान सोचबस कहै एक एकन सो कहाँ जाई का करि ।।

(5) नव-रसों का परिपाक - रामभक्ति साहित्य में वर्णित राम कथा बहुत व्यापक है, जिसमें जीवन की विभिन्न अवस्था एवं मानव-भावों की अभिव्यक्ति है । इसीलिये प्राय: सभी रसों का परिपाक उसमें हुआ है । रामभक्ति मूलत सेवक-सेव्य की भक्ति होने से इस साहित्य का प्रमुख रस निर्वेदजन्य शान्त है । रामकथा के विभिन्न दृश्यों में अन्य रसों की निष्पति होती है । विभिन्न युद्ध-दृश्य चित्रण में वीर के साथ ही रौद्र, करूण, भयानक और कहीं-कहीं वीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है । परशुराम-लक्ष्मण-संवाद, सूर्पणखा के विवाह प्रस्ताव जैसे दृश्यों में हास्य रस अपेक्षाकृत कम मात्रा में प्रयुक्त होना स्वाभाविक ही है । विभिन्न अलौकिक घटनाओं में अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है । राम की बाल-लीलाओं के चित्रण में वात्सल्य रस के दर्शन होते हैं । वन-विहार, जल-विहार, बसन्त-विहार, हास-परिहास, सखियों का नृत्य, हिण्डोला काम-क्रीड़ाओं, साथ ही राम-सीता का नख-शिख वर्णन भी इस काव्य में हुआ है ।

(6) अवधी और ब्रज भाषा में अभिव्यक्ति - रामभक्ति साहित्य अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में अभिव्यक्त हुआ है फिर भी इसका स्तरीय साहित्य अवधी में ही है । स्वयं तुलसी ने भी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है । जिसमें राजस्थानी, बुन्देली, फारसी, भोजपुरी, अरबी एवं संस्कृत भाषा के शब्द प्रयुक्त हुए हैं । तुलसी की भाषा अधिक संस्कृतनिष्ठ है । इस धारा के अन्य कवियों की भाषा सरल भावात्मक रसानुकूल होते हुए भी पाण्डित्यपूर्ण है।

(7) छन्द और अलंकार योजना - छन्द और अलंकार की योजना में भी रामभक्ति साहित्य समन्वयवादी रहा है । इसमें विविध छन्दों का बड़ी कुशलता के साथ प्रयोग हुआ है । यद्यपि राम साहित्य में दोहा-चौपाई का मुख्यत: प्रयोग हुआ है फिर भी अन्य परम्परागत सभी छन्दों का सुन्दर समन्वय यहाँ प्राप्त होता है जैसे - वीरगाथाओं के छप्पय, सन्त काव्य के दोहे, कुण्डलीयाँ, सोरठा, सवैया, धनाक्षरी, तोमर आदि छन्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है । जो भावानुकूल है ।

3.3.4 कृष्णभक्ति काव्यधारा

रामानुजाचार्य से प्रभावित होकर रामानन्द ने रामभक्ति को प्रचारित किया तो बल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, मधुवाचार्य, विष्णुस्वामी तथा चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णभक्ति का प्रचार किया । भक्तिकाल में राम और कृष्ण को देव रूप में लगभग एक ही समय स्वीकृति मिली किन्तु कृष्णभक्ति को लोकप्रियता अधिक प्राप्त हुई । इसका कारण यह रहा कि तुलसी ने रामभक्ति के जिस मर्यादित रूप को स्थापित किया उसकी तुलना में कृष्ण भक्ति का माधुर्य अधिक आकृष्ट करने वाला था । हिन्दी में कृष्ण भक्ति के प्रसार का श्रेय बल्लभाचार्य को है उन्होंने भागवत पुराण के आधार पर प्रेम भक्ति की स्थापना की । इसलिये रामभक्ति को दास्य भाव की और कृष्ण भक्ति को दास्य भाव की भक्ति के नाम से पुकारा जाता है ।

कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताएँ :

(1) सीमित वर्ण्य विषय की मौलिक अभिव्यक्ति - यद्यपि कृष्ण कथा की परिधि व्यापक है लेकिन कृष्ण भक्त कवियों में सीमित परिधि को ही अपना वर्ण्य विषय चुना है । जन्म के उपरान्त मथुरा के कारागार से बाहर आने से लेकर पुनश्च मथुरा-प्रवेश के बीच कृष्ण नन्द गाँव, गोकुल, वृन्दावन, गोवर्धन में बाल और किशोर जीवन की लीलाएँ करते हैं। कृष्ण कवियों का यही वर्ण्य विषय रहा है इसलिये हर लीला की हर कवि ने पुनरावृत्ति की है । वर्ण्य विषय की पुनरावृत्ति के बावजूद कृष्ण साहित्य का विषय मौलिक रहा है। इन सभी कवियों के काव्य की आधारभूमि भागवत है लेकिन उन्होंने भागवत का अनुवाद मात्र नहीं किया है बल्कि उसका प्रेरक रूप में आधार ग्रहण किया है |

(2) लीलापरक सगुण भक्ति में विश्वास - कृष्णभक्त कवियों ने भक्ति के विभिन्न नव विकसित रूपों में प्रेम प्रधान रूपों को ही प्रमुखता दी है । कृष्णभक्ति काव्य के प्रेम प्रधान भक्ति में स्वकीया और परकीया दोनों प्रेम भावों को अपनाया गया है । उनके आराध्य कृष्ण विष्णु के अवतार अवश्य हैं लेकिन उन्हें वह लीलाधर सगुण रूप में ही आता है । उद्धव अपने निर्गुण ज्ञान के दम्भ से चूर होकर गोपियों को कृष्ण के स्थान पर निर्गुण ब्रह्म की उपासना, ध्यान, समाधि करने की बात कहते हैं तो गोपियाँ आँसू बहाकर कृष्ण

के प्रति अटूट प्रेम प्रकट करती हैं । फिर ब्रह्म जिज्ञासा प्रकट करती हैं कि उसका रूप कृष्ण से मिलता है कि नहीं सब जानती हैं कि यह कोई और है तो जी भरकर उसका उपहास करती हैं और कृष्ण के सगुण रूप में अपने अटूट विश्वास का परिचय देती हैं।

(3) सम्प्रदाय सापेक्ष विकसित काव्य स्वरूप - कृष्ण भक्ति काव्य का प्रयोजन सामान्यत: कवियों की अपनी भक्ति भावना को अभिव्यक्त करना था लेकिन मीरा-रसखान जैसे भक्तों को छोड़कर अधिकांश कवि किसी न किसी सम्प्रदाय से जुड़े हुए थे इसलिये साम्प्रदायिक प्रभाव उनके काव्य के स्वरूप को निश्चित रूप से प्रभावित करता रहा है |

वल्लभ सम्प्रदाय में आरम्भ में बाल कृष्ण की उपासना प्रचलित थी जिसके प्रभाव से उसके आश्रय में वात्सल्य रस के काव्य का पर्याप्त विकास हुआ किन्तु आगे चलकर जब बालकृष्ण के स्थान पर राधा कृष्ण की प्रतिष्ठा हो गई तो उनमें वात्सल्य रस का स्थान श्रृंगारिकता ने लिया ।

(4) वात्सल्य और श्रृंगार रस का चित्रण - कृष्ण भक्ति साहित्य वात्सल्य सिन्धु है सूरदास ने वात्सल्य का कोना कोना झाँका है । वात्सल्य रस के अन्तर्गत जितनी मनोदशाएँ तथा क्रीड़ा कौतुक के विधान आ सकते हैं उन सबका अत्यन्त हृदयकारी वर्णन कृष्ण भक्ति काव्य में उपलब्ध होता है । बच्चों की छवि उसके गभुआरे केश, आकर्षक नेत्र, मनोमुग्धकारी तोतली बोली माखन चोरी, बहाने बनाना, शिकायत करना, बालक का झूठमूठ सोने का अभिनय और माता के अलग होते हुए अकुलाकर रोना आदि संयोग वात्सल्य के अन्तर्गत हुआ है । दम्पत्ति विषयक रति भाव श्रृंगार कहलाता है वल्लभ सम्प्रदाय में बालपूजा का अनन्य महत्त्व है इसलिये भक्तों ने बाल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है । लेकिन अन्य सम्प्रदाय अन्य भक्त बालकृष्ण की अपेक्षा किशोर और युवा कृष्ण में ही रही है इसलिये कृष्ण भक्ति साहित्य में प्रमुख रूप से श्रृंगार भाव को ही स्थान प्राप्त हुआ है । कृष्णराधा और गोपियों के संयोग और वियोग संहार भाव की सरल अभिव्यक्ति जितना स्तरीय रूप में कृष्ण भक्ति साहित्य में हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है ।

(5) प्रकृति चित्रण - कृष्ण चरित्र और प्रकृति का अटूट नाता है वे पैदा हुए कैद में, फले फूले भी प्रकृति के साये में, उनकी बाल और युवा लीला ब्रजभूमि के सुरम्य प्रकृति के संचालन में हुई इसलिये कृष्ण भक्ति साहित्य और ब्रजांचल का अटूट रिश्ता है । कृष्ण भक्ति साहित्य में ब्रजांचल चित्रण विषयात्मक, अलंकृत, मानव क्रिया कलापों की पृष्ठभूमि में अलंकारों के रूप में हुआ है इसमें प्रकृति के कोमलतम चित्र भी हैं और कठोरतम भी । यहाँ प्रकृति अनुकूल एवं प्रतिकूल रूप में चित्रित है -

जागिये ब्रजराज कुँवर, कमल कुसुम फूले
कुमुदबृन्द सकुचित भये भृंगलता भूले

3.4 सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् 1375 से 1700 तक के काल की भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया जाता है । इस काल में जितनी काव्य धाराएँ प्रवाहित हुई उन सब में भक्ति

का तत्व समान था । इस काल में मुख्यत: भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणाम स्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण लोक प्रचलित भाषाएँ भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गयी और कालान्तर में भक्ति विषयक साहित्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई । इस आन्दोलन में भारतीय धर्म साधना के विभिन्न सम्प्रदाय ही नहीं, अपितु भारत में प्रचलित विभिन्न मुस्लिम मत भी शामिल हो गये । भक्ति के विभिन्न प्रकार एवं विशेषताओं के होते हुए भी सभी का उद्देश्य लोक कल्याण एवं धर्म की स्थापना ही रहा ।

3.5 सन्दर्भ ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का इतिहास	- डॉ. नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	- डॉ. शिव कुमार शर्मा
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास	- डॉ. बच्चन सिंह
हिन्दी साहित्य का इतिहास	- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का इतिहास	- डॉ. श्यामचन्द्र शुक्ल

3.6 बोध प्रश्न / अभ्यास के प्रश्न

1. भक्तिकाल की राजनीतिक व सामाजिक स्थिति का चित्रण करो ।
2. भक्तिकाल की धार्मिक व साहित्यिक परिस्थिति का वर्णन करो ।
3. संतकाव्य धारा का परिचय देते हुए इसकी विशेषताएं लिखो ।
4. सूफी काव्य धारा का परिचय एवं विशेषताओं को समझाइये ।
5. रामकाव्य धारा का परिचय एवं विशेषताएँ लिखिये ।
6. कृष्ण काव्यधारा का परिचय एवं विशेषताओं को समझाओ ।
7. भक्ति के उदय के कारण बताइये ।

इकाई 4

कबीरदास का काव्य

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कवि-परिचय एवं रचनाएं

4.3 कबीर की भक्ति का स्वरूप

4.4 कबीर का अनुभूति पक्ष

- 4.4.1 रहस्यवाद
- 4.4.2 दार्शनिक विचार
- 4.4.3 कबीर की सामाजिक चेतना

4.5 कबीर का अभिव्यंजना पक्ष

- 4.5.1 काव्य भाषा
- 4.5.2 प्रतीक विधान
- 4.5.3 अलंकार विधान
- 4.5.4 छन्द विधान

4.6 वाचन एवं व्याख्या

4.7 काव्य-समीक्षा एवं सारांश

4.8 संदर्भ ग्रन्थ

4.9 बोध प्रश्नों 7 अभ्यासों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हिन्दी साहित्य के निर्गुणवादी ज्ञानाश्रयी कवि कबीरदास को भक्तिकाल के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया गया है । कबीर की भक्ति का स्वरूप, उनके दार्शनिक विचार, रहस्यवाद एवं उनकी सामाजिक चेतना के प्रस्तुतिकरण के साथ उनके अभिव्यंजना पक्ष का नियोजन भी किया गया है, ताकि आप उनके भाव एवं शिल्प की सौन्दर्य रूपी सरिता में अवगाहन कर सकें । इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप कबीर के साहित्य को समझ सकेंगे और निम्न बिन्दुओं से लाभान्वित हो सकेंगे कि-

- कबीर का जीवन परिचय समझ सकेंगे,
- कबीर की रचनाओं से परिचित हो पायेंगे,
- कबीर की भक्ति का स्वरूप जान पायेंगे,
- कबीर के अनुभूति पक्ष को समझ सकेंगे,
- कबीर के रहस्यवाद एवं दार्शनिक सिद्धान्तों को समझ पायेंगे,
- कबीर का शिल्प विधान बता पायेंगे,
- कबीर के काव्य की समीक्षा कर पायेंगे,

- भक्तिकाल के कवियों में कबीर का स्थान निर्धारित कर पायेंगे,
- कबीर क पदों की व्याख्या कर सकेंगे,

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भक्तिकाल के प्रमुख कवि कबीरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विशेषताओं की चर्चा करेंगे । कबीरदास का व्यक्तित्व न केवल संत कवियों में अपितु पूरे हिन्दी साहित्य में विशिष्ट है । वे भक्तिकाल में निर्गुण धारा के ज्ञानाश्रयी कवि हैं । भक्तिकाल के कवियों में कबीरदास का व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रतिभाशाली एवं महिमा मंडित है । इस इकाई में हम आपको कबीर की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष के विविध सन्दर्भों की जानकारी देंगे । जिसके अन्तर्गत कबीर की भक्ति-भावना, उनके दार्शनिक सिद्धान्तों तथा रहस्यवाद तथा सामाजिक चेतना के साथ साथ कबीर की भाषा, उनका शब्द-भण्डार, प्रतीक योजना, अलंकार एवं छंदविधान पर विस्तार से चर्चा की गयी है । जिससे आप कबीरदास के कुछ दोहों एवं पदों का वाचन एवं व्याख्या करना सीख पायेंगे । आइए, हम कबीर-साहित्य के विविध स्वरूप पर चर्चा करें ।

4.2 कवि-परिचय एवं रचनाएं

कबीरदास का व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है । वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । कबीर वैचारिक एवं सामाजिक चेतना की संवेदनशीलता के कारण अपने युग के समाज में इस कदर बसे हुए थे कि उन्हें हिन्दू एवं मुसलमान सभी समान रूप से पूज्य मानते थे । कबीर समाज सुधारक, हिन्दू-मुस्लिम धर्म में समन्वय स्थापित करने वाले, गरीब एवं कमजोर वर्ग के हितैषी, मानव-धर्म को सर्वोपरि मानने वाले, समाज में व्याप्त विसंगतियों के विरोधी, क्रांतिकारी और सामाजिक न्याय एवं समरसता के प्रबल समर्थक थे । उनके अनुयायियों ने उन्हें अवतार कहा है । मध्ययुगीन अन्य संत कवियों की भांति कबीर के जीवन वृत्त को लेकर मतभेद हैं । 'कबीर चरित बोध' एवं 'कबीर कसौटी' ग्रन्थों के आधार पर कबीर का जन्म सं. 1455 में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को काशी में हुआ था । डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसी सम्वत् को कबीर का जन्म सम्वत् माना है । कबीर का पालन-पोषण जुलाहा दम्पत्ति नीरू और नीमा द्वारा किया गया । कबीर गृहस्थ संत थे उनकी पत्नी का नाम लोई था उनकी दो संतानें कमाल एवं कमाली थी संवत् 1575 में मगहर में उनका निधन हुआ ।

स्वामी रामानन्द कबीर के दीक्षा गुरू थे । कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन 'मसि कागज छुयौ नहीं, कलम गहि नहीं हाथ' की स्वीकारोक्ति करने वाले कबीर अद्भुत ज्ञान एवं प्रतिभा सम्पन्न थे । उनका व्यक्तित्व मस्तमौला, फक्कड़ एवं विद्रोही था । वे परम संतोषी, स्वतंत्रचेता, सत्यवादी, निर्भीक, बाह्याडंबर विरोधी तथा अदम्य साहसी थे । कबीरदास का युग सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से बड़ा अशान्त था । समाज में धार्मिक विद्वेष, ऊँच-नीच, अंधविश्वास, जाति-पाँति तथा वर्ग-वैषम्य आदि व्याप्त था । कबीर ने इनका डटकर मुकाबला किया । कबीर का काव्य समता एवं न्याय का काव्य है । सुकरात के समान वे सामाजिक एवं धार्मिक

अव्यवस्थाओं का डटकर विरोध करते रहे । कबीर ने पुस्तकीय ज्ञान को महत्व देने वालों को पाखण्डी कहा । वे शास्त्रविद् न होते हुए भी बहुश्रुत थे । उस समय तक प्रचलित विभिन्न साधना सम्प्रदायों की जो बातें उन्हें अनुकूल लगी उन्हें उन्होंने अपना लिया । कबीरदास के आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, सृष्टि और माया सम्बन्धी दार्शनिक विचारों पर सहस्रों वर्षो के आध्यात्मिक चिन्तन का प्रभाव है ।

रचनाऐं

कबीर के उपलब्ध साहित्य के विषय में विद्वान एकमत नहीं है । यद्यपि कबीर ने 'मसि कागज' का स्पर्श तक नहीं किया तथापि उनके नाम से प्रभूत साहित्य उपलब्ध है । कुछ विद्वानों ने कबीर के गन्थों की संख्या 57 से 61 तक मानी है किन्तु इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । कबीर की रचनाओं का बहुत सा भाग उनके अनुयायियों ने रचा और कबीर के नाम से प्रचारित कर दिया । इसीलिए कबीर के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में कबीर की वास्तविक रचना को खोज पाना कठिन है । कबीर की वाणी का संग्रह उनके शिष्य धर्मदास द्वारा 'बीजक' नाम से किया गया । कबीर की सम्पूर्ण रचनाओं का संकलन डॉ0 श्यामसुन्दर दास द्वारा 'कबीर ग्रन्थावली के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रकाशित किया गया 'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना मानी जाती है । कबीर पंथी इसे 'वेद' तुल्य मानते हैं । कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का सारतत्व 'बीजक' में ही उपलब्ध होता है । 'बीजक' का अर्थ है- गुप्तधन बताने वाली सूची, इस सम्बन्ध में कबीर ने कहा है कि -

बीजक बित बतावई, जो क्ति गुप्ता होय ।

सब्द बतावै जीव को, बूझे विरला कोय । ।

जो वित्त या धन गुप्त होता है अर्थात् कहीं पृथ्वी में गाड़कर या अन्यत्र छिपाकर रखा जाता है उसका पता केवल बीजक से लगता है, उसी प्रकार जीव के गुप्तधन अर्थात वास्तविक स्वरूप को गुरू द्वारा प्रदत्त ज्ञानरूपी बीजक बतलाता है । कबीर का साहित्य तीन रूपों में विभक्त है- साखी, सबद या पद और रमैनी ।

रमैनी, साखी और सबद के अतिरिक्त कबीर के नाम से कहा, वसंत, वेलि, हिंडोला, चौंतीसी आदि अन्य काव्य रूपों का साहित्य भी मिलता है जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि स्वयं कबीर द्वारा लिपिबद्ध न किये के कारण तथा उनके अनुयायियों द्वारा भक्ति एवं प्रेमवश कबीर के नाम से प्रचुर मात्रा में साहित्य एकत्र कर दिया है । अभी इस क्षेत्र में विद्वानों द्वारा शोधकार्य जारी हैं ताकि कबीर का कुछ और प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध हो सके ।

4.3 कबीर की भक्ति का स्वरूप

कबीर निराकारवादी हैं उन्होंने अपनी भक्ति निर्गुण, निराकार परमपिता परमेश्वर के चरणों में अर्पित की है । निराकार की प्राप्ति जान द्वारा सम्मव है और यह शान गुरू द्वारा प्रदान किया जाता है । कबीर के अनुसार कस्तूरी मृग में बसे कस्तूरी की सुगन्ध की तरह ईश्वर घट-घट वासी है, उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है किन्तु अज्ञानवश मनुष्य उसे मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, काशी, काबा आदि में ढूंढता फिरता है 1 कबीर बार-बार कहते हैं उसे अपने भीतर खोजिए क्योंकि उनका मानना है- हिरदै सरोवर है अविनासी ईश्वर के लिए कबीर ने

'राम' शब्द का प्रयोग किया है किन्तु उनका राम सगुण अर्थात दशरथ पुत्र राम न होकर परमब्रह्म का प्रतीक है । कबीर ने राम, गोविन्द, केशव, मोहन, हरि इत्यादि शब्दों को व्यापक ईश्वर के अर्थ में प्रयुक्त किया है । कबीर जीवन में भगवान को पुकारने की आवश्यकता निश्चित रूप से अनुभव करते हैं इसीलिए उन्हें कोई नाम देना आवश्यक है । कबीर का विश्वास है कि-

भगति भजन हरि नाम है, आ दुक्ख अपार ।
मनसा वाचा कर्मणा, कबीर सुमिरन सार । ।

कबीर के अनुसार आत्मा और राम अर्थात ब्रह्मा या परमात्मा एक ही हैं । जीव परमात्मा का ही अंश है, अध्यात्मिक रूप में कबीर एकेश्वर वादी हैं किन्तु उनका एकेश्वरवाद मुस्लिम एकेश्वरवाद से भिन्न है । मुसलमान धर्म के अनुसार ईश्वर समस्त स्थानों और प्राणियों से भिन्न और परमशक्तिवान है किन्तु कबीर द्वारा प्रतिपादित ईश्वर व्यापक है वह समस्त प्राणियों में रमण करता है । वह अलख, अगोचर और निर्गुण है । उसे पुस्तकीय ज्ञान मात्र से नहीं जाना जा सकता बल्कि वह प्रेम पूर्ण भक्ति से प्राप्य है । ईश्वर के प्रति भक्ति का मार्ग भक्त को गुरू कृपा से प्राप्त होता है । गुरू ही साधक को माया-मोह के बंधनों से मुक्ति दिलाकर उसे अज्ञान से ज्ञान की ओर उन्मुख करता है । कबीर उस गुरू के प्रति बार-बार कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिसने उन्हें अनंत (परमात्मा) का दर्शन करने योग्य बनाया । कबीर ने अपने समस्त काव्य में गुरू की असीम महत्ता प्रतिपादित की है, कहीं-कहीं तो उन्होंने गुरू को ईश्वर से भी बड़ा बताया है । वे मनुष्य को देवता बना देने वाले गुरू के प्रति शत-शत नमन अर्पित करते हुए कहते है कि -

बलिहारी गुरू आपणै द्यौं हाड़ी के बार ।
जिनि मानुष तैं देवता, करत न लागी बार । ।

कबीर ने भक्ति को ऐसा मार्ग बताया है जहाँ सब प्राणी सुगमता से चल सकते हैं क्योंकि वही ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र स्पृश्य और अस्पृश्य का कोई भेदभाव नहीं है, वहाँ तो केवल यही भाव गुंजित है कि 'जाति-पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई । ' यह कबीर की भक्ति का व्यापक एवं वृहद स्वरूप है । कबीर की भक्ति अनन्य भाव से सम्पन्न है । वह सर्वथा निष्काम है । भक्ति में प्रेम अपेक्षित है, ईश्वर के प्रति समर्पण एवं प्रेम ने कबीर की भक्ति को सरस बनाया है यूँ तो कबीर ने भक्त और ईश्वर के सम्बन्ध को माता-पुत्र, पिता-पुत्र आदि रूपों में कल्पित किया है किन्तु उन्होंने परमात्मा को पाते और आत्मा को पत्नी के रूप में चित्रित कर भारतीय दाम्पत्य जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । कबीर ने भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी बाधा सांसारिकता को माना है, उसे उन्होंने माया कहा है भक्ति के मार्ग में माया कनक और कामिनी का रूप रखकर व्यवधान डालती है । अहंकार को भी कबीर भक्ति मार्ग की बाधा मानते हैं क्योंकि अहंकार अर्थात् 'मैं' की भावना जीव और परमात्मा को एकाकार नहीं होने देती इसलिए कबीर भक्ति मार्ग की अनन्यता को प्राप्त करने के लिए 'मैं' का त्याग करने की बात करते हैं । कबीर 'सहज' भक्ति की बात भी करते हैं । कबीर के अनुसार 'सहज' वह अवस्था है जिसमें मनुष्य सरलता से विषयों का त्याग कर सके । यह धीरे-धीरे अभ्यास

से प्राप्त होने वाली अवस्था है । धीरे-धीरे सहज भाव से विषय-वासना, सांसारिकता, माया-मोह, अहंकार आदि समाप्त हो जाते हैं और भक्त भगवान से एकाकार हो जाता है, यहीं भक्ति का परम स्वरूप है, यही भक्त के जीवन का एकमात्र उद्देश्य भी । कबीर की भक्ति में ज्ञान, योग और प्रेम का अद्भुत समायोजन हुआ है ।

बोध प्रश्न क

सही उत्तर पर निशान लगाइये.

1. कबीरदास के दीक्षा गुरू के नाम पर सही (अ) का चिन्ह लगाइये-
   (क) बल्लभाचार्य
   (ख) रामानन्द
   (ग) शंकराचार्य
   (घ) मध्याचार्य
2. कबीरदास के जीवन-वृत पर चार पंक्तियाँ लिखिए-

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....
3. कबीर के राम कौन थे? उनके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए-

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....
4. कबीरदास की कौनसी रचना प्रामाणिक रचना है?
   (क) हिंडोला
   (ख) बीजक
   (ग) कहरा
   (घ) चाँचरि ।
5. कबीरदास की भक्ति का स्वरूप (लगभग 150 शब्दों मे) स्पष्ट कीजिए ।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

4.4 कबीर का अनुभूति पक्ष

कबीरदास बहुमुखी प्रतिमा सम्पन्न भक्त, समाज सुधारक, कवि, योगी और महान ज्ञानी थे। काव्य रचना-प्रकिया के क्षेत्र में उन्होंने अपनी क्षमताओं से काव्यजगत में स्थान बनाया है। कबीर का काव्य प्रतिभा-प्रसूत है । वे बौद्धिक व्यायाम से कवि नहीं बने अपितु उनका हृदय सिन्धु उनके काव्य की जन्मभूमि है । कबीर का कहना है कि काव्य-रचना की प्रेरणा स्वयं ईश्वर ने उन्हें दी, ईश्वर ने उनसे कहा कि लोकमंगल के लिए वे अपनी अनुभूतियों को काव्य का रूप दें । इस तथ्य की पुष्टि कबीर की इस साखी से होती है-

कबीर चला जाइ था, आगे मिला खुदाइ ।

मीरा मुझसौं यौं कहा, किन फुरमाई गाइ ।।

कबीर के काव्य पर विचार करते समय यह बात विशेष ध्यान रखने योग्य है कि काव्य रचना करना उनके जीवन का ध्येय नहीं था । उनके लिए कविता साधन मात्र थी जिससे वे जन-जन तक सत्य का प्रचार करते थे । जिस सत्य का उन्होंने स्वयं साक्षात्कार किया था । इसीलिए कबीर उच्चकोटि के संत, उपदेशक एवं समाजसुधारक के रूप में जनमानस में प्रचारित थे, उनके कविरूप पर विद्वानों का ध्यान बहुत बाद में गया । कबीर ने जिस आनन्द की अभिव्यक्ति अपने काव्य में की है वह साक्षात ब्रह्मानंद है ऐसे अतीन्द्रिय आत्मानंद या ब्रह्मानंद की अभिव्यंजना करना ही उनके साहित्य का लक्ष्य है । कबीर उच्चकोटि के सिद्धहस्त कवि हैं । उनका समस्त काव्य आध्यात्मिक आनंद की अभिव्यक्ति है । परम ब्रह्म की प्रतिष्ठा ही उनके विचार-दर्शन का मूल आधार है ।

4.4.1 कबीर का रहस्यवाद

कबीर हिन्दी साहित्य के प्रथम रहस्यवादी कवि माने जाते हैं और इस क्षेत्र में उनका उच्च स्थान है । कबीर के रहस्यवाद पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है । कबीर के रहस्यवाद में भावना एवं साधना दोनों का सम्मिश्रण हुआ है । ईश्वर का स्वरूप संसार के लिए अगोचर एवं अगम्य है इसी का साक्षात्कार पाने की कोशिश रहस्यवाद का प्रथम चरण है । जीवात्मा परमात्मा का अंश है । कबीर के अनुसार सद्गुरू की कृपा से ज्ञान के प्रकाश को आलोकित कर जीवात्मा परमात्मा के अद्वितीय रूप सौन्दर्य एवं दर्शन से आकर्षित हो जाती है । वह परमात्मा के इस स्वरूप पर मुग्ध होकर के इस अव्यक्त और अवर्णनीय अनुभूति को गूंगे के गुड़ के समान आस्वादित करती है । परमब्रह्मा परमेश्वर का स्वरूप स्वयं में ऐसा रहस्य है जिसका आस्वादन केवल वही जीवात्मा कर सकती है जिसने उसे देखा है ।. कबीर अपने प्रिय परमात्मा के स्वरूप पर मुग्ध हैं । उसके स्वरूप को उन्होंने अनिवर्चनीय एवं अकथनीय कहा है । वे कहते हैं-

पारब्रह्मा के तेज का, कैसा है उनमान ।

कहिबे कूं सौभा नहीं, देख्या ही परमान ।।

कबीर यह मानते हैं कि परमात्मा की ज्योति सूर्य के समान प्रबल है किन्तु इस ज्योति का अनुभव सबको नहीं होता है क्योंकि जीवात्मा जब तक मोहनिद्रा में रहती है तब तक परमात्मा का स्वरूप रहस्यमय है । जब जीव मोह निद्रा से जाग्रत हो उठता है तब यह रहस्य समाप्त

हो जाता है । सामान्य रूप से जीव की तीन अवस्थाऐं होती है- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति । जाग्रत अवस्था में स्थूल जगत का बोध होता है । स्वप्नावस्था में स्थूल जगत का बोध नहीं रहता है तथा सुषुप्ति अवस्था में मन के कार्य बंद हो जाते है । इस अवस्था में जीव प्रगाढ़ निद्रा में सो जाता है । इन तीनों अवस्थाओं से भिन्न एक ऐसी अवस्था है जो अनंत ज्योति की अवस्था है इसमें कभी निद्रा नहीं होती । जिस आत्मा को सदा जागृति रहती है वही परमात्मा के साक्षात्कार का अधिकारी होता है ।

जब जीवात्मा को परमात्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह उससे मिलने को आतुर हो उठती है । इस अवस्था में जीव को विरह-मिलन, आशा-निराशा, अभिलाषा-वेदना, अवसाद और उल्लास की अनुभूति होती है । कबीर के काव्य मे इन समस्त अवस्थाओं का सजीव चित्रण हुआ है । कबीर ने अपनी साखियों में 'सुमिरण को अंग' , 'ज्ञान विरह को अंग', 'विरह को अंग','परचा को अंग' शीर्षकों में परमात्मा के प्रति अनन्य प्रेम, विरह की तीव्रता और व्याकुलता का जो शब्द-चित्र अंकित किया है वह अन्य रहस्यवादी कवियों में कम देखने को मिलता है। विरह-व्याकुलता मार्मिकता का एक शब्द-चित्र दृष्टव्य है

नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस याम ।
पपिहा ज्यौं पिउ पिउ करै कबरे मिलहुगे राम ।।

कबीर का विचार है कि जो लोग सांसारिक सुखों में लिप्त रहते हैं उन्हें परमात्मा नहीं मिलते, लेकिन जो जीवात्मा परमात्मा को जान जाती है, उसका परमात्मा से मिलन होता है और दोनों में एकाकार हो जाता है, यही रहस्यवाद की अंतिम और चरम स्थिति है । जहाँ आत्मा और परमात्मा में अद्वैत भाव -स्थापित हो जाता है और दोनों की स्थिति अभिन्न हो जाती है । फिर तो चारों तरफ वही ईश्वर दिखायी देता है । कबीर ने इस अलौकिक तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया कि -

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन में गयी, मैं भी हो गयी लाल ।।

कबीर के रहस्यवाद में साधना का भी स्थान है । कबीर पर योगियों के हठयोग का प्रभार परिलक्षित होता है । उनके साहित्य में इड़ा, पिंगल, सुषुम्ना, त्रिकुटी, षट्दल, ब्रह्मारन्ध, सूर्यचन्द्र आदि हठयोग के पारिभाषिक शब्द मिलते है । कबीर का रहस्यवाद सांसारिक घर-गृहस्थियों के लिए जितना आहलादक है, उतना ही वह मोक्ष प्राप्ति के लिए साधनारत साधकों के लिप भी अनुपम है ।

4.4.2 कबीर के दार्शनिक विचार

मनुष्य के समक्ष सृष्टि हमेशा कौतूहल का विषय रही है । सृष्टि को लेकर कई प्रश्न उसके मानस को झकझोरते रहते हैं यथा-सृष्टि क्या है? इसका रचनाकार कौन है? सृष्टि कैसे बनी? जीव क्या है? ब्रह्म क्या है? जीवन का उद्देश्य क्या है? आदि-आदि । इन जिज्ञाआसों का दार्शनिक अपने-अपने ज्ञानानुसार समाधान करने का प्रयास करते रहते हैं । कबीर ने दर्शनशास्त्र विषयक पुस्तकों के अध्ययन के आधार पर नहीं अपितु साधना एवं स्वचिन्तन के आधार पर ब्रह्म, जीव, जगत्, माया एवं सहज साधना पर अपने विचार व्यक्त किए हैं ।

ब्रह्म- कबीरदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं जिसे उन्होंने राम, मोहन, केशव, हरि, रहीम आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया । उन्होंने ईश्वर विषयक कुछ सम्बोधन इस्लाम धर्म के और अधिकांश सम्बोधन हिन्दू धर्म से लिए हैं, उन्होंने अव्यप्त, अनिर्वचनीय, निराकार ब्रह्म को 'राम' नाम से अधिक सम्बोधित किया है । कबीर के राम सगुण, साकार नहीं है वे तो अव्यक्त और विश्वातीत है । समस्त प्राणियों में उनका निवास है । वह देश और काल से परे है किन्तु घट-घट में समाये हुए हैं । कबीर के राम कुछ अंश में वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म के समान हैं किन्तु कबीर ने उसे विश्व से परे और विश्वव्यापी दोनों कहकर वेदान्त के ब्रह्म से अलग बताया है । कबीर मानते हैं कि भक्ति, उपासना तथा साधना से भक्त परमब्रह्मा को प्राप्त कर उसमें विलीन होकर एकमेव हो जाता है ।

कबीर ने जीव और ब्रह्म के सम्बन्धों को पति-पत्नी के सम्बन्धों का रूपक लेकर व्यक्त किया है । कबीर ने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सहज साधना को सर्वोपरि माना है । कबीर की साधना में उपनिषदों के ज्ञान, योग और प्रेम का अद्भुत एवं मनोरम समन्वय है ।

आत्मा- कबीर ने जीव को ब्रह्म का अंश माना है । वे जीव और ब्रह्म अथवा आत्मा और परमात्मा को एक मानते हैं उन्होंने कहा भी है कि 'आतम राम अवर नहिं दूजा' । जिस प्रकार ब्रह्मा सर्वव्यापक है उसी प्रकार आत्मा केवल शरीरी न होकर सर्वत्र है । क्योंकि वह ब्रह्म का ही दूसरा स्वरूप है । आत्मा को ब्रह्म से अलग जानना केवल अज्ञान आधारित है । जब गुरू के द्वारा आत्मा ज्ञान से चेतनशील हो जाती है तब परमात्मा मिलते हैं और जीव और ब्रह्म में 'अद्वैत भाव स्थापित हो जाता है । इस स्थिति में दोनों एकाकार हो जाते हैं और जीव को अपने जीवन का महत्व उद्देश्य अर्थात् ब्रह्म दर्शन प्राप्त हो जाता है । कबीर ने जीव को अपना वास्तविक स्वरूप पहचानने की बात कही है और जीव जब अपना और परमात्मा का एक ही स्वरूप जान जाता है तब वह सांसारिकता एवं त्रिविध दुखों-दैहिक, दैविक, भौतिक से मुक्त होकर परमात्मारूप हो जाता है, ऐसी आत्मा अजर-अमर हो जाती है ।

जगत- कबीर ने जगत को परमब्रह्मा परमेश्वर की सत्ता माना है । उन्होंने जगत को सत्य नित्य, शाश्वत एवं चिन्तन माना है लेकिन वे संसार और जीवन को असत्य और क्षणभंगुर मानते हैं । कबीर के अनुसार संसार के विषयों से सुख प्राप्ति की अभिलाषा मात्र भ्रम है । मनुष्य संसार में आकर विषय-वासनाओं एवं सांसारिकता में रमकर दुख प्राप्त करता है । इसलिए उनका आग्रह है कि संसार को नश्वर जानकर मनुष्य को समय रहते जाग्रत होकर जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति। का प्रयास करना चाहिए । वे मानते हैं कि मनुष्य को यह मुक्ति स्वयं को ब्रह्म में लीन कर देने से मिलती है।

माया- कबीर के अनुसार मनुष्य को राम से मिलाने में सबसे बड़ी बाधा माया है । कबीर ने माया को अविद्या कहा है । जो जीवों को मोहित करती है, सत्य और ज्ञान को ढक लेती है, मनुष्य के भीतर काम, वासना तथा तृष्णा को जन्म देती है । माया के विभिन्न प्रकारों पर कबीर ने विशेष बल दिया है । वह काम, कामिनी, अहंकार, लोभ, मोह आदि विविध रूपों से मनुष्य के अपने जाल में फंसाती है । कबीर ने माया को विचित्र मोहिनी शक्ति कहा है जो बरवस जीव को अपनी ओर सम्मोहित करती है, यथा-

माया ऐसी पापिणी, फन्दा ले बैठी हाट ।

सब जग तो फन्दा परया, कबीरा आया काट ।।

माया मन में आशा, तृष्णा, मान-सम्मान, लोभ-मोह, क्रोध आदि को जन्म देती है । वह मन को अपने वशीभूत कर जीव को ब्रह्म की ओर उन्मुख नहीं होने देती । माया मन को प्रभावित कर साधक को साधना-पथ से विचलित कर देती है । कबीर ने ऐसे मन की निन्दा और भर्त्सना करते हुए कहा है कि

कोटि करम पल मैं करै, यह मन विषिया स्वादि ।

सतगुरू सब्द न मानई, जनम गंवाया बादि ।।

ऐसे विषय आसक्त मन को ईश्वर की ओर उन्मुख करने के लिए कबीर ने उसे मार डालने की बात कही क्योंकि तभी जीव को ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है यथा-

मैं मंता मन मारि रे, नान्हा करि-करि पीसि ।

तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलकै सीसि ।।

माया को वशीभूत करने के लिए कबीर ने भक्ति का मार्ग सुझाया है । भगवान चरणों में आत्मसमर्पण करने से माया का अन्धकार विलीन हो जाता है और जीव को मोक्ष पद की प्राप्ति होती है ।

सहज साधना- कबीर ने अपने उपदेशों में सहज शब्द का यत्र-तत्र जिक्र किया है । कबीर ने सहज शब्द कहीं ब्रह्म और कहीं उसे प्राप्ति की साधना के रूप में प्रयुक्त किया है । जो ब्रह्म वाणी द्वारा वर्णित नहीं हो सके, जो कल्पना से परे है, जो विश्वातीत है उसे उन्होंने सहज कहा है । यही सहज भाव अंतरात्मा रूप में विद्यमान है । कबीर का सहज ज्ञान एवं प्रेम दोनों ही काव्य का विषय है । सहज ही परम प्रिय राम है जो प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है। कबीर ने इस सहज की प्राप्ति के लिए विषयवासनाओं का त्याग आवश्यक माना है । कबीर ने सहज को साधना की अवस्था के रूप में भी प्रयुक्त किया है वे मानते हैं कि सहज वह अवस्था है जिसमें मनुष्य सरलता से विषय-वासनाओं का त्याग कर सके, पाँचों इन्द्रियों को वश में कर सके, ऐसी पवित्र आत्मा राम में एकाकार होकर समा जाती है यथा-

सहज सहज सब कोई कहै, सहज चीन्है कोइ ।

जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कही जै सोइ ।।

कबीर की साधना में ज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है । कबीर ने सहज साधना को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है । उनकी साधना में ज्ञान, योग और प्रेम की महती भूमिका है । कबीर की साधना में तीर्थ-व्रत, सन्यास, धूनी रमाना, शारीरिक आसन, प्राणायाम और ब्राह्य आडम्बरों के लिए कोई स्थान नहीं है वे तो नाम स्मरण, ब्रह्म में चित्त को स्थापित करने, अजपाजाप, तथा सहजशून्य में समाधि को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते है ।

4.4.3 कबीर की सामाजिक चेतना

कबीर की साधना आध्यात्मिक होते हुए भी समाज के प्रति संवेदनशील है । वे भक्त, समाज सुधारक एवं युग नेता है जिन्होंने अपने उपदेशों के माध्यम से सामाजिक न्याय एवं समरसता

की बात की है । उन्होंने अपने युग में व्याप्त अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, साम्प्रदायिक एवं धार्मिक कट्टरताओं तथा कर्मकाण्ड के बाह्याडम्बरों का डटकर विरोध किया । वे समाज को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने वाले समाजसेवी हैं । कबीर मानते हैं कि समाज की एकरूपता तभी सम्मव है जबकि समाज में जाति, वर्ण एवं वर्ग भेद न हों । इसलिए कबीर ने जाति, वंश, अधर्म, संस्कार और शास्त्रगत रूढ़ियों का मायाजाल तोड़ने का प्रयास किया और 'जाति-पांति पूछै नहीं कोई, हरि भजै सो हरि का होइ' कहकर मानव मात्र के लिए समानता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया । कबीर द्वारा प्रचारित धर्म मानवधर्म और विश्वधर्म है । कबीर विश्वबंधुत्व के प्रबल समर्थक हैं । वर्तमान परिदृश्य में व्याप्त वर्ग विद्वेष रूपी विष से ग्रस्त तथा मानवता के रक्त पिपासु मनुष्य के लिए कबीर की यह घोषणा कि 'साईं के सब जीव हैं' निश्चय रूप से नव मार्ग प्रदर्शक है ।

बोध प्रश्न- ख

प्र0 6 सही उत्तर पर निशान (अ) लगाइए ।

कबीर के दार्शनिक सिद्धान्त किस मत पर आधारित हैं?

(क) द्वैतवाद

(ख) विशिष्टा द्वैतवाद

(ग) द्वैत द्वैतवाद

(घ) अद्वैतवाद

प्र0 7 कबीर के ब्रह्म पर चार पंक्तियां लिखिए-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्रत्र 8 कबीर ने माया का स्वरूप कैसा माना है? स्पष्ट कीजिए-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र0 9 कबीर की सामाजिक चेतना पर संक्षिप्त लेख लिखिए-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 कबीर का अभिव्यंजना पक्ष -

कबीरदास की काव्य-रचना 'कला के लिए' सिद्धान्त से जुड़ी हुई नहीं है । काव्यरचना उनके जीवन का साध्य नहीं था उन्होंने अपनी बात सरल एवं सीधे तरीके से लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की है । उनके लिए कविता मात्र साधन थी जिसके द्वारा वे जन-जन तक सत्य का प्रचार कर रहे थे । इसलिए यह सत्य है कि कबीर का अभिव्यंजना पक्ष अनुभूति पक्ष से आंशिक रूप में कम प्रभावशाली है । उनकी समस्त वाणी श्रेष्ठ काव्य की परिधि में नहीं आती है तथापि उनकी वाणी में ऐसी प्रभावमयता है कि काव्य-रचना के बड़े ज्ञाता न होने पर भी वे अपने मंतव्य को जन-जन तक पहुँचाने में सफल हुए हैं ।

4.5.1 काव्य भाषा

कबीर की भाषा जन सामान्य की भाषा है जिसका कोई निश्चित स्वरूप देखने को नहीं मिलता है । उनकी भाषा को विविध संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है जैसे-सधुक्कड़ी, पंचमेल खिचड़ी, अव्यवस्थित भाषा आदि । कबीर सरल भाषा के समर्थक थे जिसे सब समझ सकें । कबीर की भाषा में अनुभूति को समझाने की जबरदस्त क्षमता है । भाषा की दृष्टि से वे सच्चे लोक नायक है । उन्होंने आवश्यकतानुसार जैसा चाहा वैसे भाषा को प्रयुक्त किया । उनकी भाषा में पंजाबी, राजस्थानी, फारसी, तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी-फारसी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा इत्यादि के शब्द प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । वे भाषा को बहते हुए पानी की भाँति सर्वसुलभ मानते हैं । उनकी भाषा भारत के जन-मानस का प्रतिनिधित्व करती है । उनकी भाषिक क्षमता के विषय में डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था, वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा उसी भाषा में कहलवा दिया, बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर, भाषा लाचार सी कबीर के सामने नजर आती है ।"

4.5.2 प्रतीक-विधान

कबीर ने ऐसे परमतत्व को अपनी वाणी का विषय बनाया है जो अगम अगोचर है । ऐसे अरूप और असीम ईश्वर, जीव, जगत-माया तथा साधना सम्बन्धी अनुभूतियों को वर्णित करने के लिए उन्हें प्रतीकों का आश्रय लेना पड़ा है ताकि उसका वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हो सके । कबीर ने इस अनुभूति की अभिव्यंजना हेतु नित्यप्रति प्रयुक्त होने वाले प्रतीकों का प्रयोग किया है। कबीर ने ईश्वर और जीव के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति हेतु पिता, पुत्र, पत्नी, माता तथा दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक लिये हैं । कबीर ने प्रेम वर्णन में व्यापक प्रतीकों का प्रयोग किया है, 'उन्होंने विरहिणी जीवात्मा की अभिलाषा, विरह, उद्वेग, चिन्ता, दुख और मिलन की

छटपटाहट हेतु मार्मिक उद्गार विविध प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किये हैं । एक उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें कबीर ने आत्मा और परमात्मा के मिलन को सांसारिक दूल्हा और दुल्हन के विवाह के रूपक के माध्यम से व्यक्त किया है यथा-

दुलहिनी गावहु मंगलाचार ।
हम घरि आए राजा राम भरतार ।
तनरति कर मैं मन रति करि हौं, पांचउ तत्त बाराती ।
रामदेव मोरै पाहुँनै आए मैं जोवन मैं माती ।

यहाँ दुल्हन, दूल्हा, बाराती इत्यादि प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । आध्यात्मिक प्रेम की अनन्यता के लिए कबीर ने 'रसायन' प्रतीक का प्रयोग किया है । दैनिक जीवन के प्रतीकों में जुलाहा, लौहार, कलवार, महाजन आदि माया के लिए पापिनी ठगिनी, कामिनी का प्रयोग हुआ है । कबीर का प्रतीक विधान जीवन से सम्बन्धित है ।

4.5.3 अलंकार विधान

कबीर ने अलंकारों का प्रयोग कविता को अलंकृत करने के लिए नहीं किया है । कबीर को अलंकारों का शास्त्रीय ज्ञान नहीं था । उनके काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार अनायास ही आ गये हैं । वे अलंकार स्वाभाविक रूप से काव्य-सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं । उनके काव्य में उत्पेक्षा, उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, दृष्टान्त, विभावना, व्यतिरेक, दृष्टान्त, विरोधाभास, अर्थान्तरन्यास तथा प्रतिवस्तूपमा आदि अनेक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं । रूपक अलंकार का प्रयोग कबीर के काव्य में बहुलायत हुआ है । रूपक अलंकार का एक उदाहरण दृष्टव्य हैं |

अन्तरि कॅवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहॅ होइ ।
मन भॅवरा तहॅ लुबधिया, जानैगा जन कोइ ।।

4.5.4 छन्द-विधान

कबीर ने साखियां दोहा छन्द में लिखी हैं । उनके काव्य में साखी, सबद, रमैनी और पद का बहु प्रयोग परिलक्षित होता है । उनके पद गेय हैं और संगीतात्मकता से अनुरंजित हैं । यद्यपि कबीर को छन्दशास्त्र का विधिवत ज्ञान न था तथापि उनके काव्य में दोहा, चौपाई, उल्लाला, हरिपद, छप्पय आदि का प्रयोग हुआ है । उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित पद एवं रमैनी की रचना की है । इन पदों में गेयता तथा नाद एवं ध्वनि सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय है । उनके पद शास्त्रीय संगीत के विविध रागों पर आधारित है । उदाहरणार्थ एक पद दृष्टव्य है जो राग धनाश्री पर आधारित है यथा:-

हमारे गुर दीन्हीं अजब जरी,
कहा कहौं कछु कहत न आवै अम्रित रसनभरी ।

कबीर के भजन राग आधारित होने के कारण गाये जाने योग्य हैं । उनके पद राग गौड़ी, भैरू भैरव, रामकली आदि रागों पर आधारित हैं । उनका समस्त काव्य मुक्तक काव्य शैली में है ।

बोध प्रश्न ग

10. निम्नलिखित में से सही पर (अ) का निशान लगाइए-

    1. कबीर की साखियों में अधिकांशत: कौन सा छंद प्रयुक्त हुआ है-

       (क) दोहा

       (ख) चौपाई

       (ग) उल्लाला

       (घ) हरिगीतिका

11. कबीर के प्रतीक-विधान पर संक्षिप्त लेख लिखिए-

    .....

    .....

    .....

    .....

4.6 कबीरदास की साखी एवं पदों का वाचन एवं व्याख्या

साखी 1 सतगुरू की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार ।

लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार ।।

शब्दार्थ - अनंत-अपार । असीम । उपगार-उपकार । उघाड़िया-खोलना । दिखावणहार- दिखाने वाले ।

संदर्भ - प्रस्तुत साखी भक्तिकाल की निर्गुणधारा के प्रसिद्ध संत कवि कबीरदास द्वारा विरचित है ।

प्रसंग- प्रस्तुत साखी में कबीर ने गुरू की महिमा का वर्णन किया है । गुरू अपने शिष्य को ऐसा सच्चा ज्ञान प्रदान करता है कि वह परमात्मा के विषय में जान पाता है । परमब्रह्म परमेश्वर का परिचय कराने वाले गुरू के चरणों में नमन करते हुए कबीर ने गुरू के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है ।

व्याख्या-. कबीरदास जी कहते हैं कि मेरे गुरू की महिमा अपार है उन्होंने मुझ पर असीम उपकार किए हैं । उन्होंने मुझे ज्ञान प्रदान कर मेरे नेत्रों को खोल दिया अर्थात् गुरू ने मुझे ज्ञान प्रदान किया जिससे मुझे परमात्मा के विषय में जानकारी प्राप्त हुई । गुरू ही मुझे अनंत ईश्वर का दर्शन कराने वाले हैं । अर्थात् गुरू-प्रदत्त ज्ञान द्वारा मैं ईश्वर के दर्शन कर पाया।

विशेष

(1) प्रस्तुत साखी में गुरू की महिमा का वर्णन है । कबीर ने अपनी साखियों में 'गुरूदेव को अंग' शीर्षक से अनेक दोहे गुरू-महिमा को समर्पित किये हैं । गुरू को कबीर महान बताते हैं क्योंकि वह ज्ञान द्वारा भक्त और भगवान को मिलाने वाला माध्यम है ।

(2) अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

(3) दोहा छन्द है । दोहा एक मात्रिक छन्द है । जिसके प्रथम और तीसरे चरण में 13- 13 और दूसरे और चौथे चरण में 11 - 11 मात्राऐं होती हैं ।

साखी-2 तूँ-तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ ।
बारी फेरी बलि गई, जित देखौ तित तूँ ।।

शब्दार्थ- वारी-वारना, बलिहारी जाना । बलि गई-न्यौछावर होना ।

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग - कबीर दास ने इस पद में अहंकार रहित जीवात्मा का चित्रण किया है जो परमात्मामय होकर अद्वैत अवस्था को प्राप्त हो गयी है । अब जीवात्मा को केवल परमात्मा ही परमात्मा दिखायी दे रहे हैं ।

व्याख्या- हे! परमात्मा तू, तू याद करते हुए मैं स्वयं तू हो गयी । मुझमें मेरापन नहीं रहा अर्थात् मेरा अहंकार समाप्त हो गया । मैं पूर्ण रूप से तुझ पर न्यौछावर हो गयी हूँ । अब जिधर भी देखती हूँ उधर तू ही तू दिखायीदेता है अर्थात् सारा जगत ब्रह्मामय हो गया है ।

विशेष

(1) जीवात्मा का परमात्मा के प्रति अनन्य प्रेम तथा समर्पण का भाव अभिव्यक्त हुआ है।

(2) कबीर मानते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है । अहंकार त्याग करने से परमात्मा की प्राप्ति सम्भव है । एक अन्य पद में भी कबीर ने इसी तरह के भाव व्यक्त किये हैं यथा-
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं ।
सब अँधियारा मिट गया, जब दीपक देखा माँहि ।।

(3) दोहा छन्द प्रयुक्त हुआ है ।

(4) प्रस्तुत साखी में तद्गुण अलंकार है ।

साखी-3 लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल । ।

शब्दार्थ- लाली-लालरंग । परमात्मा का अलौकित स्वरूप ।

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग - कबीर दास का मानना है कि जीवात्मा जब सहजसमाधि का अवस्था को प्राप्त कर लेती है तब उसे सब कुछ प्रभुमय प्रतीत होता है ।

व्याख्या- कवि कहता है कि मेरे परमात्मा का स्वरूप लालिमामय अर्थात् अलौकिक और प्रेममय है । मेरी जीवात्मा ने जब से परमात्मा के इस अलौकिक स्वरूप को देखा है तब से मेरी दृष्टि जहाँ भी जाती है उसी परमात्मा का रूप मुझे हर वस्तु में दिखायी देता है । यह अवस्था मुझे सहज समाधि से प्राप्त हुई है । मुझे परमात्मा के उस अनुपम स्वरूप को देखने की अभिलाषा थी और जब मैंने उसे देखा तो मैं भी परमात्मामय हो गयी । अर्थात जीवात्मा और परमात्मा में एकात्म भाव स्थापित हो गया ।

विशेष-

(1) कबीर ने परमात्मा की अलौकिकता का मनोहर चित्रण किया है । कबीर का शब्द चयन अद्भुत है । केवल 'लाल' शब्द प्रयुक्त कर कवि ने आत्मा और परमात्मा की अद्वैत अवस्था का प्रशंसनीय चित्र उकेरा है ।

(2) प्रस्तुत साखी में अनुप्रास अलंकार तथा दोहाछन्द प्रयुक्त हुआ है ।

(3) कबीर की इस साखी में खड़ी बोली के दर्शन होते हैं ।

साखी 4 माटी कहे कुमार से, तू क्या रौंदे मोय ।
इक दिन ऐसा आवेगा, मैं रौंदूंगी तोय । ।

शब्दार्थ- माटी-मिट्टी । कुमार-कुम्हार । रौंदे-रौंदना । मर्दित करना ।

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग - यह नीति पदक दोहा है । मिट्टी का रूपक प्रस्तुत कर इस पद में कबीर ने मानव जीवन की क्षणभंगुरता का चित्रण किया है ।

व्याख्या- कबीरदास कहते हैं मिट्टी कुम्हार से कहती है कि हे! कुम्हार, सांसारिकता के वशीभूत होकर तू मुझे तुच्छ मिट्टी मात्र समझकर मत रौंद, एक दिन जब तुझे मृत्यु आएगी उस दिन मैं तेरे इस शरीर को उसी तरह मर्दित करूंगी जैसे तू मुझे बरतन बनाने के लिए मर्दित करता है । अर्थात् मरते ही तेरा शरीर मिट्टी बनकर मुझ में मिल जायेगा ।

विशेष-

(1) मानव शरीर पंच तत्त्व (धरती, जल, पावक, गगन और समीर) से बना है । मृत्यु होते ही मानव शरीर का मिट्टी वाला अंश क्षिति अर्थात् धरती में मिल जाता है । सांसारिकता को सर्वोपरि समझने वाले जीव अर्थात् कुम्हार को जाग्रत करने का प्रयास अभिव्यंजित हुआ हैं।

(2) प्रस्तुत साखी में रूपक, वक्रोक्ति एवं अन्योक्ति अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

(3) दोहा छंद है ।

पद-

1. चदरिया झीनी रे झीनी,
ये राम नाम रस भीनी चदरिया झीनी रे बीनी ।
अष्ट कंवल का चरखा बनाया, पांच तत्व की पूनी ।
नौ दस मास बुनन कूँ लागै, मूरख मैली कीनी ।
जब मेरी चादर बन घर आई, रंगरेज को दीनी,
ऐसा रंग रंगा रेगरे ने, लाल लाल कर दीनी ।
ध्रुव प्रहलाद सुदामा ने ओढी, सुखदेव ने निरमल कीनी
दास कबीर ने ऐसी औढी, ज्यों की त्यों धर दीनी ।

शब्दार्थ - झीनी-सूक्ष्म, पतला । अष्ट कॅवल-अष्टदल । कमल पांच तत्व-क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर । रंगरेज कपड़े को रगने वाला । पूनी-धुनी हुई रूई को सलाई पर लपेट कर बनाई हुई बत्ती जिससे सूत कातते हैं ।

संदर्भ- इस पद में कबीर ने रूपक शैली के माध्यम से जीवात्मा के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन किया है । कपड़े बुनने की प्रकिया के माध्यम से पवित्र जीवात्मा का चित्रण किया है।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि परमब्रह्म परमेश्वर ने जीवात्मा रूपी चादर को सूक्ष्म तानों-बानों से निर्मित किया है । ये चादर अत्यन्त पतले और सूक्ष्म तारों से बनी हुई है राम के नाम रूपी रस में भीगी हुई है । यह चादर अष्ट कमल रूपी चरखे पर पाँच तत्वरूपी सूत से बनाई

गयी है इस चादर को बनने में आठ नौ महीने का समय लगा है अर्थात् जीव के निर्माण में नौ माह की गर्भावस्था रहती है । परमात्मा ने इतने यत्न से जीवात्मा रूपी चादर बनायी किन्तु जीव ने अज्ञान वश सांसारिकता रूपी मैल से इसे मैला अर्थात् अपवित्र कर दिया । जब यह जीवात्मा रूपी चादर बनकर संसार रूपी घर में आयी तब इसे गुरू रूपी रंगरेज ने ज्ञान एवं प्रेमरूपी लाल रंग में रंग दिया । गुरू के ज्ञान रूपी रंग में जीवात्मा रूपी चादर ऐसी रंग गयी कि उसे मात्र परमात्मा ही परमात्मा दिखायी देने लगे । कबीरदास जी कहते हैं कि इस पवित्र चादर को ध्रुव, प्रहलाद, सुदामा और सुखदेव जैसे पवित्र आत्माओं ने धारण किया और ईश्वर भक्ति में डूबकर इसे सांसारिकता रूपी मैल से बचा कर रखा और मुझ कबीर ने भी इस चादर को ओढ़ा और ईश्वर ने जैसी मुझे दी मैने इसे वैसे ही पवित्र रूप में सम्भाल कर रखा ।

विशेष :

1. कबीर पेशे से जुलाहे थे । उन्होंने इस पद में जुलाहे द्वारा कपड़े बुने जाने का रूपक लेकर जीवात्मा के निर्माण की प्रकिया व्यक्त की है ।
2. जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष या परमात्मामय हो जाना है । कबीर ने उस जीवात्मा को पवित्र कहा है जो सांसारिकता से स्वयं को बचा कर रखती है ।
3. सांगरूपक अलंकार है ।
4. प्रतीकों का प्रयोग हुआ है यथा-चादर, चरख, पूनी, रंगरेज आदि ।
5. सरल भाषा द्वारा विशिष्ट अभिव्यंजना व्यक्त की गयी है ।
6. गेय पद है, कविता संगीतात्मकता से ओत-प्रेत है ।

पद-2 पिया मोरा मिलिया सत्त गियानी ।
सब में व्यापक सबकी जानै ऐसा अन्तरजामी ।
सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आनी ।।
सील संतोख पहिरि दोइ कंगन होइ रही मगन दिवानी ।
कुमति जराइ करौं मैं काजर पढ़ी प्रेम रस बानी ।।
ऐसापिय हम कबहूं न देखा सुरति देखि लुभांनी ।
कहै कबीर मिलागुरू पूरा तन की तपनि बुझानी ।।

शब्दार्थ- सत्त-सत्य । गियानी-ज्ञानी । संतोख-संतोष । सन्तुष्टि । चोला-वस्त्र । सुरति-प्रेमपूर्वक लगाया गया ध्यान । निरति-प्रेम पूर्ण ध्यान की उत्कृष्टावस्था । काजर-काजल ।

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- ब्रह्म सत्य है, अनन्त है और घट-घट वासी है प्रस्तुत पद में कबीर ने ब्रह्म के इसी व्यापक स्वरूप का चित्रण करते हुए जीवात्मा और परमात्मा के आत्मिक मिलन को अभिव्यंजित किया है ।

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि मुझे मेरा प्रिय मिल गया मेरा प्रियतम सत्य है ज्ञानी है और समस्त जगत में व्याप्त है । वह अन्तर्यामी है । प्रत्येक जीव के मनोभावों को जानने वाला असीम ज्ञाता है । ऐसे अलौकिक प्रिय से मिलने के लिए मैंने सहज श्रृंगार किया है । मैंने ईश्वर का प्रेम पूर्ण ध्यान एवं प्रेम से परिपूर्ण अपनत्व रूपी वस्त्र पहन रखे हैं । विनम्रता तथा संतोष रूपी दो कंगन हाथों में धारण कर मैं उन प्रियतम के प्रेम में उन्मत्त हो रही हूँ । मैंने

कुमति अर्थात् बुरी भावनाओं को जलाकर काजल बनाया है और इस काजल से मैं अपने नेत्र सजाऊँगी, मैंने प्रिय को रिझाने के लिए प्रेम-रस में भीगी वाणी भी सीख ली है । मेरा प्रिय अनुपम और अलौकिक है । उनका जैसा रूप मैंने पहले कभी नहीं देखा । उनके प्रथम दर्शन से ही मैं उनके प्रति आकृष्ट हो गयी । कबीर कहते हैं कि मुझे परमब्रह्म का रहस्य ज्ञात हुआ जिससे मैंने उन्हें प्राप्त किया और अब मैं त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) की जलन से मुक्त हो गयी ।

विशेष-

1. भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित ब्रह्म के लिर प्रयुक्त 'सत्य,ज्ञान, अनन्त' को कबीर ने सफलता पूर्वक इस पद में अभिव्यक्त किया है ।
2. जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को दाम्पत्य प्रेम के प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है ।
3. गेय पद है । माधुर्य गुण है । प्रत्येक पंक्ति में कोमलकान्त शब्दों के चयन के कारण संगीतात्मकता से परिपूर्ण है।
4. सांगरूपक अलंकार है ।

बोध प्रश्न घ

12. निम्नलिखित दोहों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

"लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल ।।"

"माटी कहे कुमार से, तू क्या रौंदे मोय ।
इक दिन ऐसा आवेगा, मैं रौंदूंगी तोय ।।"

4.7 काव्य-समीक्षा एवं सारांश

कबीर दास भक्तिकाल के उच्चकोटि के संत कवि हैं । उनकी वाणी में धार्मिक एवं आध्यात्मिकता का पुट अधिक है, काव्यत्व का पुट आंशिक । उन्होंने काव्य को साधन बनाकर जन-जन तक मानव जीवन के उद्देश्य को पहुँचाने की कोशिश की । वे प्रभावशाली तरीके से समाज में व्याप्त विसंगतियों को मिटाने का प्रयास करते रहे । ऐसे में वे एक सच्चे मार्गदर्शक की तरह समाज को दिशा निर्देशित करते रहे । यद्यपि उन्हें काव्यशास्त्र का विधिवत् ज्ञान नहीं था तथापि उनकी कविता इतनी अनुपम और उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट है कि वे केवल कवि नहीं महाकवि हैं । उनकी वाणी गुदगुदाती है, रससिक्त करती है और एक नया मार्ग भी सुझाती है ।

सारांश

प्रस्तुत इकाई में आप कबीरदास का जीवन-परिचय एवं उनकी रचनाओं के साथ कबीर की भक्ति भावना के विविध पहलुओं को जान पाये हैं साथ ही अनुभूति पक्ष के अन्तर्गत कबीर का रहस्यवाद, दार्शनिक विचारों के विविध सोपानों एवं उनके सामाजिक चेतना पक्ष को विस्तारपूर्वक समझ सके हैं । कबीर का समस्त काव्य आध्यात्मिक रस से सराबोर अमृत रस की गागर जैसा है जो भी उसे पढ़ेगा निश्चय रूप से अमृतपान कर पायेगा ।

इस इकाई में आप कबीर की भाषा, प्रतीक विधान, अलंकार एवं छन्द-विधान को भी समझ सके हैं । यद्यपि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन उनमें अनुभूति की सच्चाई थी । उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट और अलंकारों की सजावट के बिना जीवन के सत्य को सरल शब्दों में व्यक्त कर दिया । इसीलिए कबीर सीधे हृदय पर प्रभाव डालने वाले महान कवि हैं । रहस्यवाद के क्षेत्र में उनका कोई सानी नहीं है । वे आदि रहस्यवादी कवि हैं । वास्तव में कबीर नवक्रान्ति के जनक, श्रेष्ठ मार्गदर्शक और भक्तिकाल के सर्वोच्च कवि हैं ।

4.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी बाबू श्याम सुन्दरदास (सम्पा)
2. कबीर ग्रन्थावली, साहित्यभवन, प्रा0लि0 इलाहाबाद । गुप्त माता प्रसाद (डॉ०)
3. कबीर बाज भी, कपोतभी, पपीहा भी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली डी० धर्मवीर

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर-

बोध प्रश्न- क

1. ख
2. देखिए 42
3. देखिए 4.3
4. ख
5. देखिए 4.3

बोध प्रश्न- ख

6. घ
7. देखिए 4.4.2
8. देखिए 4.5.2
9. देखिए 4.4.3

बोध प्रश्न, ग

10 क .
11. देखिए 4.5.2

बोध प्रश्न घ

12. देखिए 4.6

इकाई- 5

दादू दयाल का काव्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 युग परिवेश

5.3 जीवन परिचय और भक्ति भावना

5.4 रचना कर्म

5.5 दादू के काव्य का भाव पक्ष

5.6 दादू के काव्य का कला पक्ष

5.6.1 काव्य रूप

5.6.2 काव्य भाषा

5.6.3 अलंकार योजना

5.6.4 छन्द-विधान

5.7 पद वाचन एवं व्याख्या

5.8 सारांश

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

5.10 बोध प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में भक्ति काल की संतकाव्य धारा (निर्गुण काव्य धारा) के प्रमुख सन्त कवि दादू दयाल के काव्य को भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है । इस इकाई में उपलब्ध सामग्री को पढ़कर आप दादू दयाल के काव्य का आस्वादन कर सकेंगे । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- दादू दयाल के युग परिवेश का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
- दादू दयाल की रचनात्मक कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- दादू दयाल की भक्ति भावना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- दादू दयाल के दार्शनिक विचारों को समझ सकेंगे,
- दादू दयाल के काव्य-वैशिष्टय का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- दादू के काव्य के भावपक्ष की विशेषताएँ समझ सकेंगे,
- दादू के काव्य के कला पक्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- भक्तिकालीन साहित्य में दादू दयाल के काव्य के महत्व को जान सकेंगे,
- दादू के कतिपय पदों की व्याख्या कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भक्तिकाल की संत काव्य परम्परा के प्रमुख संत कवि दादू दयाल रचित काव्य की विशेषताओं और कवि रूप में उनकी उपलब्धियों का विश्लेषण करेंगे । इस पाठ में आपको संत कवि दादू दयाल के जीवन तथा उनके काव्य के विविध पक्षों का ज्ञान कराया जाएगा । दादू दयाल संत काव्य धारा (निर्गुण काव्य धारा) के प्रमुख कवि थे । कबीर की तरह दादू भी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और भक्ति के नाम पर चलने वाले बाह्याडम्बरों के विरोधी थे। इस पाठ में आपको दादू दयाल की भक्ति-साधना और काव्य-साधना के विभिन्न आयामों की विस्तृत जानकारी मिलेगी । दादू के चार विशिष्ट पदों का वाचन तथा व्याख्या भी इस पाठ में दी गयी है । इससे आपको पदों की व्याख्या करने की पद्धति की जानकारी मिलेगी ।

5.2 युग परिवेश

कबीर की परम्परा में संत दादू दयाल भी एक ऐसे संत कवि हुए जिन्होंने सारी संकीर्णता से ऊपर उठकर सच्चे मानव धर्म की स्थापना पर बल दिया तथा मानव-मानव के बीच भेद करने वाले तत्वों को फटकार लगायी । कहते हैं उनकी व्यापक दृष्टि से प्रभावित होकर बादशाह अकबर ने दादू के विषय में एक साखी के रूप मेव कला-

दादू नर अल्लाह है, दादू नूर खुदाय ।
दादू मेरा पीव है, कहै अकबर शाह ।।

भक्ति आन्दोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के उदय को नया बल प्रदान किया। साथ ही देशी भाषाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया । छोटे व्यापारी और दस्तकार, सामन्ती अवशोषण का मुकाबला करने के लिए इस आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त करते थे । यह सिद्धांत कि ईश्वर के सामने सभी मनुष्य - फिर वे ऊँची जाति के हों या नीची जाति के-समान हैं, इस आन्दोलन का ऐसा केन्द्र-बिन्दु बन गया जिसने पुरोहित वर्ग और जातिप्रथा के आतंक के विरुद्ध संघर्ष करने वाले आम जनता के व्यापक वर्गो को अपने चारों ओर एकजुट किया । इस आन्दोलन का श्रीगणेश पहले-पहल शहरी क्षेत्रों में हुआ, किन्तु धीरे-धीरे गाँवों में इसकी जड़ें जमने लगीं । पहले व्यवसायी और छोटे-छोटे व्यापारी ही इससे प्रभावित हुए किन्तु बाद में गाँवों के किसानों ने भी इस आन्दोलन में अपनी हिस्सेदारी उत्साहपूर्वक निभायी । ईश्वर के सम्मुख समानता इसकी सामाजिकता की ही द्योतक है । साधारण जनता को उन्हीं की बोली में सम्बोधित कर इन्होंने भक्ति का सामाजीकरण किया । संत कवियों की ईश्वर की अवतार कल्पना के माध्यम से भक्तों ने मन्दिरों और मस्जिदों की सीमाओं में बन्द ईश्वर सर्वव्याप्त बतलाया । लोक जीवन में उभरती निराशा, आत्महीनता, पराजय तथा पलायन की भावना को उन्मीलित कर सन्त- भक्त कवियों ने समाज को नैतिक दायित्व की ओर मोड़ा । वस्तुतः यह आन्दोलन मध्यकालीन समाज-व्यवस्था में जनता का सामन्त विरोधी सांस्कृतिक आन्दोलन था । इसलिए इसमें जनता की वास्तविक दशा का चित्रण मिलता है। इसी परम्परा में संत दादू दयाल का नाम आता है जिन्होंने अपनी कविता के माध्यम से निर्गुण पंथ के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया ।

5.3 जीवन वृत्त

दादू के अनुयायी तथा अन्य विद्वान यह मानते हैं कि दादू जी का जीवन काल सन् 1544 तथा सन् 1603 ई. (संवत 1601 तथा सं. 1660) के बीच रहा है अर्थात् दादू दयाल का जन्म सन् 1544 में तथा देहावसान 1650 ई. में हुआ । दादूजी के जन्म से लेकर ब्रह्मलीन होने तक का विवरण सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में उनके शिष्य जनगोपालजी द्वारा रचित ' श्री दादू जन्म लीला परची ' नामक रचना में मिलता है । उनका जन्म अहमदाबाद (गुजरात) में हुआ था । कहते हैं दादू का जन्म नागर ब्राह्मण कुल में हुआ था ।12 वर्ष की आयु में वे सत्संग के लिए घर से निकल तो पड़े । किन्तु माता-पिता ने प्रयास करके उनका विवाह कर दिया । पर पारिवारिक जीवन उन्हें बांध न सका और सात वर्ष बाद वे पुन: घर से निकल गये । सांभर पहुँच कर वे धुनियेका काम करने लगे । एक यह भी मान्यता है कि दादू दयाल धुनिया जाति के थे ।

कहते हैं कि लोदी राम नागर को साबरमती नदी के तट पर एक नवजात बालक मिला । लोदीराम ने उस शिशु को उठा लिया और उसे घर लाकर अपनी पत्नी को दे दिया । बालक में बचपन से ही कुछ विशिष्ट गुण थे । वह अपनी चीजें भी दूसरों को दे देता था । इस दातव्य भाव के कारण ही उसका नाम दादू पड़ा और उनके क्षमाशील गुण के कारण उसे दादू दयाल कहा जाने लगा ।

दादू दयाल का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था । उनका स्वभाव बहुत विनम्र परोपकारी और मृदु था । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार दादू दयाल स्वभाव से मृदु और प्रेमी थे। वे सच्चे संत- स्वभाव वाले व्यक्ति थे । अपनी बानी में उन्होंने सन्त स्वभाव के लक्षण इस प्रकार बताये हैं -

विष का अमृत कर लिया, पावक का पानी ।
बांका सूधा कर लिया, सो साधु बिनानी ।।
बंध्या मुक्ता कर लिया, उरझिया सुरीझ समान ।
बैरी मीता कर लिया, दादू उत्तम ज्ञान ।।

उनके कुल के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं । जन्म लीला परची में यह उल्लेख मिलता है कि आमेर में रहते हुए दादू ने धुनकरी का काम किया था । 'दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरू ताहि मोर प्रणाम है' कहने वाले उनके शिष्य सुन्दरदास ने एक पद की रचना की जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं-

एक पिंजारा ऐसा आया ।
रूह रुई पींजण कै कारण, आपन राम पठाया ।।
बहुत रुई पीनी बहुविधि करि मुक्ति भये हरि राई ।
दादूदास अजब पींनारा सुन्दर बलि बलि जाई ।।

(सुन्दरदास पदावली)

यह सच है कि दादू दयाल के काल में जाति-पांति के भेदभाव तथा छुआछूत का बोलबाला था । अन्य संत कवियों की तरह दादू दयाल ने भी इन संकीर्णताओं का विरोध किया । अपने गोत्र आदि के विषय में उन्होंने परमात्मा को ही अपना सर्वस्व बताया है-

दादू कुल हमारै केसवा, सगा त सिरजनहार ।
जाति त्यारी जगतगुर, परमेश्वर परिवार ।।
दादू एक सगा संसार में, जिनि हम सिरजे सोइ ।
मनसा वाचा क्रमना, और न दूजा कोइ ।।

(दादू ग्रंथावली)

इसी बात को उन्होंने अपनी 'बानी' में और भी स्पष्ट रूप से कहा है-

दादू इसक अलह की जात है, इसक अलह का अंग ।
इसक अलह मौजूद है, इसक अलह का रंग ।।

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि दादूजी का शैशव और बचपन लोदीराम नागर के घर बीता । घर से निकलकर वे राजस्थान यात्रा पर आये तथा उसी दौरान उन्होंने धुनिया का काम किया । वे आमेर तथा सांभर गये । अपने जीवन के अंतिम चरण में सांभर के पास नारेणा (नारायणा) ग्राम में आ गये जहाँ 1660 ई. में उन्होंने शरीर त्याग किया । नारायणा में आज भी दादू सम्प्रदाय की गद्दी है ।

गुरु तथा दीक्षा - अपनी वाणी में दादू दयाल ने अपने किसी गुरु का उल्लेख नहीं किया है तथापि गुरु-महिमा का गुणगान खूब किया है । माना जाता है कि जब दादू 7 वर्ष के थे तो बच्चों के साथ खेलते हुए उन्हें कांकरिया तालाब पर किसी वृद्ध (बुढ्डन) के दर्शन हुए थे और उसी भेंट में उन्होंने दादू की चेतना को आध्यात्मिक प्रकाश से आलोकित कर दिया था । कहते हैं जब दादू 11 वर्ष के हुए तो कांकरिया तालाब तट पर उसी महात्मा ने दिव्य रूप में पुन: दर्शन दिये थे । तब उन्होंने एक पैसा देकर (अथवा दादू से एक पैसा लेकर) कहा था, ' इस पैसे से वह वस्तु ले आओ जो तुम्हें सबसे पहले मिल जाए ।' बालक दादू ने खुली पान की दुकान से एक पान लाकर वृद्ध महाराज को दे दिया । उस पान का कुछ हिस्सा वृद्ध ने अपने मुख में रखा और शेष दादू को प्रसाद रूप में दे दिया । वृद्ध ने दादू के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और 'निराकार प्रभु का सुमिरन करनें की प्रेरणा दी । कहते हैं इसी 'दर्शन दीक्षा' से दादू को भक्ति की दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई । गुरु की प्रेरणा से दादू ने घर छोड़ दिया और भक्ति पथ पर अग्रसर हो गये । गुरु दीक्षा के उक्त प्रसंग के विषय में उनकी एक साखी प्रसिद्ध है जो 'गुरुदेवकों अंग' की प्रथम साखी है-

दादू गैव माँहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मसतकि मेरे कर धरया,देख्या अगम अगाध ।।

यहाँ गैव शब्द का अर्थ आकाशीय या दैवीय शक्ति है । दादू ने वृद्ध से निरंजन (ब्रह्म) तत्व का उपदेश पाया था, इसकी पुष्टि उनके शिष्य सुन्दरदास ने भी की है-

बृद्धानन्द दया तब कीनीं । काहू पै गति जाइ न चीनीं ।
दादूजी तब निकट बुलायौ । मुदित होइ करि कंठ लगायी ।।

मस्तक हाथ धरयौ है जबंहीं । हिय दृष्टी उघरी है तबहीं ।
यौं करि कृपा बड़ौं दत दीनौं । बृद्धानन्द पयानौ कीनौ ।।

(सुंदरदास ग्रंथावली)

डॉ. एच.एम. विल्सन और डॉ. आर. ने भी दादू की गुरु विषयक उक्त मान्यता की ही पुष्टि की है ।

देश- भ्रमण - वृद्ध (बुड्ढन) गुरु की प्रेरणा से दादू के अन्तर्चक्षु खुल गये । 18 -20 वर्ष की आयु में उन्होंने गृह त्याग कर दिया । वे पेटलाद गांव होते हुए आबूसिरोही क्षेत्रों में गये । उसके बाद परबतसर कस्बे के समीप करड़ाला (कल्याणपुर, जिला नागौर) ग्राम की पहाड़ी पर केकड़े वृक्ष के नीचे एकान्त साधना में लीन हो गये । वे वहाँ 6 वर्ष तक साधना लीन रहे । अन्तःप्रेरणा से लोक संग्रह का संकल्प लेकर दादू करड़ाला से झोरड़ा आए और वहाँ से अजमेर, भीलवाड़ा, चित्तौड़, करौली, टोडा, रामगढ़ होते हुए सांभर आ गये । दादू की प्रथम साधना स्थली के रूप में 'करड़ाला धाम' नाम आज भी प्रचलित हैं ।

यह भी कहते हैं कि सांभर आने से पहले दादू ने अपने वाणी-सत्संग से पीथा नामक लुटेरे को साधु बनाया तथा दादू जी ने उसे अपनी साधना स्थली पहाड़ी पर महारास के दर्शन करा दिये । पीथा के हृदय परिवर्तन के विषय में लोक में यह दोहा प्रसिद्ध है -

गंग जमुन उलटी बहै, पश्चिम ऊगे भान ।
पीथा चोरी ना करै, गुरु दादू की आन ।।

सांभर में नमक की झील की एक पहाड़ी पर दादू 12 वर्ष तक रहे । यहाँ रहते हुए उन्होंने शास्त्रार्थ, सत्संग, उपदेश आदि किये तथा यहीं उन्होंने 'परमब्रह्म' सम्प्रदाय के विचारों का सूत्रपात किया । यहीं सं. 1626 में सुन्दरदास उनसे मिले और उनके शिष्य बने । वियोगी हरि ने सांभर में ही दादू के धुनिया कर्म करने का उल्लेख किया है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'चौगान' शब्द के प्रयोग के आधार पर उनके विवाह-सम्बन्ध में बंधने का अनुमान लगाया है । डॉ सन्त नारायण उपाध्याय ने कहा है कि सांभर में ही दादू ने 'अलख दरीबा' स्थापित किया तथा 'समत्वयोग' के विचारों का प्रचार किया । यहाँ रहकर दादू ने अपनी आध्यात्मिक विचारधारा और जीवनाचरण की एक व्यवस्थित पद्धति विकसित की । वे साधना के साथ-साथ लोगों को प्रवचन-उपदेश भी देते थे । यहीं उनका दादूपंथ प्रचलित हुआ ।

दादू की मान्यता के अनुसार धर्म वह विचार है जो मनुष्य के अभ्युदय की सिद्धि करता है। इस विचार में जाति-वर्ण तथा ऊँच-नीच की भावनाओं के लिए कोई जगह नहीं है । दादू ने लोगों के बीच भेदभाव फैलाने वाली साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का भी विरोध किया । उन्होंने राम और खुदा को एक मानते हुए कहा-

पढ़ि पढ़ि थाके पंडिता, किनहूँ न पाया पार ।
कथि कथि थाके मुनिजना, दादू नाँइ आधार ।।
दादू अलिफ एक अल्लाह का, जे पढ़ि जाणे कोइ ।
कुरान कतेबा इलम सब, पढ़ि करि पूरा होइ ।।

(दादू बानी)

कहते हैं सं. 1632 में आमेर आने के बाद 14 वर्ष तक दादू वहाँ रहे । जो रचनाएँ उन्होंने सांभर में प्रारंभ की थीं, आमेर आकर पूरी कीं । आमेर में दलाराम की बगीची के पास तपोभूमि नाम से एक प्रसिद्ध जगह है जहाँ रहकर दादू लोगों को उपदेश दिया करते थे । महाराज भगवन्तदास उनसे बहुत प्रभावित हुए तथा दादू की ख्याति अकबर तक पहुँची तथा अकबर के निमंत्रण पर दादू अपने सात शिष्यों - जीवनदास, टीलाजी, श्यामजी, चांदाजी, जगदीशजी, धर्मदास जी तथा जग्गा जी के साथ सीकरी यात्रा पर गये । वहाँ वे चालीस दिन रहे । अकबर उनके विचारों से बहुत प्रभावित हुए ।

फतेहपुर सीकरी से लौटते हुए दादू जी दौसा (द्यौसा) होते हुए बीकानेर नरेश भुरटिया राव के निमंत्रण पर खाटू गांव गये । कहते हैं विरोधियों ने उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलने का षड्यंत्र रचा । वहीं से शिष्य बखान जी के आग्रह पर वे नरैना आये । वहां से वे शिष्य ऊधव दास जी के साथ भैराणा पहाड़ी और गुफाएं देखने गये और आमेर लौट आये । सं. 1651 में वे मारवाड़ के ग्रामीण क्षेत्रों में चले गये और सात वर्ष तक लोगों में अपने विचारों का प्रचार करते रहे । उन्होंने ढूंढार क्षेत्र का भी भ्रमण किया । फिर कुछ दिन करड़ाला और मोरड़ा में भी रहे । सं. 1659 में उन्हें नारायणा नरेश से नरैना आने का निमंत्रण प्राप्त हुआ । वहीं त्रिपोलिया तालाब के पश्चिमी तट पर शमीवृक्ष (खेजड़ी) के नीचे कुटिया बनाकर रहने लगे। नरैना में दादूजी का साधना स्थल आज भी दादूधाम के नाम से जाना जाता है । उनके देहावसान के बाद कहते हैं उनके निष्चेष्ट शरीर की पालकी (अर्थी) सजाकर नरैना से लगभग 10 मील दूर भैराणा की एक गुफा के सम्मुख रख दी गयी थी । इसीलिए दादूपंथी उनके शरीर संसार त्याग की बात कहते हैं । उनके विषय में उनके शिष्य रज्जब की यह साखी प्रसिद्ध है

गुरु दादू अरु कबीर की, काया भई कपूर ।

रज्जब अज्जब देखिया, सगुणहि निर्गुण नूर ।।

दादूजी के प्रथम शिष्य गरीबदास जी गद्दी पर विराजमान हुए ।

बोध प्रश्न

1. दादू दयाल भक्तिकाल की किस धारा के कवि है?
2. दादू दयाल के व्यक्तित्व की विशेषताएँ बतलाइये?
3. दादू दयाल को आध्यात्मिक चेतना का प्रकाश कैसे प्राप्त हुआ?
4. दादू दयाल के सात शिष्यों के नाम बतलाइये?
5. 'जगन्नाथ कवि के शब्दों में दादू दयाल एक कल्प वृक्ष हैं ।' इस कथन का तात्पर्य स्पष्ट कीजिये ।

5.4 रचना कर्म

दादू ने अपने जीवन काल में जो रचनाएं रची, उनका लिखित रूप वे नहीं दे पाये । बाद में उनके शिष्यों ने उनकी रचनाओं को संकलित किया । आचार्य क्षितिमोहन सेन के अनुसार दादू की वाणियों की संख्या बीस हजार से अधिक है । किन्तु यह अतिरंजना प्रतीत होती है । दादू की शिष्य परम्परा में । हुए उनके शिष्य जगन्नाथ कवि के एक छप्पय के अनुसार दादू एक कल्पवृक्ष है । साखी और शब्द इसकी दो बड़ी शाखाएँ है । साखी शाखा में सेंतीस विभिन्न

डालियां या अंग हैं । डालियों पर लगी पत्तियों (साखियो) की संख्या 2565 है । दूसरी शाखा शब्द या पद की सत्ताईस (राग) उपशाखाएँ हैं । पदों की संख्या 444 है । एक लाख साठ हजार अक्षरों वाले इस कल्पवृक्ष पर भक्ति रूपी शिष्य और वैराग्य रूपी फल लगे हैं । इस वृक्ष का बीज नामस्मरण है ।

अवनि कल्पतरु प्रगट भई दादू की वाणी ।
शाखि शब्द दोउ ग्रंथ सु तो बड़ स्कंध पिछांगीं ।।
शाखि स्कंध मैं डार अंग सैंतीस सुनाऊँ ।
पद स्कंध मैं डार सप्त अरु बीस बताऊँ ।।
पचीस सै पैंसटि शाखि सोऊ उपशाखा ।
च्यार सै चवालीस शाखि सोऊ पद साखा ।।
पत्र अखिर लखि एक है, शठि सहंस पुनि और गनि ।
भक्ति छप बैरागफल, नांव बीज जगन्नाथ भनि ।।

(श्री दादूदयाल जी की वाणी- दलजंग सिंघ)

दादू वाणी का संकलन-सम्पादन अनेक लोगों ने किया । कुछ लोगों का मानना है कि दादू वाणी का प्रथम सम्पादन साधु शेषरामजी ने किया था जिसे तपस्वी गिरधारी लात जी ने अपने पास रखा । किन्तु कुछ लोग मानते हैं कि दादू वाणी का प्रथम संकलन और वर्गीकरण दादू के शिष्य रज्जब ने किया था । बाद में शोधों से यह पता चला कि यह कार्य रज्जब के साथ जगजीवन दास, सन्तदास, जगन्नाथ आदि ने मिलकर किया था ।

हस्तलिखित वाणी- दो खण्डों में दादू वाणी की प्राचीनतम हस्तलिखित पाण्डुलिपि दादू द्वारा नरैना में सुरक्षित है जबकि एक दूसरी पाण्डुलिपि दादू महाविद्यालय, जयपुर में विद्यमान है । इनके अतिरिक्त चार पाण्डुलिपियाँ नागरी प्रचारिणी सभा,काशी में सुरक्षित हैं ।

प्रकाशित वाणी - दादू वाणी के प्रकाशित संस्करणों में महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'श्री दादूदयाल की बानी' तथा 'दादू दयाल के सबद' (दो खण्डों मे) नामक ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण है । द्विवेदी जी ने स्वीकार किया है कि उन्होंने रेवरेंड ट्रेल, रेवरेंड ग्रीब्ज तथा बाबू राधाकृष्णदास से हस्तलिखित बानियां प्राप्त की थीं । इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण 1904 ई. में ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई से छपा था । 1917 ई. में ब्रह्म विद्या प्रचारक प्रेस, लाहौर से 'दादू पद संग्रह' प्रकाशित हुआ । पं चन्द्रिका त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'श्री दादू दयाल जी की वाणी ' का प्रकाशन 1907 में वैदिक यंत्रालय अजमेर से हुआ था । यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्करण माना जाता है । इनके अतिरिक्त बेलविडयर प्रेस से भी दादू वाणी का प्रकाशन हुआ । स्वामी जीवनानंद भारत भिक्षु द्वारा सम्पादित 'अनभैवाणी' शीर्षक से 1946 में श्री दादू सेवक प्रेस, जयपुर -से वाणी छपी । 1951 ई. में दादू महाविद्यालय, जयपुर ने मंगल प्रेस जयपुर से 'श्री दादू दयाल जी की वाणी' का प्रकाशन किया जिसके सम्पादक स्वामी मंगलदास जी थे । 'श्री दादू बाणी' नाम से 1982 ई. में कनखल, हरिद्वार से वाणी का एक वृहद संस्करण प्रकाशित हुआ जिसकी संजीवनी टीका स्वामी भूरादास जी ने लिखी है ।

5.5 दादू के काव्य का भाव पक्ष

डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र ने दादू वाणी के विषय में लिखा है- रज्जब अली ने संवत् 1700 (सन् 1643) के लगभग, दादू की अनुभव -वाणी को साखियों को प्रथम बार अंगों (अध्यायों, एक ही प्रतिपाद्य विषय की साखियों के सर्ग) में व्यवस्थित करके, दादूजी के सम्मुख प्रस्तुत किया होगा । बाद में दादूजी के समग्र साखी-साहित्य को रज्जब अली ने 37 अंगों में बाँधकर व्यवस्थित किया है । बाद में इस संग्रह का नाम अंगबंधू रखा गया । यही संग्रह फिर वाणी नाम संज्ञा से प्रसिद्ध हुआ है । वाणी से तात्पर्य है सन्त्कथन, जिसमें रचनाकार सन्त की स्वानुभूति समाहित हो । दादू वाणी की साखियाँ 37 अंगों में हैं । 'दादू-साखी के प्रकाशित संस्करणों में ये 37 अंग ही देखे जाते हैं । ये विविध अंग, विषयानुसार वर्गीकृत हैं । पर, निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त शीर्षक-उपशीर्षकों का प्रयोग प्रारंभ, सर्वप्रथम किसने किया? क्योंकि रज्जब, बखना आदि अन्य सन्तों की साखी-वाणी भी, अंगों में ही व्यवस्थित है । पर, दादू-साखियों के अंग-क्रम को देखते हुए, सभी संग्रहों में उलट-फेर कम देखने को मिलता है । यह अंग-क्रम इस प्रकार है - 1. गुरुदेव, 2. सुमिरन, 3. बिरह, 4. परचा, 5. जरणा, 6. हैरान, 7. लय, 8. निहकर्मी पतिव्रता, 9. चितावणी, 10. मन, 11. सूषिम जनम, 12. माया, 13. साच, 14. भेष, 15. साध, 16. मधि, 17. इति सारग्राही, 18. बिचार, 19. बेसास, 20. पीव पिछाण, 21. समर्थाई, 22. सबद, 23. जीवत मृतक, 24. सूरातन, 25. काल, 26. सजीवन, 27. पारिख, 28. उपजणि, 29. दयानिबैरता, 30. सुन्दरी, 31. कस्तूरिया मृग, 32. निंद्या, 33. निगुणा, 34. बिनती, 35. साखीभूत, 36. बेली और 37. अबिहड़ कौ अंग । साखियों की कुल संख्या में थोड़ा बहुत अन्तर प्राय: सभी हस्तलिखित एवं प्रकाशित संग्रहों में देखने को मिलता है । साखियों की सर्वमान्य संख्या 2565 मानी जाती है, पर, यह संख्या किसी भी हस्तलिखित प्रति अथवा प्रकाशित संस्करण में नहीं मिलती । उदाहरण के लिए घ हस्तलिखित प्रति में यह संख्या 2616 है, जबकि दिखाई गयी है 2625 । इसी प्रकार च प्रति में यह संख्या 2572 है, ज प्रति में यह संख्या 2559 है, ग प्रति में यह संख्या 2533 है, छ प्रति में 2531 है, क प्रति में 2446 है, तो ख प्रति में यह केवल 2432 ही है । इसी प्रकार मुद्रित प्रतियों में भी यह अन्तर देखने को मिलता है । बेलविडयर प्रेस से प्रकाशित संस्करण में साखी-संख्या 2680 तक पहुँच गई है । त्रिपाठी संस्करण में यह संख्या 2658 है, स्वामी मंगलदास सम्पादित संस्करण में यह संख्या 2528 है । किन्तु, दलजंग सिंघ संस्करण में यह संख्या मात्र 2442 ही है । स्वामी नारायणदास (पुष्पकर) संपादित संस्करण में यह संख्या 2527 है । चाहे ये हस्तलिखित प्रतियाँ हों अथवा मुद्रित-संस्करण, साखियों की संख्या में अन्तर का कारण, साखियों की पुनरावृत्ति का होना ही है । यही कारण बेलविडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित दादू बाणी, भाग 1 की भूमिका में बताया गया है-

'थोड़ी सी साखियाँ ऐसी हैं, जो दूसरे अंगों में दुहराई गई हैं । परन्तु यह ढंग सर्व हस्तलिखित और छपी पुस्तकों में पाया गया है, इसलिए हमने भी उसी के अनुसार इस पुस्तक में रखा

है । अर्थात वहाँ किसी एक अंग में आई साखी, फिर दूसरे अंग में दी है, वहाँ पहले अंग का और उस साखी का नम्बर (ब्राकट) में दे दिया है ।'

प्रतिपाद्य - दादू का काव्य निर्गुण काव्य परम्परा में आता है । वे कबीर के 26 वर्ष बाद हुए तथा अकबर के समकालीन थे । दादू कबीर की परम्परा में आते हैं तथा कबीर के प्रति उन्होंने कृतज्ञता भी व्यक्त की हैं-

कबीर बिचारा कहि गया, बहुत भाँति समझाइ ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संगि न जाइ ।।
साचा सबद कबीर का मीठा लागै मोहि ।
दादू सुणतां परम सुख, केता आनंद होइ ।।

(दादू बानी)

ब्रह्म- दादू ने अपने काव्य में ब्रह्म की उपस्थिति कण-कण में मानी है तथा उनकी दृष्टि में उसके अतिरिक्त इस संसार में कोई अन्य सत्य नहीं है । वे कहते हैं -

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार ।
दादू भूल विचारिये, तौ दूजा कौन गंवार ।।
येक कहूँ तो एक है, दोइ कहौं तो येक ।
यों दादू हैरान है, ज्यों है तूँ ही देख ।।

दादू द्वारा स्थापित उनके विचारों को ' ब्रह्म सम्प्रदाय ' या ' पर ब्रह्म सम्प्रदाय" कहा गया। बाद में इसे ही ' दादू पंथ ' कहा गया । दादू का पंथ क्या था ? इसका वर्णन वे स्वयं एक पद में करते हैं जिससे दादू के काव्य का प्रतिपाद्य भी स्पष्ट हो जाता है-

भाई रे ऐसा पंथ हमारा,
द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा, अवरण एक अधारा ।।
वाद विवाद काहू सौं नांहीं, मांही जबत थैं न्यारा ।
समदृष्टि सुभाइ सहज मैं, आपहि आप बिचारा ।।
मैं तैं मेरी यहु मति नांहीं, निवैरी निराकारा ।
पूरण सबै देखि आपा पर, निरालम्ब निरा धारा ।।
काहू के संगि मोह न ममिता, संगी सिरजनहारा ।
मनहीं मन सौं समझि सयाना, आनन्द एक अपारा ।।
काम कल्पना कदे न कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा ।
इति पंथि पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहजि संभारा ।।

दादू की दृष्टि में ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है । वह सर्वव्यापी और अद्वितीय है-

दादू देखूँ दयाल कँ, सकल रह्या परपूरि ।
रोम-रोम में रमि रह्या, तूँ जिनि जानै दूरि ।।

उनके अनुसार जीवात्मा इस ब्रह्म का ही अंश है । जीव और ब्रह्म में द्वैत का संदेह करना भ्रम है । दादू जीव और ब्रह्म के अन्तर को इस प्रकार समझाते हैं-

दादू जामै मरै सजीव है, रमता राम न होइ ।
जामण करण तै रहत ही, मेरा साहिब सोई ।।
जीव जब तक संसार के बंधन में है तब तक भिन्न है । इन बंधनों से मुक्त होते ही वह ब्रह्म हो जाता हैं ।
दादू कहते हैं -
तब मन नाहीं मैं नहीं, नहिं काया नहि जीव ।
दादू एकै देखिए, दह दिस मेरा पीव ।।
दादू माया को भ्रम, अज्ञान और भटकाव का प्रतीक मानते हैं । वे माया से बचने का उपदेश देते हैं । डॉ. रवीन्द्र कुमार सिंह के मतानुसार दादू की दृष्टि में ' माया मानव-मन के सभी विकारों की अनुचर है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा तथा अहंकार के सहयोग से माया जीव को पराजित कर अपने बन्धन में बाँध लेती है । अत: मनुष्य को माया से बचकर रहना चाहिए । अत: दादू के जीव और ब्रह्म सम्बन्ध के अन्तर्गत मात्र इतनी बात ग्राह्य है कि ईश्वर के सभी जीव हैं चाहे वे छोटे हों चाहे बड़े, कहीं कोई भेद नहीं और माया मनुष्य के लिए सबसे बड़ा व्याघात है, अत: मनुष्य को माया का परित्याग करना चाहिए । सामाजिक दृष्टि से यही उनके जीव और ब्रह्म सम्बन्ध की प्रासंगिकता है । '
समाज और धर्म - कबीर की तरह दादू मानव-मानव के बीच किसी तरह का भेदभाव स्वीकार नहीं करते । वे मानवतावादी धर्म निरपेक्ष समाज की स्थापना में विश्वास करते हैं । वे वर्ण व्यवस्था, कर्म काण्ड, तीर्थाटन, स्नान आदि ब्राह्याडम्बरों का विरोध करते हैं । छुआछूत तथा जातिवाद जैसी संकीर्णताओं के दादू परम विरोधी हैं । वे कर्म को प्रधान मानते हैं तथा कर्म से ही व्यक्ति ऊँचा उठता है । वे करनी और कथनी के अभेद की पक्षधरता करते हैं । वे व्यक्ति के मन को उज्ज्वल बनाकर अच्छे कर्म करने का उपदेश देते हैं ।
दादू सभी सांसारिक सम्बन्धों को झूठा मानते हैं । यद्यपि दादू स्वयं गृहस्थ थे किन्तु वे संसार में और परिवार में लिप्त होकर जीवन व्यर्थ करने का विरोध करते हैं-
दादू झूठी काया, झूठा घर, झूठा यहु परिवार ।
झूठी काया देषि करि, फूल्यौ कहा गंवार ।।
झूठा संसार, झूठा परिवार, झूठा घर बार ।
झूठा नर नारि तहाँ मन मानै ।।
झूठा कुल जात, झूठा पित मात, झूठा बंधभ्रात,
झूठा तन गात सत्ति करि जानै ।
झूठा सब धंध, झूठा सब कंथ, झूठा सब अंध,
झूठा जाचंध, कहा मधु छाने ।
दादू भागि झूठ सब त्यागी, जागि रे जागि देषि दिवानें ।
कबीर की तरह दादू भी हिन्दू मुसलमान दोनों के अन्तर्विरोधों पर प्रहार करते हुए दोनों की एकता पर बल देते हैं । वे धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों का भी विरोध करते हैं । वे दोनों को एक मानते हैं -

दादू दून्यू भाई हाथ पग, दून्यू भाई कान ।
दून्यू भाई नैन द्वै, हिन्दू मुसलमान ।।
वे दोनों की संकीर्णताओं और हठधर्मिता का विरोध करते हैं -
दादू हीन्दू मारग कहें हमारा, तुरक कहैं रह मेरी ।
कौण पंथ है कहौ अलष का, तुम तौ ऐसी हेरी ।।
षंड-षंड करि ब्रह्म कूं, पषि पषि लीया बांटि ।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधे भ्रम की गाँठि ।।
इस प्रकार दादू एक धर्म निरपेक्ष और समतावादी समाज की कामना करते हैं ।

5.6 दादू के काव्य का कला पक्ष

दादू उन कवियों में से है जो कविता में अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति पर ही बल देते हैं । वे लोगों का मनोरंजन करने के लिए काव्य रचना नहीं करते । उनका काव्य आम जन के लिए हैं । उनके काव्य के वैशिष्टय के विषय में डॉ. रवीन्द्र कुमार सिंह ने ठीक ही लिखा है- ' जिस कविता को हिमालय से गुजरात और पंजाब से बंगाल तथा मालवा तक के विशाल भूभाग में समझा और सराहा गया है, जिस काव्य को पवित्र ग्रन्थ मानकर पूजा जाता है, जो अनपढ़-गंवार में भी आत्म-गौरव का भाव जागत करता है तथा उन्हें परदुःखकातर और संवेदनशील बनाता है, वह काव्य यदि काव्य नहीं है तो काव्य की कसौटी ही गलत सिद्ध होती है ।

दादू ने अपने काव्य में, हमारे जीवन के रोजमर्रा के अनुभवों का उदाहरण देकर बताया है कि इन्द्रियवश्यता किस तरह हाथी के बन्धन का कारण बनती है, बन्दर को द्वार-द्वार पेट दिखाकर नाचने को विवश करती है, तोते को मरण-कष्ट देती है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की सभी एषणाएँ या इच्छाएँ भोग से और अधिक तीव्र, रसलोभी और दुर्दभ होती जाती है ।

5.6.1 काव्य-रूप

दादू जी को काव्य प्रमुखत: दो छंदों में ही है - साखी और पद । साखी छंद न होकर संत भाव विचार की प्रधानता के कारण ही साखी (साक्षी) हैं । दोहा छंद का ही साखी काव्य रूप में । प्रयुक्त हुआ है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ' दादू दयाल ग्रंथावली ' की भूमिका में लिखा है- ' दो पंक्तियों की अधिकतर साखियों में विचार सघनता को देखते हुए लगता है कि इस छंद में समास शैली का स्वाभाविक प्रयोग है ।.... साखियों को पढ़ते हुए दादू जी के शब्द भण्डार का अनुमान लगाकर चकित रह जाना पड़ता है । '

साखियों की तरह पद काव्य रूप भी मुक्तक काव्य शैली में आता है । दादू के कुल 444(446) छंद मिलते हैं जो 27 रागों में निबद्ध हैं । आकार की दृष्टि से चार पंक्तियों से लेकर बीस-बीस पंक्तियों तक के पदों की रचना दादू जी ने की है । डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र ने दादू की पद योजना के विषय में ठीक लिखा है ' समूची पद रचना, दादू-अनुभूति की सघनता का परिचायक है, जो सात्विक मन को संवेदनशील बनाने एवं संत चेतना को अग्रसर करने में पूरा प्रतिनिधित्व

करती है । ये सभी पद सन्त काव्य धारा में, पद परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी कहे जा सकते हैं । '

साखी और पद के अतिरिक्त दादू ने झूलना, ताटंक और वीर छंद में भी अपनी कविताएं लिखी है, पर इनकी संख्या बहुत कम है ।

5.6.2 काव्य भाषा

भाषा पर दादू का असाधारण अधिकार है । उनकी भाषा अत्यंत सहज और सरल है । भावों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने किसी भाषा के शब्द का प्रयोग करने में पूरी उदारता बरती है । दादू की काव्य भाषा उनके अनुभवों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है । उनकी भाषा में राजस्थानी, गुजराती, हरियाणवी, पंजाबी, सिंधी, मराठी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, अरबी तथा फारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है । विचार के धरातल पर दादू जी वाणी के प्रकाश में ही शब्द की व्याप्ति देखते हैं -

ज्ञान लहर जहँ थैं उठै, वाणी का परकास ।
अनभै जहँ थैं ऊपजै, सबदै किया निवास ।।

5.6.3 अलंकार योजना

दादू ने अपने काव्य में मुहावरे, लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग बड़ी सहजता के किया है । उनके काव्य में इनके सार्थक और मार्मिक प्रयोग भरे पड़े हैं -

- श्रावण हरिया देखिये, मन चित ध्यान लगाइ ।
- बाजीगरी की पूतरी, ज्यूं मरकट मोह्या ।
- सूरज सम्मुख आरसी
- चोर न भावै चांदणा
- खाली खाँडा बस्तविन
- कौड़ी बदले जाइ

जैसे प्रयोगों से उनका काव्य भरा पड़ा है ।

5.6.4 छन्द-विधान

दादू जी को काव्य प्रमुखत: दो छंदों में ही निबद्ध है - साखी और पद । साखी छंद न होकर संत भाव विचार की प्रधानता के कारण ही साखी (साक्षी) हैं । दोहा छंद ही साखी काव्य रूप में प्रयुक्त हुआ है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ' दादू दयाल ग्रंथावली ' की भूमिका में लिखा है - ' दो पंक्तियों की अधिकतर साखियों में विचार सघनता को देखते हुए लगता है कि इस छंद में समास शैली का स्वाभाविक प्रयोग है ।.... साखियों को पढ़ते हुए दादू जी के शब्द भण्डार का अनुमान लगाकर चकित रह जाना पड़ता है । '

साखियों की तरह पद काव्य रूप भी मुक्तक काव्य शैली में आता है । दादू के कुल 444 (446) छंद मिलते हैं जो 27 रागों में निबद्ध हैं । आकार की दृष्टि से चार पंक्तियों से लेकर बीस-बीस पंक्तियों तक के पदों की रचना दादू जी ने की है । डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र ने दादू की पद योजना

के विषय में ठीक लिखा है ' समूची पद रचना, दादू-अनुभूति की सघनता का परिचायक है, जो सात्विक मन को संवेदनशील बनाने एवं संत चेतना को अग्रसर करने में पूरा प्रतिनिधित्व करती है । ये सभी पद सन्त काव्य धारा में, पद परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी कहे जा सकते हैं ।

साखी और पद के अतिरिक्त दादू ने झूलना, ताटंक और वीर छंद में भी अपनी कविताएं लिखी हैं, पर इनकी संख्या बहुत कम है ।

5.7 पदवाचन और व्याख्या

साखी

दादू नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुर देवत: ।
बंदनं सर्ब साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।1।।
सतगुर पसु माणस करै, माणस थैं सिधसोइ ।
दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होइ ।।2।।
भवसागर में डूबताँ, सतगुर काढ़े आइ ।
दादू खेवट गुर मिल्या, लीये नाव चढाइ ।।3।।

प्रसंग - प्रस्तुत साखियाँ संत कवि दादू दयाल रचित ' दादू वाणी ' के गुरुदेव की अंग से ली गयी है । गुरु के प्रति श्रद्धा समर्पण- भाव भारतीय चिंतन के सांस्कृतिक-सामाजिक विरासत-बोध का संकेत करता है । दादू दयाल की इन साखियों में चेतना के आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ वाचिक परम्परा में ज्ञान-विमर्श की व्यंजना भी देखी जा सकती है । गुरु विषयक दादू के विचारों को इन साखियों से समझा जा सकता है ।

व्याख्या - इन साखियों में दादू दयाल ने गुरु स्मरण करते हुए साध्य निरंजन, मायादि से रहित अर्थात् उपाधि रहित उपास्य परमात्मा (उपास्य) को नमन- भाव अर्पित किया है । वे कहते हैं कि ओ निरंजन (देव), मेरा नमन (प्रणाम) स्वीकार हो, ज्ञानमूर्ति गुरुदेव को मेरा नमस्कार हो, भूत- वर्तमान- भविष्यत् के सभी साधु-सन्त जनों की मैं वन्दना करता हूँ। श्रद्धा सहित परब्रह्म, गुरु और सन्त जनों को जो सदा प्रणाम करता है, वह मिथ्या संसार से मुक्त होकर, सत्य-ब्रह्म को प्राप्त होता है । तात्पर्य है कि मुक्त होने के लिए (नौका रूप) प्रमाण को आधार बनाया जा सकता है ।

विशेष: 1. मंगलाचरण रूप प्रस्तुत साखी में साध्याराध्य निरंजन स्वरूप और उसका बोध कराने वाले गुरुदेव का स्मरण, नमन के बाद, समाज के सज्जन-साधु पुरुषों का वन्दन-स्मरण करते हुए, प्रणाम की सामर्थ्य के बल पर तथा पारंगत होने की व्यंजना प्रथम साखी में निहित है। 2. लोक प्रचलित संस्कृत स्वर- ध्वनि, प्रस्तुत साखी-पाठ का बाप रमईया में पिता रूप में प्रभु का स्मरण, जो अपनी सन्तान की रक्षा करेगा ही, ऐसा विश्वास व्यक्त हुआ है ।3. रूपक-अलंकार से, सांसारिक प्रपंच में जीव की दयनीय दशा को, प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है । 4.पद गेय एवं शब्दावली सहज ग्राह्य है ।

प्रेम भगति माता रहै, ताला बेली अंग ।

सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमै उन संग ।।4।।

बिरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दी लाइ ।

दादू नखसिख परजलै, तब राम बुझावै आइ ।।5।।

जहँ बिरहा तहँ और क्या, सुधि बुधि नाठे ज्ञान ।

लोक वेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान ।।6।।

प्रसंग- प्रस्तुत साखियों संत दादू दयाल रचित ' दादू वाणी ' के ' विरह कौ अंग ' से ली गयी हैं । ज्ञानमार्गी भक्ति में विरह भाव का विशेष महत्व है । जीवात्मा ब्रह्म से अलग होकर एक विशेष प्रकार के विरह का अनुभव करती है । संत विचार में यह विरह भाव विशेष प्रकार की भाव-ऊष्मा का घोतक रहा है । यह विरह आत्मा के परमात्मा से मिलने की तीव्र उत्कंठा को प्रकट करता है । परमात्मा के प्रति प्रेमजन्य अनुभूति इस विरह का मूल कारण है ।

व्याख्या- दादूजी, अध्यात्म विरही की तन-मन दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं अथवा ज्ञान-भक्ति-मार्ग का साधक विरही कैसा होता है, उसके लक्षण बताते हुए कहते हैं कि प्रेमाभक्ति की मनोदशा में प्रेमी-जन, तन-मन और वाणी से प्रभु- भक्ति- भाव में मस्त रहते हैं । भगवत-भाव- विभोर रहने के कारण, उनका तन-मन वियोग-पीड़ा से व्याकुल और द्रवित बना रहता है । ऐसे विरही भक्त-जनों के साथ ही, राम (प्रभु चैतन्य), रमण करता रहता है ।

विशेष : तालाबेली = बेचैनी, व्याकुलता । सपीड़ा = प्रभु-वियोग की पीड़ा से भरा हुआ, दर्द से भरा हुआ, ग्रामीण शब्दों के ये सार्थक प्रयोग हैं ।

सन्त सुन्दरदास ने भी अध्यात्म विरहिणी जीवात्मा का, बिरह-दुःख से व्याकुल एवं कृश-काय शरीर का बिम्ब इस प्रकार दिया है-

सुन्दर बिरहनि दूबरी बिरह देत तन त्रास ।
अजा रहै ढिंग सिंह कै, कही चढ़ै क्यौं मास ।।

<u>पद</u>

संतौ और कहौ क्या कहिये ।
हम तुम्ह सीष इहै सतगुर की, निकटि राम कै रहिये ।।टेक।।
हम तुम मांहि बसै सो स्वामी, साचे सौं सचतु लहिये ।
दरसन परसन जुगि जुगि कीजै, काहै कौं दुष सहिये ।।
हम तुम संगि निकटि रहै नेरै, हरि केवल कर गहिये ।
चरन कंवल छाडि करि ऐसे, अनंत काहे कौ बहिये ।।
हम तुम तारन तेज घन सुंदर, नीके सी निरबहिये ।
दादू देषु और दुष सबही, तामैं तन क्यूं दहिये ।।

प्रसंग- प्रस्तुत पद दादूदयाल द्वारा रचित है तथा ' दादू वाणी ' से लिया गया है । यह पद राग रामकली में रचा गया है तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से यह पद दादू की सहज व्यंजना का परिचय देता है । इस पद में दादू राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को व्यक्त करते हैं।

व्याख्या- प्रस्तुत पद का संबोधन एवं मन्तव्य, अनुयायी साधक-शिष्यों के प्रति निवेदित है । दादूजी, प्रभु- भक्ति- भावना को निवेदित करते हुए कहते हैं कि आत्मीय सन्तजनो, कहो हम आपसे और क्या कहें । अर्थात् इस विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है । हमतुम दोनों को ही सद्गुरु का यही उपदेश है कि प्रभु-स्मरण भाव से निरन्तर ही रामानुभव की अनुभूत में रमे रहें । प्रभु का निरन्तर सान्निध्य अनुभव करें । वह प्रभु-स्वामी (राम), हमारे और तुम्हारे सभी के हृदय में निवास करता है । स्मृति-जागरण द्वारा ऐसे सत्य रूप परम प्रभु के दर्शन और स्पर्शन का अनुभव करते हुए आनन्द भाव में जीवनसार्थकता प्राप्त करें । वृत्ति को अन्यत्र (दुविधा अथवा द्वैत मे) लगाकर प्रभु की अखंडता को तोड़कर, अनेक प्रकार के दुःखों को क्यों सहें ? अर्थात् प्रभु से विलग होते ही, अनेक प्रकार के भौतिक तापों से पीड़ित होना पड़ता है ।

विशेष: 1. कथन- अभिव्यक्ति में किसी प्रकार का गुरुडम अथवा गुरु- अहं का स्वर-प्रधान नहीं है । 2. परम तत्व के प्रति में लघुता भाव के संबंध से भक्ति का चरमोत्कर्ष पाया जा सकता है । गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है -

राम तें बड़ी है कौन, मो सों कौन छोटौ ।
राम तें खरी है कौन, मो सों कौन खोटो ।।

परम मूल्य के समक्ष, लाघव भाव ही संबंध को और अधिक आत्मीय बनाता है । 3. प्रभु-भाव के दर्शन-स्पर्शन से चेतना की सदाशयता एवं विराटता स्वयं मुखर है । 4. ऐसे करुणासागर प्रभु को विस्मृत करके कौन दुःख पूर्ण यातना सहे ? 5. भाषा सहज ग्राह्य एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है । उनकी भावाभिव्यक्ति कहीं भी दार्शनिक दुरूहता अथवा वैचारिक जटिलता का अनुभव नहीं होता ।

भाई रे ऐसा पंथ हमारा ।
दोइ पष रहित पंथ गहि पूरा, अवरन एक अधारा।टेक।।
वाद विवाद काहू सौं नाहीं, मांहि जगत थैं न्यारा ।
सम दृष्टी सुभाइ सहज मैं, आप ही आप विचारा ।।
मैं तैं मेरी यहु मत नाहीं, त्रिवेरी न्रिकारा ।
पूरण सवै देषि आपा पर, निरालंब निरधारा ।।
काहू के संगि मोह न ममिता, संगी सिरजनहारा ।
मन ही मन सौं समझि सयाना आनंद एक अपारा ।।
काम कलपना कदे न कीजै पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहि पथि पहुंचि पार गहि दादू, सो तत सहजि संभारा ।।2।।

प्रसंग- ' दादू वाणी ' में संकलित यह पद संत कवि दादू दयाल द्वारा रचित है । यह पद राग गौडी (गौरी) में गाया जाता है । इस पद में दादू ने अपने भक्ति मार्ग की विशेषताओं का उल्लेख किया है । इस पद को ' दादू पंथ ' का विवेचन भी मान सकते हैं । सारी संकीर्णताओं से मुक्त तथा सभी को समान भाव से देखने वाला यह पंथ पूरण ब्रह्म की प्राप्ति में विश्वास करता है ।

व्याख्या- दादू अपने अनुयायियों तथा साधु मित्रों को संबोधित करते हैं कि हमारी विचार- धारा का स्वरूप ऐसा है, अर्थात् आचरण के धरातल पर दादू का ऐसा विवेक-पथ है जो दो पक्षों से रहित । अर्थात् पूर्वा परक तर्कों से रहित समरस मार्ग है । ऐसा भावपूर्ण विचार-मार्ग, जहाँ साम्प्रदायिक मतवाद कि संभावना नहीं है । क्योंकि, ऐसे विचार-मार्ग का साध्य निर्गुण-निराकार-निराधार ब्रह्म-चेतना है, जिसके प्रति किसी का विरोध नहीं है । हमारे विचार-मार्ग में, पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष न होने के कारण कोई प्रतिवाद नहीं है । प्रश्न-जिज्ञासाओं पर आधारित संवाद ही संवाद है । अर्थात् शंकाओं का समाधान अवश्य है । आभ्यान्तर जगत् में, हृदय में सहज साधना के परिणामस्वरूप समत्व भाव पर आधारित समदृष्टि का विचार ही यहां प्रमुख है । यह विचार-विवेक दादू के आत्म-चिन्तन का ही परिणाम है । अपनी पराई अर्थात् यह मेरा है, यह पराया है, ऐसी भेद-बुद्धि दादू-तत्त्व चिन्तन में नहीं है । यह विचार तत्वदर्शी निराकार- आराध्य, वैर- भाव से रहित है। उससे किसी (विचार, सम्प्रदाय) का विरोध नहीं है । यहाँ ब्रह्म सर्व-सर्वत्र पूर्णभाव से विद्यमान है । वह परम तत्व, वह उपासनीय (आराध्य) तत्त्व, आलम्ब एवं आधार तहत है । वह किसी कारण का कार्य नही है । उस परम तत्व का किसी (जाति सम्प्रदाय) के प्रति राग-द्वेष नहीं है, वह तो समत्व भाव से सबके लिए समान है । इसीलिए सभी उसकी उपासना के अधिकारी हैं । वहाँ कोई वर्ण- भेद कार्यशील नहीं होता । सृष्टि करता वह परमात्मा समान रूप से सभी के साथ है, सभी का संगी है । विवेकी लोग, आत्म-चिन्तन से ही उसका साक्षात्कार कर पाते हैं । वह आनन्दमय असीम और एक है । अखंड को खंडित करने का विचार यहाँ कभी नहीं करना चाहिए । वह परम ब्रह्म, पूर्ण और प्रिय है । दादू ने ऐसा विचार- मार्ग, विवेक पूर्वक शोध कर सहज ही अपना लिया है । ऐसे तत्त्व-दर्शन का आत्म साक्षात्कार करके, जीवन-सागर से उद्धार पाने का सहज-उपाय (मार्ग) प्राप्त करना चाहिए ।

विशेष : 1. यह पद दादू दयाल के आध्यात्मिक दर्शन और चिन्तन पक्ष का परिचय देता है । 2. इस पद में दादू दयाल ने अपने पंथ की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कर दिया है । 3. इस पद से स्पष्ट है कि दादू पंथ सभी प्रकार की संकीर्णताओं से मुक्त है और एक ब्रह्म में विश्वास करता है । वह सबको समान मानता है ।

5.8 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने से आपने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया होगा कि भक्तिकाल में इन संत-कवियों की वाणी ने जनमानस को सामाजिक समानता, आचरण की शुद्धता और मन की एकाग्रता का संदेश देने में अपनी अहम भूमिका निभायी है । भक्तिकाल राजनैतिक अत्याचारों का युग था । चारों तरफ युद्धों की प्रचण्डता से उत्पन्न भयानक जन- धन का विनाश दृश्य उपस्थित था । असुरक्षा का वातावरण था । समाज में शिक्षा का व्यापक प्रचार नहीं था । फलस्वरूप अंधविश्वास, रुढ़ियों, आडम्बरों का अंधकार छाया हुआ था । ऐसे निराशापूर्ण वातावरण में इन संत कवियों ने लोक भाषा में अपनी भावों की अभिव्यक्ति थी । इन कवियों में पांडित्य प्रदर्शन करके अपना अभिव्यक्ति सिद्ध करने की कोई कामना नहीं थी, दार्शनिक

जटिलता से पूर्ण वाणी कह कर जनता को चमत्कृत करने की भी अभिलाषा भी नहीं थी, पंडितों और मौलवियों के नीरस उपदेशों से अलग हट कर धर्म के सार्वजनिक एवं सार्वलौकिक स्वरूप को स्थापित करके ' हरिका भजै सो हरि का होई ' के मूल मंत्र को प्रचारित करना ही इनका चरम उद्देश्य था । संत दादू दयाल इस परम्परा के उल्लेखनीय कवि है । जगत की नश्वरता, ईश्वर की निराकारी संतों की सर्वव्यापकता, गुरु की महिमा नाम स्मरण की पवित्रता पर बल देते हुए इन्होंने उपासना में किसी भी प्रकार के आडम्बरों की निस्सारता स्थापित की ।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

- उत्तरी भारत की सन्त परम्परा - परशुराम चतुर्वेदी
- कबीर ग्रंथावली - सम्पा. श्याम सुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- दादू दयाल ग्रंथावली - सम्पा. परशुराम चतुर्वेदी, ना.प्र.स काशी
- दादू - क्षिति मोहन सेन, शांति निकेतन बुक डिपो, कोलकाता (1942)
- दादूदयाल : जीवन दर्शन और काव्य - डॉ. सत्यनारायण उपाध्याय
- दादू जन्म लीला परची - जनगोपाल, दादू महाविद्यालय, जयपुर
- दादू जीवन दर्शन - सम्पा बलदेव वंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
- दादू दयाल - डॉ. रामबक्ष, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
- दादूदयाल की बानी
- भाग- 1 साखी, बेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
- भाग- 2 पद, बेलविडियर प्रेस, इलाहाबाद
- रज्जब की संर्बागी : संग्रह, सन्त रज्जब अली, सम्पा शहाबुद्दीन ईराकी, ग्रंथायन, अलीगढ़
- राजस्थान के संत - भाग 1-2, सागर मल शर्मा, शेखावाटी शोध प्रतिष्ठान
- श्री दयाल-बानी - सम्पा. स्वामी भूरादास जी, तपस्वी भवन (दादू बाग) कनखल (हरिद्वार)
- श्री दादू दर्शन - सम्पा. रामप्रकाश स्वामी
- श्री भक्तमाल - नाभादास, श्री वियोगी विश्वेसर, वृंदावन
- श्री दादू पंथ परिचय (भाग- 1 व 2) नारायण स्वामी, दादूदयाल महासभा, जयपुर
- श्री दादू-वाणी - सम्पा. नारायण स्वामी, दादू दयाल महासभा, जयपुर
- संत कवि दादू - सम्पा. बलदेव वंशी, किताबघर, नई दिल्ली
- संत कवि दादू और उनका पंथ - डॉ. वासुदेव शर्मा, शोध प्रबंध प्रकाशन, नई दिल्ली
- सन्त दादू दयाल - काशीनाथ उपाध्याय, राधास्वामी सत्संग, व्यास
- सन्त साहित्य - परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद
- सन्त साहित्य - पुनमूल्यांकन - डॉ. राजदेव शर्मा, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली
- संत सुधा सार - वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
- सन्त दादू दयाल - वाणी और विचार - डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र, संत साहित्य संस्थान, नई दिल्ली
- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ना.प्र.स काशी

– हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास (चतुर्थ भाग) - संत काव्य - सम्पा. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, ना.प्र.स काशी
– हिन्दी साहित्य का इतिहास - सम्पा. डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

5.10 बोध प्रश्न

1. दादू दयाल का जीवन वृत्त अपने शब्दों में लिखिए ।
2. संत काव्य परम्परा में दादू का स्थान निर्धारित कीजिए ।
3. दादू दयाल के काव्य का मुख्य प्रतिपाद्या स्पष्ट कीजिए ।
4. 'दादू पंथ ' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
5. दादू काव्य में निहित दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन कीजिए ।
6. दादू के काव्य में किस सामाजिक पक्ष का चित्रण हुआ है?
7. दादू के काव्य की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
8. दादू के काव्य में वर्णित धार्मिक विचारों की व्याख्या कीजिए ।
9. संत काव्य परम्परा के विकास में दादू के योगदान को रेखांकित कीजिए ।
10. दादू की वाणी की प्रासंगिकता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।
11. निम्नलिखित पद की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

    दादू नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुर देवत: ।
    बंदनं सर्ब साधवा, प्रणाम पारंगत: ।।1।।
    सतगुर पसु माणस करै, माणस थैं सिधसोइ ।
    दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होइ ।।2।।
    भवसागर में डूबताँ सतगुर काढ़े आइ ।
    दादू खेवट गुर मिल्या, लीये नाव चढाइ ।।3।।

इकाई 6

जायसी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 युग-परिवेश

6.3 जीवन परिचय तथा रचनाएँ

6.4 पद्यावत का कथानक

6.5 भक्ति-साधना

6.5.1 जायसी का रहस्यवाद

6.5.2 जायसी का श्रृंगार

6.6 अभिव्यंजना पक्ष

6.6.1 काव्य भाषा

6.6.2 अलंकार योजना

6.6.3 छंदविधान

6.7 वाचन एवं व्याख्या

6.8 मूल्यांकन

6.9 सारांश

6.10 संदर्भ मन्थ

6.11 बोध प्रश्न / अभ्यासों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में सूफी काव्य-परम्परा के श्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी की कविता का भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा । साथ ही यह प्रयास किया जाएगा कि अध्येता सूफी काव्यार्थ एवं उसके दर्शन पक्ष को भलीभाँति समझ सकें । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- जायसी के युग एवं परिवेश को समझ सकेंगे ।
- जायसी के जीवन एवं रचनाओं से परिचित हो सकेंगे ।
- जायसी की रचना पद्धति एवं दार्शनिक पक्ष को जान सकेंगे ।
- जायसी के भावलोक की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- जायसी के काव्य शिल्प की समझ विकसित कर सकेंगे ।
- भक्तिकाल के सन्दर्भ में जायसी के काव्य का महत्व बता सकेंगे ।
- जायसी के विशिष्ट काव्यांशों की व्याख्या कर सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम जायसी के काव्य निहितार्थों का उद्घाटन करेंगे । हिन्दी भाषा के प्रबन्ध काव्यों में जायसी प्रणीत ' 'पदमावत' ' का अद्वितीय स्थान है । अवधी भाषा का आंचलिक रूप इस काव्य कृति में सम्पूर्ण खूबियों के साथ उपस्थित हुआ है । मार्मिक क्षणों की पहचान में जायसी की प्रतिभा अनुपम है । मध्यकालीन सूफी बोध के स्वरूप का अत्यन्त तरल एवं प्रामाणिक वर्णन इस कवि ने प्रस्तुत किया है । सूफी-साधना के विविध सोपानों की प्रच्छन्न मीमांसा जायसी के काव्य की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है । भारतीय प्रेम-कथा की जमीन पर मुसलमान संतों की सूफी अवधारणा का प्रत्यारोपण जायसी ने इतनी कुशलता से किया है कि आज 21 वीं सदी के मुहाने पर इस कवि की प्रासंगिकता तीव्र होकर मुखर हो उठा है । प्रेम सत्याग्रह है । यही सृष्टि का बीज है । पूरी मानवता की मुक्ति इसी प्रेम पथ के धीर पथिक होने में है । जायसी के आलोक में इसकी मीमांसा इस पाठ का अधिकारिक लक्ष्य है.। आइए, सबसे पहले जायसी कालीन परिवेश की चर्चा करें ।

6.2 युग परिवेश

पूर्व मध्य काल का वह समय विदेशी आक्रांताओं से जर्जर हो रहा था । भीषण रक्तपात से समस्त उत्तर भारत का आम जन-जीवन कठिनाई में था । 1234ई. में अल्तमश ने मालवा को पराजित करने के बाद मेवाड़ पर आक्रमण किया था । परन्तु मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह ने उसे बुरी तरह पराजित किया था । अल्तमश की तरह बलवन ने भी मालवे की तरफ से गुजरात पर धावा बोला था । पर रास्ते में चित्तौड़ के राजा समरसिंह से मुंहकी खानी पड़ी थी । यही समरसिंह हमारे काव्य नायक रतनसेन का पिता है और 1299 की गुजरात चढ़ाई में अलाउद्दीन का भाई उलूग खाँ और सेनापति नसरत खाँ इसी से हारते हैं । दिल्ली के सुल्तान 13वीं शताब्दी में तीन बार मालवे की तरफ से गुजरात पर चढ़ाई करते हैं और तीनों बार मेवाड़ के राणा से उन्हें हारना पड़ता है । इसलिए गुजरात-विजय के लिए अलाउद्दीन के लिए यह आवश्यक था कि वह शक्तिशाली राज्य मेवाड़ को पराजित करें । चूँकि रणथम्भौर मेवाड़ के मार्ग में एक अन्य शक्तिशाली राज्य था । अत: अलाउद्दीन पहले रणथम्भौर विजय करता है और उसके बाद मेवाड़ जीतता है । यह भारतीय इतिहास का बहुत परिचित प्रसंग है । रणथम्भौर के चौहान राजा हम्मीर की वीरता के गीत आज तक गाये जाते हैं । हम्मीर के निधन के बाद हिन्दुओं की आशा का आखिरी स्थल चित्तौड़ ही है । जायसी ने लिखा है-

है चितउर हिन्दुन्ह कै माता, गाढ़ परे तजि जाइ न नाता ।
रतनसेन तहँ जौहर साजा, हिन्दुन्ह माँझ आहि बड़ राजा ।।

यह स्थिति व 4वीं सदी तक की है । 15 वीं सदी में भी दिल्ली की सत्ता पर, सल्तनत वंश का निजाम कायम रहता है । लेकिन 16वीं सदी में भारत के राजनीतिक नमो पर मुगल नाम की एक नयी आक्रान्ता जाति का आविर्भाव होता है । दिल्ली के पठान सुल्तान इब्राहीम लोदी से वह 1526 ई. में पानीपत के मैदान में निर्णायक लड़ाई जीतता है । लेकिन दिल्ली विजय के बावजूद वह हिन्दुस्तान का अधिपति नहीं बना है । राणा साँगा उत्तर भारत का निर्विवाद नेता है । बाबर तुर्क है, साँगा हिन्दू है । लेकिन हिन्दू होने का अर्थ यहाँ हिन्दी लेना ठीक

होगा । हसन खाँ मेवाती और इब्राहीम लोदी का भाई महमूद लोदी भी साँगा के झण्डे के नीचे आ खड़े होते हैं । एक ओर बाबर विदेशी तुर्क है, दूसरी तरफ मेवाड़ के साँगा सब हिन्दुस्तानियों के नेता है । जायसी की ऊपर उद्धृत चौपाई को इसी राजनीतिक मनोदशा का चित्रण मानना चाहिए

और-

हिन्दू तुरकहिं भई लड़ाई

लिखते समय जायसी के मस्तिष्क में यही खानवा की 1527 की लड़ाई रही होगी । जायसी का युद्ध हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न नहीं हैं । जायसी हिन्दू-तुर्क का तर्क विकसित करते हैं । लेकिन औपनिवेशिक दौर के अध्येताओं ने पदमावत को हिन्दू-मुस्लिम विग्रह के तौर पर विश्लेषित किया । सहसा ऊपर से एक बार देखने पर ऐसा प्रतीत भी होता हैं । लेकिन जायसी की यह ईमानदार आत्मस्वीकृति कि मैंने यह प्रेमकथा "रक्त के लेइ लाइ जोरी" है; किसी सन्देह का आधार नहीं छोड़ता । जायसीकालीन सामाजिक दशा का सुन्दर विश्लेषण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है । "सौ वर्ष पहले कबीरदास हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे । पंडित और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते पर साधारण जनता राम और रहीम' की एकता मान चुकी थी । साधुओं और फकीरों को दोनों दीन के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे । साधु या फकीर भी सर्वप्रिय वे ही हो सकते थे, जो भेदभाव से परे दिखाई पड़ते थे । बहुत दिनों तक एक साथ रहते हिन्दू और मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियाँ लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे । ये कहानियाँ हिन्दुओं के ही घरों की थीं । इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्यमात्र के हृदयों से होता हुआ गया है । " अतः हम इस सत्य को निःसंकोच स्वीकार सकते हैं कि जायसीकालीन भारत एक संक्रमण से निकल कर एक सामासिक मनोदशा की ओर चल पड़ा था ।

जहाँ तक उस समय की अर्थ-व्यवस्था का प्रश्न है वह भी उन्नत दशा में थी सिंहल द्वीप का नगर वर्णन जायसीकालीन नागरिक जीवन का अप्रतिम दस्तावेज है । हाट में वस्तुओं की प्रचुरता भारतीय शिल्प-कौशल की उन्नति का बखान करती है । हिन्दी के मध्यकालीन प्रेमाख्यानों की कविता परम्परा को समझने के लिए ऊपर वर्णित परिवेश गत विशेषताओं को ध्यान में रखना जरूरी है ।

6.3 जीवन परिचय तथा रचनाएँ

जायसी के जीवन-वृत्त के लिए जायसी की रचनाओं पर ही निर्भर किया जा सकता है । जायसी के जीवन के साथ बहुत-सी प्रमाणिक एवं अप्रामाणिक बातें जुड़ गई हैं । जायसी के व्यक्तित्व, जन्मतिथि, मृत्युतिथि तथा गुरु, परम्परा को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है । सबसे पहले जायसी की जन्मतिथि पर चर्चा करेंगे । इस संबंध में जायसी द्वारा बताई गई तीन बातें बड़े पते की हैं ।

1. जब शेरशाह ने दिल्ली की गद्दी पर आधिपत्य जमाया तब जायसी विद्यमान थे । पद्यावत में कवि ने लिखा है:

सेरसाहि दिल्ली सुलतानूं । चारिउ खण्ड तपइ जस भानू ।।

2. पद्यावत की समाप्ति के समय जायसी अत्यन्त वृद्ध हो गये थे । पद्यावत के अन्त में जायसी ने अपनी वृद्धावस्था का वर्णन करते हुए कहा है:-

   मुहमद बिरिध बएस अब भई । जोबन हुत सो अवस्था गई ।।
   बल जो गएउ कै खीन सरीरू । दिस्ति गई नैनन्ह दै नीरु ।।
   दसन गए कै तुचा कपोला ।। बैन गए दै अरुचि बोला । ।
   बुद्धि गई हिरदै बौराई । गरब गएउ तरहुँड़ सिर नाई ।।

   पद्यावत के प्रारम्भ में शेरशाह का स्मरण करते हुए जायसी ने उसे आशीर्वाद दिया है:-

   दीन आसीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज
   पातसाह तुम जग के जग तुम्हार मुहताज ।।

   बुढ़ापे में जायसी का बादशाह को आशीष देना उचित ही हैं । ऊपर वर्णित कवि की वृद्धावस्था को ध्यान में रखकर आशीर्वाद देने वाली बात के आधार पर उन्हें वृद्ध समझ लेना कुछ गलत भी नहीं होगा ।

3. अपने जीवनकाल- के एक बड़े भयंकर भूकम्प की बात भी जायसी ने बतलाई हैं 'आखिरी कलाम' में जायसी ने इस भूकम्प का वर्णन करते हुए कहा है-

   आवत उधत चार बड़ ताना । भा भूकम्प जगत अकुलाना ।।

अब हम जायसी के "आखिरी कलाम" में जन्मतिथि विषयक आत्मस्वीकृति पर विचार करें:- "भा औतार मोर नौ सदी । तीस बरिख ऊपरि कवि बदी" इस पंक्ति का भिन्न भिन्न प्रकार से अर्थ किया गया है और जायसी की जन्मतिथि निर्धारित की गयी है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी का जन्म 900 हिजरी (सन् 1492 ई.) माना है । दूसरी अर्धाली का अर्थ यही निकलेगा कि जन्मकाल से 30 वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविताएं करने लगे । पं. चन्द्रवली पाण्डेय ने इस पंक्ति का अर्थ यह निकाला है जायसी का जन्म हिजरी की नवीं सदी में तीस वर्ष बीतने पर अर्थात् 830 हिजरी (सन् 1427) में हुआ । लेकिन जायसी के जन्म विषयक विवाद पर तार्किक विवेचन के पश्चात् रामपूजन तिवारी इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि जायसी का जन्म 870 हिजरी (सन् 1464 ई) में हुआ था । उनके अनुसार 'बदी का अर्थ काव्य करना है या 'कहना है । जायसी के जीवन की अन्य घटनाओं से इस तिथि की संगति भी बैठ जाती है । इसके अनुसार 'पद्यावत' की समाप्ति के समय जायसी की उम्र 77 वर्ष की थी ।

जायसी की मृत्युतिथि के सम्बन्ध में भी मतभेद हैं । ऊपर के वर्णन से साफ है कि जायसी की जन्मतिथि 870 हिजरी है । यदि वे 79 वर्ष तक जीवित रहे तो इसका अर्थ हुआ कि उनकी मृत्युतिथि 949 हिजरी या 1542 है ।

जायसी की गुरु परम्परा भी विद्वानों के बीच विमर्श एवं विवेचना की वस्तु रही है । जायस कवि का धर्मस्थान है और कालपी गुरुस्थान है । शेख बुरहान उनके गुरु हैं तथा सैयद अशरफ जहाँगीर चिश्ती उनके पीर अर्थात आध्यात्मिक गुरु है । जायसी ने जायस को अपना धर्मस्थल बतलाया है तथा यह भी बताया है कि 'पद्यावत की रचना इस स्थान पर ही की है :

जायस नगर परम अस्थानू । तहवाँ यह कवि कीन्ह बखानू ।। जायसी का असली नाम मुहम्मद था । उनके नाम के साथ मलिक लगा हुआ है । इससे बहुत लोगों ने अनुमान लगाया है कि

उनके -पूर्वज अरब के थे और किसी समय आकर भारत में बस गए थे । जायसी ने अपने सम्बन्ध में जो लिखा है, उससे पता चलता है कि वे कुरुप थे और उनकी बायीं आँख और बायीं कान किसी बीमारी के कारण जाते रहे थे । जायसी की मृत्यु अमेठी में हुई थी । उनकी समाधि अमेठी के राजा के कोट से पौन मील की दूरी पर हैं । अमेठी के राजदरबार में कवि का अत्यन्त आदरणीय स्थान था । जायसी की कीर्ति उनके जीवन काल में दिल्ली दरबार तक पहुँची थी । शाहेवक्त शेरशाह को उन्होंने आशीष दिया था । वे काव्य रचयिता के अतिरिक्त अपने समकालीनों में सिद्धपुरुष भी माने जाते थे । वे निरभिमानी, परमात्मा के प्रेम में डूबे, समस्त जगत की मंगल कामना करने वाले फकीर थे । इस्लाम धर्म में उनकी पूर्ण आस्था थी । लेकिन इस्लाम के कट्टर अनुयायिओं की तरह वह यह नहीं मानते थे कि इस्लाम धर्म के अतिरिक्त परम सत्ता से साक्षात्कार के अन्य मार्ग नहीं हैं ।

जायसी की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं- अखरावट, आखिरी कलाम और पद्यावत । एक नवोपलब्ध काव्य 'कान्हावत भी इनकी रचना मानी जाती है । 'अखरावट' में देवनागरी वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर सैद्धान्तिक बातें कही गयी हैं । काव्यगत सौन्दर्य और कलात्मकता की दृष्टि से 'अखरावट' पर विचार करने का यहाँ कोई औचित्य नहीं है । जायसी ने इस ग्रंथ का प्रणयन अपनी साधना पर प्रकाश डालने के लिए किया है । 'आखिरी कलाम में कयामत का वर्णन है । इसमें बाबर के बादशाह होने की बात कहीं गयी है और पद्यावत में शेरशाह के; अतएव पद्यावत की समाप्ति 'आखिरी कलाम के बाद हुई ।

कवि के यश का आधार 'पद्यावत' है । कवि ने इसके रचनाकाल के संबन्ध में लिखा है:

सन नौ सै सताइस अहै ।
कथा अरम्भ बैन कवि कहै ।।

उपर्युक्त पंक्ति के अनुसार 'पद्यावत' की रचना का आरम्भ कवि ने 927 हिजरी (सन् 1521 ई) में किया । इस ग्रन्थ में अट्ठावन अध्याय हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसकी शैली के प्रसंग में कहा है: ' पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बिल्कुल भारतीय चरित्रकाव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर, फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिनमें कथा सर्गो या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती; बराबर चली चलती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में रहता है । मसनवी के लिये साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छंद में हो, पर परंपरा के अनुसार उसमें कथारंभ के पहले ईश्वर स्तुति, पैगम्बर की वन्दना और उस समय के राजा (शाहेवक्त) की प्रशंसा होनी चाहिए । "(त्रिवेणी) यह प्रेमाख्यान अवधी भाषा में रची गयी है ।

बोध प्रश्न 'क'

सही उत्तर पर निशान लगाइए:-

1. जायसी का जन्म निम्न में किस स्थान पर हुआ-

   (क) जायस (ख) कालपी

   (ग) दिल्ली (घ) चित्तौड़

2. जायसी की प्रसिद्ध रचना पद्यावत मध्यकाल की किस बोली में लिखी गई-

(क) अवधी (ख) ब्रजभाषा

(ग) मैथिली (घ) फारसी

3. पद्यावत में कवि ने किस राजा को आशीष दिया है-

(क) शेरशाह (ख) बाबर

(ग) रत्नसेन (घ) अलाउद्दीन

4. 'मसनवी' से आप क्या समझते हैं? पद्यावत में कवि ने किस शैली का प्रयोग किया है?

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 पद्यावत का कथानक

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए 'पद्यावत' की कहानी का सारांश हम नीचे दे रहे हैं । इस ग्रन्थ में 58 खण्ड हैं । प्रथम खण्ड, स्तुति खण्ड है । आरम्भ के इस अंश में कवि ने सृष्टि निर्माता का कृतज्ञ स्मरण किया हैं। फिर शाहेवक्त शेरशाह, गुरु परम्परा और अपने अन्तरंग चार मित्रों का उल्लेख किया है । दूसरा खण्ड सिंहलद्वीप खण्ड है । इसमें राजा गंधर्वसेन एवं रानी चम्पावती की कीर्तिकथा का वर्णन है । तीसरेखण्ड में पद्यावती के जन्म की चर्चा है । हीरामन सुआ पद्यावत का अत्यन्त प्रिय है । एक दिन जब पद्यावती सखियों सहित सरोवर-स्नान लिए गयी है तब वह उड़कर वन की ओर चला जाता है । चौथे खण्ड में पद्यावती का सखियों सहित जलक्रीड़ा का वर्णन है । छठे खण्ड में चित्तौड़ के राजा चित्रसेन के पुत्र रतनसेन के जन्म की कथा है । सातवाँ खण्ड बनिजारा खण्ड है । चित्तौड़ का एक गरीब ब्राह्मण बजारों के साथ सिंहल की हाट जाता है । ब्राह्मण सिंहल की हाट से हीरामन तोते को खरीद लेता है और चित्तौड़ लौट आता है । इस बीच चित्रसेन की मृत्यु हो जाती है और रत्नसेन गद्दी पर बैठता है । राजा रत्नसेन हीरामन सुग्गे को उसके गुणों पर रीझ कर खरीद लेता है । आठवें खण्ड में रानी नागमती एवं हीरामन तोते की बातचीत का वर्णन है । सुग्गा, रानी नागमती एवं पद्यावती के सौन्दर्य की तुलना करते हुए कहता है कि पद्यावती के सौन्दर्य के सामने वह रात्रि के अंधकार के समान है। रानी नागमती इस कथन से आहत होती है और सुग्गे के वध की आज्ञा देता है । लेकिन धाय उसे नहीं मारती है । राजा रत्नसेन आखेट से लौटकर सुग्गे को खोजते हैं । रानी सुग्गे की निन्दा करती है । किन्तु राजा सुग्गे के लिए हठ करता है । अन्ततः धाय हीरामन सुग्गे को प्रकट करती है । नवें खण्ड में राजा सुआ संवाद हैं । सुग्गा सिंहल- सुन्दरी पद्यावती के बारे में बताता है । राजा के मन में पद्यावती के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है । दसवें खण्ड में पद्यावती की सुन्दरता का नखशिख वर्णन है । ग्यारहवाँ खण्ड प्रेमखण्ड है । पद्यावती के रूप वर्णन सुनकर रत्नसेन होश खो बैठता है । इसके पश्चात् योगी खण्ड है । राजा योगी के वेश में साथियों सहित निकल पड़ता है । तेरहवें

खण्ड में रत्नसेन एवं उड़ीसा के राजा गजपति का संवाद है । राजा गजपति रत्नसेन को यात्रा की सुविधाएँ उपलब्ध कराता है । चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं खण्ड समुद्र यात्रा का प्रसंग है । सभी बाधाओं को पारकर रत्नसेन और उनके साथी सिंहलद्वीप पहुँचते हैं । सोलह्वाँ खण्ड सिंहलद्वीप खण्ड है । हीरामन सुआ सिंहलगढ़ दुर्ग भेदने का रहस्य बताता है । अन्ततः बसन्त पंचमी के पूजन के अवसर पर पद्यावती को राजा तथा राजा को पद्यावती के दर्शन होते हैं । इसके बाद मण्डप गमन खण्ड है । राजा शिव के दर्शन के बाद सिंह चर्म बिछाकर पद्यावती का नाम जपता है । अठारहवीं खण्ड, पद्यावती-वियोग खण्ड है । राज के जोग का उस पर प्रभाव पड़ता है । धाय बसन्त पंचमी के दिन शिव को प्रसन्न करने की सलाह देती है । उन्नीसवाँ खण्ड पद्यावती-सुआ-भेंट खण्ड है और बीसवाँ खण्ड, बसन्त खण्ड है । हीरामन की भेंट पद्यावत से होती है । वह पद्यावती को राजा रत्नसेन के जोगी होकर निकलने का हाल सुनाता है दूसरी तरफ वह राजा को पद्यावती का संदेश देता है । बसन्तखण्ड में कवि बसन्त पंचमी के दिन सखियों सहित पद्यावती के महादेव के मन्दिर में पहुँचने का वर्णन करता है ।पद्यावती देवता के चरणों में गिरकर वरदान की याचना करती है । तभी पूर्वद्वार पर, जोगी का आगमन होता है । पद्यावती को देखते ही योगी अर्थात् रत्नसेन मूर्च्छित हो जाता है । पद्यावती चन्दन से राजा के हृदय पर लिखती है कि जब वह भीख देने आयी तब वह मूर्च्छित हो गया । अब वह सूर्य अगर उस चाँद पर अनुरक्त है तो उसे पाने के लिए सातवें आसमान पर आना होगा । इक्कीसवें खण्ड में पार्वती अप्सरा रूप धरकर रत्नसेन की परीक्षा लेती है । रत्नसेन की पद्यावती के प्रति सच्ची अनुरक्ति जानकर महादेव उसे सिंहल आरोहण का रहस्य बताता हैं । तेइसवें खण्ड में रत्नसेन अपने साथियों सहित गढ़ को घेर लेता है और गन्धर्व सेन के दूतों से कहता है कि वह राजकन्या पद्यावती की भिक्षा चाहता है । इस पर गन्धर्व सेन अत्यन्त कुपित होता है । चौबीसवें खण्ड में गन्धर्वसेन योगियों के दल पर विजय पाने के लिए सैनिक 'तैयारियाँ करता है । सैन्य अभियान में रत्नसेन एवं उसके साथी बन्दी होते हैं । पच्चीसवें खण्ड मैं रत्नसेन को सूली पर चढ़ाने का वर्णन है । लेकिन उसी अवसर पर एक भाट रत्नसेन का असली परिचय प्रकट करता है । हीरामन तोता इस तथ्य की पुष्टि करता है । गन्धर्वसेन प्रसन्न होकर पद्यावती से राजा के विवाह का निश्चय करता है । छब्बीसवें सत्ताइसवें एवं अट्ठाइसवें -खण्ड में रत्नसेन एवं उसके साथियों के परिणय एवं भोग का वर्णन है । उन्तीसवाँ खण्ड शड्ऋतु चित्रण खण्ड है । तीसवाँ खण्ड, नागमती वियोग का खण्ड है । बारहमासे का सहारा लेकर कवि ने नागमती के वियोग का मर्मस्पर्शी वर्णन किया हैं । इकतीसवाँ खण्ड 'नागमती सन्देश' खण्ड है । राजा रत्नसेन जब शिकार पर जाती हैं । तब उसे एक पक्षी नागमती का संदेश सुनाता है । संदेश राजा को उदास और चंचल चित्त कर देता है । बतीसवें खण्ड में -रत्नसेन चित्तौड़ लौटने की अनुमति माँगता है । अगला खण्ड देशयात्रा का वर्णन खण्ड है । समुद्र की दुर्घटना में राजा एक अजनबी टापू पर पहुँच जाता है । पद्यावती भी बिछुड़ जाती है। चौतीसवें खण्ड में लक्ष्मी की कृपा से राजा एवं पद्यावती का मिलन होता है । पैंतीसवाँ खण्ड चित्तौड़-आगमन खण्ड है । नागमती एवं पद्यावती में सपत्नीजन्य द्वेष और अन्ततः राजा के प्रयास से कटुता का समापन होता है । अड़तीसवाँ खण्ड राघव चेतन देशनिकाला खण्ड है । उन्तालीसवाँ खण्ड, राघवचेतन-दिल्ली खण्ड है । चालीसवाँ खण्ड स्त्री प्रभेद का वर्णन खण्ड

है । इकतालीसवें खण्ड में पद्यावती रूप चर्चा खण्ड है । अलाउद्दीन राघव की दुष्टता से प्रेरित होकर चित्तौड़ से पद्यावती की माँग करता है ।

बयालीसवाँ खण्ड, बादशाह चढ़ाई खण्ड है तथा तैंतालीसवाँ खण्ड राजा-बादशाह-युद्ध खण्ड है । घनघोर युद्ध के बावजूद राजा अपराजित रहता है । चवालीसवें खण्ड में राजा एवं बादशाह के संधि का वर्णन है । संधि के उपरान्त राजा बादशाह को भोज देता है । इसका वर्णन पैंतालीसवें खण्ड में है । छियालीसवाँ खण्ड, चित्तौड़गढ़ वर्णन खण्ड है । गढ़ के भीतर बादशाह का भव्य स्वागत किया जाता है । गोरा-बादल राजा को सलाह देता है कि अलाउद्दीन को बन्दी बना लिया जाए । राजा रत्नसेन नीति का पक्षधर हैं । राजा-बादशाह के साथ शतरंज खेलता है । शाह दर्पण में पद्यावती का प्रतिबिम्ब देखता है और चेतना खो बैठता है । राघव चेतन बादशाह को बताता है कि उसने पद्यावती के सौन्दर्य को दर्पण में देखा हैं । रत्नसेन अलाउद्दीन को गढ़ के बाहर तक छोड़ने जाता है । शाह उसे धोखे से बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाता है । चित्तौड़ में उदासी छा जाती है । अड़तालीसवें खण्ड में पद्यावती और नागमती का करूण विलाप है । उनचासवाँ खण्ड देवपाल-दूती संवाद खण्ड है । पचासवाँ खण्ड बादशाह दूती खण्ड हैं । इक्यावनवाँ खण्ड पद्यावती-गोरा-बादल खण्ड है । पद्यावती गोरा बादल से रत्नसेन को बादशाह के चंगुल से छुड़ाने का अनुरोध करती हैं गोरा-बादल दिल्ली प्रस्थान करते हैं बावनवाँ एवं तिरपनवाँ खण्ड-गोरा-बादल युद्ध खण्ड है । राजा को बन्दीगृह से छुड़ाकर बादल चित्तौड़ की ओर प्रस्थान करता है । गोरा बादशाह की सेना के साथ लड़ता हुआ वीरगति प्राप्त करता है। चौवनवाँ खण्ड बन्धनमोक्ष एवं पद्यावती मिलन खण्ड है । पद्यावती अपने पति रत्नसेन की देवपाल के द्वारा भेजे गये अपमानजनक प्रेम प्रस्ताव के बारे में बताती है । अन्त के चार खण्डों में रत्नसेन और देवपाल के युद्ध का वर्णन है । देवपाल एवं रत्नसेन दोनों आपसी युद्ध में मारा जाता है । रत्नसेन के मृतकाया के साथ पद्यावती एवं नागमती दोनों सती हो जाती है । बादशाह अलाउद्दीन जब गढ़ में आता है तो उसे मुट्ठी भर 'क्षार' के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता है । बादशाह से युद्ध करता हुआ बादल अपने प्राण न्यौछावर करता है । अट्ठावनवें खण्ड में कवि ने अपने कारूणिक बुढ़ापे का वर्णन किया है । कवि इस प्रेम कथा को प्रस्तुत करने के बाद सन्तोष का भाव व्यक्त करता है ।

जायसी ने अपने काव्य निर्माण में ऐतिहासिक नामों का उपयोग किया है । लेकिन पद्यावत में किसी ऐतिहासिक घटना का आरोप संयोगवश है । अत: इतिहास अन्वेषण व्यर्थ का प्रयास होगा ।

6.5 जायसी का भाव-पक्ष

6.5.1 भक्ति साधना

जायसी ने पद्यावत में सूफी दर्शन का गुम्फन बहुत बारीकी से किया है । इसे ही हमारे आलोचक गण जायसी के रहस्यवाद शीर्षक से विश्लेषित करते हैं । जायसी सूफियों के चिश्ती सम्प्रदाय के अनुयायी एवं साधक थे । रत्नसेन और पद्यावती के माध्यम से कवि ने आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन किया है जो सूफी साधना का प्राण है । सूफी काव्य में परमसत्ता का वर्णन प्रियतमा के रूप में किया जाता है । सूफी एकेश्वरवाद में विश्वास करते हैं । वे मानते हैं कि यह दृश्य

जगत उसी परम सत्ता से सत्तावान है । जायसी ने पद्यावत के प्रारम्भ में सृष्टि के रचे जाने का वर्णन किया है । सर्वप्रथम कर्त्ता ने ज्योति की रचना की । इसके बाद चार तत्वों के निर्माण हुए ।

कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा ।
कीन्हेसि बहु तइ रंग उरेहा ।।

सूफी आध्यात्मिक जीवन को एक यात्रा मानते हैं और साधना पथ पर अग्रसर होने को सूफी मंजिल कहते हैं । इस सूफी-पथ में चार अवस्थाएँ हैं । इसे सूफी मंजिल कहते है । पहली मंजिल 'शरीअत' कही जाती है । इस मंजिल में साधक की सहज दशा बनी रहती है । दूसरी मंजिल 'तरीकत' है । इसमें साधक भौतिक जगत के छल-छद्म से ऊपर उठ जाता है । तीसरी 'मंजिल मारिफत' है । परमात्मा से मिलन की सारी बाधाएं इस अवस्था में दूर हो जाती है। साधक दुनियावी राग-विराग से परे हो जाता है । चौथी और आखिरी अवस्था हकीकत है । यहाँ साधक परम सत्ता में लीन हो जाता है । जायसी ने अपने महाकाव्य में इन चार अवस्थाओं की ओर संकेत किया है:

चारि बसेरें सो चढ़ै सत सो चढ़ै सो पार

सूफी साधना में भावदशा का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं । साधक बार-बार अपनी शक्ति का उपयोग परमात्मा के ध्यान करने में लगाता है । इस दशा में साधक की आँखों से अश्रुपात होते हैं। उसमें उन्माद के लक्षण प्रकट होने लगते हैं । वह बार-बार परम प्रियतम के नाम का जप किए जाता हैं । जागतिक विषयों का तिरोभाव हो जाता है । यदि भावदशा पूर्णता को प्राप्त होती है तो वह 'वजूद' की अवस्था कहलाती है । जायसी ने रत्नसेन की इसी भावावृष्टि दशा का चित्रण 'प्रेमखण्ड' में किया है । हीरामन तोता जब पद्यावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करता है तो राजा रत्नसेन इसी भावदशा को प्राप्त करता है । सूफी शब्दावली में इस दशा को 'हाल' कहा जाता है ।

6.5.2 जायसी का श्रृंगार

जायसी ने पद्यावत में संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों प्रकार के श्रृंगारों का चित्रण किया है । सूफी प्रभावापन्न साधक होने के कारण कवि का मन वियोग वर्णन में अधिक रमा हैं । इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नागमती के विरह वर्णन को हिन्दी की ' 'अद्वितीय वस्तु' ' कहा है । नागमती के विरह वर्णन में जायसी का सूफी मत खो गया है । वह एक आतुर पत्नी का सहज क्रन्दन है । नागमती आदर्श पत्नी है । नागमती ईर्ष्यालु है । वह पति को अन्य सुन्दरियों के सम्पर्क से बचाना चाहती है । दूसरी तरफ रतनसेन दाक्षिण्य नायक है । वह एक साथ दो प्रियाओं में अपने अनुराग का वितरण करता है । यहाँ भारतीय काव्य परिपाटी के अनुसार कुछ भी अनुचित नहीं है । विरह की यह अन्तर्धारा दोनों पक्षों में प्रवाहित है । राजा रत्नसेन भी अपने प्रिया की प्राप्ति के लिए आतुर है । इस प्राप्ति के लिए वह चित्तौड़ का राज्य तक ठुकरा देता है । यह स्वच्छंद प्रेम दोनों पक्ष में प्रबल होकर प्रकट हुआ है ।

चित्तौड़ में राजा की राह देखते हुए नागमती विकल हो उठती है । वह साधारण स्त्रियों की तरह विलाप करती है । जायसी ने इस विलाप को बारहमासे के रूप में वर्णित किया है । जायसी ने आषाढ़ माह से बारहमासे का आरम्भ किया है । जायसी के इस विलाप वर्णन में सारी सृष्टि

मानों विकल है । उत्तर भारत का जन-जीवन, कृषिचक्र जीव-व्यापार प्रगाढ़ होकर प्रकट हुआ है । जायसी इस बारहमासे के वर्णन में भारतीय ग्राम समाज से इतना प्रभावित है कि वह भूल गए हैं कि नागमती रानी है । अत: साधारण गृहस्थ का दैनिक कार्य-कलाप इस बारहमासे में भरा पड़ा है । इसीलिए सामान्य जन का साधारणीकरण इस नागमती विरह में सहज संभव होजाता है । नागमती अपनी विवशता का सन्देश प्रियतम तक पहुँचाने के लिए पशुपक्षियों की सहानुभूति चाहती है:-

पिय सौ कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग ।।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहि क धुआँ हम लाग ।।

नागमती के विरह-जन्य ताप एवं दुःख से प्रकृति के विविध जीव-जन्तु भी करूण हो उठते हैं:

कुहु कि कुहु कि जसि कोइलि रोइ ।
रक्त आँसू घुंघुंची बन बोई ।।

जायसी ने नागमती के विरह वर्णन में अत्युक्तियों का खूब उपयोग किया है । नागमती जिस पक्षी कौ अपना विरहजन्य पीड़ा सुनाती है, वह जल जाता है । इतना ही नहीं, वह पेड़ भी जल जाता है :

जेहि पंखी कहँ अड़वौं कहि सौ विरह कै बात
सोई पंखि जाइड़हि तरिवर होइ निपात ।।

इसीलिए आचार्य रामचन्द्रशुक्ल की टिप्पणी सटीक बैठती है कि ' 'अपनी भावुकता का बड़ा भारी परिचय जायसी ने इस बात में दिया है कि रानी नागमती विरह दशा में अपना रानीपन बिल्कुल भूल जाती है और अपने को केवल साधारण स्त्री के रूप में देखती हैं । इसी सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के बल पर उसके विरह वाक्य छोटे-बड़े सबके हृदयों को समान रूप से स्पर्श करते हैं । " यहाँ हमारे अध्येताओं को यह स्मरण रखना चाहिए कि जायसी के विरह वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं । अत: जायसी को हम विप्रलम्भ श्रृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं। वेदना का ऐसा सघन देशज रूप अन्यत्र दुर्लभ है ।

संयोग श्रृंगार के वर्णन में जायसी का चित्त वियोग की तुलना में कम रमता है । लेकिन पद्यावत में इसके तीन रूप साफ उभरे हैं: (1) आध्यात्मिक; (2) सामान्य गृहिणी के रूप में चित्रण तथा (3) परम्परा- भक्ति श्रृंगार वर्णन । भारतीय आदर्श को ध्यान में रखकर सखियाँ पद्यावती को समझाती हैं कि माता-पिता कन्या का विवाह करके निश्चिन्त हो जाते हैं लेकिन आजीवन निबाह तो पति से ही होता है:

माता पिता बियाही सोई ।
जनम निबाह पियहि सो होई ।।

इसी आदर्श को सामने रखकर पति को सन्तुष्ट करने में ही पद्यावती आनन्द पाती है । वह पति के प्रति पूर्ण समर्पित है:

“जो तुम्ह चाहहु सौ करहु नाहिं जानहुँ भल मन्द

जायसी के संयोग श्रृंगार पर बहुत आलोचक अश्लीलता का आरोप लगाते हैं तथा इसे फारसी परम्परा का प्रभाव मानते हैं । लेकिन भारतीय काव्य परम्परा में घोर श्रृंगार वर्णन की परिपाटी रही है । अत: अश्लीलता को फारसी प्रभाव नहीं माना जा सकता है ।

बोध प्रश्न ख

5. सही उत्तर पर निशान (✓) लगाइये-

   (क) जायसी सूफीमत के किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं-

   (1) चिश्तिया (2) कादिरिया

   (3) सुहरवर्दिया (4) नक्शबन्दिया

   (ख) जायसी ने अपनी किस रचना में 'शाहे वक्त' शेरशाह को बताया है :

   (1) पद्यावत)2) अखरावट

   (3) आखिरी कलाम)4) कान्हावत

   (ग) पद्यावत महाकाव्य की भाषा अवधी है, लेकिन उसकी लिखावट किस लिपि में हुई थी?

   (1) देवनागरी)2) फारसी

   (3) अरबी

   (घ) पद्यावत की कहानी कुल कितने खण्डों या अध्यायों में वर्णित है :

   (1) 50 (2) 54

   (3) 58 (4) 60

6. सूफी साधना के चार दशाओं का वर्णन उसकी विशेषताओं सहित पाँच पंक्तियों में लिखिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

7. जायसी का विरह वर्णन साहित्य की अद्वितीय वस्तु है । नागमती के सन्दर्भ में इसकी विशेषता दस पंक्तियों में लिखिए ।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

8. जब एक नायक कई नायिकाओं में अपने प्रेम का वितरण उदार भाव से करता है उसे किस श्रेणी का नायक कहा जाता है?

(कदाक्षिण्य (धीरोद्धात (ख)

(गवीर (लम्प (घ)ट

9. सूफी काव्य परम्परा के पहले कवि मुल्ला दाऊद हैं । इनकी रचना का नाम है :

(कमधुमालती (मिरगावती (ख)

(गचंदायन (ढोला मारु रा दूहा (घ)

10. सूफी काव्य परम्परा का एक अन्य प्रचलित नाम है :

(कज्ञानमार्गी शाखा (संत साहित्य (ख)

(गप्रेमाश्रयी शाखा (मसनवी शाखा (घ)

6.6 अभिव्यंजना पक्ष

6.6.1 काव्य भाषा

'पद्यावत' अवधी भाषा की एक सुन्दर कृति है । इस रचना के भाषा वैभव पर जायसी के अनन्य अध्येता वासुदेवशरण अग्रवाल का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है, ' 'जायसी की अवधी भाषाशास्त्रियों के लिए स्वर्ग है, जहाँ उनकी रूचि की अपरिमित सामग्री सुरक्षित है । मैथिली के लिए जो स्थान विद्यापति का है और मराठी के लिए जो महत्व ज्ञानेश्वरी का है; वही महत्व अवधी के लिए जायसी का है । "

जायसी के 'पद्यावत' के कारण अवधी इस उपमहाद्वीप की लोकप्रिय भाषा हो गयी । सत्रहवीं सदी के बंगाली कवि आलाओल ने इस ग्रन्थ का बंगला में अनुवाद किया । सोलहवीं सदी के अन्त में करज के मुल्ला अब्दूश्शकूर बज़्मी बिन शेख मुनब्बर ने फारसी पद्यों में इसका अनुवाद किया । बज़्मी ने इसे जहाँगीर को समर्पित किया था । जायसी का यह प्रेमाख्यान सदियों तक जनता के मनोरंजन एवं ज्ञान का स्त्रोत रहा है । जायसी के अनुपम अध्येता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक भिखारी फकीर के मुँह से सर्वप्रथम यह दोहा सुना था ।

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव ।
मकु तेहि मारग गिरि परै कंत धरै जहँ पाँव ।।

भिखारी से रचयिता का नाम पूछने पर 'जायसी' का पता चला । शुक्ल जी के अनुरोध पर उस फकीर ने पदमावत की 20-25 चौपाइयाँ और दोहे सुना डाले । कहते हैं उसके बाद आचार्य शुक्ल गन्तव्य भूलकर जायस की गली-गली में जायसी का पता पूछते फिरे । बहुत तलाशने के बाद मालूम पड़ा कि पद्यावत लिखा तो अवधी भाषा में गया है, पर उपलब्ध केवल फारसी लिपि में है । यही से उसकी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ और आचार्य शुक्ल ने 150 पृष्ठों की भूमिका लिखकर जायसी को महाकवियों की बिरादरी में प्रतिष्ठित कर दिया ।

जायसी एवं तुलसी के अवधी में एक आधारभूत अन्तर है । पदमावत विशुद्ध अवधी में रचित काव्य है । इसमें रामचरित मानस की भाँति अनेक क्षेत्रों की भाषाओं का मेल नहीं हैं । इसीलिए

विशुद्ध अवधी का जो सहज चलता रूप 'पद्यावत' में मिलता है, वह 'मानस' में नहीं है । जायसी की अवधी तद्भव धावित है और तुलसी की अवधी तत्सम धावित है । पूर्वी अवधी का नैसर्गिक मिठास जायसी की लोकप्रियता का आधारभूत कारण है । जायसी के सभी अध्येताओं ने इस बात को रेखांकित किया है ।

6.6.2 अलंकार योजना

जायसी का साध्य प्रेमाख्यान की रचना करना है, अत: उनके लिए अलंकार साधन मात्र है। चमत्कार उत्पन्न करने के लिए वे अलंकारों के पीछे नहीं पड़ते हैं । पद्यावत में सहज भाव से शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों के सौन्दर्य बिखरे पड़े हैं । श्लेष, अनुप्रास और यमक के प्रयोग जायसी ने सर्वत्र किए हैं । जैसे :

आह जो मारी बिरह की आगि उठी तेहि हाँक ।
हंस जो रहा समीर महँ पाँख जरे तन थाक ।।

यहाँ श्लेष अलंकार है । यहाँ हंस पर दो अर्थो का आरोप है । एक, हंस पक्षी के अर्थ में और दूसरा, आत्मा के अर्थ में । इसी प्रकार नीचे की पंक्ति में 'सोहागा' क्रमश: सौभाग्य- सुहाग और सोने को जोड़ने वाला धातु के अर्थ में प्रयुक्त है:

धनि औ पिउ महँ सीउ सोहागा ।
दुहूँक अंग एक मिली लागा ।।

शब्दालंकार के कुछ और प्रयोग देखें :

पंचम बिरह पंच सर मारै । रक्त रोइ सागरौ बन ढारै । । (अनुप्रास)
कनक जो कन कन होई बिहराई ।। (यमक)

अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रति जायसी का लगाव अधिक सघन होकर उभरता है । वे परम्परा युक्त उपमान योजना से बचते हैं । इसीलिए नयी सूझ एवं मौलिक कल्पना इनके सादृश्यमूलक अलंकारों के प्राण है । जायसी उत्प्रेक्षा के अप्रतिम शिल्पी हैं । अकारण को कारण मानकर जो उत्पेक्षा की जाती है, उसे हेतूत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं । इसके दो उपभेद है । (क) सिद्धविषया हेतत्प्रेक्षा, (ख) असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा; जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय असिद्ध या असम्भव हो उसे असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा तथा जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध या संभव हो वहाँ सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा कहा जाता है । जायसी का 'पद्यावत असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा का विशाल आगार है । नागमती के विरह-ताप से भौंरे एवं कौए काले पड़ गये हैं । जैसे-

पिउसो कहहु संदेसडा हे भौंरा हे काग ।
सो धनि विरहें जरि मुई तेहिक धुआँ हम ताग ।।

इसी प्रकार एक और असिद्धविशया हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण लें । पद्यावती की मीठी वाणी सुनकर चातक और कोयल पराये देश में वास करने चले जाते हैं । वे लज्जावश ऐसा करते हैं । पक्षियों के छिपने का हेतु कवि की कल्पना मात्र है:

चात्रिक कोकिल रहहिं जो नहीं । सुनि वह बैन लजिछपि जाहीं ।।

जायसी ने वस्तुत्प्रेक्षा का भी सुन्दर व्यवहार किया है । वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार में एक वस्तु की सम्भावना दूसरी वस्तु के रूप में की जाती है । पद्यावती के बाँके नयनों में अंजन की रेखा का वर्णन करते हुए कवि कहता है

बाँक नैन और अंजन रेखा । खंजन जनहुँ सरद रितु देखा ।।

जब-जब हेरू-फेरू चखु मोरी । लुरै सरद महँ खंजन जोरी ।।

निम्नलिखित पंक्तियों में फलोत्प्रेक्षा का सुन्दर उदाहरण वर्णित है:

सरवर रूप विमोहा हिएँ हिलोर करेइ ।

पाय छुवै मकु पावौं तेहि मिसुलहरै देइ ।।

सरोवर में लहरों का उठना स्वाभाविक है, लेकिन पाँव छूने के लिए लहरों का मचलना असिद्ध विषयाफलोत्प्रेक्षा का उदाहरण है । अफल में फल की कल्पना फलोत्प्रेक्षा होती है । रूपकातिशयोक्ति अलंकार भी जायसी को अत्यन्त प्रिय है । पद्यावती के रूप चित्रण में उत्पेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति, उपमा आदि अलंकार कतार बाँधकर खड़े हो जाते हैं । कुछ और अलंकारों के उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं ।

प्रतीप अलंकार : कहौं लिलाट दुइजि कै जोती । दुइजिहि जोति कहाँ जग ओती ।

यहाँ ललाट को दूज के चन्द्रमा के समान कहा गया है और बाद में चन्द्रमा की उस ज्योति का निरादर कराया गया है ।

व्यतिरेक अलंकार : का सरवरि तेहि देऊँ मयंकू । चाँद कलंकी वह निकलंकू ।।
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा । वह बिनु राहु सदा परगासा ।

विभावना अलंकार : स्त्रवन नाहिं पै सब किछु सुना । हिया नाहीं गुनना सब गुना ।।
नैन नहि पै सब कहु देखा । कवन भाँति अस जाइ बिसेखा ।

विरोध अलंकार : कातिक सरद चंद उजियारी । जग शीतल हौ बिरहै जारी ।।

अत: जायसी के काव्य में अलंकार का सुन्दर आयोजन है । जायसी ने उपमानों की योजना में जहाँ भारतीय परम्परा का सदुपयोग किया है, वही परम्परा से बाहर जाकर उन्होंने फारसी परम्परा का भी उपयोग किया है। गर्दन सुराही जैसी है, वस्त्र मकड़ी के जाले जैसे हैं, हृदय निकाल कर हाथ में लेना आदि । लोक जीवन के दृश्यों एवं उपमानों को कवि ने चित्रित किया है । ओरी के समान आँखों का बरसना, पीले पत्ते के समान शरीर का होना, हिडोले के समान हृदय का झूलना आदि । उपर्युक्त विवेचना से साफ है कि कवि ने 'पदमावत' में अलंकारों की सुन्दर योजना की है । ये अतिशयोक्तिपूर्ण होने के बावजूद भाव सत्य को और काव्य सत्य को प्रकाशित करने में अत्यन्त सफल हुए हैं ।

6.6.3 छंद-विधान

छन्द कविता का अंग-वस्त्र है । छन्द के आवरण में कविता अपने भावसत्य को सदियों तक वहन करता है । जायसी ने जिस चौपाई-दोहा की पद्धति को 'पद्यावत' में विचार प्रकटीकरण का माध्यम बनाया उसे बाद के कवियों ने भी स्वीकार किया है । जायसी ने सात-सात चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम किंचित परिवर्तन के साथ रखा है । जायसी के पीछे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस' यही दोहे चौपाई का क्रम ग्रहण किया। चौपाई और बरवै

अवधी का जातीय छंद है । अवधीभाषा अपने सम्पूर्ण सौश्ठव के साथ इन छन्दों में उपस्थित होती है । आगे चलकर प्रेमाख्यान के सभी कवियों ने जायसी के इस छंद को मानदण्ड मानकर अपनाया । पद्यावत से पहले दोहा-चौपाई में आख्यान काव्य प्राकृत और अपभ्रंश में लिखे जाते थे । यह उन्हीं की परम्परा में अवध की जनभाषा में आया । जायसी एवं तुलसीदास के रचनाकाल में 34साल का अन्तराल है । जायसी ने 'पद्यावत' का अध्ययन किया था । अत: दोहा-चौपाई में 'मानस' से पूर्व विशाल और प्रौढ़ काव्य रचने का श्रेय जायसी को जाता है ।

बोध प्रश्न (ग)

11. सही उत्तर पर निशान (✓) लगाइये ।

(क) पद्यावत का काव्य रूप

(1) खण्ड काव्य

(2) महाकाव्य

(3) गीति काव्य

(ख) जायसी की चौपाई-दोहा प्रणाली का अनुकरण आगे चलकर किस महाकवि ने किया?

(1) तुलसीदास (2) सूरदास

(3) कबीरदास

(ग) जायसी का प्रिय अलंकार है :

(1) हेतूत्पेक्षा (2) श्लेष

(3) यमक

12. जायसी के छंद विधान पर दस पंक्तियों में विचार कीजिए-

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13. जायसी की काव्य भाषा पर अपने मन्तव्य दस पंक्तियों में प्रकट कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.7 जायसी के पदों का पाठालोचन एवं व्याख्या

उद्धरण-1 सिंहलद्वीप वर्णन-खण्ड

नवौं पँवरि पर दसौं दुआरू । तेहि पर बाज राज घरिआरू ।1।
घरी सो बैठि गनै घरिआरी । पहर पहर सो आपनि बारी ।2।
जबहिं घरी पूजी वह मारा । घरी घरी घरिआर पुकारा ।3।
परा जो डाँड जगत सब डाँडा । का निचिंत माँटीकर भाँडा ।4।
तुम्ह तेहि चाक चढ़े होइ काँचे । आएहु फिरै न थिर होई बाँचे।5।
घरी जो भरै घटैं तुम आऊ । का निचिंत सोवहि रे बटाऊ ।6।
पहरहि पहर गजर निति होई । हिआ निसोगा जाग न सोई ।7।
मुहमद जीवन जल भरन रहँट घरी की रीति ।
घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति ।।

शब्दार्थ :

राजघरिआरू- राजद्वार पर बजने वाला घड़ियाल । घरिआरी-घडियाल बजाने वाला । निसोगा-चिन्तारहित, निश्चिन्त । बटाऊ-पथिक ।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद्यांश पदमावत महाकाव्य के 'सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड' से उद्धृत है । इसके रचयिता महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं ।

प्रसंग : जायसी हिन्दी में सूफी काव्य-परम्परा के श्रेष्ठ कवि हैं । पदमावत का नगर वर्णन कवि की बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा का अनूठा प्रमाण है । सिंहल द्वीप के नागरिक जीवन में समय गणना की प्रविधि विवेच्य पद्य में अंकित है ।

काव्यार्थ : नौ द्वारों के बाद दसवीं द्वार है । वहाँ राजघडियाल बजता है । घड़ियाल बजाने वाला वहाँ बैठकर एक-एक घड़ी की गिनती करता रहता है । प्रत्येक घड़ियाल बजाने वाले की एक-एक पहर की बारी लगती है । जैसे ही एक घड़ी पूरी होती है, वह राज-घड़ियाल पर एक डंडा मारकर उसकी सूचना देता है । प्रत्येक घड़ी पर बजता हुआ यह राज घड़ियाल मानो पुकार-पुकार कर यह कहता है कि मेरे ऊपर जो काल का डंडा पड़ा है, वह वास्तव में सारे संसार पर पड़ा है । ऐ माटी के पुतले, तुम इतने बेफिक्र क्यों हो? तुम इस संसार रूपी चाक पर चढ़े हुए मिट्टी के बरतन की तरह हो जो उस चाक पर बार-बार नहीं चढ़ता । अवधि पूरी होते ही उसे संसाररूपी चाक से उतरना पड़ता है । यह जिन्दगी का अटल नियम है । प्रत्येक घड़ी बीतने के साथ मानव जीवन की एक घड़ी घट जाती है । अरे बेफिक्र यात्री, तू इन बातों से अनजान सोया हुआ है । घड़ियाल का घंटा तुझे सुनायी नहीं देता है ।

यह जीवन रहँट के घड़ों की तरह है । घड़ा जीवन रूपी जल से भरकर कुएँ से ऊपर आता है और फिर औंधे होकर खाली हो जाता है और इस तरह जीवन चलता रहता है ।

विशेष :

(1) प्रस्तुत पद्य में कवि ने मानवजीवन की नश्वरता का वर्णन किया है । कवि ने लोकप्रचलित साधारण-सी बात को अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है । जायसी के अन्यतम व्याख्याकार वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपनी संजीवनी व्याख्या में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि मध्यकालीन भारत के नागरिक एवं ग्रामीण जीवन को गंभीरता से समझने के लिए जायसी का 'पद्यावत अनूठा कोष है । विवेच्य पद्य में एक साथ तीन मध्यकालीन प्रविधि का उल्लेख है । मध्यकाल में काल-गणना की परिपाटी का सूक्ष्म विवरण यहाँ वर्णित है । बरतन बनाने की तकनीक की सूचना भी यहाँ दर्ज है । भारतीय किसान जीवन की सिंचाई पद्धतिसे कवि ने कविता को एक दार्शनिक ऊँचाई दी है ।

(2) भारतीय कवि परम्परा ने काल को अलग-अलग प्रतीकों में बाँधा है । भास, कालिदास, शंकराचार्य, बिहारी में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं । लेकिन रहँट की देशज तुलना सर्वथा नयी बात है ।

(3) जायसी दार्शनिक मिजाज के कवि हैं । यह संसार क्या है? मानव जीवन का आखिरी लक्ष्य क्या है? ऐसे अन्तहीन प्रश्नों का वे विवेच्य पद्य में पीछा करते हैं ।

(4) अवधी भाषा का देशज रंग 'रहँट घरी' के प्रसंग में खूब उभरा है ।

(5) पद्यांश के प्रथम पंक्ति ' नदी पौरि पर दसौं दुआरू ' में हठयोग एवं कुण्डली जागरण की ओर संकेत है । जायसी ने इन नौ द्वारों की कल्पना को शरीरस्थ चक्रों के साथ मिला दिया है । इन नौ के ऊपर दसवाँ द्वार है । सहस्त्रार का अमृत रस इसी दसवें द्वार से होकर प्रवाहित होता है । जायसी की काव्यशैली की यह विशेषता है कि सिंहल द्वीप के आध्यात्मिक वर्णन को रखते हुए वे हठयोग वर्णन से अर्थ पक्ष को प्रभावित नहीं होने देते हैं ।

(6) नगरवर्णन मध्यकालीन काव्यों की अनिवार्य परिपाटी बन गयी थी । जायसीकृत सिंहल द्वीप वर्णन इतना भरा पूरा उतरा है कि बहुत कम कवि इस प्रसंग में उनकी समता कर सकते हैं । तुलसीदास ने भी 'सुन्दरकाण्ड' में सोने के परकोटे से घिरे लंका नगरी का वर्णन किया है- "कनक कोट विचित्र मनिकृत सुंदरायतना घना।"

उद्धरण- 2 मानसरोदक खण्ड

एक देवस कौनिऊँ तिथि आई । मानसरोदक चली अन्हाई ।1।
पदुमावति सब सखी बोलाई । जनु फुलवारि सबै चलि आई ।2।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली । कोइ सुकेत करना रस बेली ।3।
कोई सुगुलाल सुदरसन राती । कोई बकौरि बकचुन विहँसाती ।4।
कोइ सु बोलसरि पुहुपावती । कोइ जाही जूही सेवती ।5।
कोइ सोनजरद जेउँ केसरी । कोइ सिंगारहार नगेसरि ।6।
कोइ कूजा सदबरग चँवेली । कोइ कदम सुरस रस बेली ।7।
चली सबै मालति संग फूले कँवल कमोद ।
बेधि रहे गन गंध्रप वास परिमलाभोद

सन्दर्भ : जायसी सूफी काव्य परम्परा के श्रेष्ठ कवि हैं । विवेच्य पद्यांश उनके 'पद्यावती'। महाकाव्य के 'मानसरोदक खण्ड' से लिया गया है ।

प्रसंग : पद्यावती सखियों सहित मानसरोवर प्रस्थान करती है । कवि को किशोरियों का यह समूह चलता-फिरता उद्यान प्रतीत होता है ।

काव्यार्थ : एक दिन पद्यावती मानसरोवर के जल में नहाने चली । उसने सब सखियाँ बुलाई। वे सब खिली फुलबाड़ी की तरह आई । कोई सखी चम्पा, कोई कुन्द, कोई करना, कोई गुल बकावली के गुच्छों के समान बिहँसती थी । कोई मौलसिरी की भाँति पुष्पों से लदी थी । कोई जाति, कोई जूही एवं सेवती के फूलों की भाँति थी । कोई सोन जरद, कोई केसर के समान थी, कोई हरसिंगार और नाग केसर जैसी थी । कोई कूजा के फूल, कोई हजारा गेंदा और कोई चमेली जैसी थी । कोई कदम्ब या सुन्दर रसबेल जैसी थी । वे सब मालती के साथ चली मानों कमल के साथ कुमुदिनी फूली हों । उसके सुगन्ध से भौरों के समूह बिंध गए है ।

विशेष:

(1) भारत के वानस्पतिक वैभव का कवि ने भरपूर लाभ उठाया है । अपने अनूठे सूझ से उन्होंने पद्यावती को मालती के रूप में चित्रित किया है तथा शेष सखियाँ विविध प्रजाति के पुष्प हैं ।

(2) फूलों-फलों और वृक्षों का देश-काल विरूद्ध वर्णन तो संस्कृत और हिन्दी काव्य की विशिष्टता रही है । जायसी भी उक्त परम्परा का निर्वाह करते है । किन्तु यहाँ कवि ने पुष्पों के नामों का आरोप सखियों पर किया है । मध्यकालीन कवियों में नामावली गिनाने की परिपाटी रही है । जायसी ने उस परम्परा का पालन किया है । फूलों के नामों से गुजरते हुए हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं किजायसी अपने समय के समूचित वनस्पतिविद् थे।

(3) जायसी ने विवेच्य पद्यांश में गन्धर्वों के अनुराग की किम्वदन्ती का वर्णन किया है । लोक में यह मान्यता प्रचलित है कि गन्धर्व कुमारिकाओं पर आसक्त हो जाते हैं ।

(4) यहाँ जायसी ने प्रेम में भौंरों के बिंधने की चर्चा की है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कवि के प्रेम-व्यंजना के प्रसंग में बताया है कि यह फारस से आगत परम्परा है । सौन्दर्य की तीव्रता से घायल होना; बिंध जाना भारतीय प्रेम पद्धति में एक नयी व्यंजना की शुरुआत थी और जायसी इसके आदि प्रयोगकर्ता है । पद्यावत में यद्यपि भारतीय भावों की प्रधानता है पर कहीं-कहीं फारसी साहित्य द्वारा पोषित भावों के छीटें मिलते हैं । प्रस्तुत पद्यांश इस भाव का प्रतिनिधि उदाहरण है ।

उद्धरण-3 नागमती वियोग खण्ड

नागमती चितउर पँथ हेरा । पिउ जो गए फिरि कीन्ह न फेरा ।1।
नागरि नारि काहूँ बस परा । तेइँ बिमोहि मोसी चितु हरा ।2।
सुवा काल होइ लै गा पीऊ । पिउ नहिं लेत लेत बरू जीऊ ।3।
भएउ नरायन बारन करा । राज करत बलि राजा छरा ।4।
करन बान लीन्हेउ कै छंदू । भारथ भएउ झिलमिल आनन्दू ।5।
मानत भोग गोपीचन्द भोगी । लै उपसवा जलंधर जोगी ।6।
लै कान्हहि भा अकरूर अलोपी । कठिन बिछोउ जिऐ किमिगोपी ।7।

सारस जोरी किमि हरि मारि गएउ किन खग्गि ।
झुरि-झुरि पाँजरि धनि भई बिरह कै लागी अग्गि ।।

शब्दार्थ : चितउर-चित्तौड़ । सुआ-तोता । छरा-छल । करन-कर्ण । अकरूर-अक्रूर । खग्गि-सारस युगल का मादा।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ जायसी द्वारा रचित 'पद्यावत' के नागमती वियोग खण्ड से लिया गया है ।

प्रसंग : राजा रत्नसेन तोते के मुँह से पद्यावती का रूप वर्णन सुन उसके लिए योगी होकर निकल पड़ा । पट्टमहिशी नागमती अपने प्रिय का पंथ जोहती है और विरह से विकल होती है । इसी व्यथित मनोदशा में वह एक दिन प्रलाप कर उठती हैं । इस विलाप को हिन्दी साहित्य में अद्वितीय माना गया है ।

काव्यार्थ : विरहिन नागमती चित्तौड़ की राह ताक रही थी । प्रियतम रत्नसेन जो गये तो लौट कर नहीं आए। वे किसी नागरी नारी के सम्मोहन में पड़ गए हैं । उसने मोहित करके उनका चित्त मेरी ओर से हर लिया हैं। उसने मोहित करके उनका चित्त मेरी ओर से हर लिया है । हीरामन तोता काल बनकर प्रियतम को ले गया। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मानो मेरे प्राण ही ले गया । वह तोता वामन रूप में नारायण बनकर आया और राज करते हुए राजा बलि को छल से ले गया । उसने छल करके कर्ण की परीक्षा ली, जिससे अर्जुन को उसके कवच से आनन्द प्राप्त हो । गोपीचन्द भोगों में फँसे थे । जोगी-जालन्धर नाथ उन्हें लेकर चले गए । कृष्ण को लेकर अक्रूर गायब हो गया । कठिन वियोग में गोपियाँ कैसे जीवित रहेगी? सारस युगल में से एक को वह क्यों हर ले गया? हरना ही था तो खगी अर्थात मादा को मार क्यों नहीं गया?

विरह की आग में झुलस कर बाला सूख-सूख कर कंकाल मात्र रह गयी है ।

विशेष :

(1) प्रेम और प्रतीक्षा साहित्य की प्रिय वर्णनीय वस्तु है । जायसी के पद्यावत में यह तथ्य खूब उभरा है । जायसी को वियोग वर्णन में निपुणता हासिल है । नागमती चित्तौड़ का पंथ निहारती रहती है । वह राजा के जाने के कारणों पर विचार करती है । नागमती का विरहाकुल गन इस नतीजे पर पहुँचता है कि हीरामन तोता राजा को बहलाकर ले गया। जायसी भारतीय जनजीवन के गहन ज्ञाता हैं । रानी नागमती के उद्गार में वह कई जनप्रचलित प्रसंगों की चर्चा करते हैं । हीरामन तोते की वह वामन रूप नारायण से तुलना करता है । संशयाकुल नागमती को तोता उस इन्द्र की तरह लगता है जो अपने पुत्र अर्जुन के रक्षार्थ कर्ण से ब्राह्मण रूप में कवच कुण्डल हर लेता है । रानी को इस प्रसंग में अक्रूर का स्मरण भी आता है जो कृष्ण को मथुरा बुला ले गया था । दो अधारलियों में कवि ने चार दृष्टान्तों से छल की महिमा का स्मरण किया है । कहते हैं कि प्यार और युद्ध में कुछ भी निषिद्ध नहीं है । मध्यकालीन नायक एक साथ कई प्रियाओं के साथ प्रेम का निर्वहन करता था । जायसी ने सपत्नी-जन्य मनोविज्ञान का चित्रण नागमती के विरह के प्रसंग में खूबसूरती से किया है । पुरुष प्रधान परम्परा में नारी की स्थिति एक सेविका-मात्र की होती है । इसीलिए नागमती अपने विरह और विलाप में सामान्य जन साबित होती है । शुक्ल जी ने जायसी की भूमिका में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि नागमती अपनी वियोगदशा में कहीं से प्रधान रानी प्रतीत नहीं होती हैं । नागमती

के विरह की जो एक सार्वकालिक टीस है वह उसके साधारणीकरण में निहित है । नागमती के विरह में सारा जीव जगत विरही है । नागमती की यह आत्मस्वीकृति कि मुझे उस प्रिय वियुक्त सारस की तरह क्यों छोड़ गए? यहाँ प्रश्न में यह उत्तर अन्तर्भुक्त है कि प्रियतमविहीन जीवन का विकल्प 'मरण' है । इस पंक्ति में वियोग के उस चरम क्षण की ओर संकेत है जिसे देखकर आदि कवि वाल्मीकि रामायण की रचना की ओर उन्मुख हुए थे ।

(2) प्रस्तुत पद्यांश प्रसंगगर्भत्व का उत्तम दृष्टान्त है ।

(3) कवि ने पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधी भाषा में विवेच्य पद की रचना की है । अवधी भाषा का सौश्ठव यहाँ खूब उभरा है । जायसी ने सात-सात चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रखा है ।

(4) सारस पक्षी अपने जीवनकाल में एक ही बार अपने जीवनसंगिनी का वरण करता है । मुगल बादशाह जहाँगीर सारस के इस गुण पर मुग्ध थे । प्राचीन महाकाव्यों में इस पक्षी का चित्रण क्रौंच के रूप में उपलब्ध होता है। जायसी भारतीय पक्षियों के गुण धर्म स्वभाव एवं व्यवहार के ज्ञाता थे ।

बोध प्रश्न (घ)

14. निम्नलिखित पद की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

भएउ नरायन बारन करा । राज करत बलि राजा छरा
करन बान लीन्हेउ कै छंदू । भारथ भएउ झिलमिल आनन्दू
मानत भोग गोपीचन्द भोगी । लै उपसवा जलंधर जोगी
लै कान्हहि भा अकरूर अलोपी । कठिन बिछोउ जिऐ किमिगोपी
सारस जोरी किमि हरि मारि गएउ किन खग्गि ।
झुरि-झुरि पाँजरि धनि भई विरह के लागी अग्गि ।।

6.8 जायसी का मूल्यांकन

'पद्यावत' हिन्दी साहित्य का मुकुटमणि है । इसके रचनाकार का अध्ययन असीम था । इस कृति के निर्माता ने कहीं-कहीं से भाव ग्रहण किए हैं इस पर अद्यावधि विमर्श जारी है । पद्यावत में नगर वर्णन, षडऋतु वर्णन, बारहमासा, नख-शिख वर्णन केवल रूढिपालन के रूप में नहीं मिलता है । उसमें कवि की कल्पना सहृदयता के सहारे मार्मिक एवं करूण दृश्य-विधान खड़ा करती है । पदमावत में प्रकृति का प्रतीकात्मक उपयोग है, किन्तु वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती है । जायसी के नख-शिख वर्णन की विशेषता यह है कि वह मांसल होते हुए भी मनुष्य की पाशविक वृत्तियों को उत्तेजित नहीं करता है । पद्यावत का नागमती-विरह वर्णन अत्यन्त मार्मिक है । उसकी मार्मिकता का आधार मध्यकालीन भारतीय नारी की विडम्बना और विवशता है । नागमती मध्यकालीन सामान्य नारी का रूप है । पद्मिनी परम सत्ता का प्रतीक है । रतनसेन साधक का प्रतीक है । राघव चेतन शैतान का प्रतीक है । कथा का वितान एक साथ लौकिक एवं लोकोत्तर दो धरातलों पर चलता है । इसीलिए पद्यावत को प्रतीकात्मक महाकाव्य कहा जाता है ।

पद्यावत में हठयोग, कुंडलिनी-जागरण, रसायन-साधना का पर्याप्त प्रभाव है । वैष्णव सहिष्णुता और अंहिसा का भी संदेश है । हिन्दू पौराणिक पात्रों एवं मिथकों का भरपूर सदुपयोग है । इस्लाम के एक सम्प्रदाय चिश्तिया पंथ की सूफी साधना उसकी रचना की प्रेरणा है । इस प्रकार पद्यावत मध्यदेश की प्रचलित सभी आस्थाओं का रूप भी प्रस्तुत करता है ।

जायसी ने इस प्रेमकथा को आधिकारिक एवं आनुशंगिक कथाओं के ताने-बाने में बहुत बारीकी से गूँथा हैं । पद्यावत आद्यंत 'मानुष-प्रेम की महिमा की व्यंजना करता है । हीरामन तोता की वाणी :

मानुष प्रेम भएऊँ बैंकुठी । ना त काह छार भरि मूठी ।

रचना के अन्त में यह छार भरि मुठी फिर आती है । अलाउद्दीन के लिए वह मुठी भर ठंडी राख है ।

पदमावत 'प्रेम की पीर' की व्यंजना का विशद प्रबन्ध काव्य है । इसकी महत्ता का ही प्रमाण है कि मालिक मुहम्मद जायसी की पदमावत के पठन-पाठन की ओर हिन्दी और अ-हिन्दी भाषियों की रूचि दिन-दिन बढ़ रही है ।

6.9 सारांश

इस इकाई में आपने भक्ति आन्दोलन की प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य सौन्दर्य का आस्वादन किया । जायसीकालीन भारत से परिचित होने के साथ ही उनकी जीवनी एवं रचनाओं के विषय में भी आपने जानकारी प्राप्त की है ।

आपने यह भी जान लिया है कि जायसी की प्रेम भावना का आधारभूत सारांश क्या है तथा उसकी सार्वकालिकता का रहस्य क्या है । इस पाठ में आपने जायसी की दार्शनिक-दृष्टि से भी परिचय प्राप्त किया है ।

जायसी सूफी काव्य-परम्परा के अद्वितीय कवि हैं । उनके सौन्दर्य-वर्णन ने भारतीय आख्यान परिपाटी को व्यापकता एवं गहराई दोनों प्रदान किए हैं । जायसी ने सूफी सिद्धान्तों के ढाँचे में आख्यान को इस सफाई से पिरोया है कि वह प्रतीकात्मक हो उठी हैं प्रतीकात्मकता में दोहरापन होता है । वह प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों अर्थ देती है । पद्यावती मानुषी प्रेम के साथ-साथ अलौकिक सत्ता का भी आभास देती है । नागमती का विलाप भारतीय दाम्पत्य की सीमा और सामर्थ्य दोनों का अद्भुत मिश्रण है ।

जायसी के अभिव्यंजना प्रणाली के अन्तर्गत काव्यरूप, काव्यभाषा, अलंकारयोजना, छंदयोजना पर सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । जायसी की कविता सार्वभौम मानवता की स्थापना की आतुर-पुकार है । विश्व-समाज के संकीर्ण स्वार्थ ने मानवता के समक्ष जो तमस एवं चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं; उसका समाधान जायसी ने अपने महाकाव्य में प्रस्तुत किया है । अत: हिन्दी भाषा की सामासिक-समाहार शक्ति का प्रतीक है जायसी । उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि से हिन्दी भाषा का भक्तिकाल अनुपम हो उठा है ।

6.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-नागरी प्रचारिणी सभा काशी
2. जायसी ग्रन्थावली-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -नागरी प्रचारिणी सभा काशी

3. जायसी - विजय देव नारायण - हिन्दुस्तानी एकेदमी सभा, इलाहाबाद
4. पद्यावत - डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल-साहित्य सदन झाँसी
5. जायसी - रामपूजन तिवारी - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली
6. पदमावत का अनुशीलन - इन्द्रचन्द्र नारंग-लोकभारती प्रकाशन : इलाहाबाद
7. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी - राजकमल प्रकाशन दिल्ली
8. दूसरी परम्परा की खोज - नामवर सिंह - राजकमल प्रकाशन दिल्ली

6.11 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न क

1. क
2. क
3. क
4. देखिए - 3.3

बोध प्रश्न ख

5. (क) 1 (ख) 3 (ग) 2 (घ) 3
6. देखिए - 3.5.1
7. देखिए - 3.5.2
8. क
9. ग
10. ख

बोध प्रश्न ग

11. (क) 2 (ख)1 (ग)1
12. देखिए - 3.6.3
13. देखिए - 3.6.1

बोध प्रश्न घ

14. देखिए - 6.7

इकाई- 7

तुलसीदास

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 युग परिवेश

7.3 जीवन परिचय तथा रचनाएँ

बोध प्रश्न

7.4 भक्ति भावना

7.5 तुलसी का भाव पक्ष

बोध प्रश्न

7.6 अभिव्यंजना शिल्प

7.6.1 काव्य रूप

7.6.2 काव्य भाषा

7.6.3 अलंकार योजना

7.6.4 छन्द विधान

बोध प्रश्न

7.7 तुलसीदास जी के पदों का वाचन एवं व्याख्या

7.8 तुलसी काव्य का मूल्यांकन

7.9 सारांश

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.11 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की राम भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास को उनके संपूर्ण वैशिष्ट्य के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्तिभावना, उनके विभिन्न काव्यों का भाव सौन्दर्य और अभिव्यंजना सौन्दर्य का आस्वादन इस इकाई में आप कर सकेंगे । इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- तुलसीदास जी के युगीन परिवेश,
- तुलसीदास जी के जीवन एवं उनकी कृतियों,
- तुलसीदास जी की भक्ति पद्धति एवं उनकी दार्शनिक विचारधारा,
- तुलसीदास जी के काव्य के भाव पक्ष अर्थात अनुभूति पक्ष का रसास्वादन,
- तुलसीदास जी के काव्य के अभिव्यंजना शिल्प का परिचय प्राप्त करते हुए

- भक्तिकाल के परिप्रेक्ष्य में तुलसी काव्य के महत्व को प्रतिपादित कर सकेंगे । इसके अतिरिक्त युग में तुलसी काव्य की प्रासंगिकता से आप अवगत हो सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में गोस्वामी तुलसीदास जी तथा उनके साहित्य की विशेषताओं पर विस्तृत रूप से चर्चा करना ही अभीष्ट होगा । वस्तुत: भक्तिकाल की सगुणभक्ति धारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास जी का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही साहित्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । बाबा नरहरिदास के शिष्य तुलसीदास जी के काव्य का अनुभूति पक्ष जितना सशक्त है, अभिव्यक्त पक्ष भी उतना ही सुदृढ़ है । प्रस्तुत इकाई में आप उनके जीवन और विशद कृतित्व के इन दोनों ही पक्षों से अवगत होंगे । तुलसीदास जी के आराध्य मर्यादापुरूषोत्तम राम हैं । अत: उनके मर्यादित जीवन-चरित्र पर काव्य लिखने वाले कवि अपने युग के अमर्यादित परिवेश से कैसे चिंताग्रस्त न होते ।उनका संपूर्ण कृतित्व तद्युगीन मर्यादाहीन समाज को सही दिशा की ओर ले जाने वाला है । भक्ति का विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में फैल रहा था और लोग वर्णधर्म, आश्रमधर्म, कुलाचार, संप्रदायगत-भेदभाव में उलझकर लोकधर्म भूल रहे थे, तब ऐसे में मर्यादापुरूषोत्तम राम का अवलंब लेकर ही तुलसीदास जी ने समाज को सही जीवन - दिशा दिखाई और कवि धर्म का पालन किया । तुलसीदास जी की इसी लोकमंगलकारी भक्ति भावना और दार्शनिकता का विवेचन इस पाठ में किया गया है । इस पाठ के अध्ययन से आपको गोस्वामी तुलसीदास जी की लोक कल्याणकारी समन्वयवादी दृष्टि की तो जानकारी मिलेगी ही, साथ ही काव्य सौन्दर्य की भी जानकारी मिलेगी । काव्य की भाषा, काव्य-रूप, अलंकार विधान, छंद विधान के विषय में भी आप जान सकेंगे । तुलसीदास जी के कुछ विशिष्ट पद व्याख्या सहित इस पाठ में दिए जा रहे हैं ताकि आप उन पदों का साहित्यिक वैशिष्ट्य तो जान सकें, साथ ही व्याख्या करना भी जान जाएं । इन सभी परिप्रेक्ष्यों में तुलसी साहित्य की चर्चा विस्तार से करना ही प्रस्तुत पाठ में अभीष्ट है ।

7.2 युग परिवेश

मध्यकाल के लगभग समस्त भक्त कवियों की कृतियों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश का प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है । अपनी समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही कबीर, तुलसी, सूर

आदि कवियों ने अत्यंत सशक्त भाषा में काव्य-सृजन किया और तत्कालीन समाज को तो प्रभावित किया ही, साथ ही आज के युग को भी अपने साहित्य द्वारा प्रभावित कर सकने में वे समर्थ हो सके । तुलसीदास जी के काव्य में भी हमें तदयुगीन परिवेश के दर्शन होते हैं । तुलसीदास जी की जन्मतिथि 1532 ई० (1589) विक्रमी संवत् के लगभग देश पर मुगलों का शासन था । विद्वानों के अनुसार हुमायूँ का समय 1530 से 1556 ई० तक का है । अत: जिस समय तुलसीदास जी का जन्म हुआ उस समय राजनीतिक परिस्थितियों के लिए हुमाँयु ही पूर्णत: उत्तरदायी था । 1556 ई० में हुमायूँ की मृत्यु के उपरांत तेरह वर्षीय अकबर को

राजसिंहासन पर बैठाया गया । 1556 ई. में तुलसीदास जी की आयु भी लगभग 24 वर्ष ठहरती है । तात्पर्य यह है कि अपनी बाल्यावस्था में यदि तुलसीदास जी ने हुमायूँ के समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ देखी, तो अपनी युवावस्था में उनका साक्षात्कार अकबर कालीन राजनीतिक व्यवस्था से हुआ । मुगलों का शासन सैनिक शासन था तथा शासन का लक्ष्य नितांत संकीर्ण और भौतिक था। मुस्लिम फौज का साधारण सिपाही या छोटे मोटे सरकारी अधिकारी भी स्वयं को शासक जाति का अंग समझने के कारण हिन्दू जनता पर अत्याचार करते रहते थे । राजनीतिक जीवन की इसी उथल-पुथल ने तुलसीदास जी को भी प्रभावित किया । उनकी 'कवितावली' तथा 'मानस' का उत्तरकाण्ड इसका प्रमाण है । तुलसीदास क्योंकि स्मार्त वैष्णव थे, अत: उनके लिए तो म्लेच्छों की शासन व्यवस्था वैसे भी अच्छी नहीं हो सकती थी । तुलसीदास अपने समय की राजनीतिक परिस्थिति से पूर्णत: असंतुष्ट थे । भक्तिकालीन सामाजिक परिवेश पर यदि कबीर आक्रोशात्मक विचार व्यक्त करते हैं, तो तुलसीदास जी भी अपनी 'कवितावली' और मानस के माध्यम से ग्लानि व्यक्त करते हैं ।

"ऊंचे नीचे, बीच के, धनिक, रंक, राजा, राय । कठिन बजाय, करि डीठि, पीठि दई है।"

अर्थात उत्तम, मध्यम और अधम, धनी,

दरिद्र बड़े बड़े राजा तथा छोटे राजा सभी अनदेखी कर रहे हैं । वे जानबूझकर सत् कार्यो को त्यागकर असत् कार्यो में प्रवृत्त हो गए हैं । उन्हें प्रजा से कोई लगाव नहीं है । लोग वर्णाश्रम धर्म, वैदिक धर्म का पालन करना भूल गए हैं और मोहांध में डूबे हैं । कलियुग में सभी को लोभ ने ग्रस लिया है और शुभ कार्य भुला दिए गए हैं -

'भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म । सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलि धर्म ।'

समाज में निरंतर फैलती अनैतिकता अनाचार और अभद्र आचरण ने तुलसीदास जी के सौम्य व्यक्तित्व को पीड़ा पहुँचाई और परिणाम स्वरूप, तुलसीदास जी ने अपनी रचनाओं में समाज के संभावित मर्यादामंडित रूप को चित्रित कर सकने का साहस किया । तुलसीकालीन धार्मिक परिवेश भी अत्यंत विकृत था । समाज में अनेक धार्मिक संप्रदाय थे जो स्वयं को श्रेष्ठ और अन्य को हीन बताने में समय बिताया करते थे । धार्मिक सिद्धांत ढकोसले का रूप धारण कर चुके थे । अंधविश्वासी जनता ने धर्म में आडम्बर और मिथ्यावाद को स्थान दिया । तुलसीदास जी जैसे धर्म-वीरों, मर्यादाशील और सौम्य भक्त के लिए यह परिवेश निश्चित रूप से ही व्यथित करने वाला था । उनके समय की आर्थिक परिस्थिति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि -

'वेद धर्म दूरि गये, भूमिचोर भूप भये ।

तुलसीदास जी के समय के साहित्यिक परिवेश का भी अपना विशेष महत्व है । उनके समय में काव्य के न केवल कला पक्ष को सौष्ठवपूर्ण बनाया गया अपितु भाव पक्ष को भी अत्यंत रोचक और वैविध्यपूर्ण बनाया गया। कह सकते हैं कि तुलसीयुगीन साहित्यिक परिवेश अपने संपूर्ण कला कौशल के साथ उद्भासित हो रहा था और तुलसीदास जी ने उसका भरपूर लाभ भी उठाया । वस्तुत: गोस्वामी तुलसीदास जी की विचारधारा का निर्माण करने में तथा

मंगलकारी साहित्य सृजन करने में तुलसीदास जी के युग- परिवेश का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

7.3 जीवन-परिचय तथा रचनाएँ

गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन-चरित्र का सबसे प्रामाणिक रूप अंतसाक्ष्य के आधार पर ही दिया जा सकता है । उनके जीवन से संबंधित अनेक उक्तियाँ उनकी रचनाओं में मिलती हैं जो उनके जीवन संबंधी तथ्यों को प्रमाणित करती हैं । गोस्वामी जी का जन्म 1532 ई. अर्थात व 1589 वि.संवत में कस्बा राजापुर (जिला बाँदा) में हुआ था । इनके पिता का नाम पंडित आत्माराम था और माता का नाम हुलसी था । यद्यपि पिता का नामोल्लेख इनकी किसी भी कृति में नहीं मिलता परन्तु माता का उल्लेख इनकी कृतियों में मिलता है 1 -

'रामहि प्रिय पावन तुलसी सी । तुलसीदास हितहिय हुलसी सी ।'

इसका स्पष्ट अर्थ है कि रामकथा, तुलसी के लिए माता हुलसी के ह्रदय के समान है । अनेक बहिस्साक्ष्यों में भी तुलसीदास जी की माता का नाम हुलसी मिलता है जो परम्परापुष्ट है । इनके विषय में एक प्रसिद्ध जनश्रुति यह भी है कि ये अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा हुए थे । अत: इनके ज्योतिषाचार्य पिता आत्माराम ने इन्हें जन्मते ही अशुभ मानकर दासी के हवाले कर दिया । इनको जन्म देते समय प्रसव-पीड़ा से इनकी माता का भी देहांत हो जाने पर इनके पिता का क्रोध और भी स्वाभाविक हो गया । इनका बचपन का नाम रामबोला था । कतिपय जीवनियों और जनश्रुतियों के अनुसार जन्म लेते ही इन्होंने राम नाम का उच्चारण किया था इसीलिए इनका नाम रामबोला रख दिया गया । कुछ बड़े होने पर जब ये बाबा नरहरि की शरण में गए तब तुलसी के पौधे के नीचे सोते हुए इनके मस्तक पर तुलसी के पत्तों को पड़ा हुआ देखकर बाबा नरहरिदास ने ही इनका नामकरण तुलसीदास कर दिया । इन्होंने अपनी रचनाओं में दोनों ही नामों का उल्लेख किया है । -

1. राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम । "
2. राम नाम को कलपतरू कलि कलयान निवास ।
   जो सुमिरत भयो भोग ते तुलसी तुलसीदास ।। "

परम्परानुसार गोस्वामी जी यौवनावस्था में संस्कृत भाषा और विविध शास्त्रों का पांडित्य प्राप्त कर काशी आ गए । इनकी विद्वता से प्रभावित होकर पास के गांव के किसी ब्राह्मण ने अपनी पुत्री रत्नावली का विवाह इनसे कर दिया । जनश्रुति के अनुसार रत्नावली से उन्हें विशेष मोह था । इतना कि एक बार जब रत्नावली उन्हें बिना बताए उनकी अनुपस्थिति में मायके चली गई तो ये उनके वियोग में अत्यधिक व्याकुल हो गए और आधी रात को ही बाढ़ से आप्लावित नदी को पार कर रत्नावली के गाँव जा पहुँचे । वहाँ ससुराल पक्ष द्वारा किए जाने वाले व्यंग्य से घबराकर ये सीधे रास्ते से तो घर में प्रविष्ट नहीं हुए बल्कि घर के छज्जे पर लटक रही रस्सी को पकड़कर ऊपर रत्नावली के कक्ष में जा पहुँचे । रत्नावली उस समय इन्हें देखकर हैरान हुई और आने के साधन को जानने पर तो अवाक ही रह गई क्योंकि जिसे ये रस्सी समझकर ऊपर आए थे वह साँप था । तुलसीदास जी की वासनांधता की यह पराकाष्ठा थी । उस समय रत्नावली इन्हें बहुत फटकारा और कहा कि

" अस्थि चर्ममय देह मम तासों ऐसी प्रीति ।

जो होती श्रीराम मेंह होती न तौ भवभीति ।। "

कहते हैं कि पत्नी द्वारा की गई इस भर्त्सना के बाद से ही तुलसीदास जी का मोहांध मन सांसारिक आकर्षण से विरक्त हो गया और वे रामभक्ति में लीन हो गए । अपनी वृद्धावस्था में उन्हें एकबार भयंकर बाहु-पीड़ा का सामना करना पड़ा था जिसका उल्लेख कवितावली में तो हुआ ही है, 'हनुमान' बाहुक तो इस पीड़ा के शमन हेतु ही लिखी गई है । पीड़ा की अनुभूति इतनी

तीव्र थी कि वे कहते हैं -

"पाँव पीर, पेट पीर, बाहु पीर मुंह पीर ।

जरजर सकल शरीर पीर भई है । "

परन्तु इतने पर भी वे विचलित नहीं हुए और रामभक्ति करते रहे । कष्ट सहिष्णु विनम्र और दृढ़विश्वासी सच्चे भक्त गोस्वामी तुलसीदास ने अपने जीवनकाल में ही यश प्राप्ति कर ली थी । अंततः संवत 1680 में गंगा नदी के किनारे सावन मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को उन्होंने अपने इस भौतिक शरीर का त्याग कर दिया। इस विषय में भी निम्नलिखित दोहा मिलता है -

संवत सोलह सौ असी असी गंग के तीर ।

श्रावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ।।"

रचनाओं का परिचय :-

गोस्वामी तुलसीदास जी 'लोकमानस' के कवि थे । इसका ज्ञान उनकी रचनाओं के वर्ण्य विषय के अवलोकन से ही हो जाता है । गोस्वामी जी ने छोटे बड़े सब मिलाकर कुल बारह ग्रंथों की रचना की । इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है ।

1. **रामललानहछू -** राम के यज्ञोपवीतोत्सव के पूर्व होने वाले 'नहछू के उत्सव को लक्ष्य करके ही रामलला नहछु' लिखा गया है । इस संस्कार में यज्ञोपवीत से पहले नाइन द्वारा बालक के पैर के नाखून काटकर महावर लगाई जाती है । इसका रचनाकाल संवत 1611 है । इसकी भाषा अवधी है तथा यह एक लघु खंडकाव्य है ।
2. **वैराग्य संदीपनी -** इस कृति में संत स्वभाव का वर्णन, संतों के लक्षण, महिमा, सच्चे संतों के गुण, वैराग्य का प्रतिपादन तथा शांति लाभ का निर्देश हुआ है । इसका रचनाकाल संवत 1614 है । इसकी भाषा अवधी मिश्रित ब्रजभाषा है ।
3. **रामाज्ञा प्रश्न -** रामाज्ञा प्रश्न के समस्त काण्डों की कथा के साथ शकुन - अपशकुन पर विचार किया गया है । जिससे व्यक्ति आने वाले सुखों का तो ज्ञान प्राप्त कर ही ले साथ ही अनिष्ट को भी जानकर उसके निवारणार्थ प्रयत्न कर ले । इसकी रचना संवत 1621 में हुई । इसकी भाषा ब्रज है ।
4. **जानकी मंगल -** जानकी मंगल का वर्ण्य विषय सीता-राम का शुभ विवाह है । यह एक खंडकाव्य है जिसकी रचना संवत 1627 में की गई । इसकी भाषा पूर्वी अवधी है ।
5. **रामचरितमानस -** रामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास जी का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है जो हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथ का भी स्थान प्राप्त करता है । राम चरित के माध्यम से

तुलसीदास जी ने इसमें लोक कल्याणकारी भावना को स्थान दिया है । इसकी रचना अवधि संवत 1631 है । इसकी भाषा अवधी है ।

6. **पार्वती मंगल-**पार्वती मंगल एक खण्ड काव्य है तथा शिव एवं पार्वती का विवाह इसकी वर्ण्य वस्तु है । इसमें पार्वती जी के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा का वर्णन मिलता है । इसकी रचना अनुमानत: संवत 1643 मे हुई तथा इसकी भाषा ठेठ पूर्वी अवधी है।
7. **गीतावली -** गीतावली सात काण्डों में विभक्त एक गीति काव्य है । मानस की ही भांति इसमें भी सम्पूर्ण रामकथा वर्णित है । इसकी रचना सम्भवत: 1653 में हुई और इसकी भाषा ब्रज है ।
8. **कृष्ण गीतावली -** कृष्ण गीतावली में कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित पद हैं, जिसमें अधिकांशत भ्रमर गीत से सम्बन्धित पद हैं । इसकी भाषा ब्रज है और इसका रचना काल संवत् 1658 माना जाता है ।
9. **बरवै रामायण -** बरवै रामायण' में भी रामकथा को सात काण्डों में विभक्त किया गया है । यह स्फुट बरवै छंदों का संग्रह है । इसमें श्रृंगार और भक्ति रस की प्रधानता है । संवत् 1661 से संवत् 1660 के बीच लिखे छंदों को इसमें संग्रहीत किया गया है तथा इसकी भाषा अवधी है ।
10. **दोहावली -**दोहावली दोहों और सोरठों का संग्रह है । इसमें भक्ति, नीति, धर्म, आचार-विचार, रीति-नीति, ज्ञान-वैराग्य रामनाम महात्म्य, जीव, माया, काल, जग, ज्ञान सम्बंधी विषयों के दोहे हैं । इसका रचना काल संवत् 1614 से 1660 संवत तक का माना गया है तथा इसकी भाषा ब्रज है ।
11. **कवितावली -** कवितावली कवित्त छंदों का संग्रह है । इसमें सात काण्डों यथा - बालकाण्ड-अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुंदरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड में संपूर्ण कथा वर्णित है । कलियुग वर्णन की दृष्टि से इसके उत्तरकाण्ड का विशेष महत्त्व है ।
12. **विनय पत्रिका-**विनय पत्रिका गोस्वामी जी की अंतिम कृति मानी जाती है । इसमें उनके व्यक्तिगत अनुनय-विनय के पद है । यह एक याचिका के रूप में लिखी गई है । तुलसीदास जी राम परिवार के समस्त सदस्यों से याचना करते हैं कि वे राम से तुलसी को अपनी शरण में लेने के लिए कहें । न केवल राम परिवार से अपितु विभिन्न देवी देवताओं और विशेष रूप से हनुमान के समक्ष भी वे यह याचना करते हैं। इसका रचनाकाल भी संवत् 1661 से संवत् 1660 के बीच माना गया है । इसकी भाषा ब्रज है ।

बोध प्रश्न क

सही उत्तर पर निशान लगाइए -

1. तुलसीदास जी का जन्म संवत् ये है
   अ 1589 संवत् ब 1554 संवत्
   स 1532 संवत् द 1558 संवत्
2. रामचरितमानस की भाषा है -

अ अवधी

ब पूर्वी अवधी

स ब्रज

3. तुलसीदास जी ने अपनी बाहु-पीड़ा का वर्णन अपनी किस कृति में किया है -

अ कवितावली ब गीतावली

स हनुमान बादुक द बरवै रामायण

4. तुलसीदास जी ने कुल मिलाकर कितने ग्रंथ लिखे हैं ।

अ 10 ब 12

स 11 द 09

5. तुलसीदास के बचपन का नाम क्या था?

.....

.....

.....

.....

7.4 भक्ति भावना

तुलसी का युग भक्ति आंदोलन का युग था । देश की स्थिति ऐसी थी कि निराश जनता भगवान के अतिरिक्त अपना कोई भी अन्य सहारा नहीं देख रही थी । समाज में भक्तों के दो वर्ग थे जो भक्ति के स्रोत, आराध्य के स्वरूप, साधना आदि के आधार पर बने थे । एक वर्ग सगुण भक्ति धारा का था जिसकी दो प्रमुख शाखाएँ हुई- रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा तथा दूसरा वर्ग निर्गुण भक्ति धारा का हुआ जिसकी दो प्रमुख शाखाएँ हुई- ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा । ज्ञानमार्गी शाखा को संत काव्यधारा के नाम से भी जाना जाता है और प्रेममार्गी शाखा को सूफीकाव्यधारा के नाम से जाना जाता है । तुलसीदास सगुणोपासक रामभक्त थे । अपने युगधर्म को पहचानते हुए उन्होंने मर्यादापुरूषोत्तम राम की भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया । उन्होंने अनुभव किया कि दिशाहीन भ्रमित समाज के लिए निर्गुण ब्रह्म का उपदेश व्यर्थ है । मर्यादाहीन दिशाहीन समाज को राह पर लाने के लिए उन्होंने मर्यादापुरूषोत्तम राम की भक्ति का साधन अपनाया और लोकमंगलकारी उपदेश दिया । उन्होंने यह अनुभव किया कि व्यथित समाज को किसी निर्गुण ब्रह्म कीं नहीं अपितु दुखियों की पुकार सुनने वाले, तत्काल पहुँचकर उनकी रक्षा करने वाले, अधर्म का नाश करके धर्म की प्रतिष्ठा करने वाले किसी सगुण - साकार ईश्वर की आवश्यकता है । जनता को लोकरक्षक - वर्णाश्रम-धर्मपालक - मर्यादापुरूषोत्तम राम का अवलंब ही अपेक्षित है । अत: तुलसीदास जी ने राम की दास्यभक्ति की ।

शांडिल्य, नारद आदि भक्ति आचार्यो ने भगवान के प्रति परम प्रेम को ही भक्ति कहा है -

" सा परानुरक्तिरीश्वरे - शांडिल्यभक्तिसूत्र ।

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा - नारदभक्तिसूत्र ।

तुलसीदास जी के मतानुसार भी भक्ति प्रेम-स्वरूप है, राम के प्रति प्रेम ही भक्ति है -

" प्रीति राम सों नीति पथ चलिय रागरिस जीति ।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ।। "
तुलसीदास जी राम के प्रति भक्ति ऐसी ही अपेक्षित करते हैं जैसा प्रेम चातक को अपने मेघ से होता है । श्याम मेघ में चातक निष्ठा रखता है और अन्य सभी जलों को स्वयं के लिए त्याज्य समझता है । इसी प्रकार की भक्ति राम के प्रति भक्तों की होनी चाहिए । -
एक भरोसो एक बल, एक आस बिसवास ।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास । ।
प्रतीति, प्रीति और उत्तम रीति से श्रीराम के नाम का जप करना चाहिए ।
प्रीति प्रतीति सुरीति सों, राम नाम जपु राम
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम ।
तुलसी जी के भक्ति मार्ग की तीन विशेषताऐं ही ये हैं कि वह श्रुति सम्मत है, ज्ञान - वैराग्य युक्त है, तथा राम भक्ति का मार्ग हैं -
" श्रुतिसम्मत हरिभक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक ।
तेहि न चलई नर मोहबस कल्पहि पंथ अनेक ।। "
तुलसी के राम शील, शक्ति और सौन्दर्य के सम्मिश्रण हैं और इनकी शक्ति से ही भक्त को संसार से मुक्ति मिलना संभव है । उन्होंने अज्ञान, वेद-विरोध, श्रृंगार - भावना आदि का आख्यान करके श्रुति-सम्मत, ज्ञान-वैराग्य-युक्त रामभक्ति पर बल दिया ।
तुलसीदास जी का भक्ति सिद्धांत समन्यवादी है । वे यह कहते अवश्य हैं कि -
' अगुनहिं सगुनहिं नहीं कुछ भेदा । परंतु साथ ही वे निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन भी करते हैं ।
" हम लखि, लखहि हमार, लंखि हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच ।। "
परन्तु राम की सगुण भक्ति में भी भाव तो दास्य भक्ति का ही है -
" सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।
सांसारिक जीव अनेक प्रकार के दुखों से पीड़ित है । दुख की निवृत्ति ही उसके समस्त प्रयत्नों का उद्देश्य है । दुख चाहे ज्ञान द्वारा शमिल हो अथवा भक्ति द्वारा, उद्देश्य तो दुख का शमन ही है । लक्ष्य प्राप्ति का साधन वही श्रेष्ठ है जो सरल और सुगम्य है । तुलसीदास जी की दृष्टि में ज्ञान और भक्ति दोनों का ही भगवत् प्राप्ति में समान वैशिष्ट्य है -
" भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भवसंभव खेदा ।।
तथापि ज्ञान की अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है । भक्ति का मार्ग सुलभ है और आराध्य भक्त के ध्यान में सदैव विद्यमान रहते हैं ।
आराध्य या भजनीय के स्वरूप -भेद की दृष्टि से भक्ति दो प्रकार की है - निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। तुलसीदास जी सगुणोपासक भक्त हैं । तुलसीदास जी के काव्य में नवधा भक्ति के भी दर्शन होते हैं । भक्ति के समस्त वर्गीकरणों में नवधा भक्ति सर्वाधिक लोकप्रिय है । यथा -

" श्रवण कीर्तनं विष्णो स्मरण पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदन दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।। "

तुलसीदास जी ने इस नवधा भक्ति के विविध अंगों की विभिन्न स्थलों पर प्रसंगानुसार चर्चा की है -

1. **श्रवण -** सगुण तथा निर्गुण भगवान के प्रतिपादक शब्द को कानों से सुनना और उसका बोध करना ही श्रवण कहलाता है । तुलसीदास जी के अनुसार जो कान भगवान का गुणगान नहीं सुनते वे साँपों के बिल के समान हैं ।
   जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना ।
   श्रवनरंध्र अहिभवन समाना ।।
2. **कीर्तन -** भगवान के बोधक शब्द का उच्चारण जिव्हा से करना ही कीर्तन है । सगुणोपासक के लिए तो भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम आदि का उच्चारण ही कीर्तन कहलाता है । तुलसीदास जी के अनुसार जीव को समय रहते ही राम नाम का जाप कर लेना चाहिए क्योंकि संसार सागर से पार उतारने का एकमात्र साधन रूपी नींव उनका नाम ही है ।
   राम जपु राम जपु राम जपु बावरे,
   घोर भव नीरनिधि नाम निज नाँव रे ।।
3. **स्मरण -** भगवान के रूप, आकार, गुण आदि की स्मृति स्मरण है । भवसागर को पार करने के लिए राम का स्मरण मात्र ही पर्याप्त है -
   सुमिरत श्री रघुबीर की बाहें ।
   होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लांघत कोउ उतरत थाहैं ।।
   श्री राम नाम का भक्त के द्वारा स्मरण करने पर उसे दसों दिशाओं में शुभ मंगल और कुशल होते हैं ।
   राम नाम रति, राम-गति, राम नाम बिस्वास ।
   सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दहुँ दिसि तुलसीदास ।।
4. **पादसेवन -** भगवान और उनके भक्तों की सेवा, तीर्थ यात्रा आदि पाद सेवन है । तुलसीदास जी मन, वचन और कर्म से राम के चरणों में अपना सिर नवाते हुए कहते हैं-
   पुनि मन वचन कर्म रघुनायक ।
   चरन कमल बंदउँ सब लायक ।।
5. **अर्चन -** भगवान की विधिवत पूजा करना ही अर्चन है । तुलसीदास जी की रचनाओं में पूजा के अनेक स्थल हैं । स्वयं राम ने शिव जी की विधिवत पूजा की 'है -
   लिंग थापि बिधिबत करि पूजा ।
   सिव समान प्रिय मोही न दूजा ।।
6. **वंदन -** वन्दन का अर्थ प्रणाम, नमस्कार या स्तुति है । 'रामचरितमानस' और विनयपत्रिका में तो तुलसीदास जी ने वंदना से सम्बंधित अनेक पद गाए हैं । गुरू की भी वंदना करते हुए तुलसी कहते हैं-
   बंदउ गुरू पद पदुम परागा ।

सुरूचि सुबास सरस अनुरागा ।।

7. **दास्य -** भगवान को स्वामी और स्वयं को दास समझना ही 'दास्य भाव' है । तुलसीदास तो इतने अधिक विनीत हो जाते हैं कि कहते हैं ।

   राम ते बड़ो है कौन मोसों कौन छोटो ।
   राम ते खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ।।

   विनयपत्रिका में तुलसी अत्यंत दीन हीन होकर कहते हैं -

   " तू दयालू दीन हौं, तू दानि हौं, भिखारी ।
   हौं, प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी ।।
   नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों ।
   मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों ।।
   ब्रह्म तू, हौं, जीव, तू ठाकुर, हौं, चेरो ।
   तात, मात, गुरू, सखा तू सब निधि हितू मेरो ।।
   तोहि - मोहि नाते अनेक मानिये जो भाव ।
   ज्यों - त्यों तुलसी कृपालु ! चरन - सरन पावै ।।

8. **संख्या भाव -** इस भाव में आराध्य के प्रति बन्धु भाव की प्रधानता रहती है । सूरदास के काव्य में इस भाव की भक्ति मिलती है । परन्तु तुलसीदास जी ने क्योंकि आराधक - अराध्य के बीच 'दास्य - भाव' को महत्त्व दिया है अत: उनके काव्य में संख्या भाव के दर्शन नहीं होते ।

9. **आत्मनिवेदन -** भक्त द्वारा भगवान के प्रति आत्मसमर्पण ही आत्मनिवेदन है । तुलसीदास जी ने राम के प्रति अनेक बार इस भाव से भक्ति की है । तुलसीदास कहते हैं कि जो राम का स्नेह है और जो राम की अनन्य भक्ति में जो गति वाला है तथा राम के चरणों में जिसकी स्थायी प्रीति है, उसी को विधाता ने जगत् में जन्म लेने का फल दिया है ।

   राम स्नेही राम-गति, राम-चरन-रति जाहि ।
   तुलसी फल जग जनम को, दियो विधाता ताहि ।।

   इस प्रकार तुलसीदास जी की भक्ति विभिन्न सरस भाव लहरियों के बीच उठती है और जन मानस को तरंगित भी करती है ।

दार्शनिक विचार

तुलसीदास जी के दार्शनिक सिद्धान्तों के सम्बंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं । कोई उन्हें अद्वैतवादी मानता है तो कोई विशिष्टाद्वैतवादी । लेकिन तुलसीदास ने स्वयं इनमें से किसी भी एक बाद का प्रतिपादन नहीं किया है अर्थात किसी को भी पूर्ण न मानकर आंशिक रूप से ही सत्य माना है । वे कहते हैं -

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचाने ।।

अर्थात तुलसी विभिन्न मतों के आडम्बर में न पड़कर आत्मसाक्षात्कार पर बल देते हैं । इसीलिए उनके काव्य में कहीं तो शंकराचार्य का अद्वैतवाद दिखाई देता है, तो कहीं रामानुजाचार्य का विशिष्टद्वैत और कहीं पर इन सब वादों से हटकर उनके स्वयं के मौलिक विचार दिखाई देते हैं । जगत सम्बंधी तुलसीदास जी के विचार उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करते हैं-

गो गोचर जँह लगि मन जाई ।
सो सब माया जानेहु भाई ।।

परन्तु दूसरी तरफ तुलसीदास जी जगत को ब्रह्म का अंश स्वीकार करते हैं । जब ब्रह्म सत्य है, तो उनका अंश जगत असत्य कैसे हो सकता है और तुलसीदास जी तो वैसे भी सारे जगत को सियारामय जानकर ही प्रणाम करते हैं । जब सियाराम सत्य हैं तो 'सियारामय' जगत असत्य कैसे हो सकता है -

सियाराममय सब जग जानी ।
करहुँ प्रणाम जोरि जुगपानी ।।

यहाँ एक तथ्य और दृष्टव्य है । यदि तुलसी अद्वैतवादियों के अनुसार जगत को मिथ्या मानते तो उन्ही के समान मोक्ष की कामना भी करते, परन्तु तुलसीदास जी मोक्ष की अवहेलना करके भगवान राम की लीला स्थली इस जगत में रहने की ही कामना करते हैं ।

खेलिबे को खगमृग तरू किंकर द्वै रावरो हौं रहिहौं ।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं या बिनु परम पदहुँ दुख दहिहौं ।।

जो व्यक्ति ईश्वर का सानिध्य पाने के लिए इन रूपों की अभिलाषा करता हो, वह जगत को असत्य कैसे मान सकता है । 'केशव' कही न जाए का कहिए' जैसे पद शंकराचार्य की मायावाद का पोषण करते प्रतीत होते हैं परन्तु उनका वास्तविक अभिप्राय जगत के बाह्म रूप के प्रति विरक्ति उत्पन्न करना ही है ।

अद्वैतवाद के अनुसार माया ही वह कारण है जो ब्रह्म और जीव में भेद उत्पन्न करता है और उसी के कारण असत्य जगत सत्य प्रतीत होने लगता है । इस माया के जाल में पड़कर जीव अपने स्वरूप को भूल भ्रम के कारण अनेक दुख सहता है । यह माया वास्तव में ब्रह्म की चेरी है और संपूर्ण जीवों को अपने वश में रखती है । इस माया के जाल से मुक्ति प्राप्त करने का एक ही उपाय है - रामकृपा । रामकृपा होने पर ही माया जीव को मुक्त कर देती है । ऐसा इसलिए क्योंकि यह माया राम की दासी है । अत: राम जैसे स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन यह नहीं कर सकती -

अस कछु समुझि परत रघुराया ।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित, मोह न छूटै माया ।।

माया से तुलसी का वास्तविक अभिप्राय - सांसारिक आकर्षणों से है । ये आकर्षण जीव को सदैव भ्रम में डाले रखते हैं और परिणामस्वरूप जीव अपने आत्म - स्वरूप को भूलकर स्वार्थ-पूर्ति में ही लगा रहता है । निष्काम और परोपकारी जीव ही माया से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त करता है । माया के वश में पड़कर तो जीव, अपने अंशी तक को भूल जाता है -

सो मायाबस भयेउ गोसाई ।
बंधेउ कीर मरकट की नाई ।।

तुलसीदास जी ने माया से जीव की मुक्ति तभी संभव मानी है जब जीव विकारों को त्याग दे । इस प्रकार तुलसी जीव को अंश और ब्रह्म को अंशी मानते हैं । तुलसीदास जी के राम ब्रह्म हैं । वेदों, स्मृतियों और पुराणों में ब्रह्म के जितने भी विशेषण मिलते हैं, तुलसीदास जी के राम भी उन सभी विशेषणों को धारण करने वाले हैं। राम अनध, अद्वैत, अनवद्य अव्यक्त, अज अमित, अविकार आनन्द, स्वरूप सागर हैं -

अनध, अद्वैत, अनवद्य अव्यक्त, अज ।
अमित, अविकार आनन्द सिन्धो ।।

तुलसीदास जी ब्रह्म को निराकार और साकार दोनों मानते हैं । ब्रह्म ही जगत और जीव है इसलिए अद्वैत है परन्तु अवतार लेने पर द्वैत अर्थात सगुण बन जाता है । तुलसीदास जी ने निर्गुण रूप की अपेक्षा राम के सगुण रूप को ही महत्त्व दिया है । तुलसी के राम में मानवीय गुणों की प्रधानता है । उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलसीदास जी के दार्शनिक सिद्धान्त को किसी भी वाद विशेष की परिधि में बांधा नहीं जा सकता । उनमें सभी वादों के तत्व मिलते हैं । राम पूर्ण सत्य हैं और उन्हें निर्मल, निष्काम भक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । इस भक्ति का मूलाधार सत्संग, सदाचार, परोपकार, अनन्यता तथा लोक-कल्याण है । सदाचार पर आधारित भक्ति ही मानव जीवन की चरम उपलब्धि है।

7.5 तुलसी का भाव पक्ष

किसी भी कवि के काव्य के भाव पक्ष की सशक्तता का पता इस बात से चलता है कि वह काव्य के मार्मिक स्थलों को छू सका है या नहीं और यदि छू सका है, तो किस सीमा तक । कवि जितना भावुक होता है, उतना ही मर्मस्पर्शी स्थलों को व्यक्त करने में सफल भी होता है । भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की राम भक्ति शाखा के सर्वोपरि कवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी का काव्य मार्मिक स्थलों का भंडार है । इसका कारण यही है कि जो कथा और जो पात्र वे अपने काव्य के लिए चुनते हैं, वह मार्मिक हैं । राम का समस्त चरित्र एवं संपूर्ण जीवन ही सूक्ष्म, कोमल भावनाओं का संगम है । राम जन्म से ही मर्मस्पर्शी भावनाओं का जन्म हो जाता है । जैसे सूरदास कृष्ण यशोदा के प्रेम को लेकर वात्सल्य वर्णन करने में सफल हुए हैं वैसे ही तुलसीदास जी भी राम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की बाल लीला का मनोहारी चित्रण करने में पूर्णरूप से सफल हुए हैं ।

कबहूं ससि मांगत आरि करै, कबहूं प्रतिबिंब निहारि डरै ।
कबहूं करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ।।
कबहूं रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरै ।।

गीतावली हो चाहे कवितावली राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की बाल लीला के समस्त पद इस रूप के हैं । सूर के कृष्ण की भांति, तुलसी के राम अनेक तरह की नटखट बाल लीलाएं नहीं करते । तुलसीदास जी के राम मर्यादापुरूषोत्तम है, अत: बचपन से ही अत्यंत सौम्य और शीलवान हैं । राम और सीता के विवाह के समय के पद भी अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं । श्रृंगार रस से युक्त होते हुए भी इनमें कहीं मर्यादा का उल्लंघन नहीं है अपितु राम सीता यहाँ भी अत्यंत

शालीन रूप हैं । दुल्हा-दुल्हन के वेश में सजे राम-सीता का अलौकिक रूप अत्यंत मनोहर है । ऐसे में सीता क्योंकि शालीनतावश राम को दृष्टि उठाकर नहीं देख सकतीं अत: अपने कंगन के नग में ही श्री राम के दिव्य रूप का साक्षात्कार कर लेती हैं और अपने स्थान पर जड़ हो जाती हैं -

दुलह श्री रघुनाथ बने, दुल्हीं सिय सुन्दर मन्दिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ।।
राम को रूप निहारति जानकि कंगन के नग की परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।

श्रृंगार रस का पद है अवश्य किन्तु उदात्त भाव भी अनुभूति है । राम और सीता के विवाह सम्बंधी ऐसी अनेक उक्तियाँ रामचरित मानस में भी मिलती हैं । जनक वाटिका में सीता राम को और राम सीता को देखते हैं परन्तु, मर्यादा में रहकर । तुलसी अपने भावोद्वेग को सीमाहीन नहीं होने देते । विवाहोपरान्त राम कथा के भीतर जो मर्मस्पर्शी स्थल है, वह है - राम सुकुमार हैं और सीता सुकुमारी, जिन्होंने अपने पिता राजा जनक के महल में संसार के समस्त सुखों को भोगा है । जो कभी पैदल नहीं चलीं । लक्ष्मण भी हठवश राम सीता के साथ हो लिए हैं परन्तु वे भी अत्यंत कोमल बालक हैं । इस हृदय विदारक दृश्य का गोस्वामी जी ने रामचरितमानस, गीतावली और कवितावली तीनों में ही चित्रण किया है । सीता की विकलता को देखकर तो राम भी भाव विह्वल हो उठते हैं । कवितावली का वर्णन है -

पुर तें निकसीं रघुबीर-बधू धरि धीर दए मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ।।
फिरि बूझति है चलनो अब केतिक पर्नकटी करिहों कित है ।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियां अतिचारू चली जलच्वैं ।।

राम-सीता-लक्ष्मण के वन गमन से राजा दशरथ का हाल है । सुमन्त्र को बुलाकर राजा दशरथ कहते हैं कि राम, लक्ष्मण और सीता को लाकर मुझे दिखाओ और मूर्च्छित हो जाते है ।

अस कहि मुरूछि परा महि राऊ ।
रामु लखनु सिय आनि देखाऊ ।

चित्रकूट में राम-भरत मिलाप भी मर्मस्पर्शी स्थल है । आ. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार-' चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है, वह शील और शील का, स्नेह और स्नेह का नीति और नीति का मिलन है ।

'भरत की 'भ्रातृभक्ति की यहाँ पराकाष्ठा दिखाई देती है । राम लक्ष्मण के विश्राम स्थल को देखकर उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं । राम-सीता लक्ष्मण को वे हर हालत में वापस अयोध्या ले जाना चाहते हैं और राम के न मानने पर राम की चरण पादुकाओं को ही अपने शीश पर धारण कर अयोध्या ले जाते हैं और चौदह वर्ष तक राजसिंहासन पर सुशोभित कर उन पादुकाओं को ही श्री राम मानकर नगर का पालन करते हैं तथा स्वयं नगर के बाहर पर्णकुटि में रहते हैं । भ्रातृ-प्रेम में द्रविभूत ऐसा भाई निस्संदेह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। केवल भरत ही नहीं अयोध्यावासी भी जब वन में राम के दर्शन करते हैं तो चौदह वर्ष तक राम के साथ वन में रहने के लिए इच्छा व्यक्त करते हैं । वन में माताओं से सस्नेह भेंट करना विशेषकर

कैकयी से जो राम की निश्छलता की पराकाष्ठा है । राजा जनक भी अपनी पुत्री सीता को विवाहोपरान्त देखकर अत्यंत गौरान्वित अनुभव करते हैं और कहते हैं -

पुत्रि! पवित्र किए कुल दोऊ!

सुजस धवल जग कह सब कोऊ

इन सबसे भी अधिक मर्मान्तक प्रसंग वह है जब राम वियोग में राजा दशरथ का निधन हो जाता है और संपूर्ण अयोध्या

नगरी शोक सागर में डूब जाती है -

सहि न सके रघुबर बिरहागी । चले लोग सब व्याकुल भागी ।

करि बिलाप सब सेवहिं रानी । महाबिपति किमि जाइ बखानी ।।

सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा । धीरजहू कर धीरज भागा ।।।

फिर वन में माताओं के मुख से इस कारूणिक प्रसंग को सुनकर राम व्याकुल हो उठते हैं ।-

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ।

मरन हेतु निज नेहु बिचारी । भे अति विकल धीर धुरधारी ।।

राजा जनक द्वारा प्रबोधन देने पर राम शान्त होकर वन में ही मृत पिता का तर्पण करते हैं । अयोध्यावासियों, राजा जनक और माताओं सहित भरत पुन: अयोध्या लौट आते हैं । राम-सीता लक्ष्मण वनवास भोगते हैं । तुलसीदास जी के काव्य में ऐसे मार्मिक स्थलों की भरमार है । राम-सीता के वनगमन प्रसंग में जब राम-सीता वन प्रदेश के गाँवों से होकर गुजरते हैं तो गाँव की स्त्रियाँ भी राम-सीता के कोमल शरीर की और वन की कठोरता की तुलना कर द्रविभूत हो जाती हैं और परस्पर कहतीं हैं कि -

रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहुनहू तें कठोर हियोहै ।

राजहु काज अकाज न जान्यो कहयो तिय को किन कान कियो है ।।

ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।

आंखिन में सखि ! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है ।

इसी प्रकार वन के प्रवास के अंतिम वर्ष में रावण द्वारा सीता को हरकर ले जाने के प्रसंग में भी गोस्वामी जी ने भावातिरेकता का चित्रण किया है । राम सीता के वियोग में जंगल-जंगल भटकते हैं और सबसे, जड़ चेतन पदार्थो से पूछते हैं कि सीता कहाँ हैं, क्या किसी ने उसे देखा है -

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी ।

तुम देखी सीता मृगनयनी ।।

सीता की खोज में भटकते हुए जब घायल जटायु मिलते हैं तब पिता के पुराने मित्र जानकर राम उन्हें सादर प्रणाम करते हैं और उन्हें अपनी गोद में लेकर बैठते हैं । जटायु की मृत्यु पर वे उनका अंतिम संस्कार वैसे ही करते हैं जैसे कोई पुत्र अपने पिता का दाह संस्कार करता है । उस समय का वर्णन भी अत्यंत कारूणिक है । हनुमान जब लंका जाकर सीता की खोज लाते हैं और आते समय लंका नगरी को जलाकर आते हैं उस समय राक्षस -

राक्षसनियों की क्या दुर्दशा होती है उसका मार्मिक चित्रण देखते ही बनता है -

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहें,

जाति है परानी, गति जानि गजचालि है ।
वसन बिसारै मनि-भूषन संभारत न,
आनन सुखाने कहें क्यों हूं कोऊ पालि है?
'तुलसी' मंदोबै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै
काहु कान कियो न मैं क्ह्यो केतो कालि है ।
बापुरो विभीषन पुकारि बारबार कह्यो,
बानर बड़ी बलाइ धने धर धालिहै ।। "

राम-रावण युद्ध में जब लक्ष्मण शक्ति लगने से मूर्च्छित हो जाते हैं, उस समय राम का विलाप और उनकी ग्लानि को देखकर कठोर से कठोर हृदय का व्यक्ति भी व्याकुल हो जाए । राम सब उपाय करके हार जाते हैं और विपत्ति बँटाने वाले बंधु के अतिरिक्त उन्हें किसी और का थोड़ा सा भी सहारा नहीं है । उन्हें इस बात का दुख और भी सताता है कि घर जाकर माता कैकयी से भी कुछ न कुछ कह देंगे सीता को भी समझा लेंगे परन्तु विभीषण को जो वचन दिया है कि रावण से लंका लेकर उन्हें सौंपकर ही रहेंगे, उस वचन का क्या होगा ।-

मेरो सब पुरूपारथ थाको ।
विपति बंटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव! साँचे हूँ मोपर फेरयो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता ।।
गिरि कानन जैहें साखामृग, हौं पुनि अनुज संघाती ।
ह्वै है कहा विभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ।।

ये सब वर्णन तो राम कथा के अंतर्गत आते हैं । गोस्वामी जी को मनुष्य की अंत: प्रकृति की जितनी परख थी उतनी हिन्दी में और किसी कवि को नहीं । कैसे अवसर पर मनुष्य के हृदय में स्वभावत: कैसे भाव उठते हैं इसकी वे सटीक कल्पना करते थे । राम के अयोध्या लौटने पर जब सुग्रीव और विभीषण ने राम और भरत का मिलाप देखा तब उनके चित्त में क्या आया होगा, इसका कितना सटीक और सुंदर वर्णन तुलसीदास जी ने किया है-

सधन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट ।
त्यों सुग्रीव विभीषनहि - भई भरत की भेंट ।।

रास्ते भर राम के साथ रहने के कारण वे दोनों स्वयं को गौरवशाली तो समझ ही रहे होंगे साथ ही साधु और सज्जन भी मान रहे होंगे परन्तु इसमें उनका अर्जित कुछ भी नहीं था, यह तो केवल कृपालु राम के कारण था। उनका यह भ्रम राम-भरत मिलाप को देखकर दूर हो गया । वे ग्लानि से गढ़ गए । उनके मन में यह अवश्य आया होगा कि एक भाई भरत है जिन्होंने राम के लिए सब कुछ त्याग दिया और एक हम हैं जिन्होंने अपने भाइयों के साथ ऐसा व्यवहार किया । तुलसीदास जी के काव्य में उनके आत्मग्लानि सम्बंधी पदों में भी भावुकता के दर्शन होते हैं । तुलसी अत्यंन्तदीन हीन होकर राम से विनती करते हैं कि वे उन्हें अपनी शरण में ले लें ।

अब लौ नसानी अब न नसैहौ ।
राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौ ।

इसीलिए वे राम को अपने से बड़ा मानते हैं और साथ ही खरा भी-

राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ।

राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ।।

विनयपत्रिका में इस भाव विह्वलता के पद भरे पड़े हैं । राम के प्रति वे दास्य भाव की भक्ति करते हैं । दास अपने स्वामी के प्रति जिस प्रेमभाव को अभिव्यक्त करता है वह दिव्य एवं अलौकिक है । उस प्रेम की तुलना घन और चातक के प्रेम से ही कदाचित की जा सकती है। अत: तुलसी कहते हैं -

एक भरोसो एक बल, एक आस बिसवास ।

एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ।।

जैसे चातक बादल की इच्छा केवल स्वाति नक्षत्र की बूँद से अपनी प्यास बझाने के लिए ही करता है अन्यथा प्यासा ही मर जाता है वैसे ही तुलसीदास जी को भी एक राम का ही भरोसा है कि उन्हीं के द्वारा उनके व्याकुलमन को शांति मिलेगी । यह प्रेम भाव अनन्य है । अत: भावुक सरस हृदय तुलसीदास जी के काव्य में भावुक क्षणों और प्रसंगों की भरमार है और वे उनका सफलतापूर्वक चित्रण भी कर सके हैं । उनकी भावयित्री प्रतिभा दिव्य है और अतुलनीय भी इसका प्रमाण इसी बात से चल जाता है कि आज भी सहृदय मानस जब उनकी रचनाओं को पढ़ता है, तो सरस भाव लहरियों में उनका हृदय डूबने लगता है । कदाचित उनके काव्य की इस सरसता को उसमें डूबकर ही पूर्णत: आस्वादित किया जा सकता है ।

बोध प्रश्न ख

6. सही उत्तर पर निशान लगाइये ।

   तुलसीदास जी ने किस भाव की भक्ति की है -

   1. सख्य भाव
   2. दास्य भाव
   3. मधुर भाव

7. तुलसीदास जी की भक्ति भावना पर दस पंक्तियाँ लिखिए:-

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

8. तुलसीदास जी के काव्य के भाव पक्ष पर पाँच पंक्तियों में विश्लेषण कीजिए :-

   .....

   .....

.....

.....

.....

.....

9. तुलसीदास जी के दार्शनिक विचारों पर दस पंक्तियों में लिखिए -

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10. मानस के चित्रकूट प्रसंग की विशेषता क्या है?

सही उत्तर पर निशान (✓) लगाइये ।

क. राम का माताओं से मिलना

ख. भरत की भायप-भक्ति

ग. अयोध्यावासियों का राम-सीता को मिलना ।

11. तुलसी जी के दार्शनिक सिद्धांत किस मत पर आधारित हैं :-

अ. शुद्धाद्वैतवाद

ब. विशिष्टाद्वैतवाद

स. अद्वैतवाद

द. इन सभी का समन्वयवादी रूप

7.6 अभिव्यंजना शिल्प

गोस्वामी तुलसीदास जी जितने भावुक - सहृदयी भक्त थे उतने ही निपुण कवि भी जिन्होंने अपने भावों को अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर यथोचित स्थान दिलाया । उनका अनुभूति पक्ष जितना प्रबल है अभिव्यक्ति पक्ष भी उतना ही सक्षम है । मूलत: तुलसी एक भक्त हैं । उनका उद्देश्य अपने मन के भावों को भगवान तक अभिव्यक्त करना था । परन्तु, इस दिव्य उद्देश्य को पूरा करने में उनके कवि व्यक्तित्व ने उनको पूर्ण सहयोग दिया है । उनके काव्य में काव्य-प्रतिभा प्रयासजनित नहीं है अपितु सहज है । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि तुलसीदास जी समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे और अपने समय के प्रकाण्ड पंडित भी । काव्य शास्त्र के समस्त नियमों एवं विधानों से भी वे परिचित थे । अत: उनके काव्य में अभिव्यंजना की

शिथिलता के दर्शन होना असंभव सा ही है । बल्कि अपने हृदय की उमड़ती हुई भावधारा की अभिव्यंजना में प्रभावोत्पादकता लाने एवं उसकी शोभा वृद्धि करने के लिए उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य सामग्रियों का प्रयोग किया है जो कहीं भी कृत्रिम नहीं दिखाई देता । उनके काव्य का अभिव्यंजना पक्ष सशक्त है । परन्तु, हमें यह नहीं भूलना होगा कि वह केवल उनकी भावानुभूति की अभिव्यक्ति का साधन मात्र है । उनका अभिव्यंजना शिल्प ' सूरदास की भांति उक्ति वैचित्रय से भरा हुआ तो नहीं है परन्तु भक्त की बात को भगवान तक पहुंचाने का सरस, सरल और मनोहारी माध्यम अवश्य है । अपने अभिव्यंजना कौशल के माध्यम से उन्होंने कहीं भी अपने पांडित्य का प्रदर्शन नहीं किया है । उनका पांडित्य तो स्वत: ही प्रमाणित है । विविध काव्य रूपों, छंदों, अलंकारों और तो और तत्कालीन साहित्यिक जगत में प्रचलित अवधी एवं ब्रज भाषाओं का जैसा प्रयोग उन्होंने अपनी काव्य कृतियों में किया है वैसा निस्संदेह किसी अन्य भक्त कवि ने नहीं किया चाहे वे कबीर हों, चाहे सूरदास या फिर 'जायसी ।

7.6.1 काव्य रूप

तुलसीदास जी ने कुल मिलाकर बारह ग्रंथ लिखे हैं और उन सभी में उन्होंने समस्त प्रचलित काव्य रूपों का प्रयोग किया है । तुलसीदास जी का 'रामचरितमानस' प्रबन्ध काव्य है जिसमें राम कथा वर्णित है । इसे चरित काव्य भी कहा जा सकता है । काव्य की दृष्टि से 'रामचरितमानस' एक अति उत्कृष्ट महाकाव्य है । भारतीय साहित्य शास्त्र में महाकाव्य के जितने भी लक्षण दिए गए हैं वे उसमें पूर्ण रूपेण पाए जाते हैं । कथा-प्रबन्ध का सर्गबद्ध होना, श्रृंगार, शांत और वीर रस में से किसी एक का अंगी रस होना और शेष रसों का अंग भाव से आना, उपयुक्त स्थलों पर सुन्दर वर्णन योजना का होना, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक का लक्ष्य होना आदि सभी लक्षण उनकी 'रामचरितमानस' में मिलते हैं । उनकी विनयपत्रिका पद-शैली में रचित रचना है । तद्युगीन मुस्लिम शासन में बादशाह तक अपनी अर्जी जिस प्रकार भेजी जाती थी उसी शैली में यह याचिका रचित है ।

एक क्रम सें लिखा हुआ ग्रंथ होते हुए भी मूलरूप से यह मुक्तक काव्य है गीत तत्त्व मुक्तक काव्य का प्राणतत्व है और विनयपत्रिका गीतिकाव्य की एक सरल रचना है । इसमें हमें सूर और मीरा की सी तन्मयता मिलती है परन्तु, जहाँ तुलसीदास दार्शनिक विवेचन करते हैं वहाँ गीतिकाव्य का सहज - सौन्दर्य विकृत हो जाता है। 'कवितावली भी एक सफल मुक्तक काव्य है । उक्तियों की विलक्षणता, अनुप्रासों की छटा, लयपूर्ण शब्दों की स्थापना कथा भाग के छन्दों में दर्शनीय है । 'गीतावली गीतों की अवली है! रामकथा सम्बंधी जो गीत तुलसीदास जी ने समय समय पर रचे वे इस ग्रंथ में संग्रहीत हैं ।

'दोहावली' दोहों की अवली है जिसमें दोहों का संग्रह किया गया है । यह भी मुक्तक रचना है । कुछ दोहे भक्ति सम्बंधी हैं और कुछ सूक्ति के रूप में कहे गए हैं । 'कृष्ण गीतावली' कृष्ण - चरित सम्बंधी गीतों का संग्रह है । कुल गीत केवल 61 हैं । 'बरवै रामायण' में बरवै छन्दों में राम कथा कही गई है । प्रथम छ: काण्डों में रामकथा के छंद हैं और उत्तरकाण्ड

में राम भक्ति के । अत्यंत स्फुट ढंग से यह रचना रची गई है । 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' मंगल काव्यों की परिपाटी पर रचित खंडकाव्य है । 'हनुमान बाहुक' भी मुक्तक काव्य है । रामाज्ञा प्रश्न ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान का प्रतिपादन करने वाली रचना है । रामलला नहछू नाई - नाइन के नेगचार से सम्बंधित खंडकाव्य है और सरल स्त्री लोकोपयोगी शैली में प्रस्तुत की गई है । 'वैराग्य संदीपनी' वैराग्योपदेश की रचना है जो मुक्तक है ।

7.6.2 काव्य भाषा

भक्तिकाल में काव्य भाषा के रूप में दो ही भाषाएं प्रमुख रूप से प्रचलित थीं - एक अवधी और दूसरी ब्रजभाषा। रामभक्त कवियों ने जहाँ राम के जन्म स्थान अयोध्या की भाषा अवधी को अपने काव्य का माध्यम बनाया, वहीं कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की लीला भूमि ब्रज को अपने काव्य का माध्यम बनाया । तुलसीदास अद्वितीय प्रतिभा के धनी भक्तकवि रहे हैं । उन्होंने अपने समय की प्रचलित इन दोनों ही काव्य भाषाओं को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया । भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामी तुलसीदास जी का था वैसा उनके युग के किसी भी अन्य हिन्दी कवि का नहीं था । 'अवधी और 'ब्रज' दोनो ही भाषाओं पर उनका समान और पूर्ण अधिकार था । उनकी 'रामचरितमानस' अवधी भाषा का ग्रंथ है तो कवितावली, गीतावली और विनयपत्रिका ब्रज भाषा के ग्रंथ हैं । पार्वतीमंगल, जानकीमंगल और रामललानहछू ये तीनों पूरबी अवधी की रचनाएं हैं । वैराग्य संदीपनी की भाषा अवधी मिश्रित ब्रज भाषा है 'तो रामाज्ञा प्रश्न की भाषा ब्रज है । 'कृष्ण गीतावली की भाषा भी ब्रज है । 'बरवै रामायण' की भाषा अवधी है । दोहावली की भाषा ब्रज है । भाषा पर तुलसीदास का असाधारण अधिकार था। अपने प्रतिपाद्य विषय की समर्थ व्यंजना के लिए उन्होंने प्रसंगों पात्रों एवं भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है । कोमल भावों की व्यंजना में जहाँ समास रहित मधुर पदावली का प्रयोग किया है वहीं रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों के लिए समास बहुल पुरूष पदावली का प्रयोग किया है । उनका शब्द भंडार भी अत्यंत सम्पन्न है । तत्सम, तदभव, देशज और विदेशी शब्दों का प्रयोग उन्होंने निःसंकोच किया है । तुलसीदास जी क्योंकि संस्कृत भाषा एवं साहित्य के भी मर्मज्ञ थे अत: उनकी 'रामचरितमानस' की चौपाइयों में, विनयपत्रिका की स्तुतियों में एवं गीतावली के गीतों में तत्सम प्रधान संस्कृत पदावली भरी पड़ी है -

नमामीशमीशान निर्वाणरूप । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।।
निज निर्गुण निर्विकल्प निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेडहं ।।
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं । गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीश ।
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोडहं ।।

अनेक स्थलों पर हिन्दी-संस्कृत मिश्रित भाषा का प्रयोग भी मिलता है -

'यत्र कुत्रापि मम जन्म निज कार्य बस भ्रमत जग जोनि संकट अनेक ।
यत्र त्वदभक्ति सज्जन समागम सदा भवतु मे राम विश्राममेकं ।।

लोकप्रचलित तद्भव शब्दों का भी प्रयोग उनके काव्य में मिलता है । जैसे - पखारन (प्रक्षालन) पनही (उपानह), केवट (कैवर्त), अहेर (आखेट), बॉझ (वन्ध्या) आदि । बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले देशज शब्दों का भी उन्होंने स्वच्छन्दता से प्रयोग किया है । जैसे. - गोड़, पेट, ढाबर,

झारि टहल आदि । तुलसीदास जी मुस्लिम शासनकाल में हुए थे । अत राजभाषा अरबी - फारसी के शब्दों का प्रभाव भी उनपर पड़ना स्वाभाविक ही था । 'कवितावली में विशेष रूप से ऐसे शब्दों की प्रचुरता है । जैसे : - ताज, हाल, बकसीस, गुमान, मसीह आदि । उन्होंने संज्ञाओं से क्रिया-रूपों की और क्रियाओं से संज्ञाओं की रचना द्वारा हिन्दी की व्यंजना-शक्ति का विकास किया है । जैसे उपदेश से 'उपदेसेउ, आंच से 'आंचे', राग से रागे, आदर से 'आदरिए', अनुसरण से 'अनुसार' आदि । मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी उनके भाषा सम्बंधी पांडित्य को दर्शाता है ।

"माँगि कै खैबो मसीत कै सोइबो लैबे को एक न दैबे कोदोऊ - कवितावली

शब्द शाक्तियों और वृत्तियों से भी उनकी भाषा अलंकृत हुई है । वस्तुत तुलसीदास जी भाषा के सम्राट हैं ।

7.6.3. अलंकार योजना

तुलसीदास जी की विशिष्ट प्रतिभा के प्रमाण अलंकार - विधान में भी मिलते हैं । उनकी अलंकार योजना में न तो केशव के समान काव्यशास्त्रीय ज्ञान के प्रदर्शन की प्रवृत्ति है और न ही रीतिकालीन कवियों की भांति कविता को अतिशय अलंकृत करने की लालसा । उनकी अलंकार योजना तो केवल अपनी भक्ति विषयक भावना की अभिव्यक्ति करने एवं अपने जीवन--दर्शन को स्पष्ट करने हेतु ही हुई है । 'रामचरितमानस' में वे स्वयं कहते हैं -

"कवि न होउँ नहि बचन प्रबीनु । सकल कला सब विद्या हीनू ।
आखर अरथ अलंकृति नाना । छंद प्रबंध अनेक बिधाना ।।
भाव भेद रस भेद अपारा । कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ।
कबित बिबेक एक नहिं मोरें । सत्य कहउँ लिखि कागदकोरें ।।

अलंकार उनके काव्य में भावों की अभिव्यक्ति में उत्कर्ष लाने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं । परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें अलंकारों का ज्ञान नहीं था । संपूर्ण अलंकार-शास्त्र का उन्हें ज्ञान था । परन्तु, उसका पांडित्य -प्रदर्शन उन्होंने नहीं किया । शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार -सभी अपने भेदों-प्रभेदों सहित उनके काव्य में व्यवहृत हुए हैं । यमक, पुनरूक्तवदाभास, श्लेष तथा श्लेष वक्रोक्ति जैसे शब्दालंकारों का प्रयोग उनके काव्य में बहुत सीमित रूप से हुआ है । भावों के प्रवाह में जहाँ इनकी योजना स्वभावत: हुई है, वहां इनका । सौन्दर्य दर्शनीय है । अन्य भारतीय कवियों की ही तरह अनुप्रास का प्रयोग भी तुलसीदास जी को अभीष्ट रहा है । उनके काव्य में अनुप्रास का प्रयोग भाषा में संगीत लय के समावेश तथा उसे भावानुकूल बनाने हेतु ही हुई है । कहीं कहीं तो अनुप्रास की योजना नाद सौन्दर्य को भी बढ़ाने वाली है ।

कंकन किंकनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लषन सन राम हृदयँ गुनि ।

तुलसीदास जी ने शब्दालंकारों में पुनरूक्ति और काकु वक्रोक्ति का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है । उक्ति वैचित्रय हेतु अर्थालंकारों का प्रयोग भी उनके साहित्य की विशेषता है । अर्थालंकारों में तुलसीदास जी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग सर्वाधिक किया है । साधर्म्य पर आश्रित इन सभी अलंकारों में उपमेय - उपमान भाव रहता है । भावों की अभिव्यक्ति में

तीव्रता लाने के लिए सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना अत्यधिक सहायक होती है । उनकी 'दोहावली' में विशेष रूप से सादृश्य मूलक अलंकारों की नियोजना हुई है । उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार अन्य सभी भक्तिकालीन कवियों की भांति तुलसीदास जी के भी प्रिय अलंकार हैं । उपमाओं से उनका काव्य भरा पड़ा है । उनकी उपमाएं मर्यादापूर्ण, औचित्यपूर्ण और सरस हैं । रूप, दृश्य, स्वभाव, कार्यव्यापार, घटना और भावनाओं का बोध कराने के लिए तुलसीदास जी ने उपमानों की योजना की है -

क. लोचन जलु रह लोचन काना । जैसे परम कृपन कर सोना ।।

ख. रहि पुर बसंत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ।।

भाव, गुण, स्वभाव, क्रिया तथा स्वरूप सभी तरह के प्रसंगों में उन्होंने रूपक का सहारा लिया है । 'रामचरितमानस', 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका' में छोटे-छोटे सांगरूपकों से लेकर बड़े-बड़े बेजोड़ सांगरूपक मिलते हैं -

रामनाम मनिदीप धरू जीह देहरीद्वार ।

तुलसी भीतर बाहिरहु जो चाहसि उजियास्दोहावली

उनके काव्य में कतिपय वर्णनात्मक स्थलों को छोड़कर अन्य अनेक प्रसंगों में उत्प्रेक्षा की झलक मिलती है -

चारू चरन नख लेखति धरनी । नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी ।

मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं । हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं ।।

न्यायमूलक अलंकारों की योजना भी तुलसी जी के काव्य में पर्याप्त मिलती है । काव्यलिंग पर्याय, अर्थापत्ति, यथासंख्य, समुच्चय उल्लास और प्रतीप आदि ऐसे ही अलंकार हैं । उनके अलंकार विधान का एक अन्य महत्त्वपूर्णपक्ष है - प्रतीक योजना । चातक और ' मीन ' जैसे प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने अपने राम प्रेम को प्रमाणित करने का सफल प्रयास किया है । 'दोहावली' में इसके अनेक उदाहरण मिल जाएंगे । इस प्रकार काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकारों का सफल निर्वाह तुलसीदास जी की कृतियों में हुआ है ।

7.6.4 छंद विधान

भक्तिकालीन समस्त भक्त कवियों ने ईश्वर विषयक अपने उद्गारों को गीतों, भजनों, कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । काव्य में भावों को गति और लय देने के लिए ही छंदों का प्रयोग होता है । तुलसीदास जी ने भी विविध भावोद्गारों को छंद और लय के विधान में बाँधकर व्यक्त किया है । समस्त प्रचलित छंद उनकी रचनाओं में मिलते हैं । उनकी 'रामचरितमानस ' दोहा-चौपाई जैसे मात्रिक छंदों में रचित रचना है । बीच बीच में सोरठा. हरि गीतिका, चौपेया, त्रिभंगी, तोटक भुजंगप्रयात, प्रमाणिकता अनुष्टुप, वसन्त तिलका जैसे छंदों का प्रयोग हुआ है । प्राय : आठ या अधिक अर्द्धालियों के बाद दोहा होता है और इन दोहों के साथ कड़वकों की संख्या 1074 है । उनकी 'विनयपत्रिका' 279 स्तोत्रों - गीतों का संग्रह है । कवितावली में कवित्त और सवैया छंद का प्रयोग कवि ने किया है ।

'गीतावली ' में पद - योजना है । अत: अनेक राग रागीनियों की योजना है । जैसे : - राग बिलावल, राग आसावरी, केदारा, सोरठ, मारू, जयतश्री, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित,

विभास, नट, टोड़ी, सारंग,सूहो, मलार, गौरी, भैरव, बसन्त, रामकली आदि । 'दोहावली दोहा छंद की रचना है, तो बरवै रामायण बरवै छंद की । इसमें 69 बरवै हैं । 'जानकी मंगल ' सोहर और हरिगीतिका छंदों में रचित रचना है । 192 सोहर की द्विपदियाँ और 24 हरिगीतिकाऐं हैं । पार्वती मंगल भी सोहर और हरिगीतिका छंदो में रचित है और इसमें 148 द्विपदियाँ और 16 'हरिगीतिकाऐं हैं । रामाज्ञा प्रश्न दोहा छंद में रचित है तो रामलला नहछू सोहर छंद में रचित है । 'हनुमान बाहुक ' में कुल मिलाकर 44 छंद हैं । प्रारम्भ में दो छप्पय तथा एक झूलना है,। शेष सभी छंद कवित्त (धनाक्षरी) अथवा सवैया (मुत्तगयंद) हैं । वैराग्य संदीपनी चौपाई दोहों में रचित है । दोहे और सोरठे 48 तथा चौपाई कीं चतुष्पदियाँ 14 हैं । इस प्रकार तुलसीदास जी ने मात्रिक और वर्णिक सभी छंदों का प्रयोग पूर्ण पांडित्य के साथ किया है ।

बोध प्रश्न ग

12. रामचरित मानस का काव्य रूप बताइए

(अ) खंडकाव्य

(ब) महाकाव्य

13. तुलसीदास जी की काव्य भाषा पर दस पंक्तियों में विचार व्यक्त कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14. तुलसीदास जी के अलंकार विधान पर आठ पंक्तियों में लिखिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15. तुलसीदास जी के छंद विधान पर पाँच पंक्तियों में प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

7.7 तुलसीदास जी के पदों का वाचन एवं व्याख्या

उद्धरण - 1

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।

निर्नय सकल पुरान वेद कर । कहउँ तात जानहि कोबिद नर ।।

शब्दार्थ : - परहित - पर + हित - परोपकार । सम-समान । अधमाई - नीचता, पाप । निर्नय - निर्णय। सकल - समस्त, सारे, सभी । कहेउँ - कहा है । जानहि - जानते हैं । कोबिद - पंडित ।

संदर्भ :- प्रस्तुत चौपाई भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित 'रामचरितमानस ' के उत्तरकाण्ड से ली गई है।

प्रसंग - तुलसीदास जी लोकनायक के रूप में प्रसिद्ध हैं । उनकी काव्य साधना का मूल उद्देश्य लोकमंगल था । इसीलिए अपनी रचनाओं में वे बार - बार लोक हित के उपाय बताते रहते हैं । लोक में मानव को सद् धर्म की ओर प्रेरित करते हुए, दुष्कर्म से उनका ध्यान हटाना ही तुलसीदास जी के काव्य का लक्ष्य था। प्रस्तुत चौपाई में राम परोपकार पर बल देते हुए भरत से कह रहे हैं ।

व्याख्या : - राम कहते हैं कि हे भाई! (भरत) दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है । यह समस्त पुराणों और वेदों का निर्णय है । हे तात! इसे पंडित लोग भी जानते हैं ।

विशेष

1. प्रस्तुत चौपाई में परोपकार पर बल दिया गया है
2. दूसरे को कष्ट पहुँचाने को सबसे बड़ा पाप माना गया है ।
3. यह पद तुलसीदास जी की लोकमंगलकारी प्रवृत्ति का घोतक है ।
4. इसकी भाषा अवधी है ।
5. चौपाई छंद है । चौपाई छंद सममात्रिक छंद है जिसमे चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 16 मात्राऐं होती हैं । इसके चरण के आदि और अंत में जगण और तगण पैध्द का निषेध होता है ।

अर्थात पादांत में गुरू लघु का निषेध होता है ।

उद्धरण 2

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं ।

गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढाहीं ।।

राम को रूप निहारति जानकी कंगन के नग की परछाहीं ।

यातें सबैं सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।

शब्दार्थ -माही -भीतर (अन्दर) । गावति - गाती हुई । सबै- सभी । मिलि - मिलकर । जुवाजुरि -जुवा (द्यूत क्रीड़ा) खेलते समय । विप्र - पंडित ब्राह्मण । यातै -इससे (इस कारण से) सुधि-सूध बूध । कर- हाथ । पल -एक पल (क्षण) । टारति - टालना (हटाना)

संदर्भ :- प्रस्तुत सवैया भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की रामभक्ति शाखा के प्रसिद्धतम कवि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के बालकाण्ड में से लिया गया है ।

प्रसंग : यहाँ तुलसीदास जी ने राम की बाल लीला के अंतर्गत उनके विवाह के बाद की एक लोक परम्परा का वर्णन किया है । विवाह के पश्चात लोकपरम्परानुसार घूतक्रीड़ा के समय का यहाँ वर्णन है जिसमें राम के प्रतिबिम्ब को देखकर सीता विशेष रूप से अनुरक्त हो जाती हैं ।

व्याख्या :- (जनक नगरी की) समस्त सुन्दर स्त्रियाँ मिलकर मंगलगीत गाती हुई दुल्हा बने हुए श्री राम और दुल्हन बनी सीता को सुन्दर मन्दिर में ले गई । (वहाँ पर) सूत क्रीड़ा खेलते समय ब्राह्मण वेदों का मंत्र उच्चारण करने लगे । इसी समय जानकी अपने हाथ के कंगन के नग में श्री राम के रूप की परछाई देखती हैं और इसी कारण से अपनी समस्त आपा खो बैठतीं हैं । सात्विक भावोद्रेक के वशीभूत होकर वे अपना हाथ टेके हुए ही रहतीं हैं और एक पल के लिए भी उसे नहीं हटाती ।

विशेष -

1. यहाँ सीता के सात्विक भावोद्रेक की भावाभिव्यक्ति हुई है ।
2. संपूर्ण सवैये में चित्रात्मकता है ।
3. प्रस्तुत सवैया संयोग श्रृंगार रस का सरस उदाहरण है ।
4. माधुर्य गुण है ।
5. सिय सुंदर, मन्दिर माहीं, गावति गीत आदि में अनुप्रास अलंकार है ।
6. इसकी भाषा ब्रज है ।
7. मत्तगयंद सवैया छंद में यह रचित है । मत्तगयंद सवैया समवर्णिक छंद है । इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और अंत में दो गुरू आते हैं । कुल 23 वर्ण होते हैं ।

उद्धरण 3

को भरिहे हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहैं ।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहे तेहि को हरि जौ टरिहै ।।
'तुलसी' यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै ।
कुमया कछु हानि न औरन की जो यै जानकीनाथ मया करिहै ।।

शब्दार्थ :-को- कौन । भरिहै - भर सकता है । रितये - रिक्त होने पर । पुनि - फिर, दोबारा। उथपै - उखाड़ना। तेहि - उसे, उसको । जेहि - जिसे, जिसको । थपै - स्थापित करना । जानि - जानकर । हिये - हृदय में । कालहु - काल से । कुमया - क्रोध । कछु - कुछ । मया - दया, कृपा ।

संदर्भ - प्रस्तुत सवैया भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा को राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के उत्तर काण्ड में से लिया गया है।

प्रसंग - यहाँ तुलसीदास जी भगवान श्री राम की कृपा एवं सामर्थ्य के विषय में बताते हुए कह रहे हैं कि जिस मनुष्य पर भगवान रामचन्द्र की कृपा हो जाती है, उस मनुष्य का संसार में कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता और साथ ही उसे किसी प्रकार का कोई भय नहीं रहता ।

व्याख्या - तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान श्री राम जिसे खाली कर देते हैं, उसे भला कौन भर सकता है अर्थात श्री राम द्वारा नष्ट किये जाने वाले मनुष्य को भला कौन जीवित कर सकता है । भगवान राम जिसे भरपूर देना चाहें, उसे भला कौन कंगाल बना सकता है । जिसे स्वयं राम संसार में स्थापित करते हैं, उसे भला कौन उखाड़ सकता है और जिसे राम स्वयं उजाड़ना चाहें उसे भला कौन स्थापित कर सकने का सामर्थ्य रखता है । तुलसीदास कहते हैं कि यह बात अपने हृदय में जानकर ही मैं सपने में भी काल से, मृत्यु से नहीं डरता अर्थात सदैव निर्भय रहता हूँ । भाव यह है कि श्री राम के भक्त को संसार में किसी भी प्रकार के भय से आक्रान्त होने की आवश्यकता नहीं । जिस मनुष्य पर स्वयं जानकी नाथ दया करते हैं उस मनुष्य को अन्य किसी के भी क्रोध करने पर कोई हानि नहीं होती ।

विशेष -

1. भाव यह है कि भगवान राम अपने भक्तों को अभय दान देने वाले हैं
2. ईश्वर सर्वशक्तिमान है ।
3. भगवान राम की शरण में जाने को ही सांसारिक कष्टों से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय बताया गया है ।
4. दास्य भाव का पद है ।
5. इसकी भाषा ब्रज है ।
6. सवैया छंद है ।
7. माधुर्य गुण है ।

बोध प्रश्न (घ)

निम्नलिखित पद की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।
निर्नय सकल पुरान बेद कर । कहउँ तात जानहि कोबिद नर ।।

7.8 तुलसी काव्य का मूल्यांकन

भक्ति आंदोलन के चार महत्त्वपूर्ण स्तंभों -सूर, तुलसी, कबीर और जायसी में निस्संदेह यदि सर्वोच्च स्थान किसी भक्त कवि को दिया जा सकता है तो वे हैं भक्त-चुडामणि गोस्वामी तुलसीदास । राम कथा को आधार बनाकर जो संदेश वे तत्कालीन समाज को देना चाहते थे उसमें वे पूर्णतः सफल हुए । मर्यादाहीन, पथभ्रष्ट समाज को सही राह पर लाने के लिए केवल कबीर की 'डिक्टेटर शिप' ही पर्याप्त नहीं थी । वहाँ तो सरल हृदयी, मर्मस्पर्शी तुलसीदास जी की वाणी ही कारगर सिद्ध हो सकती थी । मानव हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव तक तुलसीदास जी की जैसी पहुंच थी, वैसी सूर में भी दुर्लभ है । अनैतिकता के उस दौर में जिस भक्ति की भाव धारा को लेकर तुलसीदास जी ने अपनी रचनाएं लिखीं, वह निस्संदेह जन जन के हृदय तक पहुँचकर उनकी आवाज बनी । जन मानस के मर्मस्थल का स्पर्श करने वाली उनकी युग

वाणी अद्वितीय थी । व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व कल्याण की भावधारा को प्रवाहित करने वाला उनका साहित्य विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य में अपना स्थान रखता है । उनकी प्रत्येक काव्य कृति उनके श्रेष्ठ कवि होने का प्रमाण है । अपने हृदय के सूक्ष्म उदगारों को उन्होंने जन मानस का मनोविज्ञान समझकर ही समष्टि रूप प्रदान किया । मानव धर्म क्या है, मानव जीवन की मर्यादा क्या है, नैतिकता क्या है, भक्त का भगवान से सम्बन्ध कैसा है और कैसा होना चाहिए, इन सभी पहलुओं पर तुलसी काव्य में उचित प्रकाश डाला गया है । परन्तु, ये भावधारा भक्त के हृदय में सटीक उतर सकें इसके लिए जिस सशक्त वाणी का प्रयोग होना चाहिए था, वह भी तुलसी काव्य में हमें देखने को मिलती है । उस समय की प्रचलित दोनों ही प्रधान काव्य भाषाओं पर पूर्ण अधिकार होना कोई साधारण बात नहीं है । सूर केवल ब्रज जानते थे, कबीर की तो भाषा ही सधुक्कड़ी थी और जायसी केवल अवधी के जानकार । सभी का एक भाषा पर अधिकार, रचनाओं का भी सीमित होना उनके पांडित्य को भी तुलसीदास जी के समक्ष बौना बना देता है । कोई भी काव्य रूप हो, कोई भी काव्यालंकार या छंद उनकी काव्य प्रतिभा के मार्ग में वे बाधित नहीं बने हैं । काव्य प्रतिभा के इस प्रदर्शन में उनका भाव-गांभीर्य कहीं भी बाधित नहीं हुआ है । तुलसीदास लोकमानस के कवि हैं । अतः उनके काव्य में लोकमंगल को ही केन्द्र बिन्दु में रखा गया है । दोहावली की सूक्तियों और 'विनयपत्रिका' के पदों में भक्त को सम्बंधित करने वाली ऐसी अनेक कल्याणकारी उक्तियां मिलती हैं । विभिन्न रागों और छंदों के माध्यम से उनका भक्त मन अपने कवि व्यक्तित्व को छिपाकर नहीं रख सका । कुल मिलाकर कह सकते हैं कि सिक्के के दो पहलुओं के समान तुलसीदास जी के व्यक्तित्व के भी दो सशक्त पहलू हैं । एक उनका भक्त हृदय और दूसरा उनका कवि हृदय । दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं और भारतीय जनमानस को इन दोनों ही पहलुओं से यथोचित लाभ हुआ है। निस्संदेह संपूर्ण भारत का ही नहीं यदि संपूर्ण विश्व का भी श्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास जी को कहा जाए तो अत्युक्ति ना होगी ।

7.9 सारांश

इस इकाई में आपने भक्तिकाल की सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य के समस्त अंगों का आस्वादन किया है । तुलसीदास जी की युगीन परिस्थितियाँ तथा उन परिस्थतियों का उनकी रचनाओं पर प्रभाव, तुलसीदास जी की जीवनी एवं उनकी रचनाओं के विषय में भी आपको विशद जानकारी मिली है । अब तक आप यह भी जान गये होंगे कि तुलसीदास जी की भक्ति किस कोटि की है और उनकी भक्ति भावना की क्या विशेषताएं हैं । तुलसीदास जी की समन्वयवादी नीति उनके समय में प्रचलित विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों को किस प्रकार अपनाती हुई चलती है इस बात की भी पूर्ण जानकारी आपको हो गई है । तुलसीदास जी जैसे भक्त कवि के काव्य का भाव पक्ष कैसा सुदृढ़ है, इसका ज्ञान भी आपको हो गया है । भाव पक्ष को अभिव्यंजित करने वाले अभिव्यंजना-शिल्प पर भी आपकी दृष्टि गई है और आप यह जान चुके हैं कि तुलसीदास जी की रचनाओं के काव्य रूप, उनकी काव्य भाषा, अलंकार विधान और छंद विधान कितने अनुपम और सुदृढ़ हैं । अपने समय में प्रचलित समस्त काव्य सिद्धांतों को अपने कला कौशल से अभिव्यक्त

करने वाले युगदृष्टा तुलसीदास जी का काव्य लोकमंगलकारी है । सम्पूर्ण भक्तिकाल में इतने व्यापक काव्य धरातल पर रचना करने वाला अन्य कोई कवि नहीं है । तुलसीदास जी का स्थान भक्तिकालीन भक्त कवियों की गणना में सर्वोपरि है ।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. तुलसी - संपादक - उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण मूल्यांकन माला, दरियागंज, दिल्ली
2. गोस्वामी तुलसीदास - आ. रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2 ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
4. विनयपत्रिका - राजनाथ शर्मा, आगरा
5. रामचरितमानस - टीकाकार - हनुमान प्रसाद पोद्दार
6. दोहावली - श्री श्रीकान्त शरण, सिद्धान्त तिलक
7. गीतावली - श्री श्रीकान्त शरण, सिद्धान्त तिलक
8. कवितावली - कृष्णदेव शर्मा

7.11 बोध प्रश्नों अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न (क)

1. 1589 संवत्
2. अवधी
3. हनुमान - बाहुक
4. 12 (बारह(
5. रामबोला

बोध प्रश्न (ख)

6. दास्य भाव
7. देखें 7.4
8. देखें 7.5
9. देखें 7.4
10भक्ति-भरत की भाव .
.11इन सभी का समन्वयवादी रूप

बोध प्रश्न (ग)

12. महाकाव्य
13. देख 7.6.2
14. देख 7.6.3
15. देख 7.6.4

बोध प्रश्न (घ)

देखें 7.7

इकाई - 8

सूरदास

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 युग-परिवेश

8.3 जीवन परिचय एवं रचनाएँ

8.4 भक्ति-भावना

8.5 सूर का भाव पक्ष

8.5.1 वात्सल्य

8.5.2 श्रृंगार

8.6 अभिव्यंजना पक्ष

8.6.1 काव्य रूप

8.6.2 काव्य भाषा

8.6.3 अलंकार योजना

8.6.4 छन्द विधान

8.7 वाचन एवं व्याख्या

8.8 मूल्यांकन

8.9 सारांश

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

8.11 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में भक्त कवि सूरदास को सगुण भक्ति की कृष्ण शाखा की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है साथ ही यह प्रयास किया है कि आप :

1. सूरदास के युग परिवेश को समझ सकेंगे,
2. सूर की भक्ति पद्धति तथा दार्शनिक विचारों को जान सकेंगे,
3. सूर के जीवन एवं कृतियों से परिचित हो सकेंगे,
4. सूर के भाव पक्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
5. भक्तिकाल के संदर्भ में सूर का महत्व बता सकेंगे,
6. सूर के विशिष्ट पदों की व्याख्या कर सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम आपको सूर के जीवन, रचना संसार तथा काव्य के विविध पक्षों की जानकारी देंगे। सूर ने अपने आराध्य कृष्ण को सखा के रूप में अंकित किया है । वल्लभाचार्य के पुष्टि

सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त को अपनाया । इसी आधार पर हम सूर की भक्ति भावना एवं दार्शनिक विचारधारा का विवेचन करेंगे । साथ ही सूर के वात्सल्य एवं श्रृंगार चित्रण तथा काव्य भाषा के विविध पक्षों की जानकारी भी प्राप्त होगी । सूर के कुछ पदों की व्याख्या इसी उद्देश्य से दी गई है जिससे आप सूर के पदों के अर्थ एवं व्याख्या करना जान सकें ।

8.2 युग परिवेश

सूर का साहित्य भक्ति आन्दोलन की सांस्कृतिक उपलब्धि है । दक्षिण भारत के आयामों ने जिस भक्ति आन्दोलन को दिशा दी उसका प्रवाह उस प्रदेश में तेजी से फैला । 15वीं और 16वीं शताब्दी में जो वैष्णव भक्ति प्रवाह उमड़ा उसमें वल्लभाचार्य की मुख्य भूमिका रही। वल्लभाचार्य तथा अन्य वैष्णव आचार्यों के लिए इन आचार्यों ने हर संभव प्रयास भी किया। भक्ति को शंकर के मायावाद से एक धक्का दिया जिसके फलस्वरूप रामानुजाचार्य से लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भी भक्त आचार्य हुए सभी ने शंकर के मायावाद का खंडन किया । सभी का प्रयास जीवन जगत के कर्म सौन्दर्य को महत्व देने का रहा । सभी ने कहा कि भक्ति न तो अविद्या है और न यह जगत झूठा है । यह संसार सत्य है इसका संघर्ष सत्य है और मानव में भक्ति की शक्ति ही उसे दिव्यता प्राप्त करा सकती है ।

सारा जगत ब्रह्म की लीला है । ब्रह्म अवतार धारण कर मानव लीला करता है और अपने पुरूषोत्तम को पूर्ण रूप में प्रकाशित भी । भक्ति-आन्दोलन की एक बड़ी विशेषता यह भी रही है कि इसने मनुष्य की महिमा का बखान किया । धरती को वैकुण्ठ से श्रेष्ठ सिद्ध किया और कहा कि वैकुण्ठ में जाकर क्या करेंगे । वहाँ न यमुना है, न ब्रज है, न गोप-ग्वाले हैं न रासलीला है । सूर ने सगुण भक्ति के आधार पर ही कहा - 'हमारी पति गति कमल नयन से जोग सिखै ते रांडे । हमारा रक्षक कृष्ण है । अपने समय के वैष्णव सम्प्रदाय तथा सूफियों के प्रेमवाद का प्रभाव सूर ने ग्रहण किया । यह प्रेम सिद्धान्त ही सूरदास के काव्य-सृजन की प्रेरणा है। सूरदास की ब्रजभाषा हमारा साक्षात्कार लोक भाषाओं का जागरण और उसकी महिमा से कराती है । अकबर का 'दीन-ए-इलाही" भक्ति की भावना और संत भावना में ढल जाता है । ललित कलाओं, संगीत कला की परम्परा का प्रवाह भी तेज हो जाता है और लोक गीतों का ग्राम्य सौन्दर्य सूर की वाणी में चमक उठता है । सूर हिन्दू-इस्लाम धर्म की कट्टरता तथा झूठे धर्मशास्त्र से दूर रहकर मूलत: मानव प्रेम पर दृष्टि केन्द्रित करते हैं - मानव का भाव-परिष्कार ही उनके काव्य सृजन का उद्देश्य बन जाता है । संत साहित्य के सामाजिक आधार में किसानों, व्यापारियों का भौतिक जीवन है । इसलिए सूर की भक्ति प्रेरणा के स्रोत भक्ति आन्दोलन के लोक हितकारी स्वरूप में ही खोजना चाहिए । क्रूर सामंती ढाँचा इस काल में कमजोर हो जाता है तथा जनता भक्ति में अपनी इच्छाओं का विकास खोजती दिखायी देती है । सूर का काव्य इस बात का प्रमाण है कि भक्ति आन्दोलन हमारी ही सामाजिक सांस्कृतिक स्थितियों की रूढ़िवादी विरोधी अभिव्यक्ति है । इसमें बाहरी आक्रान्ताओं तुर्कों, पठानों तथा अरबों का प्रत्यक्ष रूप से कोई हाथ नहीं है । पंडित-पांडित्य की सूरदास बार-बार आलोचना करते हैं अत: कहा जा सकता है सूर को शास्त्रों का नहीं लोक-चेतना का बल प्राप्त है । स्पष्ट है कि धार्मिक कारणों की छानबीन से सूर के काव्य की पृष्ठभूमि स्पष्ट नहीं की जा सकती है उसके लिये हमें भारत

के सामन्ती ढाँचे वाले समाज का विश्लेषण भी करना होगा । यह विश्लेषण हमें बताता है कि लोक-भाषा में काव्य-सर्जन की प्रेरणा का कारण जन साधारण की बढ़ती हुयी शक्ति है । सूर ने योग मार्ग तथा निराकार ब्रह्म का जोरदार शब्दों में खण्डन करते हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूर काव्य की पृष्ठभूमि में जनता का प्रेम है, जनता की मधुर कोमल भावनाओं का प्रतिबिम्ब भी । सूर का बाल कृष्ण का सौन्दर्य वर्णन भारतीय जनता को अपनी मनोहर थाती है । सूर ने भारतीय जनता के श्रेष्ठ संस्कारों को निखारा तथा सामन्ती गायकों की नखशिख परम्परा से जनता को दूर रखने का सजग प्रयास किया है ।

8.3 जीवन परिचय

सूरदास के जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री के दो रूप हैं - (1) बाह्म साक्ष्य एवं (2) अंत: साक्ष्य के रूप । बाह्म साक्ष्य में सूर के समसामयिक लेखकों, वार्ता साहित्य, भक्तों का साहित्य तथा तत्कालीन इतिहास ग्रन्थ आते हैं । अंत: साक्ष्य में सूर के आत्म कथन यभ-तभ बिखरे मिलते हैं । बाह्म साक्ष्य 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता", हरिराम कृत 'भाव-प्रकाश", नाभादास कृत वल्लभ दिग्विजय भक्तमाल, भक्त नामावली (ध्रुवदास) आइने अकबरी तथा मुंशियात अबुल फजल आते हैं । हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ एवं रिपोर्टों में भी सामग्री मिल जाती है । " भर सागर", 'साहित्य-लहरी" एवं 'सूर सारावली" को आधार बनाकर अंत: साक्ष्य सामग्री देने की विद्वानों ने चेष्टा की है ।

सूरदास की जन्मभूमि के संबंध में चार स्थान प्रसिद्ध हैं -

1. साहित्य लहरी में सूर के पिता का निवास 'गोपाचल' माना गया है ।
2. डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल भी इसी के पक्ष में है कि सूर की जन्मभूमि मथुरा प्रान्त में कोई ग्राम है ।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूर का जन्म स्थान 'रूनकता" लिखा है. इसका कारण यह है कि सूर गऊधार पर रहते थे ।
4. वार्ता साहित्य के अनुसार सूर का जन्म स्थान 'सीही' ग्राम है ।

यह सीही ग्राम दिल्ली से चार कोस दूर बताया गया है किन्तु अब इस ग्राम का कहीं पता नहीं है । चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार इनका जन्म आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित गऊधार के पास खनकता ग्राम में हुआ था । आधुनिक इतिहास लेखकों की भी यही मान्यता है कि सूरदास का जन्म संवत 1540 के लगभग माना है । तथा देहावसान 1620 के लगभग मानते हैं : (आ. रामचन्द्र शुक्ल) ।

सूरदास जन्म से अन्धे थे या बाद में अन्धे हुए यह भी विवाद का विषय है पर सूर अन्धे थे - इस बात की पुष्टि सूर के अनेक पदों में भी मिलती है ।

बचपन से ही सूरदास वैराग्य लेकर रहे और मथुरा के निकट गोधार पर निवास किया । यहीं पर उनका साक्षात्कार वल्लभाचार्य से हुआ । आचार्य वल्लभ काशी से मायावाद का खंडन करने के पश्चात् ब्रज आये थे । इस प्रकार सं. 1526 (सन् 1505) में उन्होंने सूर को दीक्षा दी । आ. शुक्ल ने सूर का आ. वल्लभ से दीक्षित सं. 1580 (सन् 1523 ई.) के लगभग माना है। इस कथन का .कारण कदाचित श्रीनाथ जी के मंदिर का सं. 1 स. (सन् 1519 ई.) में पूर्ण

होना है । आचार्य वल्लभ से दीक्षा लेकर वे गोवर्धन पर्वत पर जीवन व्यतीत करने लगे और श्रीनाथ जी की सेवा में ही जीवन बिताया । प्रतिदिन वे मंदिर में (श्रीनाथ जी) कीर्तन सेवा में जाते थे । महाप्रभु वल्लभाचार्य के जीवन काल में उनके चार शिष्य मंदिर में पद-रचना कर कीर्तन करते थे । ये चारों कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास थे । आ. वल्लभ के देहांत के बाद भार उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी पर आया । उन्होंने कीर्तन कर्म को विस्तार देने हेतु अपने चार शिष्यों छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, नन्ददास और चतुर्भुजदास को भी जोड़ा । श्रीनाथ जी की आठ समय की झांकियों के लिये "अष्टछापन"की स्थापना हुई जिनमें चार वल्लभ के तथा चार विट्ठलदास के शिष्य मिलकर आठ भक्त हो गये । ये सभी पुष्टि मार्ग में दीक्षित थे| इस प्रकार सूरदास आरंभ से लेकर अन्त तक पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा करते रहे । (सूर की जाती एवं तथा वंश पर भी विवाद है । आ. मुंशीराम शर्मा ने लिखा है कि "पं. हर प्रसाद शास्त्री ने सूर के पिता का नाम रामचन्द्र है जो वैष्णव भक्ति के अनुसार रामदास बन जाता है ।" इस मत के अनुसार सूर के पिता का नाम रामदास ही रहा होगा, जो कि सारस्वत ब्राह्मण थे : कुछ विद्वानों ने सूर को चन्दबरदाय की वंश परम्परा में रखा है । डॉ ब्रजेश्वर वर्मा तो सूर को विवाहित मानते हैं । यह भी किवदन्तियों में कहा जाता हे युवावस्था में वे किसी के प्रेमपाश में भी बंधे थे और प्रेम में सफल नहीं हो पाये ।)

रचनाएँ

सूरदास के जीवनवृत के समान ही उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता के संबंध में भी मतभेद हैं । नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट, इतिहास ग्रन्थ तथा विभिन्न पुस्तकालयों से प्राप्त कृतियों के आधार पर सूरदास के 25 मन्थ बताते जाते हैं - सूर सारावली, सूर सागर, साहित्य लहरी, गोवर्धन लीला, भंवर लीला, प्राण प्यारी, सूरसाही, विनय के स्फुट पद, एकादशी महात्म्य, भागवत भाषा, दशम स्कन्ध भाषा, सूर सागर सार, सूर रामायण, मान-लीला राधा रसकेलि, कौतुहल, दान लीला, रास लीला, ब्याह लो, दृष्टि कूट के पद, सूर शतक, सूर पंचीसी, सेवा फल, हरिवंश टीका (संस्कृत) नल दमयन्ती तथा 'रामजन्म । इनमें -से कुछ कृतियों में तो सूर सागर के ही पद दिए गए हैं तथा कुछ केवल लय एवं गति के कारण ही सर की कृतियों के रूप में मान्य हो गए हैं । मूलत: विद्वानों ने सूरदास की तीन रचनाओं को ही प्रामाणिक माना गया है - 1 सूर सारावली 2. सूर सागर, 3. साहित्य लहरी ।

सूर सारावली

कुछ विद्वानों ने आभास लगाया है कि यह ग्रन्थ सूर सागर की भूमिका तथा सारांश के रूप में प्रस्तुत हुआ है । वस्तुत यह न तो सूर सागर की भूमिका है न सारांश । इसमे कुल 1107 पद हैं । सम्पूर्ण ग्रन्थ में होली के खेल का रूपक है । बसन्त से लेकर होली (फाल्गुन) तक के ब्रज उल्लास को यह रचना प्रस्तुत करती है । होली के रूप में के रूप में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है । यह सृष्टि वर्णन पुराणों तथा श्रीमदभागवत के आधार पर किया गया है| यहाँ ऐसे पद हैं जिनमें नारायण की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा के उत्पन्न होने का उल्लेख है! बीच-बीच में ध्रुव, हिरण्यकश्यप एवं प्रहलाद आदि की कथा भी आती है| कृति का रचनाकाल सं. 1602 मान्य है, मूलत: यह 1 स्वतंत्र सैद्धान्तिक रचना है|

सूरसागर:

यह रचना सूर की प्रामाणिक कृति के रूप में मान्य है । सूरसागर में बारह स्कन्ध हैं जिनमें सवा लाख पद- होने की बात लोक प्रसिद्ध है किन्तु अभी तक विद्वानों को दस हजार पद ही प्राप्त हो सके हैं । सूरसागर भागवत के अनुसरण पर रचा गया है । इस बात की पुष्टि सूर रच्यो भागवत् अनुसार' से होती है । सूरसागर भागवत का भाषानुवाद मात्र नहीं है । इस कृति में भागवत् की कथाओं का वर्णनात्मक रूप नहीं मिलता । वस्तुत: सूरसागर कृष्ण के कार्यो की अद्भुत लीलाओं का गीत सार है । भागवत का दृष्टिकोण अध्यात्मवाद है, सूरदास का लीलापरक । अत: सूरसागर सूर की मौलिक सृजनात्मक उपलब्धि है ।

साहित्य-लहरी :

यह सूरदास के दृष्टि कूट पदों का संग्रह है । इसमें रस, अलंकार एवं नाभिका भेद की शैली अपनायी गयी है । इसमें 118 पद है । विद्वानों के लिये यह विचारणीय विषय रहा है कि यह रचना एक स्वतंत्रकृति है या सूरसागर में रचित दृष्टिकूट पदों का संकलन मात्र । सूरसागर में दृष्टिकूट शैली के कुछ पद अवश्य हैं, तथा उनका साहित्य लहरी के पदों से उनका गहरा संबंध है । ऐसा लगता है कि यह दृष्टिकूट के पदों की स्वतंत्र कृति है । इस कृति में नायिका के मध्या, स्वकीया, अज्ञात यौवना, धीरा, आभिसारिका आदि अनेक रूपों का वर्णन है । इसके अतिरिक्त श्रृंगार, हास्य, रौद्र, वीर, अद्भुत, भयानक तथा शान्त रसों का सुन्दर एवं अलंकारों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है ।

बोध प्रश्न (क)

सही स्तर पर निशान लगाइये -

(1) सूरदास के पिता का नाम निम्न में से हैं -

(अ) नाभादास

(ब) रामदास

(स) चरणदास

(द) कृष्णदास

(2) सूर का जन्म निम्नलिखित में से किस स्थान पर हुआ-

(अ) दिल्ली

(ब) आगरा

(स) मथुरा

(द) सीही

(3) अष्टछाप से आप क्या समझते हैं? इसके अंतर्गत कौन-कौन से कवि आते हैं?

(4) क्या सुर की भक्ति प्रेरणा के स्रोत भक्ति आंदोलन में रहस्य खोजने चाहिए?

8.4 भक्ति-भावना

सूरदास के विनय के पदों में कुछ पद हठयोग एवं शैव साधना से प्रभावित है और कुछ पद निर्गुण भक्तिधारा मिलते हैं । यह भक्ति स्वरूप उनका वल्लभाचार्य से दीक्षित होने से पूर्व का रहा है । इन पदों में वेद शास्त्र की निंदा, ज्ञान एवं वैराग्य की महिमा, सतगुरू कृपा,

जाति-पांति का खण्डन एवं मूर्ति पूजा का विरोध वाला संत भाव प्रबल है । 'शब्दहिं शब्द भयो उजियारो सतगुरू भेद बतायो" कहकर कबीर की अंत: साधना की बात करते हैं, जिन पर रामानुजाचार्य एवं रामानंद का असर दिखाई देता है । इन पदों में विनय की प्रधानता के साथ नवधा भक्ति का रंग चढ़ा हुआ है । कहा जा सकता है सूर वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व एक संत थे ।

वल्लभाचार्य से दीक्षित होने पर पुष्टिमार्गीय भक्त हो जाते हैं । "पुष्टि मार्ग" में श्रीमद भागवत के द्वितीय स्कंध में मौजूद दशम अध्याय के चौथे श्लोक "पोषणं तदनुग्रह' के आधार पर भगवान की अनुग्रह कृपा को जीवन का वास्तविक पोषण कहते हैं । पुष्टिमार्ग में प्रेम लक्षण, भक्ति के द्वारा जीव की मुक्ति संभव है । सामान्यत: तीन प्रकार के जीव हैं - (1) पुष्टि जीव (भगवान के अनुग्रह का भरोसा रखते हैं । (2) मर्यादा-जीव वेद विधियों का अनुसरण करते हैं) (3) प्रवाह-जीव (संसार प्रवाह में पड़कर सुखों में लिप्त रहते हैं) इन तीनों प्रकार के जीवों में पुष्टिमार्ग, पुष्टिजीव को ही सर्वोपरि मानता है । कर्म, ज्ञान एवं भक्ति में भक्तिमार्ग ही उत्तम है । इस मार्ग में जीव दम्भ त्यागकर भगवान के अनुग्रह पर रहता है तथा भगवान की नित्य लीला में निमग्न इस सिद्धान्त दृष्टि के कारण ही गोपियों की प्रेमा भक्ति को ही पुष्टिमार्गीय भक्ति में सर्वोत्तम भक्ति भावना का रूप माना जाता है - सेवा का । सेवा भी दो प्रकार की है - नाम सेवा और स्वरूप सेवा । आचार्यों ने स्वरूप सेवा के तीन भेद किये हैं - तनुजा (शारीरिक सेवा) वित्तजा (धन से सेवा) एवं मानसी (सम्पूर्ण मन में की गई. सेवा)। मानसी सेवा भक्ति में भक्त अपना सर्वस्व कृष्ण के चरणों में अर्पण कर देता है । सूर की प्रधान भक्ति सखाभाव की है । सूर ने कृष्ण को अपना सखा मानकर भक्ति भावना की है और पुष्टिमार्ग के सेवाभाव का श्रेष्ठ उदाहरण भी प्रस्तुत किया है ।

पुष्टिमार्ग की भक्ति के तीन आसक्तियाँ मिलती हैं - लीलासक्ति, भावासक्ति एवं: रूपासक्ति। सूरदास ने लीलासक्ति को प्रधान स्थान देने के साथ कृष्ण रूपासक्ति को भी स्थान यह कहकर सगुण लीला पद गाऐ' दिया है । इतना ही नहीं सूर ने भक्त हृदय की चरम तन्मयता के साथ गोकुल से लेकर मथुरा तक की सभी कृष्ण लीलाओं का गान किया है । सखाभाव की भक्ति को प्रधानता मिलने पर भी यशोदा नंद का वात्सल्य भाव, ब्रज मंडल का प्रेमभाव, राधा गोपियों का माधुर्य और दाम्पत्य भाव को सरल और सहज अभिव्यक्ति हुयी है ।

सूर के प्रभु के सामने ऊँच-नीच नहीं है सभी बराबर है । सूर कहते भी है - "जात-पाँति कोऊ पूछत नाहीं श्री पति के दरबार" । सूर ने निर्गुण भक्ति का खण्डन करते हुये'भ्रमकगीत" के पदों में सगुण भक्ति की दृढ़ता से स्थापना भी की है । "रूप रेख, गुन, जाति जुगति बिनु, निरालंब मन चक्रत धावै । "

सब विधि अगम विचारै ताते सूर सगुन लीला पद गाऐ । ।

तथा सूर की गोपियां उद्धव से कहती हैं कि सगुण भक्ति के राजमार्ग पर निर्गुण के कांटे बिछाने का क्या अर्थ है? कहती है - "काहे को रोकत मारग सूधो । सुनहु मधुप निर्गुण कटक ते राजमार्ग क्यों रूधों । " कहा जा सकता है निर्गुण और योगमार्ग को खंडित करने के न जाने कितने ढंग सूरदास को मालूम थे । उन सैसी वचन वक्रता का उस काल में कोई दूसरा कवि नहीं

है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि वात्सल्य और श्रृंगार का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने किया उतना किसी अन्य कवि ने नहीं ।

दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन में भक्ति रस का मूलाधार निहित है - सूर कहते हैं - 'चरन कमल बंदौ हरिराइ" सखा भाव की भक्ति में सूर बेजोड़ है । डी. हरिप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - 'अगर उससे कोई पूछे कि सूरसागर का 'सेन्ट्रल थीम क्या है तो बिना किसी हिचकिचाहट के कह उठेंगे - छबीले मुरली नेकु बजाउ निःसंदेह सखाओं के ब्याज से सूर

ने स्वयं अपने मनोभाव को प्रकट किया है । " वास्तव में सूर के लिये भक्ति एक सर्वोच्च जीवन मूल्य है ।

दार्शनिक विचार :

प्राय: सभी भक्त प्रवर्तन आचार्यों ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद एवं मायावाद का खंडन किया है । स्वयं वल्लभाचार्य ने शकर के अद्वैत के स्थान पर दार्शनिक दृष्टि से शुद्धाद्वैतवाद" का सिद्धान्त प्रतिपादित किया । उन्होंने कहा कि सत्, चित्त और आनंद स्वरूप ब्रह्म अपनी इच्छानुसार इन तीनों रूपों का आविर्भाव एवं तिरोभाव करता है । जड़ जगत भी ब्रह्म है या वल्लभ ने जगत को मिथ्या नहीं माना और माया को ब्रह्म की ही शक्ति स्वीकार किया है। वल्लभाचार्य से प्रेरित सूरदास ने श्री कृष्ण को सगुण, लीलावतार पुरूषोत्तम, अन्तर्यामी, अविनाशी एवं घर-घर वासी माना है । इसी पूर्णावतार कृष्ण की ज्योति, जगत में व्याप्त है, यही त्रिगुणातीत सच्चिदानंद स्वरूप है और यहाँ ब्रजभूमि में नित्य लीला करता है । श्री कृष्ण विष्णु हैं और पूर्णावतार भी ।

वल्लभाचार्य की भांति सूर ने जीवों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है - शुद्ध जीव, मुक्त जीव एवं संसारी जीव । सूर ने शुद्ध जीवों का वर्णन कृष्ण की नित्य लीला के संबंध में किया है, एवं संसारी जीवों का वर्णन विनय के पदों में किया है । संसारी जीव विषयासक्ति के कारण संसार की दुर्गति भोगते हैं । जीव की दुर्गति का कारण माया है । सूर ने जगत और संसार को अलग-अलग माना है । उनके अनुसार जगत नित्य है और संसार, असत्य, भ्रामक एवं संसार अविद्या के कारण नश्वर है । अत: जगत ईश्वर कृत है और संसार जीवकृत ।

दार्शनिक निरूपण में श्री कृष्ण, मुरली तथा गोपियाँ क्रमश: ब्रह्म, माया और जीव के प्रतीक हैं । माया के दो रूप हैं - विद्या माया और अविद्या माया । पुष्टि मार्ग की सिद्धान्त दृष्टि से सूर ने आलोक्य सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य नामक चारों प्रकारों की मुक्ति का वर्णन किया है । श्री कृष्ण के लीलाधाम में स्थान पा जाना ही आलोक्य मुक्ति है, उनके चरणों का सानिध्य 'सामीप्य' मुक्ति । कृष्ण के साथ उन्हीं के समान आचरण करना सारूप्य' मुक्ति है तथा ब्रह्म के साथ पूर्ण रूप से एकाकार हो जाना 'सापुंज्य' मुक्ति । इन सभी में सूर ने 'सायुज्य' मुक्ति पर ही अपने को केन्द्रित किया है । सायुज्य मुक्ति के दो रूप हैं - संसार के दुःखों से मुक्ति तथा नित्य सुख की प्राप्ति । पर दोनों ही अवस्थाओं में जीव ब्रह्म अंश नहीं बनता । केवल लय सायुज्य की अवस्था में ही जीव ब्रह्म अंश नहीं बनता, केवल लय सायुज्य की अवस्था में ही जीव ब्रह्म का अंग बन जाता है । लय सायुज्य मुक्ति का वर्णन

सूर ने भक्ति तथा श्रृंगार के अन्तर्गत किया है । फलत: सूर के भ्रमणगीत एवं रस लीला वर्णन' में लयात्मक सायुज्य. के सीधे दर्शन होते हैं ।

संक्षेप में, सूर ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया एवं मुक्ति का निरूपण पुष्टिमार्ग के अनुसार किया है । भगवान की सेवा अलग से ही जीव मायाजन्य संसार के प्रपंच से छुटकर ब्रह्म का अनुग्रह पा सकता है । सूर की दार्शनिकता में भी भक्ति-भावना का ही प्राधान्य है, क्योंकि सूर भक्त कवि हैं? दार्शनिक आचार्य नहीं । फलत: उनकी भक्ति में तन्मयता ही रहा है, आनंद है, शक्ति है ।

8.5 सूर का भाव-पक्ष

सूर का सारा काव्य राधा-कृष्ण की लीला रस से भरा हुआ है । नंद नंदन गोपाल कृष्ण ही उनके आराध्य देव हैं एवं उन्हीं के वर्णन में सूर की तन्मयता और रसात्मकता के दर्शन भक्ति रस में होते हैं । सूर के काव्य में वात्सल्य और श्रृंगार दोनों ही भक्ति रस में पूर्णता पाते हैं। भाव-भूमि पर कृष्ण, राधा, ब्रजवंशी, लता विषय आदि सूर की अपूर्ण सृष्टि है । राधा की रूप माधुरी को कृष्ण निहारते रह जाते हैं और कृष्ण की रूप-माधुरी को भक्त हृदय सूर । प्रेम का उदात्त, उज्ज्वल, व्यापक और विशद् चित्रण सूर ने किया है, किन्तु इसमें चंचल वासनाऐं फटक तक नहीं पाती है । सूर 'काम' और प्रेम के मूल अभेद की स्पष्ट पहचान कराते हैं । ब्रज वासियों का प्रेम ही ब्रज में काम है - यही रागानुराग भक्ति का आधार है । प्रेम की इसी अवस्था में सूर का भक्त हृदय राग-निर्झरों में फूट पड़ता है । प्रेम से ही रस या गोपाल को पाया जा सकता है - संसार की निराशा, पीड़ा, भटकाव से बचा सकता है ।

सूर के काव्य में कृष्ण पूर्णावतार ब्रह्म है और राधा उनकी आहलादिनी शक्ति हैं । राधा ही वह प्रेम सागर है जिसमें गहराई है पर चंचलता नहीं । विरह में उद्धव से गोपियों ने सब कुछ कहा पर राधा मौन रही, कुरूक्षेत्र में मिलने पर भी यह राधा नैन नीर भर आए' की अथाह वेदना नारी झेलती रही और फिर राधा नैन नीर भर आए' की अथाह वेदना नारी झेलती रही और फिर राधा माधव भेंट भई' के अवसर पर दोनों तन्मय हो गये । राधा माधव बन गयी और माधव राधा । हिन्दी के किसी भी कवि ने राधा-कृष्ण का इस पूर्णता के साथ वर्णन नहीं किया है । श्रृंगार का इस राजत्व का भी यदि कहीं पूर्ण हुआ है तो सूर के काव्य में ही ।

8.5.1 वात्सल्य वर्णन

वात्सल्य का मूलाधार प्रभु श्री कृष्ण विषयक रति या प्रेम है । वात्सल्य भाव प्रेम का एक प्रकार है जिसमें निश्छल हृदय की अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति पाती है । वात्सल्य भाव हृदय की पवित्र एवं निष्कपट स्थिति है । इसमें बालक की स्वाभाविक क्रीड़ाओं एवं कार्यों की प्रधानता रहती है । इस प्रकृत या नैसर्गिक प्रेम में माता-पिता, परिवार के अन्य लोग, समाज आदि सभी बाल-क्रीड़ाओं में आनंद का अनुभव करते हैं ।

हिन्दी साहित्य में सूर का वात्सल्य वर्णन अनुपम है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है 'बाल्यकाल और यौवनकाल कितने मनोहर हैं । उनके बीच नाना मनोरम परिस्थितियों में विशद् चित्रण द्वारा सूरदास जी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी, उससे गिरे हुए हृदय नाच

उठे । वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं । इन दोनों का कोना-कोना वे झांक आये । उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृतियों और दशाओं का प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतना और कोई नहीं । " (भ्रमरगीत सार छंद) पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के बीच सूर के बालकृष्ण का सौन्दर्य निखरता है । कृष्ण की बाल्क्रीड़ाओं का प्रभाव नंद, यशोदा के साथ पड़ौसियों पर भी पड़ता है । कृष्ण के छोटे-छोटे पैरों से चलने, माखन खाकर भागने, रूठने, माँ से नटखटी करने के भीतर एक आनंद धारा बहती रहती है । उस बाल लीला में कृष्ण चरित्र का लोक पक्ष चमक उठा है । सूर के काव्य में कृष्ण जन्म की आनंद बधाई के बाद ही बाल लीला का आरंभ हो जाता है । जितने विस्तृत और विशद् रूप में बाल्य जीवन का चित्रण उन्होंने किया है, उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया । शैशव से लेकर कौमार्य तक के क्रम में लगे हुए न जाने कितने चित्र अंकित हैं । उनमें केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अन्त: प्रकृति में भी प्रवेश किया है और अनेक भावों की सुंदर स्वाभाविक व्यंजना की है ।

सूर का वात्सल्य दो भागों में विभक्त मिलता है - (1) वात्सल्य का संयोग पक्ष तथा वात्सल्य का वियोग पक्ष । बाल वर्णन का संयोग पक्ष काफी विशद् एवं गंभीर है । इसके पाँच भाग हैं- (1) बालकों की वेशभूषा का वर्णन (2) बाल चेष्टाओं क्रीड़ाओं का चित्रण (3) बालकों की अंत: प्रकृति का ज्ञान (4) बालकों के संस्कारों, उत्सवों का चित्रण (5) गो दोहन एवं गोचारण लीलाओं का सहज वर्णन । इसी प्रकार वात्सल्य वियोग के मोटे रूप में तीन पक्ष हैं - (1) कृष्ण का मथुरा गमन, (2) मथुरा से नंद का अकेला आना, (3) कृष्ण का मथुरा निवास। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वात्सल्य का बड़ा ही गर्मस्पर्शी चित्रण सूरदास ने किया है।

8.5.2 श्रृंगार

श्रृंगार रस की व्यापकता एवं विविध अर्न्तदशाओं के कारण ही इसे रसराज कहते हैं । सूरदास के काव्य में श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का तथा विप्रलंभ श्रृंगार के अन्तर्गत वियोग की दशाओं का वर्णन मिलता है । सूर का प्रिय विषय प्रेम है । वात्सल्य वर्णन में माता-पुत्र, पिता-पुत्र, तथा श्रृंगार वर्णन में प्रिय-प्रिया, गोप-गोपियाँ एवं राधा-कृष्ण के प्रेम का अंकन सूर ने खूबसूरती से अपने काव्य में किया है ।

संयोग पक्ष

सूर के श्रृंगार के संयोग पक्ष के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के स्वच्छन्द प्रेम, संकेतों द्वारा वार्तालाप, रास लीला, दान लीला, मान लीला एवं राधा-कृष्ण के विवाह का भी अंकन किया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सूर का संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य रंग के रंग-रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम की नाना उमंगों का! अक्षय भंडार प्रतीत होता है । ' (भ्रमरगीत सार पृ. 10)

वियोगपक्ष

सूर का विराह वर्णन यशोदा, राधा एवं ब्रज वासियों के हृदय से निःसृत करूणा की धारा है । कृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रजवासियों की जो कारूणिक दशा हुयी उसका हृदयग्राही अंकन श्रृंगार के वियोग पक्ष के अन्तर्गत हुआ है । आचार्यो ने विरह की एक-एक दशा का मार्मिक चित्रण किया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूर के विरह वर्णन पर आक्षेप लगाया है कि सूर का वियोग वर्णन, वियोग के लिये है, परिस्थिति के अनुरोध से नहीं । गोपियों का विरह उन्हें खाली बैठे व्यक्ति का तमाशा दिखायी देता है । आगे चलकर वे कहते हैं कि 'सूरसागर प्रबन्ध काव्य नहीं है जिसमें वर्णन की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के निर्णय में घटना या परिस्थिति के विचार का बहुत कुछ योग रहता है । यदि इस विरह वर्णन के छोटे-छोटे आक्षेपों पर ध्यान न दें तो कह सकते हैं कि सूर के विरह वर्णन में मानव हृदय के मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति हुयी है ।"

व्याधि

विरह दशा में विरही को शारीरिक बीमारी तो नहीं होती वरन् उसका चित्त ठीक नहीं रहता । इस अवस्था में गोपियों को वे सब वस्तुएँ जलाने वाली प्रतीत होती है जो संयोग के दिनों में शीतलता देती थी । वियोग का दुख विरही को जड़ बना देता है । उसे कुछ भी नहीं सुहाता । राधा की दशा भी कृष्ण के वियोग में जड़ता की हो गयी है । "अधोमुख रहति उरध नहिं चितवत, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी" इस प्रकार कहा जा सकता है कि सूर के काव्य में श्रृंगार के संयोग एवं वियोग श्रृंगार का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

बोध प्रश्न (ख)

5. सही उत्तर पर सही का निशान (✓) लगाइये -

   (क) सूर का दार्शनिक सिद्धान्त किस मत पर आधारित है -

   (अ) अद्वैतवाद (ब) द्वैताद्वैत (स) शुद्धाद्वैत (द) विशिष्टाद्वैत

(ख) दार्शनिक निरूपण में श्री कृष्ण, मुरली तथा गोपियाँ किन-किन प्रतीकों के रूप में आये हैं ।

6. सूर के भाव पक्ष का विश्लेषण चार पंक्तियों में कीजिए ।

   .....

   .....

   .....

7. सूर की भक्ति-भावना पर दस पंक्तियाँ लिखिए ।

   .....

   .....

   .....

   (क) सूर की भक्ति पर सही (✓) गलत (ग) का निशान लगाइए -

   (अ) दास भाव (ब) मधुर भाव (स) सखाभाव (द) स्वामीभाव

8. सूर के वात्सल्य वर्णन की चार विशेषताएँ लिखिए -

   .....

   .....

.....

9. सूर के श्रृंगार पक्ष की विशेषताओं को पाँच पंक्तियों में लिखिए -

.....

.....

.....

8.6 अभिव्यंजना शिल्प

वैष्णव पद परम्परा के अभिव्यंजना शिल्प में विदग्धता एवं व्यंजना की दृष्टि से सूरदास अदभूत कहे जा सकते हैं । सूर के मन में प्रेम की जितनी विराट भावभूमि है उतनी ही प्रेम कथन की नवीन शैलियों की प्रसार शक्ति है । कहा जा सकता है अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के सम्बन्ध को सूरदास जल और उसकी लहर की भाँति स्वीकार करते हैं । उनके अभिव्यंजना शिल्प में भाषा, प्रतीक, मिथक, बिंब, रूप, उपमान योजना, छंद और लय जैसे उपकरण ऐ दूसरे में गुथें हुए हैं । सूर के काव्य ने जैसे सिद्ध कर दिया कि वचन की जो वक्रता भाव से प्रेरित होती है, वह ही काव्य है । इसी प्रकार की शैली की शक्ति के कारण उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने उनसे पूर्व काव्य में अप्रयुक्त भाषा को इतना सुन्दर, मधुर और आकर्षक बना दिया कि लगभग चार सौ वर्षों तक उत्तर पश्चिम भारत की कविता का सारा राग-विराग, प्रेम प्रतीति, भजन-भाव उसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त हुआ है । सूर के भाव शिल्प में कलाकार लोक हृदय से तादात्म्य की ऐसी शक्ति रखते हैं कि भारतीय जनता उन्हें भूल नहीं सकती

8.6.2 काव्य भाषा

सूरदास ने अपने भावों को अभिव्यक्त देने के लिए काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा को अपनाया है । ब्रजभाषा के लोक प्रचलित स्वरूप में उन्होंने अपनी काव्य शक्ति से इतनी सर्जनात्मकता पैदा कर दी है कि साहित्यिक ब्रजभाषा के प्रथम समर्थ कवि सूरदास ही दिखायी देते हैं । ब्रजभाषा पर सूर का पूरा अधिकार है, वे इस भाषा की संगीतात्मकता को हर संभव तरीके से खींचकर कविता में लाते हैं ।

सूर की काव्य-भाषा का महत्वपूर्ण गुण है उसका चित्रमय होना । साधारण मानव जिस बात को भाव-भंगिमाओं, व्याख्याओं का सहारा लेकर स्पष्ट नहीं कर पाता, सूर ने उसे एक ही वचन भंगिमा में स्पष्ट करने की शक्ति रखते हैं । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो यहाँ तक कह दिया कि सूरदास में ये दोनों गुण (चित्रमयता स्पष्टता) विद्यमान हैं । दूसरे गुण (स्पष्टता) में सूरदास की समता संसार के कुछ ही कवि कर सकते हैं । " उदाहरणार्थ चित्रमय भाषा का एक रूप देखें - 'नटवर वेष धरे ब्रज आवत, मोर मुकुट मकराकृत कुंडल-कुटिल अलक मुख पर छवि छाजत ।'

सूरदास शास्त्रीय वैष्णव भक्ति शास्त्र से प्रेरणा अवश्य लेते हैं, पर अभिव्यक्ति के स्तर पर वे लोक भाषा और लोक लय के अधिक निकट हैं । ब्रजभाषा की लोकगीत शैली का प्रसार सूर की रचनात्मक भाषा ने ही किया है । सूरसागर' लोकोक्ति मुहावरों का एक अक्षय भण्डार है । सूर ने 'परम गंग को छांड़ि दुरमति कूप खनावै' "विष कीरा विषखात", 'छैरी कौन दुहावै",

"गाढ़े दिन के भीत' जैसे अनगिनत लोकोक्ति मुहावरों को प्रयोग किये हैं । सूरदास खलकारी कामरि चढै न दूजो रंग'', 'सूर सिकत हठि नाव चलावत यह सरिता है सूखी जैसी लोकोक्तियाँ तो जनता की जबान पर आज भी बसती है ।

सूरदास की काव्य भाषा में संस्कृत की तत्सम-तद्भव पदावली है पर ठेठ ब्रजभाषा के प्रति पूरा-पूरा अनुराग है । सारांश यह है कि सूर के हाथों से ब्रजभाषा का व्यापक स्तर पर साहित्यिक संस्कार होता है । ब्रजभाषा की रचना शक्ति के प्रकाशन में उनके भाषा प्रयोग ऐतिहासिक महत्व रखते हैं ।

8.6.3 अलंकार योजना

सूरदास रस और ध्वनि के सिद्ध कवि हैं, वे कभी अलंकारवाद या रीतिवाद का समर्थन नहीं करते हैं । अलंकार उनकी कविता में झूठे चमत्कार प्रदर्शन के लिये नहीं आये अपितु भाव की प्रभाववृद्धि के रूप में ही अलंकार का प्रयोग हुआ है । वे रूप-माधुर्य को मूर्त रूप देने के लिए ही अलंकार का सहारा लेते हैं । फलस्वरूप सूर के अलंकार प्रयोग में भाव-प्रवणता है - कथन की भंगिमा है - अलंकार का ज्ञान प्रदर्शन नहीं । अत: कहा जा सकता है - सूर का उद्देश्य रूप सौन्दर्य चित्रण करना और उसके द्वारा भाव सौन्दर्य का पोषण करना रहा है । सूरसागर में अनुप्रास भाव के साथ ध्वनि सौन्दर्य की वृद्धि करता मिलता है और वीप्सा सूर की भक्ति तन्मयता का परिचायक अलंकार । वक्रोक्ति का प्रयोग 'भ्रमरगीत'' की ववन-विदग्धता का सौन्दर्य बन गया है । व्यंग्य कथन महिला का प्रतीक बन गया है । मानव और मानवेतर व्यापारों को वे प्राकृतिक उपमानों से ही सामने लाते हैं । भाव प्रबलता के लिए सूर ने उपमा, रूपक, उत्पेरता, रूपकाति श्योक्ति का प्रयोग किया है । सूर के काव्य में शब्दालंकारों की बजाय अर्थालंकारों का ही अधिक प्रयोग हुआ है । "साहित्य लहरी'' में भी शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है, श्लेष और यमक दृष्टिकूट के पदों में ज्यादा है । उमडती हुयी यमुना नदी का विक्षिप्त युवती के द्वारा सांगरूपक बांधकर कहते हैं - सूरदास प्रभु जो जमना गति, सो गति भई हमारी ।"- और प्रस्तुत को अप्रस्तुत में और अप्रस्तुत को प्रस्तुत की इस मिलावट में यमुना नहीं विक्षिप्त युवती अभेद हो जाते हैं और सांग रूपक का आलंकारिक चमत्कार काव्य भाषा को संश्लिष्ट अर्थ की चमक दे देता है ।

सारांश यह है कि सूर की अलंकार, योजना भाव एवं भाषा के प्रभाव को बढ़ाने वाली है । भाव सौन्दर्य के लिए अनुप्रास । इस अलंकार योजना ने सूर के काव्य सौन्दर्य की शोभा में वृद्धि की है । भगवान के गुण कथन में अतिश्योक्ति, रूपकातिश्योक्ति, स्वभावोक्ति, आदि अलंकारों की झड़ी लग गयी है ।

8.6.4 छंद विधान

सूरदास के काव्य में छंद विधान पर विचार करते समय इस बात का ध्यान आवश्यक है कि उन्होंने काव्य रचना गेय पद शैली में की है । उनके पद कीर्तन के रूप में हैं और इसी पद्धति के अनुकूल उन्होंने छंद रचना की है । कहना होगा कि पिंगल शास्त्रीय छंदों की अपेक्षा संगीत शास्त्रीय राग-रागनियाँ ही उनके काव्य में प्रधान रूप से पायी जाती है । किन्तु राग-रागनियों में पद रचना करते समय सूरदास छंदों को नहीं छोड़ सके हैं । पूर्व प्रचलित छंदों को सूर ने

ऐसे आत्मसात कर राग-रागनियों के भीतर ही छन्दों का सफल प्रयोग किया है । पदों के ऊपर गीत का स्वरूप है भीतर दोहे मौजूद हैं - देखिये

मना रे माधव सों करि प्रीति ।

काम क्रोध मद लोभ तू छौडि सबै विपरीत । ।

भौंरा भोगी वन भ्रमै रे मोद न मान ताप ।

सब कुसुमिन मिली रस करे पै कमल बधावे आय । ।

इस पद में प्रथम दो पंक्तियाँ तो राग की टेक निर्वाह है और बाद की दो पंक्तियाँ दोहे की है । केवल रै'' तथा 'पै'' से दोहे की तेज गति मंद पड़ती है । इस प्रकार के मंद गति दोहों से सूरसागर' भरा पड़ा है । कई बार तो सूर दोहा एवं रोला को मिलाकर एक नया ही छंद निर्मित कर देते हैं ।

चौपाई एवं चौपई जैसे छंद भी सूरसागर' में कम नहीं हैं । संगीत में बंधने के कारण उनकी शास्त्रीय मात्राओं का सांचा गड़बड़ा गया है । सूर ने 14 से लेकर 16 मात्राओं तक की चौपाइयाँ लिखी हैं । प्राय: कथात्मक प्रसंगों में चौपाई छंद का ही प्रयोग हुआ है । चौपाई के अतिरिक्त साह, सहसी, लवनी, समान सवैया, कुडेल धनाक्षरी, छप्पय, झूलना आदि छन्दों का प्रयोग भी उनके काव्य में मिलता है । परम्परागत छंदों को मिलाकर नये छंद बनाने में सूर बड़े सिद्धहस्त हैं । प्राय: (13) तेरह मात्राओं के चरण में अर्धाली जोड़ देते हैं यथा - 'आज हो बधाई बाजे, मंदिर महर के।

फूले फिरै गोपी ग्वाल, ठहर-ठहर के । (यहाँ 13 माया के चरण के साथ छ माया की अर्धाली जोड़कर नया छंद बना दिया है)

मूल बात यह है कि सूर ने केवल गीतों की ही रचना नहीं की है, बल्कि अनेक मात्रिक और वार्णिक छंदों का भी मुक्त भाव से प्रयोग किया है । छंदों में थोड़ा हेर-फेर कर रागों में ढालने की क्षमता में उनका मुकाबला नहीं है । अत: निश्चित रूप से सूर ने छंदों के क्षेत्र में परवर्ती कवियों को नयी दिशा दी है ।

बोध प्रश्न (ग)

निम्न में से (✓) और (ग) का निशान लगाइये । सूर सागर का काव्य रूप है -

(1) महाकाव्य (2) गीति काव्य (3) खण्ड काव्य

11. सूरदास की काव्य-भाषा पर दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

12. सूर काव्य के अलंकारों की विशेषतायें पाँच पंक्तियों में लिखिए |

.....

.....

.....

13. सूरदास के छंद विधान पर पाँच पंक्तियों में विचार कीजिये |

.....

.....

.....

8.7 सूरदास के पदों का वाचन एवं व्याख्या

(1) बाल-लीला पद

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै दुलरावै मल्हावै जोई सोई कछु गावै ।
मेरे लाल की आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे नहिं बेगि सों आवै ताहे कौं कान्ह बुलावै । ।
के बहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं अधर कबहुँ फटकावै ।
सोवत जानि मौन है बैठी कर-कर सैन बतावै । ।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावैं । ।

संदर्भ - प्रस्तुत पद सूर द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है ।

प्रसंग - माता यशोदा घर के काम-काज निबटाने हेतु बालक श्री कृष्ण को पालने में झूला, झूलाकर सुलाने का प्रयास कर रही है । बालक माता का सानिध्य पाने के लिए सोने और जागने का बहाना करता है । इस पद में माता का पुत्र के प्रति और पुत्र का माता के प्रति स्नेह भाव देखते ही बनता है ।

व्याख्या - सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा कृष्ण को पालने में झूला, झूला कर सुला रही है इस क्रम में कभी पालने को हिलाती है, कभी बच्चे को पुचकारती है, हवा करती है साथ ही लोरी गाती हुयी नींद से आग्रह करती है तुझे कोई साधारण बालक नहीं अपितु मेरा कान्हा तुम्हें बुला रहा है अत: जल्दी से आकर मेरे बालक को क्यों नहीं सुला देती । बाल सुलभ क्रीड़ा में बाल भगवान कृष्ण कभी अपनी पलक बंद कर लेते हैं, और कभी अपनी पलकों को अधखुला सा कर लेते हैं । माता यशोदा सोचती हैं कि बालक को नींद आ गयी है तब पालना हिलाना व गाना बन्द कर देती है तब-तब बालक इशारा कर-करके बताता है कि अभी मैं सोया नहीं हूँ । इस प्रकार की बाल लीला देखकर माता का हृदय ममत्व भाव से भर उठता है, कवि सूरदास जी कहते हैं कि यह वह सुख है जो माता यशोदा प्राप्त कर रही है जैसा अमर मुनियों को भी दुर्लभ है ।

शब्दार्थ - दुलराई-प्यार करना, निंदरिया-नींद सोवत-सोता, सैन-इसारा, अन्तर-हृदय, नंद यामिनि-नंद की पत्नी (यशोदा)

विशेष -

1. बाल सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है ।
2. वात्सल्य रस एवं माधुर्य गुण का समावेश हुआ है ।
3. माता के हृदय को ममत्व भाव का अगाद्य सुख प्राप्ति हुई है ।
4. ब्रजभाषा में तुकान्त शैली का लयात्मक क्रम है ।

(2) रूप-माधुरी पद -

मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ । ।
देखि तु हि सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने, छींका केहि विधि पायौ । ।
मुख दधि पौंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि, मुसुकाय जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ । ।
बाल-विनोद मोद मन मोहयो, भक्ति-प्रताप दिखायी ।
सूरदास जसुमत को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायी । ।

शब्दार्थ - ख्याल-खेलना, भाजन-बर्तन, नान्हे-नन्हें, छोटे, दुरायो-छिपाना सींके-छींका, कर-हाथ, साँटि-छड़ी, सिव-शिव भगवान, बिरंचि-ब्रह्मा ।

प्रसंग - श्री कृष्ण माखन चोटी करते रंगें हाथों पकड़े गये, तब ग्वालिन उलाहना लेकर माता यशोदा के पास जाती है, माता यशोदा रोज-रोज शिकायत से तंग आकर बालक कृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठाती है, बालक किस चतुरता से माँ की मार से बचने के लिए अपनी सफाई पेश करता है।

व्याख्या - सूरदास जी कहते हैं कि श्री कृष्ण अत्यन्त दुलार भरी वाणी में अपनी माता यशोदा से अनुनय विनय करने लगे कि माता मैंने मक्खन की चोरी नहीं की और न ही मैंने मक्ख़न खाया । मेरे साथ मेरे सखा खेलते हैं उनमें बड़े लड़के मक्खन की चोरी करते हैं और मुझ जैसे छोटे बच्चे के मुख पर पकड़े जाने के भय से लिपटा देते हैं । अब तू ही बता कि छोटी बाँहों वाला बच्चा हूँ मैं इतने ऊँचे पर लटके छींके के बर्तन तक कैसे पहुँच सकता हूँ प्रयास करने पर भी छींके तक नहीं पहुँच सकता । इतनी सफाई देने पर भी जब माँ का क्रोध शांत नहीं हुआ तब कृष्ण का ध्यान अपनी शारीरिक स्थिति पर गया तब बड़ी चतुरता से उन्होंने शीघ्रता से मुँह पर लिपटा मक्ख़न पौंछा और हाथ में पकड़ा हुआ मक्खन से भरा दोना पीठ के पीछे छिपा लिया । कृष्ण के इस बाल सुलभ भोले नटखट रूप का कौतुक देख कर यशोदा हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह से भर गयी, सारा क्रोध विस्तृत कर उन्होंने कृष्ण को गले लगा लिया । कृष्ण ने बाल सुलभ क्रीड़ाओं के आनन्द से माँ का मन मोह लिया और भक्ति के प्रताप का यशोदा को दर्शन करा दिये । अन्त में सूर कहते हैं कि बाल-लीला का जो सुख यशोदा को प्राप्त हुआ वह वात्सल्य सुख ब्रह्मा और शिव भी नहीं पा सके । यह सुख तो अवर्णनीय और हृदय से अनुभूत करने वाला है ।

विशेष -

1. मैया मोरी मैं..... में अनुप्रास अलंकार है ।
2. इस पद में बाल लीला के मक्खन चोरी प्रसंग का सहृदयता एवं विद्वग्धता से बिंब या भाव-चित्र उपस्थित हुआ है
3. इस पद में बालकों की अन्तवृत्तियों का प्रकृत स्वभाव निरूपित हुआ है ।
4. इस पद में लोक-चेतना का संकेत हुआ है ।

5. ब्रजभाषा की लोक संगीत परम्परा का प्रभाव भी इस पद में देखा जा सकता है ।

3. वियोग-वर्णन

ऊधो, मन नाहीं दस-बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस । ।
देह अति शिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिन सीस ।
स्वासां अटकि रही आसा लगि, जीवहि कोरि-बरीस । ।
तुम तो सखा स्याम सुन्दर के, सकल जोग के ईस ।
सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुखौ मन जगदीश । ।

शब्दार्थ -ऊधो-उधव (कृष्ण का मित्र), हुतो, जो पास था, स्याम-श्री कृष्ण, आरौ आराधना,सीस-सिर स्वासौ-श्वास, जीवहि-जी रही हैं सखा मित्र रसिकन-प्रेम पूर्ण, बतियाँ-बांते।

संदर्भ - प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर से लिया गया है ।

प्रसंग - उद्धव निर्गुण ज्ञान के प्रसार हेतु ब्रज में आता है और गोपियों से भी कृष्ण के निर्गुण रूप की अराधना की बात कहता है! उसका उत्तर गोपियाँ इस पद में देती है । साथ ही अपने लौकिक प्रेम की स्थापना करती है । उद्धव के निर्गुण ज्ञान को ग्रहण न करने की विवशता भी दर्शाती हैं ।

व्याख्या - सूरदास गोपियों के माध्यम से कहते हैं कि हे उद्धव, हमारे पास तो केवल एक ही मन था, हमारे पास दस-बीस मन होते तो एक मन हम तुम्हें भी देती, निराश नहीं करती किन्तु हमारी इस विवशता पर भी आप ध्यान देवें । हमारे पास जो एक मन था वो तो श्री कृष्ण अपने साथ मथुरा ले गये, फिर निर्गुण कृष्ण की अराधना बिना मन हम कैसे करें । श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम के कारण हम कितनी कमजोर हो गयी हैं मानो बिना सूर के हमारे पास शरीर शेष रह गया है । इस शरीर में श्वास अटकी हैं वो भी उनके आने की आशा से, उनके आने की बात तो हम करोड़ों वर्षों तक करती रहेंगी । हे उद्धव तुम तो श्री कृष्ण के मित्र हो उनसे तुम्हारा लौकिक सम्बन्ध भी है, तुम्हारी ये कठोर बातें हमारे पल्ले नहीं पड़ेगी । अन्त में सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों को श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम की बातें करने से ही हमारे द्वारा हमारे ईष्ट की सच्ची अराधना है ।

विशेष -

(1) इस पद में निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय दर्शायी गयी है ।
(2) वैष्णव परम्परा की सगुण भक्ति में लीला वर्णन में आनन्द का जो स्रोत फूटता है - वह जनता के मन को स्पर्श करता है । इसी स्थिति के कारण सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है ।
(3) लौकिक प्रेम के प्रति पूर्णशक्ति का भाव चित्रित हुआ है ।
(4) बोलचाल की ब्रजभाषा में शब्दों का लयात्मक क्रम मिलता है ।

बोध प्रश्न (घ)

निम्नलिखित पद की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-
मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ । ।

देखि तु हि सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने, छींका केहि विधि पायी । ।
मुख दधि पौंछि बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि मुसुकाय जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायी । ।
बाल-विनोद मोद मन मोहयो, भक्ति-प्रताप दिखायी ।
सूरदास जसुमत को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायी । ।

8.8 सूर काव्य का मूल्यांकन

सूरदास ने कृष्ण राधा को आराध्य मानकर सगुण भक्ति की है । सूर के काव्य में प्रेम तत्व की प्रधानता है, वात्सल्य एवं श्रृंगार दोनों ही प्रेम के पोषक भाव बनकर आये हैं और पुष्टि मार्ग का शुद्धाद्वैतवाद कर्म प्रेरणा की संजीवनी का रूप । इस प्रकार सूर की सगुण कृष्ण भक्ति धारा में लोक संस्कृति का सौन्दर्य भारतीय जनता की धरोहर है । लोक गीत परम्परा, लोक भाषा और पुस्तक पद शैली का ब्रज में सही उपयोग करने वाले सूरदास महाकवि कहलाने के सच्चे अधिकारी हैं |

8.9 सारांश

इस इकाई में भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए सगुण भक्तिधारा के कृष्ण भक्त कवि सूरदास के काव्य सौन्दर्य का आस्वादन किया है । सूर के पुन: परिवेश, जीवनी, रचनाओं की जानकारी, भक्ति भावना की मूल विशेषताएँ, दार्शनिक विचारधारा, काव्य-रूप, काव्य भाषा, अलंकार योजना, छंद योजना का अध्ययन कर लोक परम्पराओं की शक्ति तथा लोक भाषा ब्रज को साहित्यिक भाषा बनाकर निखारने वाले कवि सूरदास ही हैं। निष्कर्ष यह है कि सूरदास भक्ति-आंदोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

8.10 संदर्भ ग्रंथ

1. भ्रमणगीत सार - डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग- 4, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
3. मध्यकालीन काव्य - भाषा - रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद ।
4. सूर और उनका साहित्य - हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ ।
5. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय - दीनदयाल गुप्ता - हिन्दी सा. सम्मेलन प्रयाग ।
6. सूरदास हिन्दी परिषद् ब्रजेश्वर शर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ।

8.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न -

(क) (1) (ब) रामदास (2), (द) सीही (3) देखिए 5.3,(4) दीक्षा गुरू वल्लभाचार्य देखिए 5.3

(ख) (5) (क) शुद्धाद्वैत (✓) बाकी (x) गलत ।

5(ख) कृष्ण-ब्रह्म, मुरली-माया एवं गोपियाँ-जीव के प्रतीक रूप में आये हैं ।

(6) देखिए-5.5 (7) देखिए-5.4, (को 7(क), सखाभाव (✓) बाकी (x) गलत । (8) देखिए-5.5.1,(9) देखिए 5.5.2

(ग) (10) नीति काव्य (✓) बाकी (x) गलत ।

(11) देखिए-5.6.2, (12) देखिए 5.6.3,(13) देखिए 5.6.4

(घ) देखिए-8.7

इकाई-9

मीराबाई का काव्य रूपरेखा

इकाई रुपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 मीरा बाई का जीवन वृत्त

बोध प्रश्न

9.3 भक्ति साधना

9.3.1 मीरा के आराध्य देव

9.3.2 मीरा की उपासना पद्धति

9.3.3 मीरा काव्य की विशेषताएँ

9.4 मीरा की प्रासंगिकता

9.5 सारांश

9.6 संदर्भ ग्रन्थ

9.7 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

1. इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य सुविख्यात सगुण वैष्णव भक्त मीराबाई के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी विद्यार्थियों तक पहुँचाना है ।
2. मीराबाई की जीवनी, उनकी भक्ति साधना तथा भक्ति काव्य इस अध्ययन के मुख्य आधार हैं।
3. मीराबाई का योगदान तथा प्रासंगिकता जैसे विषयों के माध्यम से मीराबाई के व्यक्तित्व के महत्त्व के पाठकों के समक्ष लाने का प्रयास किया जायेगा ।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको-

- मीराबाई की जीवनी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होगी।
- मीराबाई की भक्ति और साधना का परिचय मिलेगा।
- मीराबाई के भक्ति काव्य की सरलता , प्रभाव क्षमता तथा लोकप्रियता की जानकारी मिलेगी।
- मीरा ने समाज सुधार तथा धार्मिक आडम्बरों को नष्ट करने में क्या योगदान किया? इसका भी परिचय मिलेगा।
- मीराबाई आज भी प्रासंगिक क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर भी आप प्राप्त कर सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भक्तिकाल कहलाता है । इस युग में जो राजनैतिक, सामाजिक,आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक वातावरण रहा उसका प्रभाव साहित्य

लेखन पर भी पड़ा । युगीन परिवेश के कारण ही हिन्दी साहित्य के विभिन्न काल खण्डों में वैविध्यपूर्ण सृजन हुआ । हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भी युगीन परिस्थितियों की ही देन है ।

इस युग में सगुण तथा निर्गुण दो भक्ति धाराओं से युक्त साहित्य प्राप्त होता है । वैसे तो अनेक भक्तों, संतों और चिंतकों ने कहा है- 'सगुण-निर्गुण नहिं कुछ भेदों' - किन्तु मूल रूप में ये भक्ति की दो धाराएं हैं ।

सामान्यतया, सगुण को भक्त तथा निर्गुणी को संत कहा जाता है । सगुण भक्त अपने प्रभु का आकार मान कर उनकी मूर्ति पूजा करते हैं, मंदिर स्थापना में आस्था रखते हैं तथा नवधा भाव से भक्ति करते हैं- किन्तु निर्गुण, संत ईश्वर के आकार में विश्वास नहीं करते । अत: संत मूर्ति पूजा, मंदिर । निर्माण तथा नवधा भक्ति को स्वीकार नहीं करते । वे अपने प्रभु को निराकार तथा अजन्मा मानते हैं । वे ईश्वर के नाम और गुरू की वाणी का महत्व स्वीकार कर 'गुरुवाणी' को सम्मान देते हैं । संत संस्कृत के स्थान पर जनभाषाओं को स्वीकार करते हैं । संतों का सम्पूर्ण ज्ञान, भक्ति और दर्शन लोकभाषाओं के माध्यम से प्राप्त होता है । मीरा इसी मध्यकाल की सगुण वैष्णव भक्त है ।

9.2 मीरा बाई का जीवनवृत

भक्त शिरोमणि मीराबाई का जन्म मध्यकालीन धार्मिक वातावरण में हुआ ।मीराबाई सगुण वैष्णव भक्त के रूप में प्रसिद्ध है और श्रीकृष्ण के' गिरधर नागर' स्वरूप के प्रति समर्पित है! श्रीकृष्ण का 'गिरिवर धारी' वह स्वरूप है जहाँ श्रीकृष्ण जन-जन के रक्षक हैं और मानव मात्र की पीड़ा का हरण करने वाले हैं । मीरा के लिए यही स्वरूप सबसे अधिक ग्राह्य है । इसीलिए मीरा के प्रत्येक पद क अन्त में 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' का सम्बोधन जुड़ा हुआ है । मीराबाई ने माधुर्य भाव से अपने 'सांवरिया गिरधर नागर' की उपासना की और सगुण भक्त के रूप में अपना सम्पूर्ण जीवन उन्हीं को अर्पित कर दिया । यह उद्भूत भक्ति भाव सम्पूर्ण विश्व के लिए आदर्श बन गया । एक लौकिक आत्मा ने अपने अलौकिक प्रभु के लिए जिए माधुर्य भाव की दर्द भरी वेदना को अनुभव किया, उसे अत्यन्त सरल, सहज तथा मर्म स्पर्शी शब्दावली में इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति दी कि । आज 500 वर्षों के पश्चात् भी दर्द 'दीवानी' मीरा की वह पीड़ा जगत व्याप्त हो गयी । इसीलिए कई बार यह आशंका भी होने लगती है कि ऐसी भक्त साधिका इस जगत में अवतरित भी हुई थी अथवा उनकी सम्पूर्ण व्यथा-कथा काल्पनिक है । मीरा का यश आज सर्वत्र व्याप्त है । मीराबाई समय, स्थान, जाति और धर्म की सम्पूर्ण सीमाओं को तोड़कर मानव मात्र की विशाल भाव- भूमि तक पहुंच गयी है । मीरा के जीवन की घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं । उसके प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं । मीरा के जीवन की प्रत्येक घटना ऐतिहासिक है ।

मीराबाई का जन्म, समय एवं स्थान : - मीराबाई का जन्म वि.सं. 1555 में तत्कालीन मेड़ता राज्य के बाजोली ग्राम में हुआ । बाजोली ग्राम वर्तमान डेगाना जंक्शन से 9 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है । मीराबाई मेड़ता राज्य के संस्थापक राव दूदा के चतुर्थ पुत्र रतनसिंह की कन्या थी । राव दूदा तत्कालीन जोधपुर रियासत के संस्थापक राव जोधा के पुत्र थे । इस

प्रकार मीराबाई जोधपुर के शासक राव जोधा की प्रपोत्री और मेड़ता के शासक दूदा की पौत्री थी । मेड़तियों (राठौड़ों) के कुल गुरूओं की बहियों से ज्ञात होता है कि मीराबाई से पूर्व रतनसिंह के एक पुत्र हुआ था जिसका नाम गोपाल था । उसकी बाल्यकाल में मृत्यु हो गयी थी । मीराबाई के पिता रतनसिंह को मेड़ता राज्य के राजकुमार होने के कारण बारह गाँव जागीर में मिले थे, जिनमें बाजोली और कुड़की दो प्रमुख ग्राम थे, शेष्ज्ञ बाजोली में आज भी रतनसिंह के महलों के अवशेष विद्यमान हैं । ऐसी लोक धारणा है कि मीराबाई के मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण उनकी माता का देहान्त उनके जन्म के साथ ही हो गया था । मीरा के मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण रतनसिंह ने चारणों और ब्राह्मणों को जमीन और अन्य सामग्री दान-दक्षिणा में देकर ग्रहों की शान्ति का प्रयास किया । रतनसिंह द्वारा बाजोली के पास स्थित चारणावास ग्राम चारणों को दिया गया था । प्रसिद्ध इतिहासवेता मुहणोत नैणसी द्वारा रचित 'मारवाड़ रा परगना री विगत' में उसका उल्लेख मिलता है ।

मीराबाई का पितृ परिवार: - मीराबाई के दादा मेड़ता के राव दूदा के पांच पुत्र थे, जिनमें वीरमदेव ज्येष्ठ पुत्र थे जो इतिहास प्रसिद्ध वीरवर जयमल के पिता थे । राव दूदा के अन्य पुत्र रायमल, रायसल, रतनसिंह और पिचाणसी थे ।

मेड़ता राज्य की स्थापना : - जोधपुर के संस्थापक राव जोधा ने अपने दो पुत्रों वरसिंह और दूदा को मेड़ता रियासत की स्थापना का आदेश दिया । मेड़ता पूर्व में इन दोनों भाईयों ने मिलकर स्वतन्त्र मेड़ता राज्य की स्थापना की । राव दूदा और वरसिंह राव जोधा की सोनगरी राणी चम्पा के पुत्र थे । इन दोनों भाइयों ने वि.सं. 1518 - 19 में मांडू के बादशाह से मेड़ता का भौगोलिक क्षेत्र छीनकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया । राव दूदा अत्यन्त वीर एवं प्रसिद्ध भक्त थे । उन्होंने ही मेड़ता में चारभुजानाथ के मंदिर का निर्माण करवाया तथा मेड़ता राज्य को समृद्ध एवं शक्तिशाली बनाया । वि.सं. 1572 में राव दूदा का देहान्त हो गया और उनके ज्येष्ठ राजकुमार वीरमदेव मेड़ता के शासक हुए । इस प्रकार मीराबाई तत्कालीन मेड़ता राज्य की राजकन्या थी । वीरवर जैमल मीरा के बड़े पिता की संतान होने के कारण मीरा के छोटे भाई लगते थे ।

मीराबाई का बाल्यकाल : - बाजोली में मीराबाई की माता का देहान्त हो जाने के कारण रतनसिंह ने उस ग्राम को छोड़ दिया और कुड़की को अपना निवास सान बनाया । वहाँ छोटी-सी पहाड़ी पर दुर्ग की स्थापना की । मीराबाई के बाल्यकाल के कुछ वर्ष वहीं व्यतीत हुए । कुछ वर्षों के पश्चात् मीरा दादा राव दूदा ने मीराबाई को मेड़ता बुलवा लिया । वैष्णव भक्त पितामह राव दूदा के स्नेह और संरक्षण में मीरा का बाल्यकाल व्यतीत हुआ । मेड़ता नगर में आज भी तत्कालीन मेड़ता राजमहलों के अवशेष विद्यमान हैं और चारभुजानाथ का मंदिर भी विद्यमान है जहाँ मीराबाई ने सगुण वैष्णव भक्ति का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किया और अपना ध्यान भक्ति की ओर केन्द्रित किया । सगुण वैष्णव भक्ति के उस वातावरण ने मीरा को सर्वाधिक प्रभावित किया और वह श्रीकृष्ण के रंग में रंग गयी । श्रीकृष्ण के एक स्वरूप चारभुजा की मूर्ति के समक्ष जनसमुदाय और अपने राज परिवार को भक्ति भाव में निमग्न देखकर मीरा का मन भी उसी वातावरण में लीन हो गया ।

मीराबाई का विवाह : - मीराबाई का विवाह विक्रमी संवत 1573 में मेड़ता शहर में सम्पन्न हुआ । राव दूदा की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र राव वीरमदेव विक्रमी संवत 1972 में मेड़ता के शासक हुए और विक्रमी संवत 1573 में उन्होंने मीराबाई का विवाह बड़ी धूम- धाम से मेवाड़ के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से किया । महाराणा सांगा स्वयं इस विवाह में मेड़ता आये थे और बड़े हर्षोल्लास के साथ विवाह सम्पन्न हुआ ।

मीरा का वैधव्य: - मीरा राजवधु बनकर मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पहुँची । महाराणा सांगा से उन्हें बहुत स्नेह मिला । महाराणा संग्राम सिंह (सांगा) ने मीरा की भक्ति भाव के सम्बन्ध में सुन रखा था । अत: उन्होंने मीरा की भक्ति में कोई विघ्न नहीं आने दिया और इसके लिए विशेष व्यवस्था की गयी । दुर्भाग्य वश मीरा के पति भोज राज की विवाह के छ: वर्ष पश्चात् ही एक अतिसार बीमारी के कारण मृत्यु हो गयी और सांसारिक दृष्टि से मीरा विधवा हो गई ।

मेवाड़ राज परिवार और मीरा : - मीराबाई के श्वसुर महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) अपने युग के वीरवर योद्धा, श्रेष्ठ सेनापति, दूरदर्शी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे । उन्होंने तत्कालीन भारतीय नरेशों की सम्मिलित सेना का नेतृत्व करते हुए वि.सं. 1584 में भरतपुर के पास स्थित खानवा मैदान में मुगल सेनापति बाबर से ऐतिहासिक युद्ध किया और हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न को साकार करने का प्रयास किया । इतिहास प्रसिद्ध इस युद्ध में मेड़ताराज्य से भी मीराबाई के बड़े पिता वीरमदेव और मीराबाई के पिता रतनसिंह 4000 हजार सेना लेकर महाराणा की सहायतार्थ गये और अपने अद्भुतत रण कौशल से यश अर्जित किया था, जिसका इतिहास साक्षी है । महाराणा सांगा पर हुए प्राण घातक आक्रमण के समय इन्हीं मेड़तिया वीरों ने महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया था । इसी युद्ध में दुर्भाग्य वश महाराणा सांगा की मृत्यु हो गयी और उन्हीं के साथ मीराबाई के पिता रतनसिंह भी वीरगति को प्राप्त हुए ।

महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात उनके तीन पुत्र और एक दासी पुत्र मेवाड़ के अल्पकालीन महाराणा बने । महाराणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् रतनसिंह मेवाड़ के महाराणा बने किंतु उनका शासनकाल स्वल्प (लगभग तीन वर्ष) रहा और वे बूंदी में शिकार करते हुए मारे गये । तब महाराणा सांगा के द्वितीय पुत्र विक्रमादित्य वि.सं. 1588 में मेवाड़ के महाराणा बने और उन्होंने वि.सं. 1593 तक शासन किया । तत्पश्चात् विक्रमादित्य को मारकर महाराणा सांगा का दासी पुत्र बनवीर वि.सं. 1593 - 1596 तक मेवाड़ का महाराणा रहा । बनवीर की मृत्यु के पश्चात् महाराणा सांगा के सबसे छोटे राजकुमार उदयसिंह वि.सं. 1596 में मेवाड़ के महाराणा बने ।

मीराबाई के पदों में मेवाड़ के जिस महाराणा द्वारा उन्हें कष्ट पहुँचाने, विषपान कराने और सर्प का पिटारा भेजने का उल्लेख आता है वह यही महाराणा विक्रमादित्य था जो मीरा का देवर था । महाराणा विक्रमादित्य एक उद्दण्ड, घमण्डी और अयोग्य शासक के रुप से प्रसिद्ध है । इसी ने लोक लज्जा और कुल की मर्यादा की आड़ में मीराबाई को नाना प्रकार के कष्ट दिये जिनसे दुखी होकर मीराबाई ने चित्तौड़ का त्याग किया और अपने बड़े पिता राव वीरमदेव के साथ अपने पीहर मेड़ता आ गयी । इसी समय मेड़ता पर जोधपुर के शासक राव मालदेव के आक्रमण कर दिया । इसलिए मीराबाई के बड़े पिता वीरमदेव को मेड़ता छोड़ना पड़ा और

उन्होंने अजमेर पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया । किंतु एक वर्ष पश्चात् ही (वि.सं. 1592 में) राव मालदेव सेना लेकर अजमेर पहुंच गया और राव वीरमदेव को अजमेर भी छोड़ना पड़ा और वे अपने संबंधी अमरसर शेखावटी के शासन राव रायमल के पास चले गये और वही से रणथम्भौर जाकर दिल्ली चले गये और दिल्ली के बादशाह शेरशाह सूरी को राव मालदेव पर आक्रमण के लिए ले आये । राजनैतिक परिस्थितियों से दुःखी होकर भक्त हृदय मीरा वृन्दावन चली गयी और चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख शिष्य जीव गोस्वामी तथा अन्य भक्तों से मिली । वृन्दावन कुछ समय रहने के पश्चात् वे द्वारिका चही गयी और अंतिम समय तक द्वारिका में ही रही । वहीं वि.सं. 1604 में मीरा की मृत्यु हुई और मीरा का द्वारिका स्थित गोमती घाट पर दाह संस्कार किया गया । इस गोमती घाट पर मीरा का एक छोटा मंदिर आज भी बना हुआ है ।

इस प्रकार वैष्णव भक्त मीराबाई का जीवनवृत राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक संघर्षों तथा कष्टों एवं वेदनाओं से घिरा रहा ।

मीरा के गुरु: - मीराबाई सगुण वैष्णव भक्त थी किंतु उन्होंनें किसी धर्माचार्य को अपना गुरु नहीं बनाया उनके प्रभु सांवरिया गिरधर नागर ही गुरु थे और वे ही 'स्वामी' । मीरा की पदावली और भक्ति साधना से यही सिद्ध होता है कि मीरा अध्यात्म के उस उच्च शिखर पर पहुंच गयी थी, जहां किसी गुरु के आवश्यकता नहीं रहती । मीरा की यह निर्गुण भक्ति गुरु भक्ति के उस मध्यकालीन धार्मिक वातावरण में एक चुनौती के रुप में सामने आयी क्योंकि उस युग के अनेक धार्मिक सम्प्रदाय निरन्तर यह प्रयास कर रहे थे कि मीरा उनके सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाये जिससे उन्हें राज्याश्रय तथा लोकाश्रय सहज ही प्राप्त हो जाये । जब मीरा ने किसी आचार्य को गुरु नहीं बनाया और किसी धार्मिक सम्प्रदाय में दीक्षित नही हुई तो उसे धार्मिक आचार्यो ओर उनके शिष्यों के विरोध का सामना करना पड़ा । मीरा न तो कभी धार्मिक संकीर्णता में बन्धी और न ही: किसी वाद- प्रतिवाद में । मीराबाई ने स्वंय किसी सम्प्रदाय की स्थापना की और न ही किसी शिष्य को अपना उत्तराधिकारी बनाया । वे आदर्श भक्त की तरह अपने सांवरिया में लीन रही । सांसारिक बन्धन और संकीर्णताएं उन्हें बांध नहीं सकी । यह प्रसिद्ध है कि मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मुंडयो कोय ।

मीराबाई के लिए धार्मिक जगत में यह प्रसिद्ध है कि जब वे वृन्दावन गयीं तब वहां चैतन्य. महाप्रभु के । शिष्य रुप गोस्वामी और जीव गोस्वामी अपनी एकान्त भक्ति साधना के लिए प्रसिद्ध हो गये थे । जीव गोस्वामी का यह प्रण था कि वे किसी स्त्री का मुंह नहीं- देखेंगे । मीराबाई यह जानते हुए जीव गोस्वामी से मिलने गयी और उनके शिष्यों से कहलवाया कि मेड़ता की मीराबाई उनके दर्शन करना चाहती है । जीव गोस्वामी यह सन्देश सुनते ही आदेश में आ गये और उच्च स्तर में बोले 'वे यहां क्यों आ गयी' क्या उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि हम किसी स्त्री का मुंह. नहीं देखते । ' तपस्वी के उग्र और तीखे वचनों को सुनकर अत्यंत विनम्र भाव से मीराबाई ने कहा कि मुझे आज मालूम हुआ कि इस कृष्ण भक्ति धाम में कृष्ण के अतिरिक्त कोई ओर भी पुरुष है । मधुरा भक्ति में तो कृष्ण ही एक मात्र पुरुष है । अभी जीव गोस्वामी पुरुष और स्त्री के ही भेदभाव में अटके हुए हैं तो उनकी साधना अधूरी है । इतना सुनते ही जीव गोस्वामी तत्काल बाहर आ गये और क्षमायाचना करते हुए कहा कि मैं

नहीं जानता था कि आप भक्ति के उस चरमोत्कर्ष पर पहुंच गयी हैं जहाँ अभी मुझे पहुंचना है । इस घटना से मीरा के उच्च कोटि के ज्ञान और भक्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है

मीराबाई की तीर्थ यात्राएँ: - मीराबाई ने अपने पीहर एवं ससुराल आते और जाते तीर्थराज पुष्कर की अनेक यात्राएं की और सरोवर में स्नान करके वहां के मन्दिरों में भक्ति भाव से गान किया। पुष्कर के प्रति उनके हृदय में विशेष सम्मान तथा स्नेह सदा बना रहा । मीराबाई अपने प्रभु के निजधाम वृन्दावन और द्वारिका अवश्य गई और वह। कृष्ण के भक्ति भाव में ही लीन रही ।

मीराबाई जब द्वारिका में थी जब जूनागढ़ के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता भी वहीं थे । नरसी मेहता के सरल स्वभाव. ओर कृष्ण के प्रति समर्पित भक्ति भाव से वे अत्यन्त प्रभावित हुई और उन्होंने अपना अन्तिम समय ' राव रणछोड़जी' ' के मन्दिर में नरसी मेहता के सान्निध्य में व्यतीत क्रिया ।

मीराबाई की मृत्यु से उन्हें पुन: मेवाड़ लाने के लिए उनके सबसे छोटे देवर मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह तथा मेड़ता परिवार द्वारा पुरोहित एवं सम्मानित व्यक्ति द्वारिका भेजे गये थे किन्तु मीराबाई ने पुन: सांसारिक जीव न व्यतीत करने से स्पष्ट मना कर दिया और वे पुन : नहीं लौटी ।

बोध प्रशन

1. मीरा का जन्म कहाँ हुआ था?
2. मीरा के गुरु कौन है?
3. मीरा युगीन राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए ।

9.3 मीराबाई की भक्ति-साधना

मीराबाई सुगणोपासिक वैष्णव भक्त के रूप में अद्दावधि विख्यात है श्री विष्णु के दो अवतारों (रामावतार और कृष्णावतार) के आधार पर भारत में दो भक्ति धाराएं चलीं, उनमें से कृष्ण को आराध्य देव मान कर अपनी भावानुभूति को अभिव्यक्ति देने वाले भक्तों में मीरा का प्रमुख स्थान है । कृष्ण भक्ति में कृष्ण के नाना रूपों को नाना भक्तों-सन्तों ने अपनी भक्ति का आधार बनाया है । मीराबाई ने कृष्ण को अपनी प्रियतम, पति के रूप में स्मरण कर उसकी आराधना, उपासना की है । अत: मीरा की भक्ति कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव की भक्ति कही जाती है ।

9.3.1 मीरा के आराध्य देव

कृष्ण के भी विभिन्न विवादों के कारण अनेक नाम हो गए अथवा यों कह जाय कि भक्तों ने अपनी भक्ति भावना अनुसार उनके नाना नाम रख लिए । मीरा के पदों में 'गिरधर नागर' - की बार-बार आवृत्ति से इस शब्द के साथ भक्ति और साहित्य में अनेक दंतकथाओं का जन्म हुआ । श्रीकृष्ण अपने 'गिरधर नागर' के रूप में ही मीरा को अधिक प्रिय रहे हैं अथवा

यों कहा जा सकता है कि श्रीकृष्ण के ' गोवर्धनधारी नागर' रक्षक भाव के आस-पास ही मीरा की भक्ति घूमती है ।

वैष्णव भक्त मीराबाई, विष्णु के द्वितीय अवतार श्रीकृष्ण की उपासिका थी । श्रीकृष्ण के विभिन्न रूपों में से उनके 'गिरवरधारी' स्वरूप की आराधना ही मीरा के प्रत्येक पदों में मिलती है । श्रीकृष्ण के ' गिरधरनागर' की शाब्दिक आवृत्ति इस बात का प्रमाण है कि गिरधर नागर की मीरा के आराध्य देव हैं, उपास्यदेव हैं, वे ही उसके प्रभु हैं, वे ही स्वामी हैं, वे ही गुरु हैं और वे ही उनके लिये भवभव के भरतार हैं ।

मीरा 'गिरधर नागर' के अतिरिक्त किसी अन्य देव की वह पूजा तक नहीं करना चाहती और उसके ' गिरधर' के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता । 'कान्हा' के अतिरिक्त और किसी की मीरा को कामना भी नहीं है किन्तु अपने प्रभु स्मरण में मीरा ने बड़ी विशाल हृदयता से काम लिया हैं अपने ' गिरधरनागर' का स्मरण, आराधना तथा उपासना करते समय मीरा के पदों में हरि, गोविन्द, श्याम, कन्हैया, नटनागर, नन्द के डोटा, मोहन, मनमोहन आदि (कृष्ण सूचक) शब्दों के साथ- साथ राम, जोगी, नाथ, साहिब आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । इन समस्त शब्दों के माध्यम से मीरा केवल अपने 'गिरधरनागर' - का ही स्मरण तथा आराधना करती है, किसी अन्य के प्रति संकेत ग्रहण करना हमारी भूल होगी ।

मीरा के पदों से ज्ञात होता है कि मीरा स्वयं गिरधरमय हो गई है । गिरधरनागर के अतिरिक्त मीरा के लिए इस लौकिक और पारलौकिक संसार में कुछ भी नहीं है । प्रत्येक प्राणी के घट-घट में उसे अपने 'सांवरा' की ही छवि दृष्टिगत होती है । यहां तक कि ' पात पात' - में उसे अपने 'साहिब' ही दिखाई देते हैं ।

मीरा ने अपने उपास्यदेव के साकार और दिव्य स्वरूप का अपने पदों में वर्णन किया है । आराध्य देव का रूप सौन्दर्य, वस्त्र और आभूषण, गुण, अवगुण, महात्म्य आदि लौकिक उपमानों के साथ-साथ उनके अलौकिक सर्वशक्ति सम्पन्न, सर्वगुण एवं रूपयुक्त स्वरूप का उल्लेख भी किया गया है । श्रीकृष्ण के देवत्व का नरत्व (अपने पति के रूप में) अरोपण करते समय मीरा उनके पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर स्वरूप को विस्मृत नहीं कर पाई है । अपने प्रभु की महत्ति सत्ता को वह सर्वत्र, सहर्ष स्वीकार करती है यही कारण था कि 'गिरधर' के 'बीड़द' गान उसने बड़ी श्रद्धा, तन्मयता और भाव-विभोरता के साथ किया है । एक और मीरा कहती है कि: -

'म्हारे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई । जिस सिर मोर मुकुट म्हारो पति सोई । '

'गिरधर म्हारो सांचो पति है । ' 'मीरा रा प्रभु गिरधर नागर, घर पायो पूरो । । '

तो दूसरी और उसका कहना है: -

'नख पर गिरवर धारी बंसी बजावणा । । जा पर किरपा करै नंदन । ताके सदा सहाय छै ।।'

'बली दलण चाल्या । भेख धरयो बावना । ।मथुरा में कंस पछाड्यो, लंकापति रावणा । । '

प्रहलाद री प्रतिज्ञा राखी । वासुदेव रा बंध छुड़ावणा । द्रोपदी री लाज राखी ।चीर नै बधावणा।'

'ब्रह्मादिक सनकादिक ज्यांका ध्यान धरै छै गावत । '

'वैद पुराणा पारबिरम पूरण सुरसोतम ज्यांको रूप लखाऊं। । '

ऐसे ही सर्वशक्तिमान, पूर्ण ब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण मीरा के पति हैं और वह उनकी - 'पतिव्रता है :-

म्हैं पतिवरता पीव री हो, मोल ली चेरी ।

आप बिना कोई स्नो देव सुपना में ना हेरी । ।

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री किसी अन्य पुरुष को स्वप्न में भी नहीं देखती उसी तरह गिरधर नागर की यह (भक्त) पतिव्रता किसी अन्य देव को नहीं देखना चाहती । यहां युगीन लोक मान्यता को भक्ति का आधार बनाया गया है ।

मीरा का अपने इष्टदेव के प्रति अनुराग 'जीवन की अनेक परिस्थितियों के होते हुए भी सदा समरस बना रहा । उसने सबकुछ छोड़ दिया किन्तु अपने इष्टदेव को जीवन पर्यन्त नहीं छोड़ा और संत में देहत्याग किया तो भी उसी रणछोड़

की नगरी द्वारिका में, अपने इष्टदेव के चरणों में ।

'बालपण सूं मीरा कीनी| गिरधर लाल मीताई । ।

सो तो अब छूटे नांहि क्यूं हो लगन लगी पूरी माई । । बाल सनेही गोवींदो । '

'जगंत हंसे हंसी जाण दे री, टहल करां म्है जाय ।

लोक कटुंबी निंदवियां री प्रति न घटाय । ।

मन वचन करम करि गौविंद भजस्यां, म्हारो ओ ही: सुभाव । '

मीरा के प्रभु अपूर्व सौन्दर्य, वस्त्र सज्जा और आभूषण श्रीमदभागवत के कृष्ण से अत्यन्त मेल खाते है : -श्रीकृष्ण का अपूर्व रूप सौन्दर्य मीरा की पदावली में दृष्टव्य है-

'सांवली सूरती म्हारे हीय में समायी । '

सुन्दर वदन, कंवलदल लोचन, मधुर मधुर मुस्कावे

मदनायक गोपाल विराजै । सुन्दरता री सींवा हो, कोटि काम वारुं,, जीवे मोहन नाचें गावै रे।

चल रूप माधुरी, गज मदन, परे सींवा स्याम सुन्दर कमल नैन, अदबुद मुख चंदा । ।

वस्त्राभूषण: -

मोर मुगट पीताम्बर सौहे चंदन हार बदापै । अंग-अंग आभूषण राजै बनमाला छीटकी ।

थाकित भयो दोऊ द्रग गोरे देख छिव नटकी ।

मोर मुगट पीताम्बर सौहे, गल मोतीयन री माल । ।

वन जावत, वैन बाजावत गल वैजंती माल ।

मोर मुगट सिर छत्र वीराजै कुंडल छलकत कान । ।

मीरा प्रभु गिरधर नागर निरखत भाई निहाल ।

स्याम बरण तन उपरि सजी पीत वसन फैहराय । ।

मोर मुगट गलमाल बिराजै कुंडल री छब न्यारी । ।

मीरा ने अपनी भावाभिव्यक्ति से यह स्पष्ट कर दिया है कि उसके प्रभु (आराध्यदेव) केवल जगत विख्यात यदुवंशी सम्राट श्रीकृष्ण हैं, जो समय-समय पर अवतार लेते रहे हैं, जिन्होंने द्वापर में अवतार लेकर यमुना तट पर रास रचाया है, गोवर्धन धारण किया, बंसी बजाकर 'गौ' चराई है, जिन्होंने जल और थल के सभी प्राणियों को अपने आकर्षण में बांध रखा है,

जिन्होंने अनेक पापियों को भाव सागर के पार उतार दिया है । जो दुष्टों को नष्ट करने वाले और सज्जनों और भक्तों की रक्षा करने वाले हैं । वे ही मीरा के इष्टदेव हैं जिन्होंने राम का अवतार लेकर रावण को, कृष्ण का अवतार लेकर कंस को, नृसिंह रूप धरकर हिरण्यकश्यप को नष्ट किया है, जिन्होंने द्रौपदी, ध्रुव, प्रहलाद, सेना, करमां, सबरी, पुल्हीबाई, राका-बांका, गणिका, कालू करि, गजराज आदि भक्तों की रक्षा कर, उनका उद्धार किया है ।

'मोर मुकुट' और ' पीताम्बर' धारण किए, बंसी कर में लिए, कानों में मक्राकृत कुंडल और गले वैजयन्ती माला से सुशोभित स्यामवर्ण, मधुर मुस्कान कंवलदल लोचन, घुंघराली अलकों वाले सुन्दर वदन स्याम ही मीरा के स्वामी हैं ।

मीरा के ये स्वामी ' अविनासी' हैं । दुखों का नाश कर सुख देने वाले हैं । वे सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभु हैं जिनका 'सुरनर-मुनिजन' ध्यान करते हैं, जिन्हें ब्रह्म और विष्णु तक ध्यान हैं । वे ही प्रभु गिरधरनागर भक्तवत्सल हैं ।

मीरा की साधना : - मीरा सुगणोपासक वैष्णव भक्त है । उसके प्रभु निराकार न होकर साकार हैं, जिनकी भव्य और मनमोहक छवि को उसने कई बार निहारा है । वह सुन्दर छवि मीरा की आंखों में बस गई है, वह उसे विस्मृत नहीं कर पाती । श्रीकृष्ण के कमलनयन, सुकुमार, सौन्दर्यशाली, रूप, लावण्य युक्त मुख शौभा के अतिरिक्त उनके आभूषण और सुन्दर वस्त्रों का स्मरण भी उसे अब तक है । यही कारण है कि इन सबका बार-बार स्मरण कर वह आनन्द अनुभव करती है । इस तरह मीरा पुनर्जन्म में गहरी आस्था रखती है ।

मोहन मूरत नवल किसोरी दासी मीरा -मील जाय ।
मीरा ने गिरधर मिल्यो भव भव रा भरतार ।
मोर मुगट सिर छत्र बीराजे, कुंडल झलके कान ।
कान कुंवर म्हारे दुवारो ठाडो
मोर मुगट मकराकरात कुंडल सौभा पीताम्बर पट री ।

अवतारवाद में आस्था : - मीरा के स्याम ने इस धरती पर अवतार लिया है और वे भक्तों के हित नाना लीलाएं करते हैं । उन्होंने पहले भी अनेक भक्तों का उद्धार किया है । मीरा की यह आस्था श्रीमदभागवत से पूर्ण साम्य रखती है ।

जनम जनम रो पति परमेसर । जां में राच्यौ जग सारी । ।
मीरा रा प्रभु गिरधर नागर । जीवन प्राण आधारो । ।

इस अभिव्यक्ति में भगवान विष्णु के दोनों अवतारों का लीलागान है ।

9.3.2 मीरा की उपासना पद्धति

मूर्ति पूजा : - मीरा मूर्ति पूजा और मन्दिर स्थापना में विश्वास करती है और अपने प्रभु- 'गिरधरनागर' की मूर्ति की आराधना वह प्रतिदिन करती है । इस मूर्ति पूजा में वह ' धूप दीप' का प्रयोग करती है । मूर्ति पूजा के पश्चात् प्रतिदिन ' चरणाम्रत' लेने का उसका प्रण है-

धूप दीप ले करूं आरती लुल लुल लागू हर रे पांव । सेवा सालगराम री ।
रमती ने लाधो कांकरो, सेव्या सालगराम । चरणाम्रत रो नेम म्हारै

मीरा का दृढ़ विश्वास है कि उसके प्रभु (गिरधर नागर) को वही प्राप्त कर सकता है जो उनका नित्य ध्यान करता है

'मीरा रा प्रभु गिरधर नागर जो सैवे सोई पावै । '

मीरा की आराधना श्रीमदभागवत में बताई गई भक्ति आराधना के अनुरूप है - जहां प्रभु का लीलागान भक्ति का अंग है ।

'मोर मुगट पीताम्बर सौवे । कुंडल री छिब निरखै ।

संख चक्र गदा पदम बीराजै । सुधा पुरी बरसे। '

मीरा की भक्ति में ' भालतिलक' और 'तुलसी की माला' का भी महत्व है: -

भाल तिलक तुलछां री माला, फैरत कुण नटै ।

सत्संग : - इस विधि सम्मत भक्ति साधना के साथ-साथ मीरा संतन संग बैठ-बैठ ' भजन कीर्तन' भी किया करती थी उसकी दृढ़ धारणा है कि सत्संग से ही उसे ज्ञान और भक्ति के साथ-साथ उसके प्रभु प्राप्त हो सकेंगे । सत्संग का यह भाव श्रीकृष्ण द्वारा निर्देशित कलयुगी भक्ति का श्रेष्ठ साधन हैं । संत समागम का अवसर मीरा को उसके बाल्यकाल से प्राप्त होता रहा है । 'दो सौ बावन' और ' दी सौ चौरासी' वैष्णवन की वार्ताओं से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मीरा के पीहर मेड़ता में भक्तों और संतों की मंडलियों का आवागमन बराबर बना रहता था । कुछ संत- भक्त तो अनेक दिन तक मेड़ता में निवास करते थे । यद्दपि मीरा के इस सत्संग से उसके देवर महाराणा विक्रमादित्य बहुत अप्रसन्न थे और इसके लिए मीराँबाई को अनेक कष्ट पहुंचाते थे किन्तु मीरा ने संत समागम को नहीं छोड़ा ।

सतसंग में पड़ी हो छिन-छिन आजरी घड़ी

साध संगत अरु भजन करत मोही देत कलेस माहाई

सेवा करसूं साध री । म्हानै स्याम मिलण री आस ।

श्रीमद्रागवतादि का श्रवण मनन: - एक आदर्श वैष्णव भक्त की तरह, मीराँबाई ने भी वैष्णव भक्ति के आधार ग्रंथ (श्रीमत्भागगतव) का श्रवण-मनन अनेक बार किया है । मीरा के पदों से ज्ञात होता है कि जैसे मीरा भागवत पुराण में श्रीकृष्ण द्वारा कहे गए उपदेश का अक्षरश पालन कर रही है और उसी रीति से साधना भी करती है । ऐसा तभी संभव है जब श्रीमद्रागतवत् का या तो. पठन-पाठन किया हो अथवा बड़े ध्यान से उसे अनेक बार सुना गया हो ।

श्रवण सुणत श्रीमद्रागवत, रसना रटत हरी ।

सांवरी सूरत मोहनी मूरत, उर विच आन परी । ।

मीरा अपने आराध्य के आराधन में इतनी समर्पित हो जाती है कि उसे किसी का ध्यान नहीं रहता । यहां तक कि वह अपनी सुदबुध भी जो देती है । यही कारण है कि वह राजवधू और राजकन्या की अपनी स्थिति भूल कर 'पग घुंघरू बांध' नाच उठती है । भक्ति आवेश की यह स्थिति चैतन्य महाप्रभु में भी देखी जा सकती है । श्रीमदभागवत में कलियुग में सत्संग का बहुत महत्व वर्णित है और मीरा ने उसी ओर सर्वाधिक ध्यान केन्द्रित किया है ।

एकनिष्ठ भक्ति : - मीरा ने केवल कृष्ण को अपना आराध्या देव माना है और जीवनपर्यन्त उसी ' गिरधरनागर' की एकनिष्ठ भक्ति करती रही है । मीरा की इस भक्ति को डिगा देने के अनेक प्रयास हुए किन्तु वह पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ विश्वास से अपनी भक्ति में लीन रही ।

एक ओर उसके ससुराल वाले चाहते थे कि वह 'गौरज' पूजै तो दूसरी ओर तत्कालीन विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय चाहते थे कि वह उनके आराध्य की पूजा में लग जाय, किन्तु मीरा आजीवन अपने 'बालस्नेही' गिरधर गोपाल- गिरधर नागर' के रंग में रंगी रही ।

म्है ईसट म्हारो ध्यावां और देव म्हारे दाय न आवै

नहीं पूजा देवी देवता नहीं पूजा गणगौर । म्हारो परम सनेही गोवींदो । थे मत जाणों और।।

नहीं पुजूं गिणगौर नै । नहीं पुजूं आन देव । म्हैं तो करस्युं सेवा सालिगराम री ।

आप बिन कोऊ दूजो सूपने हूं ना हेरी । भेरुं पीर मीर भेख । म्हे नहीं सीस नमावां ।

इससे ज्ञात होता है कि ' भेरुं, पीर, मीर, भेख' आदि का मीरा के युग में अधिक प्रचलन था और मीरा से भी कहा गया होगा कि वह इन्हें नमन करे । इसी के प्रत्युत्तर स्वरूप उपर्युक्त पद्यांश मीरा ने कहे हैं ।

कठिन साधना : - मीरा ने यह भली प्रकार आत्सात् कर लिया था कि भक्ति मार्ग बहुत कठिन है किन्तु वह उस दुर्गम पथ पर निरन्तर बढ़ती रही । आरम्भ में वह कष्टों के आगमन पर कह उठी-

'थारी भगती दुहेली स्याम'

किन्तु धीरे- धीरे वह अभ्यस्त हो गई । भक्ति की वह अवस्था उसने प्राप्त कर ली जब न जिह्वा का स्वाद रहता है, न शरीर का आराम । केवल एक ही लक्ष्य सामने रहता है प्रभु मिलन का -

मीठा लागे टुकड़ा कांई । इमरत लागै छाछ । ।

भू सुवां भूखां मरां । म्हाने कद मिलै करतार । ।

मेवाड़ की राजवधू और मेड़ता की राजकन्या धरती पर शयन कर, भूखे रह कर, प्रभु प्राप्ति की कठिन साधना की ओर आगे बढ़ने को सदा तत्पर रही है: -

जो दुख थाय सौ थाज्यौ रे रुड़ा स्याम जी न भजंता।। टेर । ।

पिंड जाय तो स्याम लीजौ जीव जाय तो जाजै रे । ।

ऊंचा बांध तल अगनी परजाली मार समैला री खाज्यो रे । ।

यदि लोकनिंदा बाधक बने तय भी भक्ति करनी है-

लोक नींदै वाने निंदवा दीजौ, राज डंडे तो डंडाज्यौ रे । ।

मीरा कहे दुख कोट सैवन, गुण गोबींद जी रा गाज्यौ रै । ।

'जिनगानी करुं कुरबान राज पै और न दूजी पेस ।'

इस तरह मीरा ने अपने प्रभु को जीवन की बाजी लगा कर प्राप्त किया है ।

'मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर लियौ छै सीस साटै । '

अनन्य भक्ति : - मीरा के प्रभु स्मरण के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता है । वह अपनी वाणी से कहती है-

रसना तूं स्याम बिन मत बोल

ओर बोल्यां अपराध लागै, पडै भजन माहै झोल ।।

सुकरत सुमरण कर ले री, बोलो दोय बात अमोल ।

जगत तणी बातां सब झूठी, स्याम नाम मुख बोल ।।

यहां मीरा के 'स्याम' सम्बोधन में श्रीकृष्ण की ओर संकेत है । मीरा ने अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति हेतु अनेक शब्दों का सहारा लिया है किन्तु संकेत ' गिरधर नागर' की ओर ही है । 'स्याम' यहां विष्णु के अवतार के रूप में ही देखे जा सकते हैं । कितना सारगर्भित निवेदन है-हे वाणी तूं प्रभु के अतिरिक्त कुछ और न बोल क्योंकि तेरा ऐसा न करने से मेरी भक्ति में विघ्न उत्पन्न होता है । तुझे कुछ बोलना ही है तो उसी प्रभु के लिए ' अमोल' शब्दों का उच्चारण कर क्योंकि संसार की सभी बातें झूठी हैं । प्रभु चरणों में ही मीरा ने अपने आपको अर्पित कर दिया है-

बलि जाऊं चरण। री दासी ।। टेक

आ ही म्हारे गंगा आ ही म्हारे जमना आ ही तीरथ कासी ।।

हरि जी म्हारा म्है हरि जी री, जगत करे क्यूं हासी ।।

मीरा के अनुसार अनेक कष्टों के विमोचक 'गोपाल' ही है अत: -

सैसूं पेली भजो गोपाल

कोट करम जंजाल जीव रा, मिटै रा जाल ।।

मीरा ने कबीर की तरह भक्ति में आडम्बर और दिखावे से सदा घृणा की है । वह ' अंग भभूत रमा कर', 'जटा बढा कर', 'संसार त्याग कर' भक्ति करने में तब तक कोई सार्थकता नहीं देखती जब तक कि हरि स्मरण की ओर व्यक्ति का मन न लगता हो । मुख्य हरि स्मरण है शेष सब गौण है: -

बनि आवै तो हरी गुण गाय लै रे । गोविंद गुण गाय लै रे।।टेर ।।

कहा रे भयो सपद ठाडै, जटा रे बधाई, कहा भयो हरी भभूत रे लगाई ।।

मीरा कहे प्रभु गिरधरनागर हरि चरणा चित लाय लै रे ।। 2 ।।

9.3.3 मीरा-काव्य की विशेषताएँ

मीरा की भक्ति के कुछ तत्व ऐसे हैं जो उसे सगुणोपासक, मूर्तिपूजक वैष्णवभक्त के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं, जैसे:-

1. भक्ति का सर्वोपरि स्थान : - अन्य वैष्णव भक्तों ओर दक्षिण के आलवार भक्तों की तरह मीरा ने भी अपने जीवन में भक्ति को सर्वोपरि स्थान दिया है । मीरा की यह मान्यता है कि इस असार संसार में सार वस्तु यही हरि स्मरण है अन्य सभी कुछ मिथ्या है: -

गोविंद रो सरणों, दुख धन माल री आसा कांई करणो ।

सांवरी सूरति चितवन में धरणा ।।

जग री आस वास सब तज दी, लाभ हो भावे हानी । थारी सूरत मन मानी ।।

मना रे गिरधर रा गुण गाय

मनसा बाचा कर्मणा रै घणी सौं ध्यान लगाय।

2. नाम महिमा : - मीरा की भक्ति में नाम की महिमा सर्वत्र लक्षित होती है । यद्दपि मीरा के उपास्य देव का नाम ' गिरधर नागर' है, किंतु एक प्रभु के अनेक नाम हो गए हैं । अत: मीरा के संबोधन भी अलग- अलग नामों से हैं किंतु लक्ष्य सभी का एक ही प्रभु की ओर हैं । मीरा के प्रभु श्रीकृष्ण हैं जो गिरधर नागर रुप में ही मुख्यतया मीरा को प्रिय हैं ओर इसी

नाम से उसने उन्हें स्मरण किया हैं किंतु श्रीकृष्ण के अनेक पर्यायवाची शब्द भी हमें मीरा के पदों में मिलते हैं जैसे-सालगराम, गोविंद, श्रीकृष्ण, गोपाल, हरि आदि ।

यह नाम महात्म्य स्मरण मध्य युग के सभी भक्तों में प्राप्त होता है । इसी परम्परा को मीरा ने भी निभाया है । आलवार भक्तों की तरह मीरा भी मानता है कि भगवान के सहज नामों में से किसी भी एक का सदा मन में स्मरण तथा ध्यान करने जिह्वा से कीर्तन गायन करने और उनका कानों से श्रवण करने से मन, वाणी और कर्म द्वारा होने वाले समस्त पापों का क्षय होता है, मन में पवित्र भाव भर जाते हैं और श्रद्धा की वृद्धि हो जाती है ।

'जय जय हो' जगदीस रावरी

मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर आसा लगी छै थारा नाम री

रसना तूं स्याम बिना मत बोल

मोर मुकट कट काछनी रे, गल मोतियन री माल ।। '

3. स्तुति: - अपने प्रभु की स्तुति मीरा के पदों में स्पष्ट दृष्टिगत होती है । भगवत स्वतन को भक्ति का ही एक अंग मान कर मीरा ने आर्तस्वर में, भगवान की असीम शक्ति, भक्तवत्सलता तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों को पुन: पुन: गान कर, परम शांति का अनुभव किया है । मीरा ने अपने प्रभु के नाम, गुण माहात्म्य, लीलाधाम आदि का बड़े प्रेम और श्रद्धा से अपने भक्ति काव्य में वर्णन किया है । अपने गिरधर नागर को कितने ही नामों से सम्बोधित कर उनकी अनेक लीलाओं की प्रशंसा की है । मीरा भी दक्षिण के आलवारों, की तरह कहती है: -

देख्यो रे वृन्दावन निजधाम

मीरा रा प्रभु गिरधर नागर, भगतां रा प्रतिपाल

4. शरणागति: -मीरा के पदों में अपने प्रभु के शरण में आने का उल्लेख मिलता है । उसे देख कर लगता है जैसे गीता में श्रीकृष्ण के कथन का मीरा पालन कर रही है । शरणागति के अन्तर्गत मीरा ने अपने दोषों का बखान, भगवान की भक्तवत्सलता का गान, परित्राण की योजना तथा प्रभु की शरण आने की आज्ञा मांगते हुए अपने आपको प्रभु के चरणों में अर्पित कर दिया है: -

मो नुगरी में गुण नहीं कोई, मो मे ओगण सारा

बोहो गुणवंता साहिब म्हारा, गुनाह बगस दो सारा ।।

मीरा चरणन री दासी स्याम बिना नैण दुख्यारा ।।

जाणीयै जाणीयै हो हरि, हैत हिया रो जाणीयै ।।टेर ।।

म्है छां रावरा आप छो म्हारा, जिणमें अंतर नी आणीयै ।।

दूरा न जावजौ बेग भाग आवजौ ।अरज म्हारी मांनीयै ।।

आपनै म्हारी पीड़ न आवै हो ।

सत्संग - मीरा को बचपन से ही सत्संग प्राप्त हुआ, जिसके कारण मीरा भक्ति की ओर अधिकाधिक झुकती गई । सत्संग ने उसकी भक्ति को दिशा-निर्देश, लक्ष्य तथा लक्ष्य प्राप्ति के साधन दिए । सत्संग होने की घड़ी को मीरा ने धन्य माना है । साधु और संतों के प्रति

मीरा के हृदय में अत्यन्त सम्मानजनक स्थान है वह सदा सत्संग की कामना करती है । सत्संग से उसे अपार हर्ष और आत्म शांति अनुभव होती है ।

1. सतसंग बिन दोरी कदै न सोरी
2. साध संगत में नित उठ जातां, दुरजण लोकां दीठी ।
3. साध संगत री म्हैं आग्याकारी, साध बिना म्हारे नहीं सरसी ।

बोध प्रश्न

1. मीरा की भक्ति में किस भाव की प्रधानता है?
2. मीरा के आराध्य कौन है?
3. मीरा की उपासना पद्धति पर- प्रकाश डालिए?

9.4 मीराँबाई की प्रासंगिकता

विश्वविख्यात सगुण वैष्णव भक्त मीराँबाई ने आज से पांच सौ वर्ष पूर्व मरुधरा की पावन धरा पर जन्म लिया और अपनी भक्ति साधना, भक्ति काव्य तथा जीवन चरित्र से संपूर्ण मानवता को प्रभावित किया । मीरा अपने युग में प्रासंगिक थी और वर्तमान में भी प्रासंगिक है । भक्त आत्माओं । की वाणी कालजयी होती है ओर उसका संदेश देश-काल की सीमाओं से परे होता है । मीरा का अपने प्रभु के प्रति भक्ति भाव व्यक्तिगत था किंतु उसकी पीड़ा संपूर्ण मानवता की है । जहां भी आडम्बर, अन्याय, असत्य, दर्द होगा, वहां मीरा प्रासांगिक दृष्टिगत होगी । जहां नारी का उज्ज्वल, पावन, निर्भय रुप दिखाई देगा, वहां मीरा प्रासंगिक होगी ।

भारतीय संस्कृति समर्पण, आस्था एवं श्रद्धा की संस्कृति है, जहां तर्क-वितर्क को कोई स्थान नहीं है । मीरा भारतीय संस्कृति के इसी रंग में रंगी हुई नारी रत्न है । सत्यम् शिवम् सुन्दरम भारतीय संस्कृति की अवधारणा है जो मीरा के व्यक्तित्व का आधार है । अपने आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण और उसमें बाधक शक्तियों का विरोध अथवा विद्रोह मीराँबाई के जीवन का सत्य है ।

मीराबाई ने भक्ति का सरल, सात्विक तथा लोकग्राह्य स्वरुप प्रस्तुत किया जिसमें न संस्कृत भाषा की दुरूहता थी, न रहस्यवाद, न घोर आध्यात्म, न तांत्रिक साधना, न सम्प्रदायवाद, न आडम्बर और न ही कापालिक क्रियाएं थी । भक्ति का निर्मल, एकनिष्ठ, समर्पणयुक्त, लौकिक प्रेम जैसी विशेषताओं से युक्त रुप मीरा की भक्ति में विद्यमान है जो वर्तमान की आवश्यकता है । मीरा की लौकिक भक्ति ने अलौकिक शक्ति को वरण कर प्रेम की पूर्णता का व्यवहारिक रुप प्रस्तुत किया है ।

मीरा ने नारी की स्वतंत्र सत्ता का उद्घोष कर सामाजिक क्रांति का सिंहनाद किया । इस तरह मीराँबाई नारी चेतना की प्रतीक बन गई है । मीरा के इस प्रतीक रुप का उपयोग वर्तमान भारत की नारी के उत्थान तथा महिलाओं के स्वतंत्र भारत के विकास में योगदान के लिए किया जा सकता, जैसा कि महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलनों के समय में मीरा को आदर्श बना कर किया था । मीरा की गहन, व्यापक एवं धनीभूत प्रेमानुभूति की आज संतप्त विश्व को

सबसे अधिक आवश्यकता है । मीरा के सच्चे प्रेम का बंधन कृष्ण जैसे योगीराज को बांध लाया था उसी तरह विभिन्न जातियों, देशों, मत-मतान्तरों, धर्मोद्व सम्प्रदायों के बीच प्रेम स्थापित कर घृणा के स्थान पर स्नेह एवं अपनेपन का भाव जगाया जा सकता है । प्रेम की अपार शक्ति का उपयोग मानवता को सुखी, निरोग तथा शांतिपूर्ण वातावरण प्रदान करने में किया जा सकता है ।

मीरा की सहनशक्ति तथा असहयोग का भाव वर्तमान युग के लिए प्राण तत्व है । अनेक जटिल समस्याओं का समाधान इसके द्वारा संभव है ।

मीरा सत्ता, मोह और वैभव से मुक्ति का प्रतीक है । मीरा ने राजसुख त्याग कर फकीरी को अपनाया-यही त्याग मीरा को महान बनाता है । मीरा का सतीत्व आधुनिक नारी लिए प्रेरणा एवं अनुकरण का पाथेय है । मीरा सतीत्व की प्रतिमूर्ति थी ।

पुरुष प्रधान समाज और राजसत्ता की निरंकुशता तथा एकाधिकार का विरोध मीरा की वाणी का सशक्त स्वर है । परम्परावादी नार चिंतन को बदलने के लिए मीरा ने नारी का विद्रोह, साहसी, निर्भय तथा सशक्त रूप अपने जीवन चरित्र के माध्यम से जन समाज को दिखाया है । मीरा ने स्वयं स्वतंत्र निर्णय लेकर अपने जीवन के भविष्य का निर्धारण किया जो मध्यकालीन परम्परावादी समाज में असंभव लगता था । मीरा का यह साहस, स्वाभिमान, दृढ़ इच्छाशक्ति, स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता आत्मविश्वास तथा संघर्ष उसे महान सिद्ध करता है ।

मीरा महा तेजस्विनी भक्त महिला, महान त्यागी और बलिदानी नारी है । वह संत भी है और भक्त भी । वह कुलन और आदर्श महिला है, जो अपने निश्चय के प्रति अडिग है, अपने आराध्य के प्रति एकनिष्ठ है किंतु मानवीय संवेदनाओं से युक्त है ।

मीरा को स्वतंत्रता बहुत प्रिय थी । वे कभी बंधनों में नहीं बंधी । मीरा न सामाजिक बंधनों में बंधी और न ही धार्मिक रुढ़ियों, सम्प्रदायों तथा संकीर्णताओं में । मीरा का स्वतंत्र चेता व्यक्तित्व हमारी अमूल्य धरोहर है ।

मीरा काव्य में अश्लीलता और दैहिक संन्सर्ग की शब्दावली नहीं है । वह दक्षिण की आंडाल की भांति कृष्ण से शारीरिक संबंध स्थापित करने की कल्पना तक नहीं करती । मीरा वाणी की शब्दावली में शालीनता, सात्विकता तथा पावनता है मीरा का माधुर्यभाव मर्यादित है । मीरा कबीर की भांति सामाजिक सुधार तथा कुरीतियों एवं आडम्बरों को समाप्त करना चाहती है । वह स्वयं ' लोकलाज ' तोड़ कर कथनी और करनी का सामन्जस्य प्रस्तुत करती है । पर्दा तथा सती प्रथा का स्वयं विरोध कर आज की महिलाओं के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करती है । मीरा का सम्पूर्ण संघर्ष भावसत्ता का संघर्ष है राजसत्ता का नहीं जो आज भी प्रासंगिक है । कबीर का संघर्ष वर्णभेद पर आधारित है किंतु मीरा .का नर- नारी विभेद पर । मीरा का पांच सौ वर्षो पूर्व किया गया है यह प्रयास वर्तमान में भी प्रासंगिक है ।

मीराँबाई मरुधरा की आत्मा है । मीरा भक्ति की भागीरथी है । वह भारतीय संस्कृति का प्रकाश पुंज है । मीरा के व्यक्तित्व में भक्ति, प्रेम और श्रद्धा समन्वय है । मीरा का संपूर्ण जीवनक्रम नारी वेदना की धार्मिक कथा है । मीरा कुलीन है वह उच्च आदर्शो एवं उब मानव मूल्यों की

पक्षधर है । वह मानव जीवन में नैतिकता युक्त आचरण को महत्व देती है । जहां सत्य, मानवता एवं नारी सम्मान नहीं है वहां मीरा नहीं है ।

राणाजी! नहीं भावै राजरो देसड़ी रंग रुडो ।

आपरे देस राणाजी साध नहीं छै, लोग बसे सब कूडो ।।

मीरा नारी मुक्ति का संदेश देती है फिर चाहे वह कुल, जाति, वंश अथवा सामाजिक मर्यादा के नाम पर ही क्यूं न हो

आचार्य **रजनीश** के मतानुसार-

" मीरा तीर्थकर है । उसका शास्त्र प्रेम का शास्त्र है । मीरा स्वयं भक्ति है । इसलिए तुम रेखाबद्ध तर्क ना पाओगे । रेखाबद्ध तर्क वहां नहीं है । वहां तो हृदय में कौंधती हुई बिजली है । जो अपने आशियाने जलाने को तैयार होंगे, उनका ही संबंध जुड़ पायेगा ।...."

" मीराँबाई एक महान् कृष्णभक्त तथा संसार की सर्वश्रेष्ठ कवयित्रियों में से थी । मीरा की भक्ति में मनुष्य - जीवन - गौरव, भक्ति - गौरव, सत्संग, तप, त्याग आदि प्रभावी तत्व विद्यमान हैं । उनको भारतीय एवं वैश्विक गीतिकाव्य में एक उच्च स्थान प्राप्त है क्योंकि उनके गीत अनुभूति की तीव्रता एवं अभिव्यक्ति की सफलता में एकदम अनूठे है । मीरा के गीत सहज गीत हैं । उनकी कविता की सर्वोपरि विशेषता उनकी प्रेम की पीर है जो भारतीय साहित्य की एक अप्रतिम निधि है । मीराँ गीतिकाव्य की एक संपूर्ण देवी है और इनके काव्य में गेयता, भाव - प्रवणता, एकरसता और सरलता विद्यमान है । वे हिन्दी विरह - काव्य की एक अजर एवं अमर विभूति हैं । उनके प्रेम में निराशावाद को कोई स्थान नहीं है और न ही उनका विरह मिलन - दरिद्र है । मीराँ संसार के सर्वश्रेष्ठ गीतकारों की पंक्ति में प्रतिष्ठित होने का अधिकार रखती हैं । संपूर्ण मानव - जाति मीराँ पर गर्व कर सकती है क्योंकि उनका व्यक्तित्व और कृतित्व उसे चिरकाल तक प्रेरणा देता रहेगा । "

- अटल बिहारी वाजपेयी

" just as the poor man's labour pays for the rich man's luxsury,so it is in the spiritual world.The terrible degradation of the masses in india is the price nature pays for the producation of great soul like Mira bai, Buddha etc... I never define anything still it (education) may be described as a development of faculty, not an accumulation of world, or a training of individual to will rightly and effciently. So shall we bring to the need of india great fearless women-women worthy continue the traditions of Sanghamitra,Lila, Ahalya Bai and Mira Bai.. The noble examples of Sita,Savitri Damayanti,Lilavati and Mira should be brought home to their(female) minds,and they should be inspired to mould their own lives in the light of these"**-Swami Vivekananda(Interviews the Complete Works, Vol.5,p.231.**

संत साहित्य के मनीषी **प्रो. कुंवरपालसिंह** के शब्दों में-

"साहित्य में भी नारी या तो माया है या नायिका जिसका कार्य केवल नायक को रिझाना मात्र है । जिसे हम वीर काव्य कहते हैं, उसमें भी नारी का कोई अलग चरित्र और व्यक्तित्व निकलकर नहीं आता । पूरे मध्यकाल में हमें मीराँ के अतिरिक्त कोई ऐसी नारी नहीं मिलती जो मध्यकालीन संस्कृति, पुरुष द्वारा निर्मित नैतिकता का अतिक्रमण करे । ऐसे उदाहरण बिरले हैं, जहां नारी स्वतंत्र निर्णय लेकर उनका पालन कराने में समर्थ हुई हो ।

मीरा सोलहवीं शताब्दी की भारत की ही नहीं अपितु विश्व की सबसे बड़ी क्रांतिकारी नारी और कवियत्री है । उनकी तुलना और किसी से नहीं की जा सकती, मीराँ की तुलना मीराँ से ही की जा सकती है । मीराँ भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में सामन्ती परम्परा के विरुद्ध पहली चिंगारी है, जो समय के साथ-साथ ओर अधिक प्रासंगिक हो गई ।

वर्चस्ववादी भारतीय संस्कृति की यही विशेषत है कि वह क्रांतिकारी व्यक्तित्व को मंदिर की वस्तु बना देती है लेकिन मीराँ, कबीर और तुलसी को भारी प्रयासों के बाद भी अब तक मंदिरों में स्थापित नहीं कर पाये हैं ।

9.5 सारांश

मीराँबाई हिन्दी साहित्य के मध्यकाल की सगुण वैष्णव भक्त थी । उनका जन्म तत्कालीन मेड़ता रियासत के संस्थापक राव दूदा के पुत्र रतनसिंह के यहां विक्रमी संवत 1555 में हुआ। मीराँबाई का जन्म स्थान बाजोली ग्राम था-जो मीराँ के पिता को राव दूदा द्वारा जागीर में दिया गया था । राव दूदा जोधपुर के संस्थापक राव जोधा के पुत्र थे । इस तरह मीराबाई राव जोधा की प्रपौत्री, राव दूदा की पौत्री तथ रतनसिंह की कन्या थी । राव दूदा के पांच पुत्र थे-वीरमदेव, रायमल, रतनसी (रतनसिंह) पिचाणजी । राव दूदा का विक्रमी संवत 1 572 में स्वर्गवास होने पर उनके ज्येष्ठ राजकुमार वीरमदेव मेड़ता के शासन हुए ओर उन्होंने ही मीराँबाई का विवाह मेवाड़ के ज्येष्ठ राजकुमार भोजराज के साथ किया । राजकुमार भोजराज इतिहास प्रसिद्ध महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र थे जिनका विवाह के कुछ वर्ष पश्चात् ही निधन हो गया था ।

मेड़ता राजपरिवार में वैष्णव भक्ति का प्रभाव था । भगवान विष्णु तथा उनके अवतारों को आराध्यदेव मानकर की गई भक्ति वैष्णव भक्ति कहलाती है । राव दूदा, वीरमदेव और जयमल तीनों ही शासन विख्यात योद्धा होने के साथ-साथ परम वैष्णव भक्त भी थे । मीराँबाई पर परिवार के इस भक्ति वातावरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा और वे भी सगुण भक्ति के रंग में रंग गई । मीराँ ने सोलह कलावतार श्रीकृष्ण के गिरधर नागर स्वरुप को अपना उपास्य देव मान कर माधुर्य भाव से उनकी पूजा, उपासना और भक्ति की । अलौकिक ईश्वर को लौकिक मीरा ने अपना भव भव रा भरतार मानकर आराधना की । मीराँबाई की पदावली उनकी सरस, सरल एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति का माध्यम बनी । सीधे सरल शब्दों में अपनी मातृभाषा राजस्थानी में मीराँबाई ने अपनी अनुभूति को ऐसी प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी कि वह करोड़ों जन के अगर में आज भी विराजमान है । मीराँ काव्य की भाषा राजस्थानी है ।

9.6 संदर्भ ग्रन्थ

उत्तर भारत की संत परम्परा	-	परशुराम चतुर्वेदी
मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ	-	डॉ. सावित्री सिन्हा
मीराँ - जीवन व काव्य	-	डॉ. सी. एल. प्रभात
मध्यकालीन साहित्य व संस्कृति	-	डॉ. कुँवर पाल सिंह
मीराँ बाई का जीवनवृत्त व काव्य	-	डॉ कल्याण सिंह शेखावत

9.7 अभ्यास प्रश्न

150 शब्दों में उत्तर वाले प्रश्न

1. मीराँबाई के उपास्यदेव कौन थे?
2. महाराणा सांगा कौन थे और मीराँबाई से उनका क्या संबंध था?
3. मीराँ के पिता के कितने भाई थे? नाम सहित उत्तर दीजिए ।
4. वैष्णव भक्ति किसे कहते हैं । उदाहरण सहित उत्तर दीजिए ।

300 शब्दों में उत्तर वाले प्रश्न

1. मीराँबाई की जीवनी पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. मीराँबाई की भक्ति का परिचय दीजिए।
3. मीराँ के भक्ति काव्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. सगुण भक्ति किसे कहते हैं?
5. निर्गुण भक्ति की क्या विशेषताएं हैं?
6. मीराँ विद्रोहिणी नारीत्व का प्रतीक हैं । इस कथन के औचित्य पर विचार कीजिए।

इकाई- 10

रसखान

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 व्यक्तित्व

10.3 रसखान का रचना संसार

10.3.1 सुजान रसखान

10.3.2 प्रेम वाटिका

10.3.3 दानशीलता

10.3.4 अष्टयाम

10.4 रसखान काव्य का भाव पक्ष : उदात्त प्रेम

10.4.1 प्रकृति प्रेम

10.4.2 मानवतावाद

10.5 रसखान के काव्य का शिल्प सौन्दर्य

10.6 व्याख्याएँ

10.7 सारांश

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

10.9 अभ्यास प्रश्न

10.0 उद्देश्य

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्येतिहास का सम्पूर्ण सृजन मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक समन्वय तथा उदात्त जीवन दर्शन का प्रतिष्ठापरक स्वर्णकाल है । यह युग राजनैतिक वैषम्य, सामाजिक असमानता, धार्मिक वैमनस्य, साधना बाहुल्य आडम्बरों, रूढ़ियों तथा विद्रूपताओं से आक्रान्त था । ऐसी परिस्थितियों में भारतीय एकता, अखण्डता तथा भावात्मक जुड़ाव के साथ राष्ट्र की वैचारिक चेतना को जागृत करने का कार्य जिन उल्लेखनीय संत-भक्त कवियों ने किया उनमें कबीर, जायसी, तुलसी, सूर रहीम, रसखान और मीरां का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । सम्पूर्ण भक्तिकाल की वैष्णवी चेतना के उर्वर धरातल में दक्षिण भारतीय धर्माचार्य प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं । श्री रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, विष्णु स्वामी और मध्वाचार्य- इन दक्षिणात्य आचार्यों ने चार दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ चार भक्ति संप्रदायों की स्थापना करते हुए भक्ति की धारा को दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित की । श्री निम्बार्काचार्य प्रथम चिन्तक हैं जो उत्तर भारत में आये । उनका दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत' ' कहलाता है और उनका श्रीकृष्ण भक्ति संप्रदाय सनकादि संप्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है ।

आचार्य श्री विष्णु स्वामी की परम्परा में पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य हुए । उनका दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत तथा कृष्ण भक्ति संप्रदाय का लोकप्रिय प्रशस्त नाम पुष्टिमार्ग था । रसखान ने इन्हीं के श्रीनाथ जी के मंदिर में राधामाधव का दर्शन और प्रतिभक्ति की दीक्षा प्राप्त की । श्री मध्वाचार्य की परम्परा में श्री चैतन्य प्रभु हुए उनका दार्शनिक, सिद्धान्त 'अचिंत्य भेदाभेद' था । ये सब श्रीकृष्णोपासक आचार्य रहे । इनके द्वारा प्रवर्तित एवं प्रसारित भक्ति संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय चैतन्य संप्रदाय के नामों से प्रशस्त हुए । इनके अतिरिक्त ब्रजमंडल में गोस्वामी हित, हरिवंश और स्वामी हरिदास हुए जिन्होंने उत्तर भारत में श्रीकृष्ण भक्ति धर्म को लोकप्रिय बनाया । इनके संप्रदाय राधा वल्लभ संप्रदाय' और हरिदासी संप्रदाय' के नाम से विख्यात हुए ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

1. रसखान की भक्ति पद्धति को समझ सकेंगे,
2. रसखान के जीवन एवं कृतियों से परिचित हो सकेंगे,
3. रसखान के भाव पक्ष व कला पक्ष की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
4. भक्तिकाल के संदर्भ में रसखान का महत्व बता सकेंगे,
5. रसखान के विशिष्ट पदों की व्याख्या कर सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में विद्यार्थियों को भक्तिकाल के रसखान जैसे महान् कवि के रचना संसार, उसके भाव तथा कलात्मक सौंदर्य से परिचित करवाया गया है । भक्तिकाल में एक ओर निर्गुण संत परम्परा में कबीर और नानक जैसे कवि हुए तो दूसरी ओर मलिक मुहम्मद जायसी जैसे प्रेममूलक सूफी कवि हुए हैं एक तरफ गोस्वामी तुलसीदास जैसे रामभक्त कवि हैं तो कृष्ण भक्ति काव्य के सुमेरू कवि सूरदास भी हैं । इन सभी कवियों की अपनी अपनी दार्शनिक विचार धाराओं की प्रतिबद्धताएँ भी हैं । भक्तिकाल में कुछ ऐसी कवि प्रतिभाएँ भी अवतरित हुई हैं जो किसी संप्रदाय विशेष में दीक्षित तो नहीं हैं लेकिन जिनकी भक्ति गरिमा पर कोई प्रश्न चिह्न अंकित नहीं कर सकता । इन काव्य प्रतिभाओं को किसी विचारधारा विशेष की लक्ष्मण रेखाओं में सीमित नहीं किया जा सकता । रहीम, रसखान और मीरां ऐसी ही संप्रदाय मुक्त कवि त्रिवेणी हैं । रसखान तो वास्तव में कृष्ण प्रेम और भक्ति की रसखान है । इनके विषय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सत्य ही कहा है कि ऐसे मुसलमान भक्त कवि पर तो करोड़ों करोड़ों हिन्दू भी न्यौछावर किये जा सकते हैं ।

10.2 व्यक्तित्व

रसखान का वास्तविक नाम सैयद इब्राहीम या सैयद गुलाम मुहम्मद है । रसखान के नाम, जन्म, जन्म स्थान ओर मृत्यु तिथि के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं-

शिवसिंह सैंगर ने अपने इतिहास ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' में लिखा है कि रसखान कवि सैयद इब्राहीम पिहानी वाले संवत् 1630 में हुए । ये मुसलमान कवि थे । श्री वृंदावन में जाकर

कृष्णचंद्र की भक्ति में ऐसे डूबे कि फिर मुसलमानी धर्म त्याग कर माला कंठी धारण किए हुए वृंदावन की रज में मिल गए । "रसखान का समय 1 1645। ..... उनकी अवस्था 70 वर्ष मानने तक उनका मरणकाल. सं. 1685 मानना पड़ेगा । " आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में रसखान के संबंध में लिखा है- 'दिल्ली के एक पठान सरदार थे । इन्होंने 'प्रेमवाटिका में अपने को शाही वंश का कहा है ।

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छोरि रसखान ।।
प्रेम निकेतन श्री बनहिं आइ गोर्वधन धाम ।
लहयौ सरन चित चाहिके, जुगल सरूप ललाम ।।

सम्भव है पठान बादशाहों की कुल परम्परा से इनका संबंध रहा हो । " ये बड़े भारी कृष्ण भक्त और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के बड़े कृपापात्र शिष्य थे । इनका रचना काल सं. 1640 के उपरान्त ही माना जा सकता है क्योंकि गोसाई विट्ठलनाथ जी का गोलोकवास सं. 1643 में हुआ था । 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार रसखान दिल्ली में रहते थे तथा एक बनिए के पुत्र के प्रति आसक्त थे । इनकी आसक्ति की सर्वत्र चर्चा भी होने लगी । एक बार कुछ वैष्णवों ने रसखान से कहा कि यदि इतना प्रेम तुम भगवान से करो तो तुम्हारा उद्धार हो सकता है । प्रत्युत्तर में रसखान ने पूछा कि भगवान कहीं हैं? वैष्णवों ने उनको कृष्ण भगवान का एक चित्र दे दिया । रसखान चित्र को लेकर घूमते घूमते ब्रज पहुँचे । अनेक मंदिरों में दर्शन करने के उपरान्त अपने आराध्य की खोज में ये गोविन्दकुंड पर जा बैठे और श्रीनाथ जी के मंदिर की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे । यहाँ श्रीनाथ जी का नित्य प्रति दर्शन कर गोसाई विट्ठलनाथ जी के शरणागत रहकर कृष्ण लीला गान करने लगे ।

मध्यकाल के कृष्ण भक्त कवियों में रसखान एक सिद्ध हस्त कवि हैं । व्यक्ति तथा कृतिकार दोनों रूपों में मध्यकाल के इस कवि ने भारतीय सामासिक संस्कृति को आत्मसात किया, तभी तो मुसलमान होकर भी ये कृष्ण के उपासक बने और अनुपम कृष्ण काव्य के प्रणेता भी । वर्तमान युग की धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिक वैमनस्य आदि के संदर्भ में रसखान का व्यक्तित्व तथा कृतित्व, धार्मिक सांप्रदायिक सामंजस्य तथा धर्म संप्रदाय निरपेक्ष दृष्टि के उद्घोषक हैं । इनकी जैसी कृष्ण भक्ति, इनके जैसा गोकुल प्रेम सूरदास के अलावा अन्य कृष्ण कवियों में कम ही पाया जाता है । मुस्लिम कृष्ण भक्त कवियों में तो रसखान के निकट और कोई कवि नहीं पहुँच पाता । रसखान की अनुपम एवं अद्भुत कृष्ण भक्ति पर मुग्ध होकर ही तो भारतेन्दु अपने उत्तरार्द्ध भक्तमाल' में कह उठे थे- रन मुसलमान हरिजनन के कोटिन हिन्दुन वारिये ।"

10.3 रसखान का रचना संसार

रसखान वास्तव में 'यथानामस्तथागुण: ' की कहावत को चरितार्थ करने वाले भक्त कवि हैं । इनका काव्य किसी प्रयास का फल नहीं बल्कि मन के भावों की सहज अभिव्यक्ति है । रसखान का काव्य वास्तव में अलौकिक भक्ति का सफल सोपान है । रसखान श्रीकृष्ण जी के प्रति समर्पित, भावुक व प्रेम भक्त रहे । वे जन्म जन्मान्तरों में किसी न किसी रूप में

कृष्ण से संबंधित वस्तुओं के सामीप्य का आनन्द प्राप्त करना चाहते थे । "जो खग हों तो बसेरो करों मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ।"

कवि श्रेष्ठ रसखान ने किसी प्रबंध काव्य की रचना नहीं की । भावनाओं की उमंग में आने पर स्वभावत:, कंठ से जो उद्‌गार व्यक्त होते वही कवित्त या सवैये का रूप बन जाता । रसखान की मुख्यतया चार रचनाएँ मानी जाती हैं- 1 सुजान रसखान 2. प्रेमवाटिका 3. दानलीला तथा 4. अष्टयाम ।

संवेदना और शिल्प दोनों दृष्टियों से सुजान रसखान" रसखान की अनमोल रचना है । इसमें प्रेम, भक्ति, कृष्ण लीला, रूप माधुरी, वंशी प्रभाव, ब्रज प्रेम आदि से संबंधित सरस प्रसंगों का सुन्दर वर्णन हुआ हैं । सुजान रसखानं स्फुट छंदों का संग्रह है, जिसमें 181 सवैये, 17 कवित्त, व 12 दोहे तथा 4 सोरठे हैं सब मिलाकर 214 पद हैं ।

10.3.1 सुजान रसखान

सुजान रसखान में श्रीकृष्ण के प्रति विविध प्रकार से रसखान ने अपने मनोभावों को व्यक्त किया है ।

(क) "मो मन मानिक लै गयौचितै चोर नँद नंद ।
अब बे मन मै क्या करूँ, परी फेर के फंद ।। "

(ख) "स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यौ रसखानि ।
भई दिमानी पान करि, प्रेम मद्‌य मन मानि ।। '

(ग) "जल की न घट भरै, मग की न पग धरै ।
घर की न कछू करै बैठी भरै साँसुरी ।"
एकै सुनि लोट गई एकै लोट पोट भई,
एकनि के कृगनि निकसि आए आँसुरि ।।
कहै रसखानि सो सबै ब्रज वनिता बधि ।
बधिक कहाय हाय भई कुल हाँसुरी ।
करियै उपाय बाँस डारियै कटाय ।
नाहिं उपजैगो बाँस नाहिं बाजै फैरि बाँसुरी ।।

10.3.2 प्रेमवाटिका

रसखान की अत्यन्त लोकप्रिय तिरेपन दोहों मे विरचित एक लघु काव्य कृति है । इसका रचनाकाल सं. 1671 माना जाता है । इस कृति में राधा कृष्ण को प्रेमवाटिका के मालिन माली मानकर अनूठे प्रेम तत्व का निरूपण किया है । इस 'प्रेमवाटिका' में रसखान के हृदय की भक्ति वाटिका की झलक मिलती है । 'प्रेमवाटिका' में प्रेम भावना का महत्व बतलाया गया है-

(क) "इक अंगी बिनु कारनहि, इक रस सदा समान ।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ।।.

(ख) "वेद मूल सब धर्म, यह कहै सवै श्रुति सार ।

परम धर्म है ताहु त, प्रेम एक अनिवार ।। "

(ग) "अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब ।

दो तमहुँ जहँएक भै, मन मिलाइ महबूब ।।"

उनकी सरस अनुभूतियों की वल्लरी पर विकसित प्रेम कलिकाओं की सुगंध भावुक हृदयों को रससिक्त कर देती हैं । विद्यानिवास मिश्र जी लिखते हैं- "रसखानउस 'अनिवार' प्रेम पंथ के यात्री हैं जो कमल तंतु से भी अधिक कोमल है और तलवार की धार से भी अधिक तेज है- जितना सीधा है उतना टेढ़ा है । "

10.3.3 दानशीलता

केवल ग्यारह छंदों की एक लघु रचना है जिसमें राधा कृष्ण के सरस श्रृंगारिक संवाद के माध्यम से पौराणिक कथा का आख्यान हुआ है ।

"एरी कहा वृषभान पुरा की, तौ दान दिये दिन जान न पैहों ।
जौ दधिमाखन देहु जू चाखन अत लाखन या मँग ऐहों ।।
नाहिं तौ जो रस सो रस लैहो जु गोरस बेचन फेरिए न जैहों ।
नाहक नारि तू रारि बढ़वति गारि दियें फिरि आपहि दैहों ।।

10.3.4 अष्टयाम

दोहों में विरचित एक लघु कृति है जिसमें श्रीकृष्ण के दिन रात के किया कलापों का मनोहारी वर्णन किया गया है ।

करि पूजा अरचन तहाँ, बैठत श्री नन्दलाल ।
वंशी बाजत मधुर धुनि, सुनि सब होत निहाल ।।
ए सजनी लीनौ लला, लह्यो नन्द के गेह ।
चितयो मृदु मुसकाई कै हरि सबै सुधि गेह ।।

इनके अलावा रसखान ने सारंग राग का एक घमार भी लिखा है जिसमें होली के रसरंग और प्रेमपूर्ण गालियों का वर्णन किया गया है ।

एक उदाहरण प्रस्तुत है-

मोहन हो हो हो हो होरी ।
काल्ह हमारी आँगन गारी दे आयौ सो कोरी ।
अब क्यौ दुरि बैठे जसुदा ढिग निकासी कुंज बिहारी ।
उमगि उमगि आई गोकुल की वे सब भई भन वारी ।
तबहिं लाल ललकार निकारे रूप सुधा की प्यासी ।
लपटिं गई घनस्याम लाल सों चमक चमक चपला सी ।
काजर दे भजि भरि भरूवा के हँसि हँसि ब्रज की नारी ।
कहै रसखानि एक गारी पर सौ आदर बलिहारी ।।

10.4 रसखान काव्य का भाव पक्ष : उदात्त प्रेम

रसखान मूलत: स्वछंद प्रेम के कवि हैं । प्रेम रस का वर्णन करने में वे अपना सानी नहीं रखते। अपनी प्रेम भाव पूरित कविता के कारण ही उनका रसखान' नाम भी सार्थक हुआ है । यही कारण है कि पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र उन्हें भक्त कवि की अपेक्षा स्वच्छंद प्रेम का कवि मानते हैं । डॉ. कृष्णचन्द्र लिखते हैं कि" रसखान का समस्त काव्य प्रेम भावना के माधुर्य से ओतप्रोत है । वे प्रेम के मधुर और सरस गायक हैं । '

"प्रेम फाँस में फँसि भरै, सोई जिये र,दाहिं ।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोऊ जीवन नाहि ।
बिनु गुन जीवन रूप, धन, बिन स्वारथ हित जानि ।
शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि ।।

10.4.1 प्रकृति प्रेम

रसखान ने प्रकृति के विविध रूपों का अपने काव्य में चित्रण कर भारतीय जीवन दृष्टि के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । भारत के गाँव प्रकृति की अनुपम निधि है तथा जीवन के प्राण लोक संस्कृति के आधार हैं । रसखान ब्रज के वन, बाग बगिचे और तालाबों तथा करील की कुँजों पर वैभव के प्रतीक करोड़ों सोने चाँदी की महलों को न्यौछावर करने को तैयार हैं । वस्तुत: वे नगरीय संस्कृति को तुच्छ बताकर प्राकृतिक ग्रामीण संस्कृति के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं-

या लकुटि और कामरिया पर राज तिहुँ पुर को ताजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की धेनु चराइ बिसारौ ।।
ए रसखानि जबै इन नैनन ते ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौ ।
कोटिक ये कलधौंत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौ ।।

10.4.2 मानवतावाद

रसखान एक ऐसी अमृतमय अनुभूति 'रस' की खान हैं जहाँ अत्युच्च उदात्त मानवी मूल्यों की रत्नावलियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें समता, सहअस्तित्व, सौहार्द, स्नेह, सहयोग सम्मान का दिव्यातिदिव्य प्रकाश विकीर्ण होता है । रसखान ने पद का मोह छोड़, संप्रदाय का आकर्षण तोड़ा, दार्शनिकता. के सम्मोहन को त्यागा और अपने आराध्य की उपासना में स्वयं को उत्सर्ग कर दिया ।

रसखान ने धर्म और जाति की संकीर्ण विचारों की सीमाओं को तोड़कर मानवतावाद को चरमोत्कर्ष प्रदान किया-

गावै गुनी गनिका गंधरव औ सारद सेस सबै गुन गावत ।
नाग अनंत गनंत ज्यौ ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ।।
जोगी जती तपसी अरू सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ।।

एतदर्थ, रसखान की जीवन दृष्टि भारतीय संस्कृति की तत्व चेतना से प्रभावित और पोषित रही है और उनका काव्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् और मानवीय मूल्यों का संवाहक है । उनका समग्र मानस भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन से ओत प्रोत था । यह रसखान की जाति और धर्म की सभी मर्यादाओं को तोड़ने वाली भारतीय जीवन दर्शन के मूल तत्व प्रेम, आस्था और भक्ति की कालजयी, सार्वजनीन और सार्वभौमिक सृष्टि है ।

10.5 रसखान के काव्य का शिल्प सौन्दर्य

भाषा भावों की अनुगामिनी है । रसखान ने अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति तदनुरुप भाषिक संरचना में प्रस्तुत की । रसखान के काव्य के आस्वादन में उनके संवेदना सौष्ठव के साथ साथ उनके शिल्प सौष्ठव का भी महत्वपूर्ण स्थान है । रसखान की भाषा का श्रुतिमाधुर्य अभूतपूर्व है ।

उनकी काव्य भाषा शुद्ध, परिमार्जित साहित्यिक ब्रजभाषा है । अजस्र प्रवाह उनकी काव्य शैली की अनूठी विशेषता है । माधुर्य और प्रसाद गुण की सहज संपृक्ति के कारण उनकी काव्य भाषा एकदम सरस एवं जीवंत बन गयी है । रसखान के काव्य में अलंकारों का सुरूचिपूर्ण प्रयोग मिलता है, किंतु अलंकारों के प्रति मोह उनमें दृष्टिगत नहीं होता । अनुप्रास, श्लेष, यमक जैसे शाब्दिक अलंकारों ने रसखान की काव्यभाषा को श्रवण सुंदर बनाने में सोग दिया है तो उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक जैसे अर्थालंकारों ने कवि के भावों की अर्थवत्ता बढ़ाने का काम किया है ।

"छकि छैल छबीली छटा छहराइ के कौतुक कोटि दिखाइ रही । "

(अनुप्रास)

"लटकी लटमों .ग मीननि सों बनसी जिय वा नट की अटकी ।"

(श्लेष)

"हम तौ ब्रज कौ बसिबौई तजौ बसरी ब्रज बैरिन तू बसरी ।"

(यमक)

"अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली, अलि कुंतल राजत हैं ।
मखतूल समान के गुंज छरानि मैं किंसुक की छवि छाछत हैं । "

(उपमा)

"नैन दलालनि चौहटैं मन मानिक पिय हाथ ।
रसखाँ ढोल बजाइ के, बैच्यो हिय जिय साथ ।।"

(रूपक)

"पहले दधि लै गइ गोकुल में चख चारि भए नटनागर पै ।
रसखानि कारी उनि मैनमई कहें दान दै दान खरै अर पै ।। "

(उत्प्रेक्षा)

रसखान की सानुप्रास कविता में कवि की उदात्त वाणी का सहज संगीत ही है । छंद प्रयोग का वैविध्य रसखान के काव्य में दृष्टिगत नहीं होता । उन्होंने केवल तीन ही छंदों का प्रयोग किया है- सवैया, कवित्त और दोहा ।

"सुनियै सबकी कहियै न कछू रहियै इमि या मनवा गर में ।
यह जा कों लसै मुख चंद समान कमान सी भौंह गुमान हरैं ।।

(दुर्मिल सवैया)

"बाँकी मरोर गही मृकुटीन लगीं अँखियाँ तिरछिानि तिया की ।
टांक सी लांक भई रसखानि सुदामिनि,दूनी हिया की ।।"

(मत्तगयंद सवैया)

" स्रवन कीरतन दरसनहिं जो उपजत सोई प्रेम ।
सुद्धासुद्ध विभेद तें द्वै विध ताके नेम ।।
जोहन नंदकुमार को गई नंद गेह ।
मोहि देखि मुसकाइ कै बरस्यौ मेह सनेह ।।"

(दोहा छंद)

सवैयों के प्रयोग में तो रसखान सिद्धहस्त हैं । यही कारण है कि बहुत समय तक रसखान सवैये के पर्याय बने रहे । कृष्ण काव्य प्रणयन की परम्परागत गेय पद शैली को त्याग कर कवित्त सवैये की शैली को अपनाना रसखान की स्वच्छंद वृत्ति का परिचायक है ।

10.6 प्रमुख व्याख्याएँ - सप्रसंग - संदर्भ सहित

यहाँ हम रसखान के कुछ छन्दों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे है। इसका उद्देश्य यह है कि आपको रसखान के रचना संसार के भाव पक्ष की विविधता का परिचय प्राप्त हो तथा काव्य साहित्य के कला पक्ष की बारीकियों का भी ज्ञान हो सके । काव्य में भावों की अभिव्यक्ति में भाषा का भावानुरूप 'सौन्दर्य जितना महत्वपूर्ण है उतना ही समान महत्व छन्द एवं अलंकारों का भी होता है । काव्य की आत्मा यदि रस है तो उसके आनंद की अनुभूति के लिये भाषा, छन्द एवं अलंकारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । रसखान के कतिपय सवैयों की व्याख्या करने का प्रयोजन भी यही है कि साहित्यिक अभिव्यक्ति में अन्तर का बोध आपके सामने स्पष्ट हो सके । रसखान की ब्रज भाषा की माधुरी स्वयं सिद्ध है । यह सत्य है कि उनके भावों का केन्द्रीय विषय तो एक ही है कृष्णानुराग लेकिन अभिव्यक्ति में विविधता ही उनका विशेष सौन्दर्य है, तो प्रस्तुत है रसखान के रस वर्षण करने वाले कुछ सवैया छंद की व्याख्याएं-

(१) मानुष हों तौ वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन ।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो करयौ कर छत्र पुरंदर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करों मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारम ।।

प्रसंग - भक्ति कालीन कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा. में सर्वथा मुक्त भाव से समर्पित कवियों में रसखान का उच्च कोटि का स्थान है । रसखान ने श्रीकृष्ण के सौंदर्य, लीला स्वरूप, ब्रज

भूमि और गोपियों के प्रति समर्पित भाव से जो रसधारा प्रवाहित की, इसीलिये उन्हें 'रस-खान' कहा जाता है ।

संदर्भ :- कविवर रसखान प्रत्यक्षत: एक भक्त रूप में परिलक्षित होते हैं । श्रीकृष्ण लीलाओं एवं उनकी जन्मभूमि ब्रज के प्रति उनका प्रेम अनन्य है, वे प्रत्येक जन्म में श्रीकृष्ण एवं उनसे जुड़ी वस्तुओं स्थानों का ही सानिध्य प्राप्त करना चाहते हैं जिससे प्रभुभक्ति एवं ईश्वरीय कृपा पात्र बने रहें ।

व्याख्या :- अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति स्वच्छंद भाव भक्ति की अभिव्यक्ति करते हुए कविवर रसखान' कहते हैं कि यदि मुझे आगामी जन्म में मनुष्य देह मिले तो ब्रज और गोकुल के ग्वालों के साथ सदैव रहने का सौभाग्य मिले । यदि मुझे पशु का स्वरूप मिले, तो भी ब्रज अथवा गोकुल में ही जन्म लेना चाहूँगा, जिससे मुझे नित्य नंद की गायों के मध्य निरंतर विचरण करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके । यदि मैं पत्थर बनूँ ,तो उसी गोवर्धन पर्वत का पत्थर बनूँ जिसे श्रीकृष्ण ने देवेन्द्र का गर्व नष्ट करने हेतु छत्र की भाँति धारण किया था । इसके उपरान्त यदि मैं पक्षी बनता हूँ तो मेरा बसेरा ब्रज में यमुना तट पर स्थित कदम्ब के वृक्ष की शाखाओं पर ही हो ।

विशेष :-

1. कविवर 'रसखान' ने अपने आराध्य का सानिध्य एवं छविदर्शन हेतु प्रत्येक जन्म में ब्रजभूमि में ही जन्म लेने की अभिलाषा की है । प्रत्येक अवस्था में आराध्य दर्शन ही जीवन का परम लक्ष्य प्रतिपादित किया है ।
2. अनुप्रास अलंकार का सहज प्रयोग किया गया है ।
3. भावों की सहज अभिव्यक्ति सवैया छंद के माध्यम से की है ।

शब्दार्थ :- मानुष हौं= यदि मुझे आगामी जन्म में मनुष्य रूप प्राप्त होता है । मँझारन= मध्य में । पाहन = पत्थर । पुरंदर =इन्द्र । धारन = धारण करने के लिये । कालिन्दी कूल कदम्ब = यमुना के तट खड़े हुए कदम्ब के वृक्ष जिन पर कृष्ण अनेक प्रकार की क्रीडाएँ किया करते थे ।

(2) बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों बानी ।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ।।
जान वही उन आन कै मो औ मान वही जु करै मनमानी ।
त्यों रसखान वही रसखानि जु है रसखानि सों है रसखानी ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति स्वतन्त्र भावाभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हुए कविवर रसखान प्रभु प्रदत्त ज्ञानेन्द्रियों की सार्थकताकता भजन स्मरण करने से ही है, इस तथ्य पर बल देते हैं । श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण भाव के साथ ही वे समस्त समृद्धियों को उनकी भक्ति में ही देखते हैं ।

व्याख्या - अपने आराध्य देव के प्रति पूर्ण समर्पण ही जीवन की सफलता एवं सार्थकता सिद्ध करता है, इसी भाव को प्रकट करते हुए कविवर रसखान कहते हैं कि वही वाणी सार्थक है, जो श्रीकृष्ण के गुणों का गान करती रहती हैं, कानों की सार्थकता वही है, जो श्रीकृष्ण के गुणगान

का श्रवण करते रहते हैं । हाथ भी वही सार्थक हैं, जो श्रीकृष्ण के शरीर अथवा स्वरूप को माला पहनाते हैं अर्थात् उनका पूजन अर्चन करते हैं, इसी के साथ चरण भी वे ही सार्थक हैं, जो श्रीकृष्ण का अनुगमन करते हैं, अर्थात् आराध्य की परिक्रमा करते हैं । वे ही प्राण सार्थक हैं, जो सदैव श्रीकृष्ण के साथ रहते हैं और वही मान सार्थक हैं, जो श्रीकृष्ण को अपनी भक्ति द्वारा द्रवित कर अपनी अभिलाषा पूर्ण कराता है । उसी प्रकार वही आनन्द के भण्डार प्रभु श्रीकृष्ण भक्तों को प्रेमनिधि की वर्षा द्वारा अभिसिचिंत कर आनंद प्रदान करते हैं ।

विशेष :-

1) भक्त का आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण ही जीवन की सफलता है । इस भाव से कवि ने शारीरिक अंगों की सार्थकता भी सिद्ध की है कि सर्वांग भाव से ईश्वर के प्रति समर्पित होकर ही मनुष्य का जीवन सारयुक्त बन सकता है ।
2) यमक अलंकार का प्रयोग किया गया है ।

शब्दार्थ :- बैन = वाणी । सानी =मुक्त । सरै = माला पहनाये । पाइ = पैर, चरण । अनुजानी=अनुगामी । जान = प्राण । रसखानी =1. कवि का नाम 2. आनंद का भण्डार 3. श्री कृष्ण 4. प्रेम का खजाना अर्थात् अत्यन्त प्रेम करने वाला ।

(३) "गावै गुनी गनिका गंधर्व और सारद सेश सबै गुन गावत ।
नाम अनत गनत गनेस ज्यौ ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ।।
जोगी जती तपसी अरू सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- कविवर रसखान ने श्रीकृष्ण के रूप माधुर्य का वर्णन करते हुए उनके अलौकिकता का प्रतिपादन पूर्णत: स्पष्टता से किया है । जिनके समक्ष सभी देवगण उनके दर्शनार्थ कटिबद्ध व नतमस्तक रहते हैं वे जगपालक प्रभु श्री कृष्ण भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर गो-पालक बन जाते हैं और अहीर कन्याओं अर्थात् गोपियों के समक्ष तनिक छाछ प्राप्ति के लिए नाचने लगते हैं । श्रीकृष्ण की भक्त वत्सलता एवं लोक लीला का वर्णन करते हुए कृष्ण भक्त कवि 'रसखान' कहते हैं कि-

व्याख्या :- प्रभु श्रीकृष्ण के गुणों का गान अप्सराएँ, गंधर्व, माता सरस्वती एवं शेषनाग सभी करते हैं सर्वप्रथम वंदनीय श्री गणपति भी जिसके अनन्त नामों का स्मरण करते हैं । सृष्टि निर्माता ब्रह्मा एवं भगवान शंकर भी उनके रहस्य को नहीं जान पाते । योगी, यति, तपस्वी और सिद्ध जिन्हें प्राप्त, करने के लिए निरंतर समाधिस्थ रहते हैं फिर भी उस परम पुरुष के रहस्य को नहीं जान पाते हैं, उस लीला पुरुष श्रीकृष्ण को अहीरों की कन्याएँ थोड़ी सी छाछ के लिए नाच नचवाती हैं अर्थात् लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण- जो आदि अन्त से परे हैं और जिनकी अलौकिकता का रहस्य सृष्टि नियामक एवं सिद्ध योगीजन भी नहीं भेद सकते वे ही श्री कृष्ण भक्तों की अपार भक्त एवं उनके प्रेम सागर में निमग्न हो भाव विह्वल हो जाते हैं । इससे सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण प्रेम भावना के ही वशीभूत होते हैं । उन्हें ज्ञान मार्ग से भले ही प्राप्त न किया जा सके किन्तु प्रेम क बंधन में उनको बांधा जा सकता है ।

विशेष :- प्रभु श्री कृष्ण का भक्त के प्रेम में वशीभूत होना एवं भगवान और भक्त के मध्य तादात्म्य स्थापित करने की भरपूर चेष्टा कविवर 'रसखान' ने की है । श्रीकृष्ण के अलौकिक स्वरूप का वर्णन पूर्ण स्पष्टता के साथ किया है कि अपनी प्रभुता से परे होकर भगवान भक्त के भक्त प्रवाह की अविरल धारा में निमग्न हो जाते हैं ।

शब्दार्थ :- गनिका = अप्सरा । सारद = शारदा । सेश = शेषनाग । त्रिलोचन = शिव । छोहरियाँ = कन्याएँ। छछिया = मिट्टी का छोटा सा पात्र ।

(४) "द्रौपदी ओ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो न निहारो ।
गौतम गेहिनी कैसी तरी, प्रहलाद कौं कैसे हरयौ दुख भारी ।।
काहे कौं सोच करै रसखानि कहा करि है रबिनन्द विचारो ।
ता खन राखियै माखन चाखनहारो सो राखनहारो ।।"

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- अपने आराध्य के प्रति अनन्य भाव की भक्ति रसखान के काव्य में परिलक्षित होती है । श्री कृष्ण की भक्त वत्सल उदार प्रवृत्ति का सहज सुन्दर वर्णन करते हुए कविश्रेष्ठ रसखान कहते हैं कि भक्ति के वशीभूत होकर ही जगत्यरक्षक श्री कृष्ण ने अपने भक्तों के दुःखों को दूर कर उनका उद्धार किया । जब श्री कृष्ण स्वयं ही रक्षक हैं तो जन्म मरण के दुःखों से मुक्ति प्राप्त करना स्वाभाविक ही है । प्रभु श्री कृष्ण अपने भक्तों की सदैव रक्षा करते हैं और भक्तजन इस चिन्ता से सर्वथा निश्चिन्त रहते हैं । इसी भाव को रसखान प्रकट करते हुए कहते हैं कि-

व्याख्या :- गोपीवल्लभ श्री कृष्ण अपने भक्तों की दारुण पुकार सुनकर त्वरित ही उनकी रक्षार्थ कटिबद्ध हो जाते हैं । द्रौपदी, गनिका, गज, गीध और अजामिल आदि भक्तों के दुःखों को हरकर श्री कृष्ण ने तुरन्त ही उनका उद्धार कर दिया । इसी प्रकार गौतम पत्नी अहिल्या । को मुक्ति एवं हिरण्यकष्यप का वध कर प्रह्लाद के भारी दुःखों का भी हरण किया । अत: अपने को सम्बोधित करते हुए 'रसखान' कहते हैं कि हे मन! सोच को त्याग दो । चिन्तन करना चाहिए कि जब श्री कृष्ण ही रक्षक हैं तो मनुष्य के जीवन मरण के लेखाकार यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।

विशेष :-

1) कवि ने अनन्य भाव की भक्ति का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है । भक्तों की रक्षा में सदैव तत्पर प्रभु प्रत्येक दुःख क्लेष को दूर कर भवसागर से उनका उद्धार कर देते हैं । इस संबंध में मनुष्य के आवागमन का लेखा रखने वाले स्वयं यमराज भी कुछ नही बिगाड़ पाते।
2) 'विचारों' शब्द यमराज की श्री कृष्ण के सम्मुख दुर्बलता को साकार करता औचित्यपूर्ण शब्द है ।
3) यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग 'चाखनहारो सो राखनहारो' के संदर्भ में किया गया है।

शब्दार्थ :- गज = हाथी, जिसकी कृष्ण ने ग्राह से रक्षा की । ताखन = उस समय । जा खन = जिस समय । माखन-चाखनहारो = श्रीकृष्ण ।

(१) "धूरि भरे अति सोभित श्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।

खेलत खात फिरै अंगना पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी ।।
वा छबि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयौ माखन रोटी ।।"

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- लीला पुरुष श्री कृष्ण के बाल स्वरूप का सहज वर्णन एवं तद्जन्य स्थिति का सुन्दर एवं सजीव निरूपण कविवर 'रसखान' ने किया है । अति सुन्दर छविधाम श्री कृष्ण के हाथों से खेल खेल में ही उस कौए का बड़ा सौभाग्य है जो जगत के पालनहार के हाथ से माखन रोटी झपट ले जाते हैं ।

व्याख्या :- गोपियाँ परस्पर वार्तालाप करती हुई गोपीवल्लभ श्री कृष्ण के बाल सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती हैं कि धूल धूसरित देह वाले श्री कृष्ण की शोभा अत्यन्त कमनीय है । उनके शीष पर सुन्दर चोटी शोभित हो रही है । क्रीड़ामग्न श्रीकृष्ण माखन रोटी खाते हुए अपने आगन में धूम रहे थे । उनके पैरों की सुन्दर पैंजनी मधुर ध्वनि बड़ी प्रिय थी । पीत वस्त्र धारण किये इस दिव्य स्वरूप शोभा से मुग्ध कामदेव भी अपनी करोड़ों सुन्दरियों को उन पर न्यौछावर कर रहा था । तभी हे सखी ! एक कौआ, जो अत्यन्त सौभाग्यशाली है, कि कुंजबिहारी श्री कृष्ण के हाथ से माखन रोटी छीनकर उड़ गया ।

विशेष -

1) श्री कृष्ण के बाल रूप का सुन्दर वर्णन किया गया है, जिस पर कामदेव की करोड़ों सुन्दरताओं को भी न्यौछावर किया गया है ।
2) व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग हुआ है ।
3) चित्रोपम भाषा का प्रयोग है ।

शब्दार्थ :- धूलि भरे = धूल से सने हुए । पीरी= पीली । बारत = न्यौछावर करती है । काम = कामदेव । कला सुन्दरता । कोटी = कोटि, करोड़ों ।

(६) "गोरज बिराजै भाल लहलही बनमाल
आगे गैयाँ पाछें ग्वाल, गावै मृदु तानि री ।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर जैसी,
बक चितवनि मन्द मन्द मुसकानि री ।।
कदम विटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि चाटि पीत पट फहरानि ।
रस बरसावै तन तपनि बुझावै नेन,
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री ।'

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- श्री कृष्ण के सुन्दर रूप माधुर्य का जीवन्त वर्णन करते हुए कविवर उनकी मनोहारी छवि प्रस्तुत करते हैं जिसके दर्शन से गोपियों के समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं । प्राणों को मोहित करने वाली उस छवि दर्शन से उनके जीवन में नवचेतना का संचार होने लगता है ।

व्याख्या :- गोपसखियाँ परस्पर प्राणवल्लभ श्री कृष्ण के रूप माधुर्य का वर्णन करती हुई कहती हैं कि उनके प्रशस्त भाल पर गोरज तथा हृदय पर बनमाल विराजित है । जिनके आगे आगे

गौएँ व पीछे ग्वाले उसका अनुसरण करते हैं । इनके मध्य मनोहारी श्याम सुन्दर श्री कृष्ण मधुर बाँसुरी बजा रहे हैं । श्री कृष्ण की मनमोहक मन्द हँसी, बाँकी चितवन और बाँसुरी की मधुर तान के मध्य अद्भुत सुन्दर सामंजस्य है । श्री कृष्ण के इस छविधाम का दर्शन करने के लिए गोपी कहती है हे सखी! श्री कृष्ण के पीत वस्त्र की शोभा को देखने के लिए पर्वत की ऊँची अटारी पर चढ़ी, जहाँ से यमुना तट और कदम्ब वृक्ष के पास से आनन्द वर्षण करते हुए, काया क्लेश नष्ट करते हुए नेत्र और प्राणों को मोहित करता आनन्द सागर कृष्ण आ रहे हैं ।

विशेष -

1) श्री कृष्ण के अंगों का अलौकिक सौन्दर्य एवं उनकी क्रियाओं का माधुर्य और शोभा देखकर ब्रज वनिताएँ जीवन के समस्त क्लेशों के दूर होने से आनन्द की प्रतीति करतीं हैं ।
2) श्री कृष्ण की वदन शोभा एवं बाँसुरी की मधुर ध्वनि के मध्य लयात्मकता एवं सामंजस्य परिलक्षित होता है ।

शब्दार्थ :- लहलही = सुन्दर । विटप = वृक्ष । तटनी = नदी, यमुना नदी । रस = आनन्द। तन-तपनि =शरीर के दुःख।

(७) "दमकैं रवि कुंडल दामिनी से धुरवा जिमि गोरज राजत है ।
मुकताहल वारन गोपन के सु तौ बूँदन की छवि छाजत है ।।
ब्रजबाल नदी उमती रसखानि मयंकबधू दुति लाजत है ।
यह आव श्री मनभावन की बरशा जिमि आज बिराजत है ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- श्री कृष्ण की अनोखी सुन्दरता के सम्मुख समस्त सौन्दर्य प्रतीक नतमस्तक से दिखाई देते हैं । श्री कृष्ण का दिन भर में गोचारण के बाद संध्याकाल में आना वर्षाकाल के आगमन के समान है । जिस प्रकार वर्षाकाल में सूर्य दामिनी मेघ आदि उपादान एक तादात्म्य स्थापित करते हैं उसी प्रकार श्री कृष्ण के सौन्दर्य उपादानों से मण्डित उनका स्वरूप आनन्दायक है।

व्याख्या :- गोपियाँ परस्पर श्री कृष्ण की मोहक छवि का शोभागान करती हैं कि कृष्ण के कानों के कुण्डल सूर्य के तेज और बिजली की चमक के समान है । संध्या समय उड़ने वाली गोधूलि बादलों के उमड़न सी प्रतीत होती है । गोपसखाओं पर उनके द्वारा मुक्ताहल वारे जाते हैं, जो वर्षा की बूँदों के समान लगती हैं । कृष्ण दर्शन को उत्साहित ब्रजबालाएँ वर्षाकाल में उमड़ी नदी के समान प्रतीत होतीं हैं ।बादलों के आवागमन से चन्द्रमा की गति धूमिल हो जाती है, इसी प्रकार मुकुन्दमाधव श्री कृष्ण के आगमन से चन्द्रवधू अर्थात् चाँदनी की शोभा मन्द हो गई है । अत: मन को हरने वाले कृष्ण का ब्रज आगमन वर्षाऋतु के आगमन के समान हर्षदायक है।

विशेष :-

1) कविवर 'रसखान' ने श्री कृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन वर्षाकाल के संबंध में किया है।
2) श्री कृष्ण का ब्रज में लौटना वर्षाकाल के आगमन एवं हर्षोल्लास का प्रतीक है । इस संबंध में दोनों का समान स्वरूपी वर्णन किया है जो सांगरूप द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।
3) सांगरूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है ।

शब्दार्थ :- दामिनी = बिजली । धुरवा = बादलों के स्तम्भ। गोरज = गऊओं के पैरों से उठी हुई धूलि । मुक्ताहल= मोती । मयंकबधू = बीर बहूटी ।

(६) "मोरपखा सिर कानन कुंडल कुंतल सों छबि गंउनि छाई ।
बंक बिसाल रसाल विलोचन हैं दुखमोचन मोहन माई ।।
आली नवीन महा घन सो तन पीट घटा ज्यौं पआ बनि आई ।
हौं रसखानि जकी सी रही कछु टोना चलाई ठगौरी सी लाई ।।"

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ - श्री कृष्ण के रूप सौन्दर्य की छटा का सुन्दर वर्णन 'रसखान' ने किया है । मोरपंख धारण किये छबीले पीताम्बरधारी श्री कृष्ण अलौकिक छबि का सौन्दर्य अलौकिक वशीकरण के समान है कि इस श्यामल सौन्दर्य को निहारती गोपवल्लभाएँ ठगी सी रह जाती हैं अथवा श्री कृष्ण के रूप पर मुग्ध होकर उनके वशीभूत हो जातीं हैं ।

व्याख्या :- श्री कृष्ण के अद्वितीय व विलक्षण सौन्दर्य की चर्चा करती हुई गोपियाँ परस्पर कहतीं हैं कि हे सखी! श्री कृष्ण के सिर पर मोर मुकुट एवं कानों में कुण्डल धारण किये हुए हैं । उनके कपोल केश पाश से सुशोभित हो रहे हैं । आनन्ददायक विशाल वक्र दृष्टि दुःख भंजन एवं मनमोहक हैं । श्यामल देह नवीन बादल की भाँति है जिस पर बाँके बिहारी की शोभा को देखकर मैं स्तब्ध हूँ कि अवश्य ही उसने मुझ पर कुछ जादू कर ठग लिया है ।

विशेष -

1) श्री कृष्ण के श्यामल रूप का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन किया गया है ।
2) कवि ने रंग सामंजस्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है कि श्यामल देह पर पीत वस्त्र की अनूठी छटा दर्शनीय बन जाती है । इसी प्रकार श्री कृष्ण की श्यामल देह एवं वर्षाकाल में बनने वाले नवीन कृष्ण मेघों का परस्पर सुन्दर संबंध स्थापित किया गया है ।

(९) कहा रसखानि सुखसम्पत्ति सुमार कहा,
कहा तन जोगी है लगाए अंग छार को ।
कहा साधे पंचानल कहा सोए बीच नल
कहा जीति लाए राज सिंधु आर पार को ।
जप बार बार तप संजम बयार ब्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को ।
कीन्हौं नहीं प्यार नहीं सैयो दरबार, चित्त,
चाह्यौ न निहारयौ जौ पै नंद के कुमार को ।। "

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- कविवर रसखान श्री कृष्ण की प्रीति भक्ति के अभाव में मनुष्य के जीवन को ही नहीं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ही निराधार कहते हैं । यदि श्री कृष्ण के प्रति सदभक्ति नहीं है, तो उनका रहस्य चिन्तन करने वाले सभी अध्ययन के आधार निराधार हैं । कवि भस्म धारण कर जप तप व समाधि लगाने को निरर्थक एवं आडम्बर मानते हैं, जिनमें श्री कृष्ण भक्ति का अभाव हो ।

व्याख्या :- श्री कृष्ण के प्रति अनन्य भाव की भक्ति को प्रकट करते हुए रसखान कहते हैं कि हे मन ! यदि श्री कृष्ण से प्रेम नहीं किया, उसकी शरणागत नहीं हुए और न ही उनका प्रेममयी दृष्टि से दर्शन किया, तो आनन्ददायक समस्त सुख भण्डार व्यर्थ अथवा नगण्य हैं । शरीर पर भस्म धारण कर योगी बनना एवं पंचाग्नियों के मध्य बैठकर तप अथवा जल समाधि लगाना भी निरर्थक है । समुद्र के आर पार के राज्य को जीत लेने में भी कोई लाभ नहीं । अत: हे मूर्ख मन ! अनोखे छबिधाम श्री कृष्ण प्रेम से रहित सहस्त्र जप करने, निराहार तप एवं संयम और तीर्थ यात्राएँ भी व्यर्थ ही हैं ।

विशेष :-

1) कवि रसखान ने श्री कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त अन्य ध्यान साधनाओं को निरर्थक एवं आडम्बरपूर्ण बताया है ।
2) श्री कृष्ण की प्रीति के अभाव में समस्त सुख वैभव के साधनों के अलावा समस्त आध्यात्मिक साधनाएँ भी व्यर्थ है । अर्थात् श्री कृष्ण की भक्ति ही सर्वोच्च एवं सर्वोपरि भक्ति है ।

शब्दार्थ :- रसखानि = आनन्द देने वाले भंडार । सुमार = गणना । छार = धूल, भस्म । नल = जल बयार। ब्रत = बिल्कुल भूखा रहकर तप करना । लबार = मूर्ख ।

(१०) कंचन के मन्दिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारे सों ।
और प्रभुताई अब कहाँ लौं बखानौं प्रति,
टारन की भीर भूप टरत न द्वारे सों ।
गंगाजी में न्हाई मुक्ताहलहू लुटाइ वेद
बीर बार गाइ, ध्यान कीजत सबारे सों ।
ऐसे ही भए तौ नर कहा रसखानि जौ पै,
चित्त दै न कीनी प्रीति पीतपटवारे सों ।। "

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- श्री कृष्ण की भक्ति ही सर्वोपरि एवं सर्वोच्च भक्ति है, इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कविवर रसखान कहते हैं कि समस्त समृद्धियों का आदि और अन्त श्री कृष्ण की भक्ति ही है । कृष्ण प्रीति के भाव प्रभुत्व सम्पन्न मनुष्य के सभी गुण निरर्थक अर्थात् अर्थहीन एवं फलहीन ही हैं ।

व्याख्या :- प्रभु श्री कृष्ण के प्रति अगाध प्रीति एवं भक्ति की भावना को अभिव्यक्त करते हुए कविवर रसखान कहते हैं कि हे मनुष्य ! श्री कृष्ण के प्रति चित्त लगाकर प्रीति नहीं रखने पर वे स्वर्ण महल व्यर्थ ही हैं, जो सदैव लाल मोतियों की दीपमालाओ के प्रकाश से शोभित होते हैं । श्री कृष्ण प्रेम के अभाव में तुम्हारी वह सम्पन्न प्रभुता भी व्यर्थ है, जिसमें अनेक राजा प्रतिहार स्वरूप तुम्हारे द्वार से नहीं हटते । गंगास्नान कर मोतियों का दान करने बार, बार वेद पाठ करने और प्रात: काल ध्यान साधनाएँ आदि सभी निष्फल हैं, जब तक पीताम्बरधारी श्री कृष्ण से सत्त चित्त आनन्दमय प्रीति नहीं है ।

विशेष :-

1) 'दीठि ठहराति नाहिं' मुहावरे का भावपूर्ण प्रयोग है ।

2) इस कवित्त में 'प्रतिहारन' शब्द खंडित है, अत: यहाँ पद भंग दोष है ।

10.7 सारांश

इस इकाई में हमने भक्तिकाल की सगुण काव्य धारा के अन्तर्गत कृष्ण काव्य परम्परा में रसखान का भाव सौन्दर्य का परिचय देना चाहा है । भक्तिकाल में कृष्ण भक्त कवियों की दो श्रेणियाँ बनायी जा सकती है- एक श्रेणी उन कवियों की है जो 'अष्टछाप' की संज्ञा से सम्बोधित किये गये हैं- महाप्रभु वल्लभाचार्य की शिष्य परम्परा में सूरदास,नंददास, कुन्दनदास, परमानन्ददास, गोविन्द स्वामी इत्यादि हैं तो दूसरी श्रेणी में मीरां तथा रसखान जैसी काव्य विभूतियों को रखा जा सकता है । मीरां तो किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित नहीं थी और रसखान ने भी स्वयं को किसी वाद या सम्प्रदाय विशेष की लक्ष्मण रेखा में न बांधा आदि विशुद्ध रूप से श्रीकृष्ण की भक्ति रस में ही स्वयं को पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण की भक्ति रस में ही स्वयं को पूर्ण समर्पित किया । रसखान की ऐसी ही पवित्र भक्ति निष्ठा को देखकर भारतेन्दु ने तो यहाँ तक कहा था कि ऐसे देखकर भारतेन्दु ने तो यहाँ तक कहा था कि ऐसे मुसलमान भक्त कवि पर तो करोड़ों करोड़ों हिन्दू भावनाओं का न्यौछावर किया जा सकता है । वास्तव में रसखान तो भक्ति रस की ही खान है ।

10.8 संदर्भ गन्थ

1. रसखानि ग्रन्थावली प्रेमवाटिका - विश्वनाथप्रसाद मिश्र
2. सुजान - रसखानि
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेन्द्र
5. रसखान - देवेन्द्र प्रताप उपाध्याय
6. रसखान का काव्य - डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा
7. रसखान का काव्य - डॉ. चन्द्रशेखर पाण्डे
8. रसखान जीवन और कृतित्व - देवेन्द्र प्रताप उपाध्याय
9. रसखान रचनावली - डॉ. विद्यानिवास मिश्र व सत्यदेव मिश्र
10. रसखान आधुनिक संदर्भ - सं. सुरेश गौतम व इंदिरा सिंह
11. रसखान का अमर काव्य - दुर्गाशंकर मिश्र

10.9 अभ्यास प्रश्न

(अ) नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 50 शब्दों में दीजिए ।

1. भक्तिकाल की पृष्ठभूमि बतलाइये ।
2. भक्तिकालीन साहित्य का वर्गीकरण कीजिए ।
3. रसखान के व्यक्तित्व का परिचय दीजिए ।

4. रसखान की रचनाओं का परिचय दीजिए ।

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 300 शब्दों में दीजिए ।

1. 'रसखान' वास्तव में रस की खान है । इस कथन की व्याख्या कीजिए ।
2. रसखान के काव्य का महत्त्व रेखांकित कीजिए ।
3. रसखान के काव्य का भाव सौन्दर्य उद्घाटित कीजिए ।
4. रसखान के काव्य के शिल्प सौन्दर्य पर अपने विचार प्रकट कीजिए ।
5. हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में रसखान का स्थान निर्धारित कीजिए ।

(इ) निम्नलिखित पद्यों की प्रसंग व संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।

1. "मानुष हो तो वही.. ....."
2. "गावै गुनी गनिका गंधर्व. ....."

इकाई- 11

रहीम

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 भक्तिकाल : सामान्य पृष्ठभूमि
11.3 भक्तिकाल : प्रमुख प्रवृत्तियाँ
11.4 रहीम : व्यक्तित्व
11.5 रहीम : रचना संसार
11.6 रहीम के काव्य में भक्ति सौन्दर्य
11.6.1 रहीम के नीति काव्य का वैशिष्ट्य
11.6.2 रहीम के काव्य में भक्ति भावना
11.6.3 रहीम के काव्य में श्रृंगार व विरह भाव
11.7 रहीम के काव्य का शिल्प सौष्ठव
11.8 प्रमुख दोहो की सप्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या
11.9 सारांश
11.10 संदर्भ ग्रन्थ
11.11 अभ्यास प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य हिंदी साहित्य इतिहास के पूर्व मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल के लोकप्रिय कवि अब्दुल रहीम 'खानखाना के काव्य जगत् से आपको परिचय करवाना है । हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी हों अथवा शोधार्थी अथवा आलोचक अथवा सामान्य पाठक सभी के लिये वे रहीम नाम से ही लोकप्रिय कवि हैं। हिन्दी नीति काव्य परम्परा में रहीम स्वर्णाक्षरों में अंकित है । भक्तिकालीन साहित्य को निर्गुण तथा सगुण प्रवृत्तियों में विभाजित किया गया है । निर्गुण काव्य के अन्तर्गत संत एवं सूफी तथा सगुण काव्य में रामभक्ति तथा कृष्ण भक्ति साहित्य की चर्चा की जाती है । कबीर, नानक, रैदास आदि निर्गुण संत काव्य परम्परा के अग्रणी कवि हैं तो मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन तथा जायसी सूफी काव्य परम्परा के उल्लेखनीय कवि हैं । सगुण भक्तिकाव्य में गोस्वामी तुलसीदास राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं तो सूरदास, नन्ददास, कुंभनदास आदि 'अष्टछाप' कवि के रूप में कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा के प्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं । इसी काल में सम्प्रदायेतर भक्त कवयित्री मीरां का अपना मौलिक स्थान है तो रसखान भक्ति रस की साक्षात् बहती निर्मल रस धारा है । भक्तिकाल के ही नीति काव्य रचनाकारों में अब्दुल रहीम खानखाना का अद्वितीय स्थान है । नीति काव्य में जीवन मूल्यों की आचार संहिता का निर्देशन होता है । जीवन जीने का मूल मंत्र, नैतिकता, सदाचरण, सत्य निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति, आस्था और विश्वास का संदेश देना ही नीति काव्य का मूल उद्देश्य होता है ।

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में रहीम के नीति व भक्ति काव्य की भावात्मक तथा कलात्मक विशेषताओं का चित्रण किया गया है । हमारे उल्लेख कवि रहीम ने कोई महाकाव्य, खण्डकाव्य अथवा काव्य लक्षण निरूपित करने वाले ग्रंथों की रचना नहीं की बल्कि दोहा जैसे लघु आकार वाले छन्दों में भी जीवन जीने के अनमोल सूत्रों की प्रस्तुति करने में रहीम अनुपम प्रतिभा के धनी सिद्ध हुए हैं । निश्चय ही रहीम बहुआयामी चिन्तन के प्रतिष्ठित कवि हैं । उनके काव्य में भक्ति और नीति का मणि कांचन योग है । सरल और सहज भाषा में उनके काव्य में जीवन का गहन चिन्तन है । सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा है । नैतिकता, आत्म सम्मान और लोक व्यवहार की अद्भुत प्रेरणा है ।

11.2 भक्तिकाल : सामान्य पृष्ठभूमि

1. भक्ति आंदोलन मध्ययुगीन धार्मिक रूढ़ियों तथा सामाजिक विषमताओं, अंध विश्वासों के प्रति विद्रोही, लोकभाषाओं के प्रति आस्था तथा तत्कालीन समाज व्यवस्था के विरूद्ध जनता का सांस्कृतिक आध्यात्मिक आन्दोलन है । वि. सं. 1050 से वि. 1375 के मध्य विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों और उससे उत्पन्न हुई सामाजिक अव्यवस्था, अरक्षा की भावना, राजनीतिक विश्रृंखलता, बाह्याडम्बर तथा आचारहीन सैद्धान्तिक कर्मकाण्डों से सामाजिक जीवन आक्रान्त था । ऐसी परिस्थितियों में दक्षिण भारत के आलवार संतों की रस धारा ने सम्पूर्ण उत्तर भारत को भक्ति आन्दोलन से आप्लावित कर दिया । शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य एवं मध्वाचार्य के दार्शनिक चिन्तन पर आधारित निर्गुण एवं सगुण भक्ति की पृष्ठभूमि में भक्ति आंदोलन अंकुरित होकर शीघ्र ही लोक आस्था का आन्दोलन बन गया । वीर गाथा काल की राजनैतिक पराजयों से उत्पन्न मानसिक निराशा व कुण्ठा ईश्वर शरणागति की प्रार्थना में परिणित हो गई । भक्ति आंदोलन को वैचारिक आधार देने में नाथों, सिद्धों, इस्लाम, सूफी मत के अतिरिक्त संत ज्ञानेश्वर, चैतन्य महाप्रभू नामदेव, कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, मीरां, रसखान एवं रहीम इत्यादि विभूतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । हिन्दी साहित्य के इतिहास में वि. सं. 1375 से वि. सं. 1700 की अवधि भक्तिकाल के नाम से सम्बोधित की गई है ।

11.3 भक्तिकाल : प्रमुख प्रवृतियां

भक्तिकाल में भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सुगम व सहज साधन माना गया । भक्ति के लिए आवश्यक है श्रद्धा और प्रेम । गुरू कृपा से भक्ति प्राप्त होती है । ईश्वर का केवल नाम स्मरण ही भक्ति के लिए पर्याप्त है । अपने अहंकार का त्याग कर ईश्वर की लीला गान में लीन रहना ही भक्ति की पहचान है । ईश्वर के रूप चिन्तन तथा उपासना पद्धति के आधार पर भक्ति काव्य के दो भेद किये गये हैं, निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य । निर्गुण भक्त कवि ईश्वरीय को निर्गुण तथा निराकार मानते हैं । वे अवतारवाद में विश्वास नहीं करते। न ही वे जातिप्रथा, धार्मिक बाह्याचार और सामाजिक कुरीतियों को मानते हैं । ये भक्त कवि सभी धर्मों में एकता के पक्षधर हैं इसलिए इन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता पर विशेष जोर दिया

है । सगुण भक्त कवि ईश्वर के सगुण साकार रूप में विश्वास करते हैं। वे अवतारवाद में भी विश्वास करते हैं और अवतारों के चरित्र लीला गान को भक्ति का प्रमुख साधन मानते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निर्गुण काव्यधारा को ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी काव्य और सगुण काव्यधारा को कृष्ण भक्ति काव्य ओर राम भक्ति काव्य में विभाजित किया है । ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने सामाजिक विद्रोह से युक्त भक्ति काव्य की रचना की, तो प्रेममार्गी सूफी कवियों ने लोक प्रचलित प्रेम कथाओं के प्रणयन द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना प्रस्तुत की । कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजन रूप का लीलागान किया तो राम भक्त कवियों ने राम के लोकमंगल रूप को प्रतिष्ठा दी ।

अभ्यास प्रश्न :

1. भक्तिकाल की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए ।
2. भक्ति कालीन साहित्य का वर्गीकरण कीजिए ।
3. भक्ति काल की प्रवृत्तियों को उद्घाटित कीजिए ।

11.4 रहीम : व्यक्तित्व

भारतीय परम्पराओं, रीति रिवाजों, संस्कृति तथा साहित्य के प्रति गहरी आस्था रखने वाले सिद्धहस्त कवि रहीम कला के सच्चे साधक और कवियों के कल्पतरू हैं । व्यक्तित्व की दृढ़ता उनके सेनापतित्व की सूचक है तो स्वभाव की कोमलता उनके कवि रूप की । व्यवहार कुशल रहीम का व्यक्तित्व मानवीय गुणों से ओतप्रोत होने के साथ दायित्वों के सफल निर्वहन में भी खरा उतरा । युद्धवीर तथा दानवीर रहीम दूरदर्शी भी रहे और कूटनीतिज्ञ दाँव पेचों में सिद्धहस्त भी । वे लोक जीवन से क्रियात्मक अनुभव बटोर कर काव्य रूप में रत्नों की तरह प्रस्तुत कर देने वाले महान् कवि तथा विविध भाषाओं के प्रकांड ज्ञाता भी रहे । एतदर्थ रहीम राजा, सेनापति, भक्त, कवि, भाषाविद्, ज्योतिषी, दानवीर, समाज सुधारक तथा नीतिकार की भूमिकाएँ एक साथ निभाने वाले ऐसे रचनाकार हैं जिनका सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य जगत् में अपना एक विशिष्ट स्थान है ।

रहीम का जन्म 17 दिसम्बर, सन् 1556 ई. को लाहौर में हुआ । रहीम के पिता का नाम अतालीक बैरमखाँ खानखाना जो कि मुगल साम्राज्य के स्वामीभक्त सेनानायक तथा हुमायूँ के अन्तरंग मित्र थे । पिता बैरमखाँ द्वारा दिया गया 'अब्दुल रहीम' नाम धीरे धीरे अब्दुर्रहीम बन गया तथा कविता में आकर यह रहीम' या रहीमन' के रूप में प्रयुक्त होने लगा । पिता बैरमखाँ की उपाधि 'खानखाना' उन्हें विरासत में मिली । मुगल दरबार का उच्चतम पद 'वकील-मुतलक' उन्हें प्राप्त था । वे अकबर के नौ रत्नों में से एक थे । उन्होंने 'तुजके बाबरी' का भी अनुवाद किया ।

11.5 रहीम : रचना संसार

अब्दुल रहीम 'खानखाना की उपलब्ध होने वाली संपूर्ण प्रकाशित कृतियाँ 6 हैं- दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिका भेद, भक्तिपरक बरवै, श्रृंगार सोरठा तथा मदनाष्टक । इनके अतिरिक्त कुछ फुटकर पद तथा कुछ संस्कृत के श्लोक जिन्हें 'खेट कौतुक जातकम' के नाम

से जाना जाता है । इन कृतियों में 'दोहावली' नीति काव्य की प्रसिद्ध कृति है जिसमें रचनाकार के रूप में रहीम' और रहीमन' के नाम की छाप मिलती है । नगरशोभा श्रृंगार की कृति है जिसमें नायिकाओं का वर्ण और व्यवसाय के आधार पर वर्णन है । 'बरवै नायिका भेद' रहीम की विशिष्ट कृति है । बरवै छंद के जनक रहीम ने इसमें नायिका भेद की परम्परा का निर्वाह किया है । 'भक्तिपरक बरवै' में गणेश, सूर्य, महादेव, कृष्ण, राम तथा हनुमान आदि की वन्दना, श्रृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, भक्ति, भ्रमरगीत प्रसंग तथा वैराग्यादि से संबंधित छंद हैं । 'श्रृंगार सोरठा' के नाम से 6 छंद उपलब्ध हैं जो 'रहीम ग्रन्थावली' में प्रकाशित हैं । जनभाषा फारसी तथा अन्यदेशी भाषाओं के मिश्रण से बनने वाली उर्दू या रेखता भाषा में कवि ने 'मदनाष्टक' लिखा । 'मालिनी' छंद में लिखी इस कृति में 8 छंद हैं ।

ये समग्र कृतियाँ रहीम के भक्त हृदय की कवि चेतना, पवित्र भावना का समर्पण और लोकजीवन का सफल एवं समर्थ स्पर्श उन्हें पूर्णत: भारतीय आत्मा सिद्ध करते हैं ।

रचनाओं का परिचय :- रहीम की रचनाएँ निम्नलिखित हैं :-

1. **रहीम दोहावली :-** कहा जाता है कि रहीम ने 'सतसई' की रचना की थी । किंतु अभी तक उनकी 'सतसई' की प्रामाणिक प्रति नहीं मिली है । अब तक सम्पादकों ने मुक्तक संग्रहों और हस्तलिखित ग्रन्थों से उनके दोहे चुनकर सम्पादित किए हैं । इसमें 299 दोहे हैं ।
2. **नगर शोभा :-** इस ग्रन्थ की रचना रहीम ने स्वतन्त्र रूप से की है । 'श्रृंगार सोरठ' की भाषा से इसका भाषा साम्य है । रचना के अन्त में 'ऊँच नगर शोभा नवाब खानखाना कृत' लिखा है । इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी मिलती है । इसमें 142 दोहे हैं । रहीम का यह काव्य सामन्ती संसर्ग का परिचायक है । इस ग्रंथ में सात व्यावसायिक जातियों का उल्लेख मिलता है । यह सत्य है कि इस ग्रंथ के किसी भी दोहे में रहीम की छाप नहीं है ।
3. **बरवै नायिका भेद :-** इस ग्रन्थ की कई हस्तलिखित प्रतियाँ (कृष्ण बिहारी मिश्र तथा काशीराज की प्रतियाँ) मिली है । जिसका सम्पादन पं. छेदीलाल तिवारी ने किया है । कहा जाता है कि रहीम के एक अनुचर को विवाह के कारण लौटने में कुछ देरी हो गयी थी उसे रहीम के रूष्ट होने का भय था, तब उसकी स्त्री ने एक बरवै लिखकर भेजा था-

   "प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय ।
   सींचन की सुध लीजो मुरझिन न जाय ।।"

   इस पर रहीम ने उस सेवक को पुरष्कृत कर छुट्टियाँ बढ़ा दी थी । तबसे बरवै रहीम का प्रिय छंद हो गया था। स्वयं रहीम ने अवधी भाषा में रचित इस लोकप्रिय छंद के महत्व को व्यक्त करते हुए लिखा है-

   "कवित्त कहयो दोहा कहयो, तुलै न छप्पय छन्द ।
   विरच्यो यहै विचार कै, यह बरवै रस कंद ।।"

   रीति ग्रन्थों की शैली पर आधारित बरवै नायिका भेद संबंधी ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है । इसके 119 ग्रन्थ छंद प्राप्त हुए हैं ।

4. **बरवै:-** रहीम ने नायिका भेद के अलावा कुछ स्वतंत्र बरवै लिखे हैं इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मेवाड़, अलवर तथा इलाहाबाद से प्राप्त हुई है । इसमें 101 छंद प्राप्त हुए हैं । यह श्रृंगार व शांत रस की रचना है । बारहमासा पद्धति पर लिखे गये आषाढ़, सावन, भादों तथा फाल्गुन संबंधी 4 छंद हैं ।

   गोस्वामी तुलसीदास ने बरवै 'रामायण' रहीम के रचे हुए बरवों को देखकर लिखा है

   'कवि रहीम बरवै रचै,पठये मुनिवर पास ।

   लखि तेई सुंदर छंद में, रसना किये प्रकास ।"

5. **श्रृंगार सोरठ:-** इसमें 7 छंद मिले हैं जो ग्रन्थावली में श्रृंगार सोरठ के अन्तर्गत दिए गए हैं । इसमें विप्रलंभ श्रृंगार का सुंदर नियोजन हुआ है ।

6. **मदनाष्टक:-** 'रहीम कवितावली' में संग्रहीत नागरी प्रचारिणी सभा, काशीवाला 'मदनाष्टक रहीम कृत माना गया है । मायाशंकर याज्ञिक ने 'रहीम रत्नावली' में सम्मेलन पत्रिका वाले पाठ को शुद्ध माना है । यह संस्कृत की रचना है । इसमें मालिनी छंद है । इसमें कृष्ण की वंशी के व्यापक प्रभाव, गोपियों की विह्लता तथा कृष्ण गोपी की उत्कृष्ट प्रेम भावना की अभिव्यक्ति हुई है । इसमें 8 छंद प्रयुक्त हुए हैं ।

7. **फुटकर पद:-** इसमें रहीम रचित कुछ फुटकर पद मिलते हैं । जिनकी संख्या 113 है । इस तरह से इन रचनाओं का पता भरतपुर के पंडित मायाशंकर याज्ञिक ने लगाया है और इनकी सभी रचनाओं को एक पूरा संग्रह 'रहीम रत्नावली' के रूप में प्रस्तुत किया है ।

11.6 रहीम के काव्य का भाव सौन्दर्य

रहीम स्वभाव से ही भावुक रहे हैं । किसी पर भी प्रसन्न होकर उसे लाखों के पुरस्कार दे देना, निर्धन की दीनता देख आर्द्र होना या करूणा से भर जाना, वीरता या मित्रता को सही अर्थों में पहचानना, उसकी सराहना या निंदा करना, सौन्दर्य पर रीझ उठना, कला और प्रवृत्ति पर मोहित हो जाना उनकी इसी मनोवृत्ति के सूचक हैं । अपने समय को पहचानने और दूरदृष्टि से भविष्य को आंकने वाले रहीम की काव्य भूमि का प्रमुख तत्व युगीन जीवन और समाज है । उन्होंने अपने नेत्र दीपकों से बाहर और भीतर के राग अनुराग को देखा विचारा तथा ध्वनि वर्ण और शब्दों को स्वर एवं लय में पिरोकर भाषिक आवरण में बाँध दिया । संवेदनाओं को मन और चिंतन की भट्टी में तपाकर काव्य के रूप में अभिव्यक्त कर दिया । भाव ने उसे कविता का रूप । दिया और सामाजिक चेतना ने उसे नीति की उपादेयता दे डाली ।

11.6.1 रहीम के नीति काव्य का वैशिष्ट्य

धर्मनीति, अर्थनीति, और मोक्षनीति के प्राय: सभी विषयों का रहीम ने अत्यन्त समृद्ध निरूपण किया है । सरस अनुभूति और लौकिक अनुभव की विशालता उन्हें किसी वर्ग विशेष में नहीं रहने देती और वे अपने नीति काव्य को एक नवीन दिशा देते हुए समाज के प्रत्येक श्रेणी के लोक हृदयों को छू लेते हैं ।रहीम के दोहों में मार्मिकता है, उनके भीतर से एक सच्चा मानव हृदय अभिव्यक्त होता है । जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी वही जनता का श्रद्धास्पद कवि होगा। रहीम संसार के सच्चे

और प्रत्यक्ष व्यवहारों में ही अपने द्रवीभूत होने के लिए पर्याप्त स्वरूप पा जाते थे । उन्होंने अपनी रचनाओं में वैयक्तिक एवं लोकजीवन के अनुभवों को ही स्थान दिया है । रहीम ने राष्ट्र की सेवा की और जनता को जाग्रत किया अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्हें नीति भक्ति की बातें बतायी, राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता के महत्व में रहीम का योगदान रहा है । रहीम का जीवन राजनैतिक जीवन था किंतु उनका काव्य प्रयोजन मानव जगत के लिए था ।

1. **क्षमाशीलता :-** 'दोहावली' में मनुष्य के व्यवहारों का वर्णन किया गया है । महान् व्यक्ति अपने व्यवहार से और भी महान् बन जाता है । रहीम कहते हैं कि क्षमा करना बड़ों का कर्तव्य है । छोटों का कार्य उदण्डता करना ही है क्योंकि इससे बड़ो का महत्व कम न होकर अधिक ही होता है । जिस प्रकार से भृगु ऋषि द्वारा भगवान विष्णु वक्षःस्थल पर प्रहार करने से विष्णु की क्या महानता घटी ? अपितु इस क्षमावृति से तो विष्णु का सम्मान ही बढ़ा ।

   यथा- "क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात ।
   का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ।।"

2. **वाणी का महत्व :-** रहीम ने वाणी के महत्व को अंकित करते हुए उसके प्रयोगकर्ता के विवेक को महत्वपूर्ण माना है । रहीम इस प्रकार से स्पष्ट करते है कि तलवार न तो लोहे की है न लोहार की है । वह तो प्रहार करने वाले की बुद्धि पर निर्भर करती है । इसी प्रकार शब्द रूपी तलवार भी व्यक्त करने वाले के विवेक को प्रमाणित करती है-

   "लोहे की न लुहार की, रहिमन कही विचार ।
   जो हनि मारे सीस पै, ताही को तलवार ।।"

3. **धन का मिथ्या दर्प :-** रहीम कहते हैं कि हे मनुष्यों! तुम अनैतिकता से धन अर्जित कर तो रहे हो, किंतु इस आचरण से अर्जित किए हुए धन को नष्ट होते हुए क्षण की देरी भी नहीं लगेगी, जैसे चोरी करके होली की सामग्री को जलकर नष्ट होने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती है-

   'रहिमन वित्त अधर्म को जरत न लागे बार ।
   चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ।। "

4. **सत्संगति :-** भक्तिकाल के नीतिकारों ने सत्संगति को महत्व बहुत दिया है । कविश्रेष्ठ रहीम का विचार है कि जिसके संस्कार उत्तम हैं, कुसंगति उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती-

   "जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग ।
   चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ।।"

5. **याचक प्रवत्ति की निंदा -** रहीम ने भिक्षावृत्ति के लिए कहा है कि कभी भी किसी से कुछ माँगना नहीं चाहिए। माँगने से तो मरना ही श्रेष्ठ होता है ।

   "मांगन मरन समान है, मत कोय मांगो भीख ।
   मांगन से मरना भला, यह सद्गुरु की सीख । । "

6. **परोपकार की महिमा :-** मनुष्य अन्य जीवों से सर्वश्रेष्ठ जीव है । अत: परोपकार उसका परम आभूषण माना गया है । तभी तो महाराज शिवि और दधीची के उदाहरण विश्वविख्यात हैं

"रहिमन पर उपकार के, करत न भारी बीच ।
मांस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीची ।।"

7. **संतोष का महत्व :-** मनुष्य को सुख शांति तभी मिल सकती है जब मन में संतोष रूपी धन का निवास हो । जिस प्राणी का अन्त: करण संतोष भाव में प्रवृत हो जायेगा तब उसे सांसारिक सम्पदा धूल के समान अर्थहीन प्रतीत होने लगेगी ।

'गोधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खानि ।
जब आवै संतोष धन सब, धन धूरि समान ।।"

8. **कुपुत्र की निंदा :-** पुत्र परिवार का दीपक होता है । जिसके कंधों पर भावी परिवार का बोझ होता है । पुत्र के बिना मनुष्य सद्गति प्राप्त नहीं कर सकता लेकिन रहीम कपूत को परिवार का अंधेरा मानते हैं-

"जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजियारे करै बढ़े अँधेरो होय ।।"

9. **मित्रता की सार्थकता :-** हित साधन की दृष्टि से मित्रता सबसे अधिक वांछनीय है । वस्तुत: विपत्ति कसौटी का ऐसा माध्यम है जो क्षण मात्र में मित्र अमित्र की पहचान करा देती है-

"रहिमन विपदा हूँ भली, जो थोरे दिन होय ।
हित अनहित या जगत में, जानि परै सब कोय ।।"

मित्रता भी समान स्तर की ही फलदायी होती है, क्योंकि असमान स्तर की मैत्री का निर्वाह प्राय: कम संभव होता है

"कह रहीम कैसे निभै केर बेर को संग ।
ये रस डोलत अपने उनके फाटत अंग ।।"

10. **स्वाभिमान :-**प्राणी मात्र के लिये स्वाभिमान अमूल्य रत्न है, जिसके भीतर स्वाभिमान नहीं होता, वह पशु से भी घटकर है तथा समाज, परिवार एवं राष्ट्र तथा मानव समुदाय का भार है इसलिए रहीम ने प्रत्येक दशा में स्वाभिमान की रक्षा का उपदेश दिया-

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
पानी गए न उबरै, मोती मानस चून ।।"

11. **ईश्वर में विश्वास :-** रहीम कहते हैं कि हे मन! राम और कृष्ण जैसे इष्ट देवों के होते हुए तुम्हें किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है । ईश्वर विश्वासी दुर्जनों से भी नहीं डरते हैं तो ज्वारी, चोर, लवार उनका बिगाड़ ही क्या सकेंगे, जब कि इन सबका सिरमौर, उनका इष्टदेव स्वयं माखन चाखन हम है-

"रहिमन को कोउ का करै, जारी चोर लवार ।
जो पत राखन हार है, माखन चाखन हार ।।"

12. **स्वार्थ का लक्षण :-** स्वार्थी लोग अन्यों को कष्ट देकर अपने को सुखी समझता है । वह इसके लिए निकृष्ट मार्ग भी अपनाता है । रहीम ने ऐसे व्यक्तियों के लिए बबूल का प्रतीक चुना है जो पथिक के रास्ते में काँटे बिछाकर दुःख देता है-

"आप ने काहू काम के, डार पात फल मूल ।
औरन को रोकत फिरे, रहिमन कूर बबूल ।।"

13. **लोभ या मोह का विसर्जन -** रहीम ने मोह का वर्णन करते हुए कहा है कि प्राणी संसार की नश्वरता को जानते हुए भी उसके वशीभूत हो जाता है-

"कागद को सो पुतरा, सहजहि में घुल जाय ।
रहिमन यह अचरज लख्यो, सोऊ खेचत वाय । । '

14. **दानशीलता :-** दान की श्रेष्ठता व चरितार्थता का प्रतिपादन करते हुए रहीम कहते है कि सदैव उत्साह तथा विनयपूर्वक दिया गया दान ही सार्थक एवं वरेण्य होता है-

"रहिमन रहिला की भली जो परसै मन लाय ।
परसत मन मैला करै वा मैदा बहि जाय ।। "

15. **लोकव्यवहार -** रहीम के नीति परक विचार अनुभव की भट्टी से तप्त होकर निकले हैं, वे दुष्टों को कभी साम, कभी दाम, कभी दण्ड तथा कभी भेद की नीति से वश में करने की नीति के पोषक है-

"रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देय ।
छेद में डंडा डारि कै, चाहे नांद लै लेय ।। "

रहीम मानते है कि दुर्जनों के साथ कितना भी उपकार क्यों न किया जाय किंतु वे अपनी आदत से बाज नहीं आते-

"रहिमन लाख भली करो, अगुनि अगुन न जाय ।
राग सुनत पय पियत ह्वँ, सांप सहज धरि खाय ।।"

16. **भाग्य में विश्वास :-** रहीम भी भाग्य की प्रबलता में विश्वास रखते हैं और मानव को भाग्य के हाथ की कठपुतली मानते हैं-

"ज्यों नाचत कठपुतली, करम नचावत गात ।
अपने हाथ रहीम ज्यों नहीं आपुने हाथ ।। "

11.6.2 रहीम के काव्य में भक्ति भावना

रहीम ने कृष्ण को दीनबन्धु कहा है । उन्होंने स्वयं को गरीब बताया है । तुम ही सर्वेश्वर हो-

रहिमन कीन्हि प्रीति, साहब को भावे नहीं ।
जिनके अगनित मीत, हम गरीबन को गने ।।"

रहीम पुन: निवेदन करते हैं कि प्रेम की भावना एक पवित्र कच्चा धागा है, इसे झटका देकर मत तोड़ो । यदि टूटे हुए धागे को जोड़ने का प्रयास किया जायेगा तो इसमें गांठ पड़ जायेगी। गांठ का पड़ना बुरा है ।

"रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय ।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गांठ पड़ जाय ।। "

11.6.3 रहीम के काव्य में श्रृंगार व विरह भाव

रहीम के काव्य में नीति के अलावा श्रृंगार व विरह का भाव भी मिलता है । कृष्ण भक्ति पूर्ण कविताओं में भागवतीय गोपियों की परम विरहासक्ति एवं रूपासक्ति की स्पष्ट झलक है-

"कमल दल नैनानि की उनमानि ।
विसरति नाहि सखी यो मन ते, मंद मंद मुसकानि ।
बसुधा की बस करी मधुरता, सुधा पगी बतरानि ।
मढ़ी रहै चित्त उर बिसाल की, मुक्त माल चहरानि ।। "

रहीम की संस्कृत हिन्दी मिश्रित रचनाओं में एक छोटी सी रचना 'मदनाष्टक' है । इसमें श्रृंगार का जो वर्णन है, वह गोपियों के साथ उनके शरद रास की भूमिका प्रस्तुत करता है-

"शरद निशि निरीले चाँद की रोशनाई ।
सघन वन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई ।
रति, पति, सुत, निद्रा, साईयाँ छोड़ भागी ।
मदन शिरासी भूयः क्या बला आन लागी ।। "

11.7 रहीम के काव्य का शिल्प सौष्ठव

गागर में सागर भरने की कला में निपुण रहीम की भाषा कोमल तथा सरल है । उसमें अर्थ की गरिमा तथा सुन्दर भावों की प्रौढ़ता है । रहीम भावों और विचारों को ब्रजभाषा द्वारा तन्मयता से अभिव्यक्त करने में सिद्धहस्त रहे हैं । रहीम से पहले का कोई भी कवि अपने दोहों में ब्रजभाषा का वह आकर्षण, सहजता, चमत्कार, विचार, गरिमा वहन करने की शक्ति, सरसता तथा मर्मज्ञता नहीं ला सका जो रहीम के दोहों में मिलती है । इसी प्रकार अवधी भाषा की उन्नति और श्रीवृद्धि में भी रहीम का महत्वपूर्ण योगदान है । अवधी के सर्वप्रमुख छंद बरवै के जनक भी रहीम ही हैं । भाषा की शुद्धता और माधुर्य, संस्कृतनिष्ठता और प्रांजलता रहीम की खास पहचान है ।

शब्द चयन क्षमता तथा व्यापक दृष्टिकोण रहीम की भाषा नीति के प्रमुख चरण हैं । व्याकरण सम्मत पकड़ तथा प्रसंगानुकूल शब्द प्रयोग कवि की प्रतिभा के परिचायक हैं । छंदों में लय और संगीत का कारण भी यह सुन्दर और सटीक शब्द प्रयोग ही है । छोटे छोटे शब्द कवि को शब्द शिल्पी की संज्ञा प्रदान करते हैं । ऐसा लगता है जैसे फूलों की मनोहारी माला पिरो दी गई हो । रहीम की भाषा में सर्जनात्मकता की गहन शक्ति है । इसमें प्रौढ़ता, गंभीरता, सरसता और सक्षमता सहज ही मिल जाती है ।

रहीम कवि एवं भक्त हैं । इनके काव्य कला पक्ष के अन्तर्गत कवित्त, सवैया, बरवै, दोहा, सोरठा, घनाक्षरी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है । दोहा छंद को इन्होंने प्रसिद्ध कर दिया, दोहा से ऐसे नीति प्रधान बातों का वर्णन किया है, जो मार्मिक व गहरे अनुभव के आधार पर मनुष्य जीवन के सत्य को उजागर करते हैं । इसकी कविता सरस, मधुर व नीतिपूर्ण है । साधारण

बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया गया है । इनकी रचना में श्रृंगार रस के अलावा वैराग्य के भाव भी मिलते हैं ।

छंदों का प्रयोग :- रहीम जी दोहा छंद के बारे में कहते हैं जो चित्त को दुहता है, वह दोहा है । इस लक्षण को अपनाया जाये तो प्रत्येक दोहा वास्तव में दोहा है-

"गई आगी उर लाय, आगी लेन आई जो तिय ।

लागी नाहि बुझाय, भभकि भभकि बीर बरि उठै ।।

"नगर शोभा" ग्रन्थ में बरवै छंद का प्रयोग किया है । जो रहीम का प्रिय छंद रहा है, जैसे-

"ऊँच जाति ब्राह्याणिया, बरणि न जाय ।

दौरि दौरि पालागी, शीष छुआय ।।"

रहीम ने बरवै छंद को लघु मात्राओं का छंद बताया है जिसमें 12 व 7 मात्राओं पर गति होती है । अंत में गुरु लघु होता है एवं तुक भी मिलती है ।

'फुटकर पद' रहीम ग्रन्थावली में घनाक्षरी छंद का प्रयोग किया है । इस पद में रहीम को अपनी पुन: छिनी हुई जागीरी प्राप्त हुई थी जैसे

"पट चाहे तन चाहत छदन मन, चाहत धन धाम जैसी सम्पदा सराहिणी ।

तेरो ही कहाय के रहीम कहे दीन बन्धु, अपनी विपत्ति जाय काके द्वारा काहिणी । "

अलंकार योजना :- अलंकारों का प्रयोग भी रहीम ने अपनी काव्य कृतियों में किए हैं । जैसे उपमा, दृष्टांत, उत्पेक्षा व अन्योक्तियों के दर्शन होते हैं ।

भाषा शैली :- रहीम बहु भाषी थे । रहीम की भाषा शैली बहुत ही सरल, सरस व मधुर है । थोड़े से सारगर्भित शब्दों के द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में वे अत्यधिक निपुण हैं । रहीम की भाषा में ब्रज व अवधी दोनों का प्रयोग मिलता है । दोहों में ब्रज भाषा का मधुर व सरस प्रयोग है, तो बरवै में उनकी अवधी भाषा का माधुर्य सरस रूप में दृष्टिगोचर होता है । 'मदनाष्टक काव्य में खड़ी बोली के प्राचीन रूप का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है । भाषा पर तुलसी का सा ही अधिकार हम रहीम का भी पाते हैं । रहीम ब्रज और अवधी दोनों काव्य भाषाओं में समान कुशल थे । इनकी उक्तियाँ ऐसी लुभावनी हुई कि बिहारी आदि परवर्ती कवियों ने उनका अनुकरण किया । रहीम सर्वसाधारण में अपने दोहों के लिये ही प्रसिद्ध हैं पर इन्होंने बरवै, कविता, सवैया, सोरठ, पद सब में थोड़ी बहुत रचना की है । कवि ने अपनी रचनाओं में वैयक्तिक एवं लोक के अनुभवों को ही स्थान दिया है- दुरागत, कल्पना का आश्रय लेकर विचित्र अनुभूतियों का सन्निवेश करने का प्रयत्न रहीम ने नहीं किया है।

11.8 प्रमुख दोहों की सप्रसंग एवं संदर्भ सहित व्याख्या

1. मान सहित विष खाय के, संभु भए जगदीस ।

   बिना मान अमृत पिया, राहु कटायो सीस ।।

प्रसंग - हिन्दी नीति काव्य परम्परा में रहीम का उच्चकोटि का स्थान है । अकबर महान् के दरबारी सेनानायक रहीम का राजनैतिक जीवन जितना साहसिक है उतना ही भावपूर्ण व्यक्तित्व उनके साहित्य सर्जन कौशल का भी है । उन्होंने युगीन जीवन मूल्यों के संदर्भ मे मानवीय आचार विचार के संदर्भ में अपने काव्य की रचना की ।

संदर्भ :- रहीम दास जी ने प्रस्तुत पद्य में देवता और असुरों द्वारा समुद्र मंथनोपरांत अमृत प्राप्ति की घटना के माध्यम से मनुष्य जीवन में आत्म सम्मान पूर्वक जीने की महत्ता का प्रतिपादन किया है ।

व्याख्या :- रहीम दास जी ने मान और इज्जत से किये गये कार्य को उत्तम कहा । कोई भी कार्य बिना आदर से किया जाये वह सिद्ध नहीं होता, जिस प्रकार देवता और असुरों द्वारा समुद्र मंथन के समय प्राप्त कालकूट विष को सम्मान के साथ भगवान शंकर ने ग्रहण किया तो उन्हें जगदीश की उपाधि प्राप्त हुई और राहु ने छल कपट से बिना आदर देवताओं की श्रेणी में बैठकर अमृत का पान किया तो भगवान विष्णु ने उनका शीष काट दिया ।

विशेष :- जीवन में आत्म सम्मान का बड़ा महत्व होता है ।

2. जलहिं मिलाय रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर ।
   अँगवहि आपुहि आप लखि सकल आँच कै भीर ।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ - रहीम जी ने उपर्युक्त पद में दूध एवं जल के परस्पर त्याग व समर्पण की भावना का उदाहरण देते हुए सच्ची मित्रता की पहचान बताई है ।

व्याख्या :- रहीम जी कहते हैं दूध जल को अपने में मिलाकर अपने समान दूधिया बना लेता है और जब दूध को आग पर रखा जाता है तब पानी दूध के प्रति मैत्री भाव का निर्वहन करते हुए आग की आंच स्वयं ग्रहण करके प्रथमत: स्वयं जलकर नष्ट होता है । एतदर्थ मित्रता भी जल व दूध के समान होनी चाहिए ।

विशेष :- सच्ची मित्रता में परस्पर त्याग और कष्ट सहने की सर्वोच्च भावना विद्यमान होती है ।

3. "रहिमन घरिया रहट की, त्यों ओछे की दीठि ।
   रीतिहि सम्मुख होत है, भरी दिखावे पीठि ।।"

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम दास जी ने रहट के घड़े द्वारा संकीर्ण बुद्धि वाले नीच आदमियों के स्वभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या :- रहीम जी कहते हैं कि जिस प्रकार रहट का घड़ा खाली होकर सामने आता है और भरकर पीठ दिखा देता है उसी प्रकार ओछे मनुष्य अपने प्रतिकूल समय में तो विनम्र होकर सामने आते हैं और सम्पन्न हो जाने पर बात भी नहीं करते ।

विशेष :- ओछी प्रकृति के मनुष्य अवसरवादी व स्वार्थी होते हैं ।

4. रहिमन ओछे नरन ते, तजौ बरै उरू प्रीति ।
   काटे चाटे स्वान के, दुहू भाँति विपरीति ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम जी ने नीच मनुष्य के स्वभाव को कुत्ते के समान सिद्ध किया है ।

व्याख्या :- रहीम जी कहते हैं कि जिस प्रकार कुत्ते से प्रेम और दुश्मनी दोनों ही ठीक नहीं है क्योंकि प्रेम में जो कुत्ता चाटता है और बैर में वही काटता है ठीक उसी प्रकार का स्वभाव नीच मनुष्य का भी होता है ।

विशेष :- इस प्रकार के भाव अन्यत्र भी रहीम ने व्यक्त करते हुए कहा है ।

"रहिमन जगत बढ़ाई की कूकुर की पहिचान ।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि ।। "

इसी प्रकार महाकवि वृन्द भी लिखते हैं-

"हितहू भलो न नीच को, नाहिन भलो अहेत ।
चाट अपावन तन करे, काटि स्वान दुःख देत ।। "

5. रहिमन ओछे नरन ते, होत बड़े नहिं काम ।
मढ़ौ दमामो न बनै, सौ चूहे के चाम ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ - रहीम ने इस पद में तुच्छ बुद्धि वाले मनुष्य की क्षमता और सामर्थ्य की ओर संकेत किया है ।

व्याख्या :- रहीम जी कहते हैं जिस प्रकार सौ चूहों के चमड़ी से भी ढोल नहीं बनाया जा सकता है उसी प्रकार नीच व्यक्ति कभी बड़ा कार्य नहीं कर सकता ।

विशेष :- रीति सिद्ध कवि बिहारी ने भी लिखा है कि-

"कैसे छोटे नरन ते, सरत बड़न को काम ।
मढ़यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के चाम ।। "

6. रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम ने उपर्युक्त दोहे में मनुष्य जीवन में आत्म प्रतिष्ठा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा कि मनुष्य का जीवन बिना सम्मान मूल्यहीन होता है ।

व्याख्या :- रहीम जी कहते हैं कि मोती में पानी (चमक) मनुष्य का पानी (सम्मान) और चूने में पानी (जल) न हो तो इनका मूल्य कुछ भी नहीं होता ।

विशेष :- यहाँ 'पानी'' शब्द में श्लेष अलंकार है । "पानी'' आब (दीप्ति), आत्म प्रतिष्ठा तथा सामान्य जल के अर्थ में प्रयुक्त है ।

7. धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम ने इस दोहे में उस घटना का संकेतात्मक उल्लेख किया है जिसमें गजराज अपने शीश पर धूल उछालता है ।

व्याख्या :- हाथी सदैव अपने सिर पर धूलि डालता है । किसी ने रहीम जी से पूछा, 'हाथी किस लिए ऐसा करता है ?' प्रत्युत्तर में रहीम ने कहा- 'गजराज उस रज को ढूँढ रहा है जिससे गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का उद्धार हुआ था ।'

विशेष :- गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या जो पापवष पत्थर की बिला बन गई थी लेकिन भगवान श्री राम की चरण धूलि का स्पर्ष करते ही पुन: जीवित हो गई । कहीं कहीं पर इसे अकबर व रहीम के संवाद रूप में भी उल्लिखित किया जाता है ।

8. बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिस सोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम ने कुसंग का सज्जनों के जीवन पर होने वाले कुप्रभावों का वर्णन किया है ।

व्याख्या :- रहीम जी कहते हैं कि लंका नेरष रावण के पड़ोस में होने के कारण निरपराध समुद्र पर पुल बाँधा गया उसी प्रकार कुसंग में सज्जन व्यक्ति को भी दुःख सहना पड़ता है ।

विशेष :- कुसंगति के प्रभावों के संदर्भ में महाकवि वृंद लिखते हैं-

"दुर्जन के संसर्ग ते, सज्जन लहत कलस ।
ज्यों दसमुख अपराध ते, बंधन लह्यों जलेस ।।"

9. रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल ।
आपु तो कहि भीतर गई, जूती खात कपाल ।।

प्रसंग :- पूर्ववत ।

संदर्भ - समाज में मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार में वाणी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । इसका सदुपयोग अथवा दुरूपयोग मनुष्य को सम्मानित अथवा अपमानित भी करवा सकता है ।

व्याख्या :- रहीम जी कहते हैं कि जिह्वा तो पागल व बावली होती है वह स्वर्ग, आकाश, पाताल की अनेक सच्ची झूठी अनेक अनर्गल कहकर मुख के भीतर चली जाती है किंतु उसके परिणाम स्वरूप मनुष्य को पिटना पड़ता है ।

10. रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम ने चूने और हल्दी का उदाहरण देते हुए सच्ची प्रीति की प्रशंसा करने का भाव प्रदर्षित किया है।

व्याख्या :- चूना और हल्दी मिलाने से लाल रंग बन जाता है । हल्दी अपना पीलापन और चूना अपनी सफेदी छोड़कर एक हो जाते हैं । ठीक ऐसी ही प्रीति होनी चाहिए ।

11. रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखौ गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम ने उपर्युक्त दोहे में मन की व्यथा को गोपनीय रखने का उल्लेख किया है ।

व्याख्या - रहीम जी कहते हैं कि मनुष्य को अपने मन की व्यथा तथा पीड़ा को मन में ही गोपनीय भाव से रखना चाहिए । सामान्य लोगों को व्यथा की जानकारी होने पर वे उसे परस्पर बाँटने के बजाय परिहास व उपहास का विषय बना लेते हैं ।

12. रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिह दुःख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीमदास जी घर से निकाले गए व्यक्ति से होने वाली हानि की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि-

व्याख्या :- मनुष्य की आँखों में रहने वाले आँसू जब हुलक कर बाहर आ जाते हैं तो किसी के हृदय के भीतर छिपे दुःख, दर्द, पीड़ा या उसकी वेदना का रहस्य खोल देते हैं । इन अश्रुओं ने मौन रहकर भी दुःख और वेदना की बात संसार से कह दी तो घर से निकाला गया व्यक्ति आपके भेद या रहस्य क्यों नहीं खोलेगा? वह तो ऐसा करेगा ही ।

13. नैन सलोने अधर मधु, कह रहीम घटि कौन ।
    मीठो भावै लोन पै, अरू मीठै पै लोन ।।

प्रसंग :-पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम ने नायिका भेद में तो अपनी रसिक श्रृंगारी दृष्टि की परतें खोली ही हैं, नायिका के रूप सौन्दर्य का भी अत्यन्त मधुर, सहज एवं विश्वसनीय वर्णन भी किया है ।

व्याख्या :- नायिका के नयन सलोने हैं तथा होंठ शहद के समान मीठे । समय के अनुसार दोनों का अपना अपना विशिष्ट महत्व होता है नमक की आवश्यकता मधु से कम नहीं होती तथा मधु की उपयोगिता नमक से कम नहीं । अत्यन्त नमकीन खा लेने पर मीठा खाने की लालसा होती है और अत्यन्त मीठा खाने पर नमकीन खाने की इच्छा । कोई किसी से कम नहीं है । दोनों का समान महत्व हैं ।

विशेष :- यहाँ सौन्दर्य व लावण्य का परस्पर महत्व अंकित किया गया है ।

14. जब तै बिछुरै मितवा, कहू कस चैन ।
    रहत भरयो हिय सांसन, आसुन नैन ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ:- रहीम श्रृंगार के संयोग वर्णन में तो कुशल हैं ही, विप्रलम्भ पक्ष की सूक्ष्म अनुभूति भी उनकी विशिष्टता है । नायिका के विरह को अत्यन्त सहृदयता से अनुभव किया है ।

व्याख्या :- नायिका अपने प्रेमी से बिछुड़ गई है और इस विछोह या दूरी ने उसे बेचैन कर रखा है । ऐसी स्थिति में जब प्रियतम बिछुड़े हो तो मन को चैन कैसे मिल सकता है? तेज साँसें विरह की आग को हवा देकर नित्य बढाती जा रही हैं तो दूसरी ओर नयनों से निरन्तर अश्रुपात हो रहा है ।

15. पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन ।
    अब दादुर वक्ता भये, हमको पूछत कौन ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम केवल युग दृष्टा ही नहीं बल्कि समय, परिवेश और व्यक्ति को भी खूब पहचानते थे । दिनों का फेर उन्हें अलग अलग रूप में प्रभावित करता रहा है । यहाँ वे समय की महत्ता का उल्लेख कर रहे हैं ।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि वर्षा ऋतु में कानों को अमृत दिलाने वाली कोयल अपनी मधुर एवं कर्णप्रिय ध्वनि को उच्चारित न करके मौन बैठी है वह सोचती है कि यह समय का ही चक्र है कि कल तक मेरी मीठी वाणी से आनन्दित होने वाले सभ्य लोग भी अब मुझे नहीं सुनते । क्योंकि वर्षा ऋतु में मेंढक टर्र टर्र करने लगते हैं । ऐसे में जब बेढ़न और असभ्य

लोग अपनी कंठ ध्वनि का बेसुरा राग अलापने लगते हैं तो सभ्य और सुरमय स्वर स्वत: ही मौन हो जाना चाहता है ।

विशेष :- ज्ञानी और समझदार व्यक्ति अवसर देखकर ही समाज में आचरण करते हैं । ऐसा भी कहा जाता है कि रहीम ने यह दोहा तब लिखा था जब वे जहाँगीर द्वारा अपमानित हुए क्योंकि अकबर महान् उन्हें बहुत सम्मान देता था ।

16. निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ ।
    पांसे अपने हाथ में, दांव न अपने हाथ ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- यह एक षाष्वत सत्य है कि मनुष्य केवल कर्म ही कर सकता है । फल या परिणाम उसके हाथ में नहीं है । इसी कथन को स्पष्ट करते हुए रहीम जी कहते हैं कि-

व्याख्या :- मनुष्य केवल पुरुषार्थ कर सकता है परिश्रम कर सकता है लेकिन उस कर्म की सिद्धि उसके अधिकार में नहीं है । जिस प्रकार चौपड़ खेलते समय पासे तो उसके हाथ में रहते हैं, खेलना भी उससे ही है किंतु मनोवांछित दाँव प्राप्त करना तो उसके अधीन नहीं है ।

विशेष :- रहीमदास जी कहते हैं कि मनुष्य को अपने कर्म की ही चिन्ता करनी चाहिये क्योंकि फल तो ईस्वराधीन होता है । श्री मदभागवत में श्रीकृष्ण भी कहते हैं-

"कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् । "

17. अमर बेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
    रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काही ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- इस दोहे में रहीम ने सांसारिक लोगों को दिखावटी बाह्म आचरणों को त्याग कर सिर्फ ईश्वर की भक्ति करने का संदेश दिया है ।

व्याख्या :- रहीम कहते है । कि जो ईश्वर बिना जड़ वाली अमरबेल को भी सदैव हरा भरा रखता है ऐसे ईश्वर का परित्याग करके हम अन्य में सुख की खोज करते हुए क्यों भटक रहे हैं । जबकि हमें तो सिर्फ ईश्वर का ध्यान ही लगाना चाहिए क्योंकि वही सबका पालन कर्त्ता हैं ।

18. आप न काबू काम के, डार पात फल फूल ।
    औरन को रोकत फिरै, रहिमन पेड़ बबूल ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- इस दोहे में रहीम ने बतलाया है कि इस प्रवृत्ति वाले लोग कभी किसी काम के नहीं होते ।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि जिस प्रकार बबूल का पेड़ काँटों से भरा होता है और किसी के काम नहीं आता है । उसकी डालियाँ, पत्ते और फल, फूल किसी भी काम के नहीं होते हैं ठीक उसी प्रकार हीन व अवगुणी व्यक्ति भी किसी के काम नहीं आते । न तो वे स्वयं कोई अच्छा कार्य करते हैं न दूसरों को अच्छा कार्य करने देते हैं । वे तो बबूल के वृक्ष के समान दूसरों के मार्ग को रोकने का कार्य करते हैं ।

19. अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय ।

जिन आंखिन सो हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- इस दोहे में रहीम ने ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति की पहचान करवाई है ।

व्याख्या - रहीम कहते हैं कि जिन आँखों ने साक्षात् ईश्वर के दर्शन कर लिये हों उनके लिये संसार में फिर कुछ भी दर्शनीय नहीं होता । उन आँखों में यदि काजल (जो ठंडक प्रदान करता है) लगाने से भी आँख फरकने लगती है और सुरमा भी सहन नहीं होता । रहीम जी कहते हैं कि ईश्वर को अपने में बसाने वाली आँखों पर मैं बार बार न्यौछावर होना चाहता हूँ ।

20. ओछो काम बड़े करें, तो न बड़ाई होय ।

ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरधर कहे न कोय ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- इस दोहे में रहीम ने सांसारिक लोगों के सामान्य व्यवहार का वर्णन किया है ।

व्याख्या :- रहीमदास जी कहते हैं कि अगर महान् से महान् कार्य को यदि छोटा व्यक्ति कर दे तो भी उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता । जिस प्रकार से श्री राम के सेवक हनुमान ने लक्ष्मण की जान बचाने के लिए संजीवनी बूटी वाला पर्वत अपने हाथ में उठा लिया था फिर भी उनको गिरधर (श्रीकृष्ण) न कहकर राम का सेवक ही समझा जाता है ।

21. खैर, खून, खांसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान ।

रहिमन दाबे न दबे, जानत सकल जहान ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- रहीम ने इस दोहे में यह बतलाया है कि संसार में होने वाले अच्छे अथवा बुरे कार्य कभी छिपाये नहीं छिपते वे खुद प्रकट हो जाते हैं ।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि संसार में होने वाली अच्छी या बुरी बातों को हम छिपा नहीं सकते हैं । संसार को उनका पता लग ही जाता है । उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा है कि चाहे कुशलता हो, किसी के चोट लगने पर खून बहा हो, खाँसी आ रही हो या प्रसन्नता के क्षण हो या फिर किसी से शत्रुता हो प्रेम हो या किसी ने नशे का सेवन किया हो । इन सभी बातों को छुपाने से नहीं छपाया जा सकता ।

22. जो बड़ेन को लघु कहे, नहिं रहीम घटि जाहि ।

गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाही ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ :- इस दोहे में रहीम ने सज्जन व्यक्ति के गुणों का वर्णन किया है ।

व्याख्या - रहीम कहते हैं कि यदि महान गुणों वाले बड़े व्यक्ति को छोटा भी आँका जाय तो वह छोटा नहीं हो जाता जिस प्रकार अपनी एक ऊँगली पर गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले श्रीकृष्ण को भले ही मुरलीधर कह कर पुकारा जाता है तो भी श्रीकृष्ण बुरा नहीं मानते । यही सज्जन व्यक्तियों की पहचान है ।

23. जो रहीम भावी कतहुं, होति आपने हाथ ।

राम न जाते हरिन संग, सीय न रावण साथ ।।

प्रसंग :- पूर्ववत्

संदर्भ - इस दोहे में रहीम ने नियति के विधान का महत्व उद्घाटित किया है ।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि भविष्य में किसी के साथ क्या होने वाला है? यह कोई नहीं जानता और यह बात किसी के हाथ में भी नहीं होती । उदाहरणार्थ श्री राम अगर अपने जीवन गे घटने वाली दुःखद घटनाओं को पहले से ही जान जाते तो न तो वे रावण द्वारा भेजे गए मायावी हिरन को पकड़ने जाते और न ही सीता का रावण के द्वारा हरण होता ।

24. टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार ।
    रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार ।।

प्रसंग :- पूर्ववत् ।

संदर्भ - प्रस्तुत दोहे में रहीम ने सज्जन व्यक्तियों का सम्मान करने की बात कही है ।

व्याख्या :- रहीम महते हैं कि जिस प्रकार से बहुमूल्य मोतियों की माला टूट जाने पर हम बार बार उसको पिरोते रहते हैं ठीक उसी प्रकार यदि सज्जन व्यक्ति सौ बार भी रूठ जाए तो उन्हें बार बार मनाते रहना चाहिए । क्योंकि वे अपनी सज्जनता के कारण समाज के लिये सदैव हित का ही कार्य करते हैं ।

25. दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय ।
    जो रहीम दीनहिं लखत दीनबन्धु सम होय ।।

प्रसंग - पूर्ववत् ।

संदर्भ :- इस दोहे में रहीम ने उदार गुणों वाले व्यक्ति को ईश्वर के तुल्य माना है ।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि जो व्यक्ति गरीब और मजबूर होता है वो सहायता के लिए सदैव समर्थ जनों की ओर आशाभरी दृष्टि से देखता रहता है । लेकिन उस असहाय और दरिद्र व्यक्ति की ओर कोई नहीं देखता । उसकी कोई भी सहायता नहीं करता है । रहीमदास जी का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति दरिद्र व्यक्ति की ओर देखे अर्थात् उसकी सहायता करने के लिये तत्पर रहे तो ऐसा व्यक्ति ईश्वर के समान पूजनीय हो जाता है ।

11.9 सारांश

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में जहाँ वीर गाथा कालीन काव्य में भौतिक ऊर्जा का प्रवाह देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर सिद्धों और नाथों के साथ निर्गुण संत कवियों ने जीवन आदि धर्म- उपासना में बाहरी आडम्बरों तथा रुढ़ियों का जम कर विरोध किया । उन्होंने चित्त की एकाग्रता, आचरण की शुद्धता और मन की पवित्रता पर बल दिया । सूफी संतों ने प्रेम की लौकिक से अलौकिक ऊँचाइयों को स्पर्श किया । रामभक्ति काव्य में लोक मंगल की साधना का उपदेश दिया तो कृष्ण भक्ति साहित्य ने लोक अनुरंजन की रसानुभूति करवायी ।

रहीम ने जीवन मूल्यों एवं नैतिक आचरण युक्त जीवन जीने का उपदेश दिया । सामाजिक आचार संहिता के माध्यम से रहीम ने भक्ति और नीति का अपूर्व समन्वय किया । रहीम का प्रत्येक तोहा हमें आज की विषम परिस्थितियों में भी जीवन जीने की प्रेरणा देता है । आत्म सम्मान और विनम्रता के साथ जीवन के विविध पक्षों को जानने की शक्ति प्रदान करता है।

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. रहीम ग्रन्थावली विद्यानिवास मिश्र / गोबिन्द रजनीश

2. रहीम नीति दोहावली लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी
3. रहीम रामनरेश त्रिपाठी
4. रहीम रत्नावली मायाशंकर याज्ञिक
5. रहीम विलास ब्रजरत्नदास / रामनारायण पाल
6. रहीम कवितावली सुरेन्द्रनाथ तिवारी
7. रहीम की राष्ट्रीयता देवेन्द्रप्रताप सिंह सांखला
8. रहीम रत्नाकर उमराव सिंह
9. रहीम का नीतिकाव्यडॉ. बालकृष्ण 'अकिंचन'
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. नगेन्द्र
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
12. रहीम काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययनमंजू शर्मा
13. रहीम शतक रामलाल दीक्षित
14. रहीम चन्द्रिका रामनाथ लाल सुमन
15. अकबरनामा अबुल फज़ल
16. आइन-ए-अकबरी अबुल फज़ल

11.11 अभ्यास प्रश्न

1. 'रहीम के काव्य में नैतिक मूल्यों की सुन्दर व्यंजना हुई है ।' इस कथन की व्याख्या कीजिये । "
2. भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में रहीम का स्थान निर्धारित कीजिये ।
3. रहीम के काव्य सौन्दर्य की सोदाहरण विवेचना कीजिये ।
4. रहीम के भाव एवं भाषा सौन्दर्य का उद्घाटन कीजिये ।
5. निम्नलिखित दोहों की सप्रसंग व्याख्या करो-

   " मान सहित विष खाय के, संभु भए जगदीस ।
   बिना मान अमृत पिया, राहु कटायो सीस ।। "

   " जलहिं मिलाय रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर ।
   अँगवहि आपुहि आप लखि, सकल आँच कै भीर । "

इकाई - 12

रीतिकाल की परिस्थितियाँ एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 रीतिकाल अर्थ एवं स्वरूप

12.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

12.2.2 काल सीमा और नामकरण

12.3 रीतिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दु

12.4 रीतिकाल की परिस्थितियाँ

12.4.1 राजनीतिक अवनति एवं रुग्ण मनोभाव का युग

12.4.2 सामाजिक पतन व भोगविलास का युग

12.4.3 धार्मिक पराभव का युग

12.4.4 नवीन प्रवृत्तियों का युग

12.4.5 कलात्मक परिस्थितियों का युग

12.5 रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ

(बोध प्रश्न)

12.6 सारांश

12.7 शब्दावली

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.9 संदर्भ ग्रन्थ

12.10 अभ्यास प्रश्न

12.0 उद्देश्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकालीन साहित्य का विशेष महत्व है । हिन्दी साहित्य के इस काल में परिस्थितियों, प्रवृत्तियों, भाषाओं और विचारधाराओं का वैविध्य भी देखने को मिलता है साथ ही समन्वय भी दिखाई देता है । साहित्य इतिहास सम्बन्धी इस पाठ्यक्रम का यह चौथा खण्ड है जिसमें रीतिकालीन साहित्य का विवेचन किया जा रहा है । रीतिकालीन परिस्थितियों का गहन एवं विस्तृत विवेचन करने वाली इस प्रथम इकाई के अध्ययन से आप:

- रीतिकाल के अर्थ और उसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बता सकेंगे ।
- काल सीमा तथा नामकरण का विवेचन करते हुए रीतिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दुओं को बता पाएँगे ।
- परिस्थितियों के अर्थ एवं उनकी भूमिका का महत्त्व बता सकेंगे ।

- रीतिकाल की राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं -आर्थिक परिस्थितियों की समीक्षा कर सकेंगे।
- रीतिकालीन साहित्यिक परिस्थितियों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- रीतिकालीन साहित्य की सामग्री और उसके स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- रीतिकालीन साहित्य पर इन विविध परिस्थितियों के प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्य काल 'रीतिकाल' कहलाता है । इस काल के काव्य की प्रमुख धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ । यह रीति शब्द संस्कृत के काव्य शास्त्रीय रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखने वाला है । संस्कृत साहित्य में रीति को काव्य की आत्मा मानने वाला एक सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' में किया था - 'रीतिरात्मा काव्यस्य' अर्थात् रीति काव्य की आत्मा है और काव्य की श्रेष्ठता की कसौटी भी । वैधर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी रीतियाँ हैं । रीति का आधार गुण है । संस्कृत की रीति सम्बन्धी यह धारणा हिन्दी काव्य शास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई है परन्तु रीति को काव्य रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य रचना करना रीति का अर्थ मान्य हुआ । इस प्रकार रीति काव्य का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि. नायिका भेद आदि की काव्य शास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया । इसके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही रीति नाम से विख्यात हुई और यह पद्धति जिस काल में सर्वप्रधान रही वह काल रीतिकाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

वि. सं. 1700 से 1900 वि.सं. तक का काल रीतिकाल के नाम से जाना. जाता है । यह समृद्धि और विलासिता का काल था । भक्ति काल के उत्तरार्द्ध में मुगल साम्राज्य के भोगविलास और ऐश्वर्य से इसका जन्म हुआ था। नवाब, जागीरदार, मनसबदार, सामन्त सभी का उद्देश्य विलासिता और समृद्धि का जीवन था । इस समृद्धि के जीवन के लिए साधन के रूप में सुरा और सुन्दरी का खुल कर प्रयोग होता था । इन्हीं उच्च वर्ग के लोगों ने कला और कविता को दासता की हद तक संरक्षण प्रदान किया । इस प्रकार इस काव्य में एक ही जीवन के सुख भोग पर बल दिया गया ।

रीतिकाल के अन्तर्गत सामान्यत: दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं - एक जिनमें काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों पर बल दिया गया है अर्थात् रीति सिद्ध कविता, दूसरी जो काव्य शास्त्रों के सिद्धान्तों से मुक्ता रही हैं रीति मुक्त कविता। इन-दोनों के बीच में एक रीतिबद्ध काव्य धारा के भी यदा-कदा दर्शन होते हैं । इसके अन्तर्गत वे कवि आते हैं जो रीति के नियमों को जानते तो हैं परन्तु उसके अन्तर्गत काव्य रचना नहीं करते ।

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के विकास के अनेक कारण हैं । एक तो तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ और दूसरी राजनैतिक उथल-पुथल । वस्तुत: ये परिस्थितियाँ इस काल के काव्य सृजन के अनुकूल ही थी । हम इस पाठ के अध्ययन के दौरान रीतिकाल के इस समग्र स्वरूप

की खण्डानुसार विवेचना करेंगे । आइये सर्वप्रथम हम रीति हाल के अर्थ एवं स्वरूप की समीक्षा करें ।

12.2 रीतिकाल : अर्थ एवं स्वरूप

रीतिकाल जैसा कि नाम से ही विदित है प्रस्तावना में हम इस पर संक्षेप में चर्चा भी कर चुके हैं । काव्य शास्त्रीय आधार पर संस्कृत के 'रीति' शब्द से इसका जन्म हुआ है । आचार्य वामन के कथ काव्यालंकार सूत्र में रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार कर काव्य की श्रेष्ठता की कसौटी पर रीति को परिभाषित किया है । हिन्दी साहित्य में चार प्रकार की रीतियाँ प्रचलित हैं - वैधर्भी, पांचाली, गौड़ी और लाटी जिनका आधार गुण है । संस्कृत की रीति सम्बन्धी यह धारणा काव्य शास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई परन्तु काव्य रचना की प्रणाली के रूप में एक काल विशेष ने इसे स्वीकार कर लिया । जिसमें अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि को समाहित कर जिस काव्य की रचना हुई वह रीतिकाव्य कहलाया और वह काल रीतिकाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य के इतिहास में लगभग दो सौ वर्ष वि. 1700 से वि. 1900 तक ऐसा समय रहा जिसमें हिन्दी साहित्य की बहुमुखी श्रीवृद्धि हुई । इस काल को श्रृंगार काल, कला काल, अलंकरण काल आदि नामों से अभिहित करते हुए अंत में रीतिकाल के नाम से जाना गया और यही नाम सर्वग्राह्या रहा ।

12.2.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

रीतिकाल वि.सं. 1700 से 1900 वि.सं. तक का काल है । मोटे तौर पर शाहजहाँ के शासन की समाप्ति और औरंगजेब के शासन के प्रारम्भ (1658 ई.) से लेकर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सन् 1857 ई. तक यह काल माना जाता है । इस युग में भक्तिकालीन काव्य रचनाओं जैसे संत काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य, नीति काव्य आदि का विकास हुआ परन्तु इस सबसे अधिक महत्त्व दरबारी संस्कृति से प्रेरित रीति काव्य को प्राप्त हुआ जो अलंकारों, रसों, नायिका भेदों, शब्द शक्तियों, ध्वनि भेदों आदि के आधार पर लिखा गया । यह इस युग की नवीन चेतना के रूप में जाग्रत हुई । राजाओं, बादशाहों और नवाबों की भोगलिप्सा छोटे जागीरदारों तथा मनसबदारों में भी पसर गई । परिणामस्वरूप उन्होंने भी अपने जीवन को भोगविलास में डुबो दिया और अपने दरबारों में मुगल दरबार की देखा-देखी राज नर्तकियाँ और शराब को स्थान देने लगे । यहीं से अपनी विरुदावली सुनने एवं दमित वासनाओं को शांत करने के लिए उन्होंने चापलूस कवियों को प्रश्रय देना प्रारम्भ किया । इन्हीं कवियों ने अति श्रृंगारिक काव्य का सृजन कर रीतिकालीन साहित्य को पुष्ट किया।

निरपेक्ष भाव से यदि देखा जाए तो रीतिकाल के जन्म में सबसे महत्त्वपूर्ण हाथ मुगल काल का रहा । अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ तक आते-आते हिन्दुस्तान बाह्म रूप से सुरक्षित हो चुका था । ऐसी स्थिति में बादशाहों, राजाओं और नवाबों के पास अपना समय गुजारने के लिए श्रृंगारिक कविताओं के अलावा और कोई साधन नहीं था । यह काल भक्ति और रीति का संधिकाल था । कवि यहाँ अपने आराध्य राधा-कृष्ण को भूला नहीं था । इसलिए रीतिकाल में उसने राधा-कृष्ण को एक सामान्य नायक-नायिका बना कर प्रस्तुत किया ।

सजाव श्रृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है । उपासना के लिए जिन राम और कृष्ण का चरित्र भक्ति युग में अत्युत्कृष्ट रूप में चित्रित हुआ उनमें भी श्रृंगारिकता का आरोप कर श्रृंगारिक रूप के उद्घाटन में प्रतिभा को लगाया गया । लोकेषणा का सीमित और भोग्य रूप इस काल के यथार्थवादी धरातल का संकेत करता है । भक्ति काल में जिस धर्म की स्थापना के लिए कवि ने अपने समस्त ऐहिक सुखों को त्याग कर मन को भक्ति में लीन किया था रीतिकाल में उसी कवि ने अपनी उन वासनाओं को श्रृंगारिक बाना पहना कर साहित्य में उतार दिया । औरंगजेब के बाद रीतिकाल अपने चरम सीमा पर पहुँचा । बिहारी, घनानंद, देव, बिखारीदास, बेनी प्रवीण, पदमाकर, ग्वाल आदि कवियों ने इस परम्परा को पुष्ट किया।बिहारी सही माने में इस परम्परा के प्रमुख सूत्रधार माने जाते हैं । मथुरा के ये चौबे पंडित जयपुर में आकर सवाई राजा जयसिंह के दरबारी कवि बने । अपने एक ही दोहे से उन्होंने जयपुर नरेश के हृदय में स्थान बना लिया और यहीं से रीतिकाल लिपिबद्ध होने लगा । यदि हम ऐतिहासिकता की दृष्टि से इस पर विचार करें तो यह सर्वसिद्ध होता है । यहाँ संक्षेप में यही स्पष्ट करना हमारा उद्देश्य रहा है कि इस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या रही है जिसमें इस युग के साहित्य का निर्माण हुआ । आगे परिस्थितियों की चर्चा करते हुए इसे और स्पष्ट किया जाएगा ।

12.2.2 काल सीमा और नामकरण :

इस साहित्य या साहित्य धारा की काल सीमा का निर्धारण हम विस्तार से खण्ड एक में कर चुके हैं परन्तु औपचारिक रूप से एक बार संक्षिप्त में पुन: यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् 1650 से 1900 ई. तक लगभग 250 वर्षो का समय रीतिकाल' का समय रहा है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि यह समय 1700 ई. से प्रारम्भ होकर 1900 ई. तक लगभग 200 साल चलता है परन्तु काल क्रम के इस विषय को लेकर विद्वानों में अधिक मतभेद नहीं है । अधिकतर विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का ही समर्थन करते हैं ।

आदिकाल की भाँति रीतिकाल' भी अपने नामकरण के विवाद- को लेकर खासा चर्चित रहा है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को दो भागों में विभक्त किया है - पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल । वस्तुत: मध्यकाल के प्रारम्भ में जो भक्ति काव्य की धारा प्रवाहित हो रही थी वह पूर्व मध्यकाल कहलाया । सं. 1700 के लगभग उसमें नवीन मोड़ आया । परिस्थितियों वश साहित्य की धारा परिवर्तित हो गई । आचार्य शुक्ल ने यह नवीन मोड़ चिन्तामणि त्रिपाठी से माना है और इस प्रकार भक्ति काव्य से पृथक प्रवृत्तियों के काल का नाम उन्होंने रीतिकाल' रखा । 'रीतिकाल' के भीतर रीतिबद्ध काव्य रचना की जो परम्परा चली उसके आधार पर नामकरण को लेकर अनेकों विवाद उत्पन्न हुए । वस्तुत शुक्ल जी अपने ही द्वारा दिए गए रीतिकाल' नाम से संतुष्ट नहीं थे । उसका मूल कारण था रीतिबद्ध ग्रन्थों की संख्या पर्याप्त न होना । परन्तु फिर भी रीतिकाल' नाम रूढ़ हो गया । आगे चल कर बाबू श्याम सुन्दर दास ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनरावलोकन किया और पाया कि रीतिकाल' में एक तो श्रृंगार रस की प्रधानता है दूसरे यह

प्रेमी कवियों का साहित्य है । अत: इस काल के साहित्य प्रवृत्तियों के निरूपण में इन दोनों ही तत्वों को भुलाया नहीं जा सकता । इन दो बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करनें से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर मध्यकाल का नाम रीतिकाल' उपयुक्त नहीं है । क्योंकि इस नामकरण से तत्कालीन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति श्रृंगार एवं प्रेम का पूर्ण परिचय नहीं मिलता । मूलत: रीति की परिपाटी का पालन करने वाले कवि और रीतिमुक्त स्वच्छन्द कवि दोनों ही श्रृंगार रस को लेकर चलते हैं । इस तथ्य को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अनुभव किया और रीतिकाल' का नामकरण श्रृंगारकाल के रूप में कर दिया । उन्होंने अपने इतिहास में रीतिकाल' का श्रृंगारकाल नामकरण तत्कालीन कृतियों की प्रवृत्तियों का सुन्दर निरूपण करने के आधार पर किया । इसीलिए उन्होंने अपने इतिहास में रीतिकाल' का सामान्य परिचय प्रस्तुत करके श्रृंगारकाल की व्यापकता को इन शब्दों में सराहा था - वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई । प्रधानता श्रृंगार की रही । इससे इस काल को रस के विचार से कोइ श्रृंगारकाल कहे तो कह सकता है । ' वस्तुत: रस की ही दृष्टि से नहीं वरन् वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी साहित्य के इस काल का नाम श्रृंगारकाल ही उपयुक्त रहता है । शुक्ल जी के इस नामकरण के सम्बन्ध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का अनुमान है कि 'यहाँ साहित्य को गति देने में अलंकार शास्त्र का ही जोर है । जिसे इस काल में 'रीति', 'कवित रीति' या 'सुकवि रीति' कहने लगे थे । सम्भवत: इन्हीं शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को रीति काव्य कहा । उन्होंने वि.सं. 1700 से 1900 तक के काल को रीतिकाल' माना । ' कुछ भी हो इन सब बातों पर ध्यान देने और तथा कथित रीतिकाल' के साहित्य का अध्ययन करने पर इतना स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में वीर रस की रचनाएँ भी हुई हैं । तथापि श्रृंगार की सामान्य प्रवृत्ति को लक्ष्य करके इस काल का नाम श्रृंगारकाल ही उपयुक्त है ।

नामकरण के इस विवाद में मिश्र बन्धुओं ने इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है । जैसा कि संस्कृत महाकाव्य परम्परा में भारवि, माघ और श्रीहर्ष का 'अलंकृत काल' था वैसा ही नामकरण मिश्र बन्धुओं ने रीतिकाल' का किया । किन्तु यह नामकरण विद्वजनों ने स्वीकृत नहीं किया। कुछ अन्य विद्वान इस काल की कविता में कला पक्ष की प्रधानता लेकर इसका नामकरण कला काल' के रूप में करते हैं । किन्तु हृदय पक्ष का सुन्दर उद्घाटन प्रेमी कवियों की कविता में देख कर यह नाम भी नहीं जँचता । उन्मुक्त प्रेमी, नायक स्वयं कविता के निर्माण से हैरान नहीं थे वरन् कविता उनके व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली थी । अत: यह नामकरण विद्व समाज में स्वीकृत न हो सका । इस प्रकार समस्त विवादों से परे इस काल का 'श्रृंगारकाल' नामकरण सर्वप्रचलित रहा।

12.3 रीतिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दु :

रीतिकाल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक है । राज्याश्रय में पली इस श्रृंगारी कविता में रीति और अलंकार का प्राधान्य रहा है । जो कवि दरबारी संस्कृति को त्याग सके उनकी कविता में प्रेम की पुकार का स्वरूप रीति मुक्त है । रीतिकालीन साहित्य के सृजन में सबसे अधिक प्रेरक तत्व तत्कालीन दरबारी प्रभाव रहा है । दरबारी संस्कृति में श्रृंगारी भावना

वासना को व्यक्त करने के लिए ही प्रयुक्त हुई है । रीतिकालीन कवियों के आश्रयदाता सामन्त, सरदार, राजा और महाराजा आदि उच्च वर्ग के लोग मुगलों से विरासत में मिली विलासिता में डूबे थे । इसलिए उनकी प्रेरणा से रचे हुए काव्य में स्वभावतया ही लौकिक प्रेम और उसके व्यंजन बाह्य सौन्दर्य के वर्णन बहुत अधिक हैं । वर्णनों में अलंकार की कुशलता भी दर्शनीय है । इन श्रृंगारी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम कृष्ण-राधा की मधुर भाव की भक्ति बनी और राधा-कृष्ण साधारण नायक-नायिका के रूप में चित्रित किए जाने लगे ।

श्रृंगारकाल में काम प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वच्छन्दता थी । आध्यात्मिक आवरण में ही श्रृंगारी कविता नहीं होती थी । वरन् स्वतंत्र रूप से भी होती थी । कवि लोग राजाओं की कुत्सित प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए नग्न श्रृंगार का चित्रण करते थे । इसलिए इस काल के रीतिबद्ध कविता की श्रृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर वासना की झलक ही मिलती है और उसमें भी सूक्ष्म आंतरिकता की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राधान्य है। श्रृंगार के विभिन्न अंगों-उपांगों का इस काल के कवियों ने सुन्दर वर्णन किया है । जिसमें कवि बिहारी, देव, मतिराम आदि कवियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है । इस काल में न केवल स्थूल श्रृंगार का ही वर्णन हुआ अपितु प्रेम के उदात्त रूप का अंकन भी किया गया। रीति मुक्त काव्य की धारा में श्रृंगारी भावना है किन्तु वह दरबारी संस्कृति से दूर होने के कारण वासना की पर्याय नहीं है । इस कविता में श्रृंगारी भावना हृदयगत प्रेम को एक उद्गार के रूप में प्रस्तुत हुई है जिसमें शारीरिक वासनाकी गन्ध नहीं है वरन् हृदय की पुकार है । इन्होंने भी कृष्ण के मधुर भाव की भक्ति का आश्रय लिया किन्तु वह बहुत कुछ भक्तिकालीन कवियों की भाँति ही उन्मुक्त एवं पवित्र था । पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इन दो श्रेणियों के कवियों का पार्थक्य इस प्रकार किया है - 'प्रेमोन्माद के अभिव्यंजक इन कर्त्ताओं के लिए राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण की लीलाएँ काव्य सामग्री का काम देती रही हैं । व्यक्तिबद्ध प्रेम की एकनिष्ठता के कारण जब इन्हें भक्ति पक्ष त्यागना पड़ा है तब ये कृष्ण की क्रीड़ाशील प्रवृत्ति के उपासक होकर उनके भक्त हो गए हैं । भारतीय परम्परा में उन्मुक्त प्रेम के शारीरिक आलम्बन का विधान न पाकर वे श्रीकृष्ण का आलोकिक आलम्बन ग्रहण करते हैं अत: अंत में इनके मुक्तक रचना का भक्ति में पर्यवसान हो जाता था । इसी से इस प्रकार के सभी कवि अंत में कृष्ण' लीला के गायक हो जाते हैं । यों तो रीतिबद्ध कवि भी राधिका-कन्हाई सुमिरन' का बहाना करते थे पर इनकी वृत्ति भक्ति में लीन नहीं हुई है यही इन दोनों में पार्थक्य है ।'

रीतिकाल के प्रेरणा बिन्दु के रूप में उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग को भी शामिल किया जा सकता है परन्तु यह हमारे अध्ययन की विषय वस्तु न ' होने के कारण इसे विस्तार से परिभाषित नहीं किया जा रहा है ।

बोध प्रश्न :

(1) रीतिकाल का काल निर्धारण समय है

(क) 1500 ई. से 1700 ई.

(ख) 1050 ई. से 1350 ई.

(ग) 1900 ई. से 2100

(घ) वि.सं. 1700 से 1900 वि.सं.

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के पाँच-पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए -

(क) रीतिकाल शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

(ख) रीतिकाल को श्रृंगारकाल क्यों कहा गया स्पष्ट करें -

.....

.....

.....

.....

(ग) रीतिकाल के प्रारम्म की सामान्य परिस्थितियों पर प्रकाश डालें ।

.....

.....

.....

.....

.....

(घ) रीतिकालीन साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

(3) रीतिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दु क्या थे? लगभग 7-8 पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.4 रीतिकाल की परिस्थितियाँ :

12.4.1 राजनैतिक अवनति एवं रुग्ण मनोभाव का काल :

श्रृंगार काल का समय 16वीं शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ होता है और सन् 1857 के विप्लव के आसपास समाप्त होता है । यह समय लगभग 200 वर्ष का है । इस समय का भारत राजनैतिक उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था । राजनैतिक इतिहास चरणोत्कर्ष को प्राप्त मुगल साम्राज्य की अवनति के प्रारम्भ और फिर क्रमश: उसके पूर्ण विनाश का लेखा- जोखा है । मुगल साम्राज्य शाहजहाँ के समय में चरमोन्नति के शिखर पर पहुँच गया था ।कला की दृष्टि से भी शाहजहाँ का समय सर्वश्रेष्ठ माना जाता है किन्तु शाहजहाँ के अन्तिम समय तक पहुँचते-पहुँचते मुगल ऐश्वर्य को मानो ग्रहण लग गया और वह ग्रहण औरंगजेब के नाम से जाना गया । औरंगजेब का काल सभी दृष्टियों से चाहे राजनैतिक हो, सामाजिक हो, कला की दृष्टि से हो, रुग्ण मनोभाव का काल कहा जा सकता है । औरंगजेब के बाद मुगलिया खानदान में कोई भी महान् व्यक्ति नहीं हुआ और इसी समय नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली ने रही-सही मुगल शानो-शौकत को मिट्टी में मिला दिया । दिल्ली के कत्लेआम और पानीपत की पराजय ने देश के रहे-सहे सैनिक बल को भी नष्ट कर दिया। इसके बाद स्वतंत्र छोटे-छोटे रजवाड़ों का उदय हुआ । इन रजवाड़ों में मुगलिया खानदान की विलासिता टुकड़ों में बिखर गई किन्तु मुगल शान-शौकत के स्थान पर सरदार सामन्तों की चित्तगत संकीर्णता के कारण इस विलासिता में शाही उदारता का भी अभाव हो गया था । इसलिए इस काल की श्रृंगार भावना में बड़े नग्न मनोभाव प्रदर्शित किए जिसमें मुगल दरबार की मर्यादा का अभाव था । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'इस काल की श्रृंगार भावना में एक प्रकार का रुग्ण मनोभाव है । ' कुछ विद्वानों ने इस काल में महान् व्यक्तित्व के अभाव पर भी विशेष जोर दिया है । यानि ऐसा कोई महान् शासक नहीं हुआ जो तत्कालीन विखण्डित राजनीति को नियंत्रित कर सके और देश को एक बार पुन: एकता के सूत्र में बांध सके । इसीलिए तत्कालीन साहित्य,कला और कौशल जनता के उन्नत व्यक्तित्व का परिचय नहीं देते । सारांश यह है कि रीतिकाल की रचनाओं में हमें मुगलिया शानौ-शौकत की झलक भी मिलती है और रुग्ण मनोभावों का परिचय भी । यह क्रमिक हास है । ज्यों-ज्यों शाही परिवार का हास हुआ और नवीन सामंतों की शक्ति बढ़ी त्यों-त्यों विलासिता की भावना और उनकी संकीर्ण चित्तवृत्ति ने अपनी महानता को खो दिया । परिणामस्वरूप रीतिकाल की श्रृंगारिक भावनाएँ कलुषित होकर साहित्य में पसर गई ।

12.4.2 सामाजिक पतन एवं भोगविलास का काल :

राजनैतिक पतन का समाज व्यवस्था पर भी खासा प्रभाव पड़ा । निर्गुण संतों के प्रभाव से जाति-पाँति की दीवारें ढहने लगीं । परन्तु उनके स्थान पर नवीन रूढ़ियों ने जन्म ले लिया। अब पेशेवर जातियों का निर्माण हुआ। एक सामन्त सरदारों का वर्ग बना दूसरा उनकी सेवा-सुश्रुषा करने वाला सेवक वर्ग । ज्यों-ज्यों छोटे-छोटे सरदार सामन्त एवं मनसबदारों में विलासिता बढ़ती गई त्यों-त्यों उनका साधारण जनता से पार्थक्य बढ़ता गया ।अब तो कवि

भी अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति के अनुकूल ही काव्य रचना करने लगे । इसका मुख्य प्रेरणास्रोत आश्रयदाताओं की विलासिता ही था । ये स्वतंत्र सामन्त अपने विलास में डूबे थे । नैतिक आदर्श समाप्त हो चुके थे । समाज की आत्मा संकुचित हो गई थी और अन्य प्रदेशों से सम्बन्ध टूटने के कारण समाज में संकीर्णता व्याप्त हो गई थी । कला वासना पूर्ति का साधन बन गया और नारी उसका आलम्बन । इस प्रकार जो प्रेम क्रीड़ाओं और नायक-नायिका भेद का उक्ति वैचित्रयपूर्ण चित्रण इस काल की कविता में मिलता है वह तत्कालीन सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करता है । साथ ही समाज में एक नवीन वर्ग मराठा सरदारों का था जिसमें हिन्दू जाति की रक्षा एवं उत्थान का भाव था । उनके सम्बन्ध में तथा उनकी सामाजिक स्थिति के अनुकूल तत्कालीन कवियों ने कुछ वीर रस की उत्कृष्ट रचनाओं का भी सृजन किया जो तत्कालीन मराठा समाज की सामाजिक स्थिति से रूबरू कराता था । बाद में तो मराठा साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर देशी रजवाड़ों के रूप में मुगलों से विरासत में मिली हुई विलासिता में ही मग्न हो गया ।

12.4.3 धार्मिक पराभव का काल :

यह काल धार्मिक दृष्टि से भक्ति के पराभव का काल माना जाता है । भक्ति काल में एक लहर भक्ति की बही थी जो बहुत व्यापक और प्रबल थी परन्तु इस काल में भक्ति की वह लहर शांत एवं विकृत हो गई थी । विद्वान इसके कई कारण मानते हैं । राजनीतिक स्थिति भी इसका एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। किन्तु यदि निरपेक्ष रूप से देखा जाए तो प्रभावी व्यक्तित्व क। अभाव ही भक्ति धारा की विकृति का कारण स्पष्ट दिखाई देता है । कृष्ण की मधुर भाव की भक्ति अब नायक-नायिका भेद निरूपण में काम आने लगी और सम्पूर्ण रीतिकालीन साहित्य में कृष्ण राधा और गोपियाँ प्रमुख विवेच्य हो गई । भक्ति सम्प्रदाय की चारों शाखाओं का पराभव विविध कारणों से हुआ। इस पर हम विस्तार से विवेचन नहीं कर सकते परन्तु यह निश्चित है कि जब भी किसी धारा में विकृति आती है तो उसका कारण राजनीतिक और सामाजिक ही होता है । उक्त कारणों से ही इस काल में धर्माश्रय में भी उत्कृष्ट साहित्य की रचना न हो सकी । सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह घोर पराभव का काल था । प्राचीन संस्कृति के मूलाधार भुला दिए गए थे और एक नई संक्रांतिकालीन संस्कृति का उद्भव हो रहा था जिसका मुख्य आधार मुगलों से विरासत में मिली हुई विरासत की वृत्ति थी ।

12.4.4 नवीन प्रवृत्तियों का काल :

इससे पूर्व जो कृष्ण की मधुर-भक्ति (सखि-भाव) प्रचलित हुई थी और 'अष्ट-यान' इत्यादि विलास-लीलाओं के ग्रन्थों की रचना हुई थी-उसका पूर्ण परिपाक इस युग में दिखाई पड़ता है । कृष्ण भक्ति-शाखा में भी सखि-भाव की मधुर उपासना का विकास हो रहा था और राम-सीता की 'अष्ट-याम' विलास-लीलाओं का वर्णन जोर पकड़ रहा था । संतों के ज्ञानमार्ग में गतानुगतिकता के विकास होने से कोई मौलिक उद्भावना नहीं हुई । सूफी मत का साहित्य की अवनति की ओर था । इस प्रकार भक्तिकाल के अन्तिम समय में श्रृंगार की भावना का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है । रीतिकाल का साहित्य प्रमुख रूप से राज्याश्रय में रचा गया । कुछ लोक रचनाएँ भी मिलती हैं, जैसे भूषण इत्यादि की । किन्तु मूलत ये कवि भी राज्यों

से ही सम्बन्धित थे । भाषा की दृष्टि से इस काल में हिन्दी प्रदेश में विभिन्न भाषाओं का व्यवहार हो रहा था किन्तु श्रृंगारी भावनाओं को व्यक्त करने वाली प्रमुख भाषा ब्रजभाषा ही रही । उसमें आचार्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में विश्रामदायक और विनोदन गुणों का खूब मार्जन हुआ ।' भक्तिकाल में ब्रज और अवधी दोनों ही प्रमुख भाषाएँ थीं । धीरे-धीरे अवधी का महत्त्व हट रहा था । ब्रजभाषा पर कुछ प्रादेशिक प्रभाव, जैसे बुन्देलखण्डी, अवधी और राजस्थानी का तथा विदेशी प्रभाव जैसे- फारसी का पड़ रहा था । वस्तुतः श्रृंगारकाल के साहित्य का सृजन अवध प्राप्त और राजस्थान में अधिक हुआ । इसलिए इसकी भाषा में अवधी एवं बुन्देलखण्डी और राजस्थानी के प्रयोग मिलते हैं ।

12.4.5 कलात्मक परिस्थितियों का काल :

श्रृंगार काल में कला के क्षेत्र में प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रधान थी । सामन्ती वातावरण में पल्लवित होने वाली कला में वासना-परकता सहज स्वाभाविक है । इस युग की कला में परम्पराबद्ध दृष्टिकोण का निर्वाह हुआ और मौलिकता का अभाव रहा तथा नग्न्ता एवं अश्लीलता का आधिक्य है । आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए इस काल में प्रदर्शन प्रधान नायक-नायिकाओं की रूढ़िबद्ध प्रतिकृतियाँ निर्मित होती रही । श्रृंगार काल की चित्रकला में रूढिबद्ध चित्र, पौराणिक चित्र तथा राग-रागनियों के प्रतीक चित्रों का बाहुल्य है । इन चित्रों में युग-प्रवृत्ति के अनुरूप कलाकार की रुग्ण श्रृंगारिकता की प्रधानता है । कृष्ण और राधा तथा शिव और पार्वती के श्रृंगार प्रधान चित्रों का निर्माण हुआ । यही स्थिति श्रृंगार युग की मूर्तिकला की रही । उसमें परम्पराबद्ध अलंकरण शैली, चमत्कार-वृत्ति, रोमानी वातावरण का प्रदर्शन तथा दरबारी वैभव एवं विलास की प्रधानता है । संगीत के क्षेत्र में भी आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए श्रृंगारपरक प्रतिपाद्य एवं चमत्कारवादिता का प्राधान्य' रहा । इस प्रकार श्रृंगार काल में कला एवं काव्य दोनों ही क्षेत्रों में समान प्रवृतियाँ थी ।

12.5 रीतिकाल की प्रवृतियाँ :

रीतिकालीन साहित्य की निम्नलिखित मुख्य प्रवृतियॉ हैं :-

1 रीतिकाल का प्राधान्य: लौकिक श्रृंगार की व्यंजना :

रीतिकाल की सबसे प्रमुख प्रवृति यह है कि इसमें तीन प्रकार के कवि मिलते हैं- रीतिबद्ध, रीतिमुक्त, या रीतिसिद्ध तथा वीर रस की कविता करने वाले। किन्तु इन तीनों घाराओं में श्रृंगार की भावना इनके काव्य की मुख्य प्रवृति है । वीर काव्य रचयिता भी अपने प्रारंभिक जीवन में श्रृंगारी कविता लिखते थे । श्रृंगार रस को इस युग में रसराज की संज्ञा प्रदान की गई -

नवहू रसको भाव बहू तिनके भिन्न विचार ।
सबको केसवदास हरि नायक है सिंगार ।।

2 काम प्रवृति का स्वच्छन्द निरूपण :

युग के नैतिक आदर्शो की अनुमति होने के कारण रीतिकाल में काम प्रवृति की अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण स्वच्छन्दता थी । आध्यात्मिक आवरण में ही श्रृंगारिक कविता न होती थी, वरन् स्वतन्त्र रूप से भी होती थी। कवि लोग राजाओं की कुण्ठित प्रवृतियों को संतुष्ट करने के लिसे

नग्न श्रृंगार का चित्रण कसते थे । इसी लिये इस काल की रीतिबद्ध कविता की श्रृंगारिकता में प्रेम की एक निष्ठता ना होकर वासना की झलक ही मिलती है,और उसमें भी सूक्ष्म आन्तरिकता की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राघान्य है । प्रेम की भावना हृदय की प्रवृति है जो एकोन्मुखी होती है, किन्तु विलास या रसिकता उपभोग की भावना है जो अनेकोन्मुखी होती है । अर्थात उस काल में वासना का नग्न चित्रण ही काव्य की प्रमुख विशेषता थी । वह युग काम प्रवृति के स्वच्छन्द निरूपण का काल था । इस काल के कवि बिहारी, देव, मतिराम आदि रसिक कवि ही थे प्रेमी नहीं । उन्होंने बाह्म स्थूल सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति की है । उनके काव्य में मन के सूक्ष्म सौन्दर्य का आत्मा के सात्विक सौन्दर्य का प्राय: बिलकुल ही अभाव है परन्तु जहाँ तक रूप अर्थात विषयगत सौन्दर्य का सम्बन्ध था वहाँ उन कवियों की पहुँच बहुत गहरी थी । एक ओर बिहारी जैसे सूक्ष्मदर्शी कवि की निगाह सौन्दर्य के बारीक संकेत को पकड़ सकती थी तो दूसरी ओर मतिराम, देव, पदमाकर जैसे रस सिद्ध कवि रूप सौन्दर्य का वर्णन करने में पूर्ण रूप से रमने लगे थे । कुल मिला कर यह पूरा काल रूप सौन्दर्य के इधर-उधर ही केन्द्रित रहा था ।

3 प्रेम के उदात्त रूप का अंकन :

रीति मुक्त काव्य धारा की कविता में भी श्रृंगारी भावना है । किन्तु दरबारी संस्कृति से दूर होने के कारण वासना की पर्याय नहीं है । इस कविता में श्रृंगारी भावना में हृदयगत प्रेम के उद्‌गार हैं जिनमें बड़ी सूचिता है, इनमें शारीरिक वासना की गन्ध नहीं है वरन् हृदय की पुकार है । उन्होंने भी कृष्ण की मधुर भाव की भक्ति का आश्रय लिया किन्तु वह कुछ भक्ति कालीन कवियों की भाँति ही उन्मुक्त हैं ।

4 श्रृंगार के दोनों पक्ष - संयोग व वियोग का वर्णन :

रीतिकालीन काव्य में हमें श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग श्रृंगार का निरुपण मिलता है । रीतिबद्ध बिहारी में श्रृंगार का संयोग पक्ष प्रधान है तो रीति मुक्ता घनानन्द में वियोग श्रृंगार का उत्कृष्ट चित्रण हुआ है । रीति बद्ध कवियों ने भी वियोग का वर्णन किया है किन्तु वह अनुभूतिजन्य न होकर चमत्कार प्रधान है । उसमें उहात्मकता का प्राधान्य है । कहीं-कहीं स्वाभाविक विरह व्यंजना भी हुई है जैसे -

करके मीड़े कुसुम लौ, गई विरह कुम्हिलाय ।
सदा-समीपिनि सखिनहूँ नीठि पिछानी जाय ।।

किन्तु बिहारी के इस विरह वर्णन में गाम्भीर्य नहीं है । केवल अनुभूति के साथ कवि का खिलवाड़ ही नजर आता है । रीति सिद्ध कवियों ने विरह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन अधिक किया है इसलिए वह स्वाभाविकता से परे है जबकि रीति मुक्त कवि विरह की अनुभूति के अधिक नजदीक हैं ।

5 नारी-सौन्दर्य-चित्रण :

रीतिकालीन काव्य में नारी के रूप-चित्रण को बहुत महत्त्व दिया गया है । सौन्दर्य के अखण्ड और सत्य स्वरूप का निरुपण करते हुए संस्कृत के महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य'शिशुपाल वध' में लिखा है कि जो क्षण नवीनता को प्राप्त करे वही रूप की रमणीयता है । वहीं कवि बिहारी नायिका के रूप सौन्दर्य को इस कसौटी पर कसते हैं -

लिखनि बैठि जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे क्रूर । ।

बिहारी के अतिरिक्त मतिराम ने भी कुछ ऐसी ही चेष्टाएँ की हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि श्रृंगार कालीन काव्य में नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बन्धन से यथासम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रीति काल में रूपवती नारी मात्र विलास का साधन थी । जीवन का एक विश्राम स्थल जहाँ सभी प्रकार की दौड़ धूप से भ्रांत हो पुरुष अपनी थकान मिटाने के लिए उसकी जुल्फों की छाँव में विश्राम करता था । उसका सामाजिक रूप गृहलक्ष्मी एवं माता का समाप्त हो चुका था । वह तो परकिया नायिका आदि के रूप में ही प्रदर्शित होने लगी थी और यह उस समय की रुग्ण भावना का प्रमाण था ।

6 अलंकरण प्राधान्य :

रीति काल की कविता अलंकारों का मेला जैसी थी । बिना अलंकार के कविता की कल्पना सम्भव नहीं थी । इसी विशेषता को लक्ष्य करके मिश्र बन्धुओं ने इस काल का नाम अलंकार काल रखा था । कविता का प्रमुख विषय श्रृंगार होने के कारण रूप आकार की सजावट भी अनिवार्य थी । शब्दों के चमत्कार और अलंकारों के माध्यम से कविता में सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता था जैसे -

दृग उरझत टूटत कुदुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।।

नायक और नायिका के प्रेम व्यापार के प्रयत्नों को अलंकारों के चमत्कारों के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता था जिसमें काव्य की मूल भावना समाप्त हो जाती है । केवल शब्दों का और अलंकारों का चमत्कार ही शेष रह जाता है ।

7 ब्रज भाषा का प्राधान्य :

भाषा की दृष्टि से इस काल में ब्रज भाषा ही प्रमुख साहित्यिक भाषा रही है । इस काल में ब्रज भाषा का कोष बहुत भरा गया और वह बहुतउन्नत हो गई उसमें प्रेम की विविध एवं सूक्ष्म वृत्तियों की बड़ी सफल व्यंजना हुई । यही कारण था कि आधुनिक काल के प्रारम्भिक युग में ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली का इतना बड़ा आन्दोलन खड़ा हुआ । उन परिवर्तित परिस्थितियों में भी बहुत से ब्रज भाषा की माधुरी पर लट्टू ऐसे साहित्यकार थे जो केवल इसी भाषा को काव्यगत भावना की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त मानते थे । इस प्रकार रीतिकाल ब्रज मापा के चरमोन्नति का काल है । इस दृष्टि से 'कविप्रिया' (केशवदास), काव्य निर्णय (झिरवाणी दास), कवि कप्पतरु (चिन्तामणि), रस रहस्य (कुलपति मिश्र), भावविलास (देव), भाषा भूषण (जसवन्तसिंह) इत्यादि लक्षण ग्रन्थ उल्लेखनीय है ।

8 लक्षण ग्रन्थों की प्रचुरता :

रीति काल में रीति बद्ध कवियों की प्रमुखता है । इन कवियों ने रीति या शास्त्र की भूमिका पर अपनी कविता का निर्माण किया है । इन्हें संस्कृत के शास्त्र पक्ष की समृद्ध भूमिका मिली थी । इसलिए इनमें से कुछ कवियों ने काव्य शास्त्र के लक्षणों को पद्यबद्ध करके लक्ष्य रूप में अपनी रचना प्रस्तुत की । कुछ कवियों ने लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखे किन्तु उसका सारा विधान

रीति की परिपाटी पर है । इस प्रकार लक्षण और लक्ष्य दो प्रकार के काव्य ग्रन्थों की रचना रीतिबद्ध कवियों ने की । लक्षण गन्थों की रचना एवं सहयोग रीति काल की प्रमुख प्रवृत्ति रहा ।

9 प्रकृति का अलंकार एवं उद्दीपन हेतु चित्रण :

रीति काल की कविता में प्रकृति का वैसा बिम्बग्राही चित्रण नहीं मिलता जैसा वाल्मीकि रामायण और कालिदास के काव्य एवं नाटकों में मिलता है । प्रकृति के प्रतीक इस काल के कवि प्राय: तटस्थ थे । सेनापति एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्हें ऋतु वर्णन में पर्याप्त सफलता मिली है । इस काल के कवियों के प्रकृति के उद्दीपन रूप में चित्रण परम्परा मुक्त है । श्रृंगार काल में प्रकृति के आलम्बन रूप में चित्रण का प्राय: अभाव ही है । वैसे तो कवि सेनापति के 'कवित रत्नाकर' को रीतिकालीन कविता मान लें तो प्रकृति के आलम्बन रूप में भी बड़े सुन्दर चित्रण मिल जाते हैं । इसी प्रकार केशव का रामचन्द्रिका' भी प्रकृति चित्रण का अच्छा उदाहरण हो सकता है । प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण षट्ऋतु और बारहमासी की पद्धति पर ही प्रमुख रूप से मिलता है । जो कवि राज्याश्रय से दूर रह कर काव्य रचना करते थे उनके काव्य में प्रकृति चित्रण अधिक अच्छा बन पड़ा है।

10 वीर रस की कविता

रीति काल में श्रृंगार के साथ-साथ वीर रस की भी कविताएँ यदा-कदा लिखी जाती रही हैं । मराठे, सिक्ख, मुगल इनके बीच के युद्ध का वर्णन कविवर भूषण, लाल, सूदन और पदमाकर आदि कवियों ने वीर रस में ही किया है । इस युग के वीर काव्य में समकालीन इतिहास विषयक प्रभूत सामग्री मिलती है जिसका निरीक्षण-परीक्षण आवश्यक है ।

11 भक्ति और नीति सम्बन्धी सूक्तियाँ :

रीतिकालीन कवियों में श्रृंगारपरक रचनाओं के साथ-साथ भक्ति और नीति की सूक्तियों को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है । इनमें बिहारी, ग्वाल, मतिराम आदि कवि प्रमुखता से गिने जा सकते हैं । जैसे बिहारी कृत यह रचना -

रीझिहै सुकवि तो जो जानो कविताई,
न तो राधिका-सुमिरन को बहानो है ।।

वहीं कवि मतिराम अपने भक्ति भाव को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं -

राधा मोहन लाल को, जिन्हें न भावन नेह ।
परियो मुठी हजार दस, तिनकी आँखिन खेह ।।

इस प्रकार रीति काल की प्रवृत्तियाँ साहित्य के सम्पूर्ण कलेवर को प्रस्तुत करती हैं । रीतिकाल में भक्ति, नीति और रीति तीनों ही धाराएँ एक साथ बह रही थीं । यह अलग बात है कि श्रृंगार की धारा कुछ प्रबलता के साथ बह रही थी ।

बोध प्रश्न :

(1) रीति काल में साहित्य की प्रमुख भाषा कौन-सी थी?

(क) अवधी

(ख) राजस्थानी

(ग) बंगाली

(घ) ब्रज

(2) बिहारी कवि थे?

(क) रीति बद्ध

(ख) रीति सिद्ध

(ग) रीति मुक्त

(घ) रीति युक्त

(3) रीति काल को 'अलंकृत काल' नाम किसने दिया?

(क) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

(ख) आ. रामचन्द्र शुक्ल

(ग) आ. वि.ना.प्र मिश्र

(घ) मिश्र बन्धु

(4) रीति काल के प्रमुख कवियों के नाम लिखें ।

.....

.....

.....

.....

(5) रीति काल में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है स्पष्ट करें ।

.....

.....

.....

.....

12.6 सारांश :

रीति काल के कवि नारी और प्रकृति के कवि थे । जीवन का फलता-फूलता सुगढ़ रूप ही उन्हें प्रिय था । पतझड़,संघर्ष और विनाश सम्भवत: स्वत: जीवन में इतने घोर रूप में विद्यमान था कि कवि काव्य में भी उनको उतार कर नैराश्य और निवृत्ति की भावना को जगाना नहीं चाहता था । वह तो फलते-फूलते जीवन का भ्रमर है । उसने जीवन का एक ही स्वरूप लिया, एक ही पक्ष देखा । यह उस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है और एकाग्रता है । परन्तु जिस पक्ष को उसने लिया है उसके चित्रण में उसने कोई कसर उठा नहीं रखी । उसके समस्त वैभव और विलास के चित्रण में उसने कलम तोड़ दी है । कहने का तात्पर्य यह है कि रीतिकालीन कवियों का जीवन दर्शन सीमित एवं संकुचित है । कवि एवं उनके आश्रयदाता राजा एक ही बंधी बंधाई रुढिबद्धिता से प्रभावित हैं । उनके द्वारा चित्रित नायक-नायिका भी स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रखते । इस काव्य में हमें बंधी बंधाई उत्पादक चेष्टाओं तथा स्वभावत और गात्रज अलंकारों के वृत में चक्कर काटती हुई कठपुतली-सी नारी दिखाई देती है ।

विलास के इस युग में श्रृंगार ही एक विराम स्थल है जहाँ सभी प्रकार की दौड़-धूप से श्रांत मानव नारी के मधुर आँचल की छाया में बैठ कर अपनी चिन्ताओं एवं पराभवों को भूल जाता है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन साहित्य पर संस्कृत काव्य शास्त्र, कामसूत्र एवं पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य का व्यापक प्रभाव पड़ा है । इस काल की प्रवृत्तियाँ भी इसी ओर इंगित करती हैं । यह अलग बात है कि ये प्रवृत्तियाँ परिस्थितिजन्य हैं ।

12.7 संदर्भ ग्रन्थ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
3. घनानन्द कवित्त (प्रस्तावना): पंडित वि.ना.प्र. मिश्र
4. बिहारी सतसई : बिहारी
5. हिन्दी नवरत्न : मिश्र बन्धु
6. केशवदास का अलोचनात्मक अध्ययन : डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल
7. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल
8. रीतिकालीन धार्मिकता और भक्ति का स्वरूप : डॉ. नगेन्द्र
9. घनानन्द और आनन्दघन : आचार्य वि.ना.प्र मिश्र
10. हिन्दी साहित्य की भूमिका आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर :

1.

(1) द

(2) उत्तर 12.2 में स्पष्ट है

(3) उत्तर 12.2 में स्पष्ट है

(4) उत्तर 12.2.1 में स्पष्ट है

(5) उत्तर 12.2.1 में स्पष्ट है

(6) उत्तर 12.3 में स्पष्ट है

2.

(1) घ

(2) क

(3) घ

(4) उत्तर 12.5 में स्पष्ट है

(5) उत्तर 12.5 में स्पष्ट है

12.9 अभ्यास प्रश्न :

(1) रीति काल का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डालें ।

(2) रीति काल की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालें ।

(3) रीति काल की सामान्य परिस्थितियों पर प्रकाश डालें ।

(4) रीति काल के नामकरण में उठे विवाद को अपने शब्दों में स्पष्ट करो ।

इकाई- 13

केशवदास का काव्य

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 रीति: शब्दार्थ
13.2 रीतिकाल : सामान्य अर्थ और नामकरण
13.3 रीतिकालीन परिस्थितियाँ
13.4 रीतिकालीन काव्य का वर्गीकरण
13.5 केशव : व्यक्तित्व
13.6 केशव का रचना संसार
13.7 केशव का आचार्य कर्म
13.8 केशव का कवित्व
13.9 केशव का काव्य सौष्ठव
13.10 अभिव्यंजना पक्ष
13.11 व्याख्याएँ
13.12 सारांश
13.13 संदर्भ ग्रन्थ
13.14 अभ्यास प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप रीतिकाल के रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि व आचार्य केशव के काव्य का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप

1. 'रीति' शब्द के अर्थ 'रीतिकाल' के नामकरण व वर्गीकरण तथा साथ में केशव के युगीन परिवेश को भी जान सकेंगे।
2. केशव के जीवन व उनकी कृतियों का परिचयप्राप्त कर सकेंगे ।
3. केशव के काव्य सौष्ठव व शिल्प सौन्दर्य को समझ सकेंगे ।
4. विशिष्ट दोहों की व्याख्या व विवेचना कर सकेंगे ।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल के प्रवर्तक के रूप में कविवर केशवदास का नाम सर्वोपरि है । केशव हिन्दी भाषा के प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने काव्यशास्त्र जैसे दुरूह एवं शास्त्रीय विषय पर अपनी कलम चलाई । रीति कावयपरम्परा के प्रमुख कवियों में केशवदास रीतिकाल के अपने पाण्डित्यपूर्ण विवेचन के लिए प्रसिद्ध हैं । केशव अलंकारिक सिद्धान्त में आस्था रखने वाले रसवादी कवि हैं ।

उन्होंने श्रृंगार को 'रसराज' कहा है । केशव ने संस्कृत काव्यशास्त्र की पूर्व ध्वनि और उत्तर ध्वनि दोनों का प्रतिनिधित्व किया । रामचंद्र शुक्ल की मान्यता है कि 'काव्यरीति' सम्यक् समावेश हिन्दी में सर्व प्रथम केशव ने किया ।

पं. विश्वनाथ प्रसाद के मतानुसार केशव की रचना में इनके तीन रूप दिखाई देते हैं- एक आचार्य का महाकवि का और इतिहासकार का । ये हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं ।... इन्होंने ही हिन्दी में संस्कृत की परम्परा की व्यवस्था पूर्वक स्थापना की थी ।

केशवदास रीतिकालीन कविता के आधार स्तम्भ हैं जिन्होंने रीतिकालीन काव्य के लिए वातावरण निर्माण करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । उनके काव्य में रीतिकालीन काव्य की सम्पूर्ण प्रवृतियों का प्रयोग मिलता है । केशव ने प्रबन्ध काव्यों के साथ-साथ मुक्तक काव्यों की रचना की और उनमें रस, अलंकार, छंद का विधान तथा शौर्य, भक्ति, वैराग्य एवं रीति का अद्भुत समन्वय है । उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' ' रामचंद्रिका', 'छंदमाल', ' वीरसिंह देवचरित', 'जहांगीर जरा चंद्रिका', ' रतन बावनी', ' विज्ञान गीता' आदि प्रमुख ग्रंथ हैं । 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' दोनों शास्त्रीय ग्रंथ माने जाते हैं ।'

कविप्रिया ' केशवदास का श्रेष्ठ काव्य कहा जा सकता है जिसमें कवि ने नायिका का नखशिख वर्णन, बारहमास वर्णन विभिन्न ऋतुओं में तथा होली का अत्यंत सुंदर वर्णन विस्तार से किया है । इस नायिका के रूप सौन्दर्य के प्रस्तुतीकरण की काव्य कला अद्भुत है ।

विक्रम संवत 1700 से 1900 विक्रमी का कालावधि के दो सौ वर्ष हिन्दी साहित्य में दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं- ऐतिहासिक दृष्टि से तो यह काल मुगल साम्राज्य के वैभव का चरम उत्कर्ष और तत्पश्चात् पतनशील प्रवृतियों का काल था तो साहित्यिक क्षेत्र में दो समानान्तर काव्यधाराओं के सृजन का था । राज्याश्रित कवियों के एक वर्ग ने संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुकरण करते हुए हिन्दी में रीति ग्रंथों का प्रणयन किया और ' आचार्य' पद से सुशोभित हुए तो दूसरी ओर स्वच्छंद भावों से उत्प्रेरित काव्य भी लिखा गया । महाकवि केशव ने कवि कर्म और आचार्य कर्म दोनों का निर्वहन किया । इस इकाई में आपको केशव के कृतित्व से परिचित कराये जाने का प्रयास किया गया है ।

13.1 'रीति' शब्दार्थ

'रीति' का सामान्य अर्थ है-

प्रणाली अथवा पद्धति । हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीति शब्द का प्रयोग एक व्यापक अर्थ का द्योतक है; जो रस, अलंकार, छंद, चमत्कार, ध्वनि, शब्द- शक्ति आदि काव्यांशों के लिए प्रयोग में किया जाता है । रीति वस्तुतः काव्यरीति का संक्षिप्त रूप है । काव्य की 'रीति सिखयौ सुकवीन्ह सौं' अर्थात् काव्य की रीति सुकवियों से सिखी जाती है । संस्कृत काव्य शास्त्र के अन्तर्गत रीति शब्द उस काव्यांग विशेष के लिए ही रूढ है जिसे काव्य की आत्मा के रूप में घोषित कर आचार्य ' वामन' ने तत्सम्बन्धी पृथक् सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया । ' रीति' शब्द की व्युत्पति 'रीड' धातु में 'क्तिच' लगने से हुई जिसका अर्थ गति, मार्ग, चाल, पद्धति एवं प्रणाली है । भावादि के उत्कर्ष को ध्यान में रखते हुए विशिष्ट पद रचना को ही रीति कहते हैं । वस्तुतः संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति शब्द मार्ग विशेष के अर्थ में ही व्यवहृत हुआ

है । हिन्दी साहित्य में भी रीति काल के कवियों ने अपने काव्यों की ' रखना पद्धति को रीति और उसके पर्यायपथ से ही अभिहित किया है । इस तरह कहा जा सकता है कि रीति काव्य वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा मार्ग को दृष्टि में रखकर की गई हो । हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में अनेक कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के नियमों की बंधी- बंधाई परिपाटी पर अपने काव्य की रचना की । इसीलिए आज उन्हें रीतिकवि और उनके द्वारा रचित काव्य को रीति काव्य संज्ञा से अभिहित किया जाता है ।

13.2 रीतिकाल : सामान्य अर्थ तथा नामकरण : -

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल दो सौ वर्षो की अवधि को अपने में समेटे हुए है । अपने समय की परिस्थितियों से प्रेरित और पुष्ट होकर रीति-कालीन साहित्य पाण्डित्य प्रदर्शन और कवि कर्म साथ-साथ निभाता रहा है, जिसे हम रीतिकाल कहते हैं । विद्वानों ने इस काल को विभिन्न' नामों से किया है । आचार्य शुक्ल ने इसे रीतिकाल कहा है तो मिश्र बंधुओं ने अलंकृत काल। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्रृंगार काल की संज्ञा दी तो डॉ. रसाल ने 'कला-काल' कहना ही उपयुक्त माना है । लेकिन रीति शब्द की व्यापकता के कारण यह काल रीतिकाल के रूप में ही मान्य हुआ । वस्तुतः रीतिकाल का प्रारम्भ संवत् 1700 (सन् 1643 ई.) से 1900 सं. (1843 ई.) तक माना जाता है ।

13.3 रीतिकालीन परिस्थितियों

साहित्य अपने युग की देन होता है । निश्चित रूप से साहित्य का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आधार होता है ।

रीतिकाल के काव्य की परम्परा विशेष परिस्थतियों में फूली-फली थी और मध्यकालीन व्यवस्था के विकृत रूप की वह प्रत्यक्ष प्रतिच्छाया बनी । रीतिकाल के अधिकांश कवि राजदरबारों से संबद्ध थे । बादशाह अकबर के पश्चात् मुगल सम्राट और उनके दरबारी विलासी हो गये । राजदरबारों में शासकों, कवियों और कलाकारों को स्थान मिला। कवि राजाश्रयी हो गये । दरबारी कवि शासकों की विलासितापूर्ण मनोवृत्तियाँ को देखकर उनसे सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त करने हेतु अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन करने लगे । वे समाज से दूर होने लगे और राजा विशेष के कृपापात्र बन गये । ऐसे अधिकांश रीति कालीन कवियों के द्वारा रची गई कविताओं का उद्देश्य केवल अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना था । कवियों की भांति कलाकार भी दरबारी हो गये।

राजनैतिक परिस्थिति : सन् 1643 ई. में भारत के सिंहासन पर मुगल बादशाह शाहजहाँ आसीन हुआ । इस का में मुगल वैभव उत्कर्ष पर था । शाहजहाँ के रूग्ण होने पर उसके पुत्र औरंगजेब ने शासन सम्भाला औरंगजेब का शासन काल अशान्तिपूर्ण बीता । अंतिम मुगल बादशाह औरंगजेब के समय केन्द्रीय सत्ता का प्रभाव कम होने लगा । उसने काव्य, संगीत और कलाओं के साथ-साथ गंगा जमनी संस्कृति को भी नष्ट कर दिया । उसके शासन काल में विद्रोह का बोलबाला रहा । जाटों और राजपूतों ने खुला विद्रोह किया । छत्रपति शिवाजी ने महाराष्ट्र में स्वतन्त्र रूप से अपने राज्य की घोषणा की पंजाब में गुरूतेग बहादुर तथा गुरू गोविन्द सिंह के पुत्रों की हत्या को लेकर सिख जाति में विद्रोह की आठ भड़क उठी । दक्षिण में मराठा शक्ति का उदय हुआ । नादिरशाह और अफगान शासक अहमद अब्दाली के आक्रमणों ने विनाश को

ओर अधिक विस्तार दिया । इस युग में सामन्तशाही जर्जर अवस्था में थी । मराठों की शक्ति को अहमद अब्दाली ने ध्वस्त कर अंग्रेजों को अपना व्यापार फैलाने का अवसर दिया । अंग्रेजों के आधिपत्य के काल में मुगल साम्राज्य केवल दिल्ली और आगरा तक सीमित होकर रह गया । इस युग का इतिहास भी दरबारों तथा अंतःपुरों के षड्यंत्र का इतिहास ही बनकर रह गया । इस प्रकार पूरा देश विनाश, युद्ध और गृह कलह से पीड़ित हो उठा, जिसके कारण व्यवस्था पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई । इस प्रकार यह सारा समय मुगल राज्य के कृमिक पतन, हिन्दू शक्तियों के उत्थान और पतन तथा अंग्रेजी शक्तियों के क्रमिक विकास का इतिहास बनकर रह गया । जिन मुगल दरबारों ने देश के प्रसिद्ध कविगण, चित्रकार संगीतकार, शिल्पकार, गायक तथा गुणीजन रहते उनका ही अनुसरण करते हुए विभिन्न रियासतों में गुणीजन खाने बने और दरबारी संस्कृति का उदय और विस्तार हुआ, किन्तु कालान्तर में इन राजदरबारों में विलासपूर्ण प्रदर्शन प्रमुख हो गये । सुरा और सुंदरी के बढते प्रचलन ने दरबारी संस्कृति को विकृत कर दिया । काव्य केवल शब्दजाल बनकर रह गया । विविध छंदों और अलंकारों के बंधनों में बंधी कविता नारी सौन्दर्य तथा उसके नख शिख वर्णन तक सीमित हो गई । कवि कर्म चमत्कार प्रदर्शन का माध्यम बन गया ।

सामाजिक परिस्थिति : इस युग में धर्म तथा जातिय आधार पर बना भारतीय समाज गरीब और अमीर जैसे आर्थिक आधारों में बंट गया था । हिन्दू-मुस्लिम भाईचारा समाप्त होने लगा था । प्राय: युद्धों की चोट सहते रहने के कारण भारतीय जनता निष्प्राण हो गयी थी । सर्वत्र अराजकता फैली हुई थी । समूचे देश में ठगों, चोरों, डाकुओं और असामाजिक तत्वों का बोलबाला था । समाज की आत्मा संकुचित हो गयी थी । कुछ कवियों और कलाकारों ने अपनी कविता और कला को बादशाहों राजाओं और सामन्तों की विलासिता एवं काम सुधा तक सीमित कर दिया । वस्तुत: मुगल साम्राज्य अपने विलास और वैभव के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध रहे हैं । रीति काव्य की नायिका का रूप केवल भोग-विलास तक सिमट कर रह गया । दरबारी शिक्षा भी आशिकाना गजलों, फारस की अश्लील प्रेम कथाओं तक सीमित रह गयी । मदिरा और नारी की विकृत विलासिता में सम्पूर्ण राष्ट्र डूब गया । बिहारी के एक दोहे में यह दृश्य देखा जा सकता है ।

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।
भरे भीन में करत है, नैनन ही सों बात ।

इस युग में पूरा समाज दो वर्गो में विभक्त था । एक शोषक और दूसरा शोषित वर्ग । किसान तथा मजदूरों का जीवन दयनीयता । शोषक वर्ग (सेठ, जमींदार, शासक) इनका भरपूर शोषण करते थे । मुगल वैभव का पूरा खर्च इन किसानों के बल पर ही चलता था । डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में- सचमुच इस समय के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े थे । इन्हीं के आंसू और रक्त की बूंदे जमकर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थी । राजा के अबाध अपव्य' की क्षति पूर्ति अनेक प्रकार के उचित- अनुचित कर्मों द्वारा की जाती थीं, कर्मचारी गण राजा का और अपना उदर किसानों का खून चूसकर भरते थे । सम्राट, सूबेदार, फौजदार,जमींदार आदि सभी का शिकार बेचारा किसान था ।

ऐसे राजनैतिक और सामाजिक पतन के युग में देश में नैतिकता का भी पतन हो गया । अनैतिकता हावी हो गई और सदाशयता लुप्त होती जा रही थी । इस वातावरण का असर कविता पर भी पड़ा । डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है- ' भीषण राजनीतिक विषमताओं ने बाल जीवन के विस्तृत क्षेत्र में स्वस्थ अभिव्यक्ति और प्रगति के भी मार्ग अवरूद्ध कर दिए थे । निदान लोगों की वृतियाँ अंतर्मुखी होकर अस्वस्थ काम-विलास में ही अपने को व्यक्त करती थी । संक्षेप में कहा जा सकता है कि रीतिकाल की कविता साधारण जन से कट गई और एक विशेष शासक वर्ग के दरबारों की होकर रह गई । उस पर विलास और श्रृंगार हावी हो गया । यद्दपि इस युग के समाज ने शौर्य, भक्ति एवं नीति युक्त काव्य के प्रति आस्था और आकर्षण बनाये रखा । इसी कारण भूषण जैसे राष्ट्रभक्त कवियों ने वीर गाथाओं से युक्त श्रेष्ठ काव्य का सृजन किया ।

सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियाँ : - सामाजिक परिस्थितियों की भांति ही इस युग में सांस्कृतिक चेतना भी दब सी गई थी । अकबर ने जो उदारतावादी नीति अपनाई तथा संतों और सूफियों के उपदेशों के फलस्वरूप हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के बीच सामंजस्य का जो प्रयास हुआ था, वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण समाप्त हो गया था । विलास-वैभव से धर्म भी प्रभावित होने लगा । मंदिरों में ऐश्वर्य और विलास की लीलाएं चलने लगी । अज्ञानता के कारण निम्न वर्ग अंधविश्वासों के जाल में फंस गया । अशिक्षित जनसमुदाय के लिए भक्ति भावना धर्म के बाहयांगो तक सीमित थी । धर्म के नाम पर अंधविश्वासी जनता का शोषण होता था । इस काल में कृष्ण लीला और राम लीला का प्रचलन बढा । भक्ति काल में वल्लभ चैतन्यमाध्व सम्प्रदायों में राधा की भक्ति भावना प्रचलित थी, किन्तु रीतिकाल में राधा पर किया भाव की नायिका मात्र बन कर रह गयी नायिका और नायक के भेद को कवियों ने परकीया भाव में अभिव्यक्ति दी-

'आगे के सुकवि रीझि हैं तौ कविताई,

न तो राधिका कान्ह सुमरिन को बहानो है । '

रीतिकालीन सांस्कृतिक वातावरण का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि चित्रकला, संगीत, मूर्तिकला, स्थापत्य आदि कलाओं पर भी विलासिता तथा प्रदर्शन प्रभावी हो गया था । इस युग में ईरानी, मुगल, फारसी तथा राजपूत शैलियों का प्रभाव समस्त कलाओं पर दृष्टिगत होता है ।

साहित्य, कला और संगीत की स्थिति - मुगल साम्राज्य में शिल्प कला, चित्रकला और संगीत ने अपने अपने क्षेत्र में पर्याप्त उत्कर्ष प्राप्त कर लिया था । इन सभी पर भी विलासिता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। शाहजहां के समय स्थापत्य और चित्रकला में अलंकरण की प्रवृति बढ़ी वहीं औरंगजेब के समय इस कला का पतन हुआ । कला के प्रेमी मुगल शासकों ने फारसी और हिन्दू शैली के समन्वय से विलासितापूर्ण एक नयी मुगल शैली का निर्माण किया था । इस कला में सोने का रंग, मणियों का जडाव-नक्काशी और तराश का प्रयोग बढ़ा। इन समस्त कलाओं में एक ओर उस समय का ऐश्वर्य झलकता है तो दूसरी ओर उल्लास एवं श्रृंगार का रसीलापन।

मुगलकाल में संगीत का अधिक विकास हुआ । अनेक नई राग्रागनियों, शैलियों तथा गायकी का उदय हुआ। ध्रुपद ख्याल, तराना, सरगम, चिवट, रसीली, आदि ठुमरी रीतिकालीन संगीत की ही देन हैं ।

रीति काव्य में अलंकार, रीति, रस, नायक-नायिका भेद, चमत्कार आदि काव्यों को पूर्ण आश्रय मिला । अतः यह युग रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीति मुक्त काव्य, साहित्य तथा कलाओं की दृष्टि से समृद्ध रहा ।

13.4 रीतिकालीन काव्य का वर्गीकरण :

हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवियों को निम्न तीन वर्गों में रख सकते हैं- (1) रीतिबद्ध कवि, (2) रीतिमुक्त कवि (3) रीतिसिद्ध कवि।

(1) रीतिबद्ध कवि : रीतिबद्ध काव्यधारा का प्रचलन भक्तिकाल में ही हो चुका था। रीतिबद्ध कवियों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है । (1) रस और नायिका के भेद के निरूपक आचार्य (2) अलंकार निरूपक आचार्य और (3) सर्वांग निरूपक आचार्य । रस तथा नायिका भेद के निरूपक आचार्यों के दो वर्ग हैं- प्रथम वर्ग के आचार्यों ने मूल रूप से नायिका भेद और स्थूल रूप से श्रृंगार रस का निरूपण किया है । दूसरे वर्ग के आचार्यों ने रसों पर विचार किया है, किन्तु सभी की दृष्टि श्रृंगार रस की ओर अधिक केन्द्रित रही है । इस वर्ग के आचार्यों की परम्परा में कवि, तोष मतिराम, देव, कालिदास, कृष्णभट्ट, श्रीपति, उदयनाथ, सोमनाथ, रसलीन, भिखारीदास, गोविन्द बेनीप्रवीण, रामसिंह, उजियारे और पद्याकर आदि प्रमुख हैं । अलंकार निरूपक आचार्यों में केशव, जसवंतसिंह, मतिराम, भूषण, गोप, रसिक, गोविन्द, दूलह, गोकुलनाथ, प्रमुख हैं । इन कवियों ने अपने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण के लिए चंद्रालोक, कुवलयानन्द आदि पूर्ववर्ती ह्यासोन्मुख ग्रन्थों को आधार बनाया था । सर्वांग निरूपक कवियों ने अपने काव्य में लक्षण से लेकर शब्द- शक्ति, गुण- दोष, रस-रीति, छन्द- अलंकार आदि समस्त अंगों पर विवेचन किया है । ऐसे कवियों में चिंतामणि, कुलपति मिश्र, देव, सूरतिमिश्र, कुमार मणि शास्त्री, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास और प्रतापसिंह प्रमुख हैं ।

वस्तुतः यह वर्ग रीतिकाल का सबसे बड़ा वर्ग था । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिबद्ध कवियों को 'रीति ग्रन्थकार कवि शीर्षक के अंतर्गत रखा है जिसमें उन्होंने 57 कवियों की चर्चा की है । डॉ. नगेन्द्र ने इन कवियों को 'रीतिबद्ध'अथवा ' आचार्य कवि' नाम दिया है परन्तु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हुआ ।

रीतिसिद्ध : जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथ तो नहीं लिखें, परन्तु अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रंथों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे हैं उनको रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है । ऐसे कवियों की कोटि में बिहारी सर्वप्रथम हैं, परन्तु डॉ. नरेन्द्र रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के विभाजन को लेकर सहमत नहीं हैं उनके अनुसार जो कवि लक्षण एवं उदाहरण दोनों प्रकार की रचनाएं करते थे वे आचार्य कवि थे । डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार रीतिकार आचार्य वे कवि हैं, जिन्होंने काव्यशास्त्र की शिक्षा देने के लिए रीतिग्रन्थों की रचना की । उनका प्रमुख उद्देश्यता तो काव्य की शिक्षा देना है या किसी काव्यशास्त्रीय विषय का सोदाहरण प्रतिपादन करना । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार

रीतिबद्ध कवि वे हैं, जिन्होंने रीतिग्रन्थों की रचना न करके काव्य सिद्धान्तों या लक्षणों के अनुसार काव्य रचना की है । अलंकार रस, नायिका, भेद, ध्वनि आदि उनके ध्यान में तो रहे हैं । परन्तु उनका प्रत्यक्षत: निरूपण इन कवियों ने नहीं किया वरन् उनके अनुसार उत्कृष्ट काव्य की रचना की । ऐसी दशा में मूलत: वे कवि हैं आचार्य नहीं । इसीलिए उन्हें रीतिबद्ध कहना चाहिए । आचार्य विश्वनाथ ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कहते हैं । अर्थात् डॉ. नगेन्द्र के अनुसार केवल लक्षण ग्रन्थ की रचना करने वाले अर्थात् सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले रीति बद्ध हैं तथा लक्षण एवं उदाहरण जुटाने वाले रीतिसिद्ध कवि । बिहारी के अतिरिक्त इस श्रेणी के कवियों में बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, रामसहाय, सेनापति, विक्रम, पजनेस, द्विजदेव, नेवाज आदि प्रमुख हैं ।

रीतिमुक्त कवि : रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय बद्धता की परिपाटी पर न चलकर स्वतन्त्र और उन्मुक्त रूप से अपने भावों को स्वच्छन्द अभिव्यक्ति दी उन्हें रीतिमुक्त कवि की श्रेणी में रखा गया । इन कवियों में घनानन्द, आलम,ठाकुर और बोधा प्रमुख रूप से आते हैं । इन कवियों ने किसी भी प्रकार का चमत्कार व पाण्डित्य प्रदर्शन करने के लिए कविताओं का निर्माण नहीं किया वरन् काव्यों इनके हृदय से स्वत: स्फूर्त होता था । इन कवियों ने भाव- भावित रचनाएं की न कि काव्यों का बाना ओढे लक्षण ग्रंथों की । इन कवियों की मूल प्रवृति रूप सौंदर्य चित्रण तथा विरह वर्णन है । इनमें स्वानुभूति का स्वर प्रधान रूप से व्यंजित हुआ है। ये कवि काव्य को साधन रूप में नहीं, साध्य रूप में ग्रहण करते थे । घनानन्द ने कहा है-

'लोग हैं लागि कवित बनावत, मोहि तो मेरे कवित बनावत । '

अत: इन कवियों की कविता को नेत्रों से नहीं, हृदय की आँखों से पढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि इन सभी कवियों ने रीति-स्वच्छंद परम्परा में मौलिक प्रतिभा युक्त काव्य का सृजन किया।

(4) प्रकीर्ण : इन तीन प्रमुख वर्गीकरणों के अतिरिक्त एक वर्ग ऐसा था जिन्होंने कुछ रचनाएं कुछ अलग का से प्रस्तुत की । इस श्रेणी के कवियों को प्रकीर्ण वर्ग में रखा गया है । इनमें प्रमुख हैं-

(5) नीति और भक्ति : रीतिकाल में कुछ कवियों ने नीति और भक्ति परक रचनाएं भी प्रस्तुत की है । रीतिकालीन भक्ति भावना के पीछे श्रृंगारिकता की प्रेरणा ही अधिक थी । इन कवियों ने अत्यधिक श्रृंगारिकता से ऊबकर कुछ क्षणों के लिए नायक -नायिकाओं की शरीर दृष्टि के आकर्षण को भुलाकर नीति और भक्ति की रचनाएं प्रस्तुत की । इन कवियों में गिरधर कविराय और वृंद प्रमुख हैं ।

(6) वीर रस प्रधान : रीतिकाल में प्रशस्तिपरक अथवा वीर रसात्मक रचनाएं भी प्रस्तुत की गईं । हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में वीर रसात्मक रचनाएं करने वालों में भूषण का नाम सर्वोपरि है ।

इसके अतिरिक्त हास्य के साथ5साथ प्रकृति वर्णन युक्त रचनाएं भी मिलती हैं इनमें बिहारी, देव, पद्याकर, मतिराम जैसे कवि उल्लेखनीय हैं । अन्य उल्लेखनीय कवि और उनकी कृतियाँ निम्नलिखित है -

कविवर चिन्तामणि - कविकुल, कल्पतरू, श्रृंगार मंजरी रसविलास, काव्य प्रकाश, छन्दविचाय।

कविवर तोष - सुधानिधि, विनयशतक, नखशिख ।

कविवर भूषण - शिवराज भूषण, शिवाबानी, छत्रशाल दशक, अलंकार प्रकाश ।

कविवर देव - शब्द रसायन, भवानी विलास, सुजान विनोद, नीतिशतक, राधिका विलास आदि।

कविवर बिहारी - सतसई ।

कविवर रसनिधि - रतन हजारा, कवित, बारह मासी, सत ।

कविवर भिखारीदास - काव्यनिर्णय, रस सारांश, श्रृंगार निर्णय, छन्दप्रकाश, छन्दाण्ल्मपिंगल।

कविवर गोप कवि - रामचन्द्र भूषण, राम चन्द्राभरण, रामालंकार ।

कविवर श्रीपति - काव्य सरोज, सरोज कलिका, कवि-कल्पद्रुम, रस सागर, अलंकार गंगा ।

कविवर उजियारे - जुगलरस प्रकाश, रसचन्द्रिका ।

कविवर रसलीन - अंगदर्पण, रस प्रबोध ।

कविवर ग्वाल - रसरंग, अलंकार

13.5 केशवदास - व्यक्तित्व :

आचार्य केशव का सम्बन्ध उस युग से है, जिसे साहित्य और अन्य कलाओं के विकास एवं सांस्कृतिक सामंजस्य की दृष्टि से मध्यकाल के इतिहास में महत्वपूर्ण माना जाता है । इस युग में राज्याश्रित और राज्याश्रय निरपेक्ष साहित्यकी धाराएँ प्रवाहित । राज्याश्रित काव्यरीति, चमत्कार और श्रृंगार की प्रवृत्तियों से परिचालित था । राजयाश्रय निरपेक्ष भक्ति साहित्य इन शक्तियों से अभिभूत नहीं था, किन्तुउस पर आध्यात्मिक साधनापरक श्रृंगार का प्राधान्य अवश्य होता जा रहा था । ऐहिक श्रृंगार से विलासित और शैली-चमत्कार के प्राधान्य वाले युग का विधिवत सूत्रपात केशव के हाथों हुआ ।

रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य केशव का जन्म सन् 1560 ई. के आसपास अथवा कुछ विद्वानों के अनुसार सन् 1555 ई. में हुआ । इनकी काव्य रचना 'कविप्रिया' में इनका पीरचय प्राप्त होता है । केशव का जन्म भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मणों के वंश में हुआ । जिन्हें मिश्र कहा जाता है । इनके पिता का नाम पं. काशीनाथ मिश्र था । इनके पूर्वों को राजा रूद्रप्रताप और ओरछा नरेशों ने राज्याश्रय दिया । केशव के पूर्वज मुख्यत: पुराण-वृत्ति पर निर्भर रहते थे । संस्कृत पाण्डित्य एवं उसका अभिमान इस-वंश के संस्कारों में व्यास था । यह केशव के प्रसिद्ध दोहे से प्रकट होता है । केशव को यह सब विरासत में प्राप्त हुआ पर, इनका व्यावहारिक और रचनात्मक सम्बन्ध ' भाषा' से हो गया । आचार्य केशव दूरदर्शी तथा रसिक जीव थे । इनकी रसिकता के सम्बन्ध में यह दोहा प्रस्तुत है-

'केसव केसन अस-करी जस, अरिहू न कराहिं!

चन्द्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाही ।। '

केशव राज्याश्रित कवि होने के साथ स्वाभिमानी भी थे । ओरछा इनकी जन्मभूमि थी । केशव में जन्मभूमि के प्रति अत्यंत आदरभाव थे ।

केशव की मृत्यु सन् 1601 के आस-पास हो गई थी । कुछ विद्वान इनकी मृत्यु सन् 1617 ई. मानते हैं ।

केशव के व्यक्तित्व का विकास वंश-परम्परा, युगीन-रूचि, राज रूचि एवं तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव में हुआ । धर्म, ज्योतिष, संगीत, भूगोल, वैद्यक, वनस्पति, पुराण, राजनीति, कामशास्त्र आदि शास्त्रों का केशव को ज्ञान था । इस बहुलता ने जहाँ केशव की काव्य साधना को प्रभावित किया, वहीं उनको राज सम्मान भी प्राप्त कराया ।

केशव वाक्पटु विनोदी निर्भीक तथा स्पष्टवादी भी थे । इसके साथ ही वे रसिक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति थे । केशव एक ओर भावुक थे तो दूसरी ओर औद्धिक और पाण्डित्य प्रदर्शन के धनी भी थे । इस कारण जहाँ इनकी बौद्धिकता प्रबल हो जाती है, वहीं हृदयपक्ष गौण हो जाता है। अवसरानुकूल व्यावहारिकता उनका एक प्रधान गुण था ।

13.6 केशव का रचना संसार :

केशव द्वारा रचित अनेक ग्रन्थ हैं, जिनका रीति काव्य परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है । इनके ग्रन्थों में रसिक प्रिया (सन् 1591 ई. में रचित), रामचन्द्रिका (1601 ई.) कविप्रिया (1601 ई.),जहाँगीर जसचन्द्रिका (1612 ई.) सिंहदेव चरित (1607 ई.) नखशिख और छन्दमाला आदि प्रमुख एवं प्रामाणिक हैं जो रीतिकालीन कवियों की रचनाओं के आधार बने हैं ।

13.7 केशव का आचार्य कर्म :

आचार्य शब्द के दो अर्थ हैं । साधारण अर्थ है दीक्षा आदि देने वाला गुरू तथा विशिष्ट अर्थ है किसी सिद्धान्त अथवा सम्प्रदाय का प्रवर्तक । काव्य की रचना करने वाला कवि और काव्य शास्त्र की रचना करने वाला आचार्य कहलाता है । मिश्र बन्धुओं ने आचार्यों के कर्त्तव्य कर्म की व्याख्या इस प्रकार की है- ' आचार्य लोग तो कविता करने की रीति सिखाते हैं, मानों वह संसार से यह कहते हैं कि अमुकामुक विषयों के वर्णन में अमुक प्रकार के कथन उपयोगी हैं और अमुक प्रकार के अनुपयोगी । केशव के आचार्यत्व का विवेचन करते हुए शब्दों के विभिन्न अर्थों को ध्यान में रखना चाहिए- काव्य शास्त्रकार अर्थात् नवीन काव्य-सिद्धान्त अथवा काव्य सम्प्रदाय का प्रवर्तक। (2) शास्त्र भाष्यकर अर्थात् शास्त्र का व्याख्याता तथा रीतिकार एवं कवि शिक्षक (3) काव्यशास्त्र का विद्वान।'

विवेचन का क्षेत्र : केशव ने काव्यशास्त्र के सम्बद्ध में केवल दो ग्रन्थ लिखे हैं- 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया'। 'कविप्रिया' का प्रतिपाद्य अलंकार है । 'रसिकप्रिया' अलंकार ग्रन्थ है । इसमें रस के अंगोपांगों का विशेषत: श्रृंगार रस के उंगउपागों का नायिका5भेद सहित विस्तृत वर्णन हे । इस प्रकार केशव के प्रतिपाद्य विषय हैं- अलंकार और रस । विशेष रूप से श्रृंगार रस जिसके अन्तर्गत नायिका भेद का भी समावेश है । रसिक प्रिया में वृत्तियों का भी संक्षिप्त वर्णन हे । इस प्रकार आठ अंगों में से उन्होंने दो-तीन अंगों का ही विवेचन किया । केशव क्षेत्र-सीमित है, ऐसा कुछ विद्वानों की मान्यता है ।

काल क्रमानुसार 'रसिक प्रिया' की रचना ' कवि प्रिया' से पूर्व हुई थी । अभिप्राय यह है कि प्रवृत्ति आरम्भ में रसवाद की थी, बाद में प्रौढ़ अवस्था प्राप्त कर वह अलंकारवादी हो गई । काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन करते हुए पूर्ववर्ती आचायों के मत को प्रमाण मान कर उन्होंने अलंकारवाद की स्वीकार कर लिया ।

रस-विवेचन : केशव ने यों तो नौ रसों का वर्णन किया है, किन्तु उनका मूल प्रतिपाद्य. श्रृंगार रस ही है । उन्होंने स्पष्ट रूप से श्रृंगार को ' रसराज' माना है ।

'सबको केशोदास हरिनायक है श्रृंगार । '

अपने मत के पुष्टि में उन्होंने समस्त रसों का समावेश श्रृंगार में कर दिया है । केशव ने हास्यादि मित्र रसों का ही नहीं रौद्र और विभित्स आदि अमित्र रसों का श्रृंगारमय वर्णन किया है-

'श्री वृषभानुकुमारि हेतु' ' श्रृंगार' रूपमय ।

वास हारा रस हरे, मात बंधन 'करूणामय' ।।

केसी प्रति अति 'रौद्र' 'वीर' मारों वत्सासुर ।

भयदावानल पान, पियो 'वीभत्स' बकी उर ।।

अति ' अद्भुत वंच विरेचि, मति, शान्त सत्ते सोच चित ।

कहि केसव से बहुरसिक जन, नवरस में ब्रजराज नित ।।

उपर्युक्त स्तुति छन्द में कवि ने नौ रसों क कृष्ण के व्यक्तित्व में समावेश कर अपने सिद्धान्त के लिए आधार भूमि तैयार की है ।

श्रृंगार के क्षेत्र में केशवदास ने एक वैचित्रय प्रस्तुत किया । वह है श्रृंगार का दो वर्गों में विभाजन और प्रकाश । परम्परा से भिन्न होते हुए भी यह केशव की अपनी उद्वावना नहीं है । इसके लिए वे भोज के ऋणी हैं ।

विशिष्टालंकारों का विवेचन : विशिष्टालंकारों के विवेचन में केशव महाकवि दण्डी के पूर्णत: ऋणी हैं । इनके लक्षण और कहीं-कहीं उदाहरण भी 'काव्यादशा से लिए गए है । केशव के अलंकार वर्णन में दण्डी के वर्णन से अनेक प्रकार की भिन्नताएं हैं । कुछ अलंकारों के लक्षण दण्डी से भिन्न हैं तथा कुछ अलंकारों का विपर्यय हो गया है । उदाहरण के लिए केशव ने अर्थान्तरन्यास के उपभेदों के नाम तो दण्डी के अनुसार रखे हैं किन्तु उनके लक्षण और उदाहरण भिन्न हैं ।

दोष विवेचन : केशव ने दोषों के दो वर्ग किए हैं । प्रमुख वर्ग के अन्तर्गत पाँच दोषों की गणना की है ' अन्ध, बधिक, अरि पंगु, तजि नग्र अति शुद्ध है । '

अर्थात् जिस काव्य में ' अन्ध' अर्थात् काव्य परम्परा के विरूद्ध प्रयोग ही । बधिर-जहाँ परस्पर विरोधी शब्दों का प्रयोग हो ।

'पंगु' **-** ' छन्द विरूद्ध ' 'नग्र' अर्थात् निरलांकार, और मृतक जिसमें अर्थ का ही अभाव हो।

काव्यसिद्धान्त और काव्य सम्प्रदाय: के शव को अलंकारवादी माना जाता है । केशव ने सामान्य काव्य सिद्धान्त के विषय में 'रसिक प्रिया' तथा ' कविप्रिया' दोनों में कुछ निश्चित धारणाएं व्यक्त की हैं । इनके मत से कवि तीन प्रकार के होते हैं- उत्तम, मध्यम तथा अधम ।

'उत्तम हीररसलीन, मध्यम मानत मानुषति, दोषति अधम प्रवीन । '

परमार्थ परक काव्य के प्रणेता हरि रसलीन उत्तम कवि कहलाते हैं । अर्थात केशव के अनुसार परमार्थ अथवा धर्म और मोक्षरूप परम पुराषार्थों की सिद्धि ही काव्य का चरम लक्ष्य है । मानव जीवन के कवि जो मानव चरित्र का गुणगान कर ऐहिक आनन्द को काव्य की सिद्धि मानते हैं, मध्यम कोटि के कवि हैं ।

कवि की सबसे बड़ी शक्ति है, वाणी जिसका बिना वह आनन्द का दान नहीं कर सकता -

ज्यों बिन दीठ न शोभिए लोचन लोल विसाल ।

त्यों ही केसव सकल कवि, बिन यानी न रसाल ।।

अलंकार चिन्तन : प्रौढ़ावस्था तक पहुँच कर केशव पर अलंकार का प्रभाव गहरा हो गया । इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कवि कृट 'रामचन्द्रिका' में अनेक छन्दों से स्पष्ट है, अपने वंश की परम्परा ओर अपने पाण्डित्य के प्रति अत्यधिक सचेष्ट था । पाण्डित्य का धीरे- धीरे उस पर ऐसा प्रभाव छा गया कि अर्थ गौरव के बोझ से मन की सरस्वती दब गई । केशव को पाण्डित्य और अर्थ गौरव ने अलंकार की ओर आकृष्ट किया । यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है । कवि का सिद्धान्त वाक्य है-

'जदपि सुजाति सुलक्षणी सुबरन, सरस सुबृत

भूषण बिन न विराजाहि, कविता-बनिता मित्त । '

केशव ने आरम्भ में 'रस' के अन्तर्गत श्रृंगार को मान्यता दी और ' रसिक प्रिया' के द्वारा हिन्दी में उसका प्रवर्तन किया । यह उत्तर ध्वनि कालीन परम्परा थी, जब रसवाद अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा के उपरान्त नायिका भेद ग्रन्थों में श्रृंगार वाद में ही सीमित हो गया था । प्रौढ़ काल में केशव की प्रवृत्ति स्वभावत: सरसता से बौद्धिकता की ओर होने लगी । बौद्धिकता के दो रूप सम्भव थे । (1) विचार प्रधान (दार्शनिक) काव्य । (2) अलंकार प्रधान काव्य । केशव ने दोनों को ही ग्रहण किया है और चूंकि राज दरबार में रहकर इनका लगाव अलंकार से अधिक हुआ। इसलिए कालांतर में अलंकार का प्रभाव केशव काव्य पर अधिक दृष्टिगत होता है ।

हिन्दी के परवर्ती कवि देवदास आदि सभा ने केशव को ही आचार्य के रूप में स्वीकार किया है । केशव ने हिन्दी में सबसे पहले सचेष्ट रूप से संस्कृति की पूर्व ध्वनि और उत्तर ध्वनि परम्परा को अवतरित किया और अपने पाण्डित्य पूर्ण गुरू व्यक्तित्व के बल पर हिन्दी काव्य में शास्त्रीय की प्रतिष्ठा की ।

13.8 केशव का कवित्व

केशव के पूर्व की और समकालीन भक्ति काव्यधारा में काव्यशास्त्रीय संदर्भ उपेक्षित हैं । केशव का युग ' भाषा' के माध्यम से सांस्कृतिक पुनरूथान का था । संस्कृत के जो राज्याश्रित विद्वान 'भाषा' की ओर आकृष्ट और उन्मुख हो रहे थे, वे एक ओर तो संस्कृत साहित्य शास्त्र को शुद्ध रूप से ' भाषा ' में अवतरित करने के उपक्रम में लगे हुए थे, दूसरी ओर उनकी काव्य साधना काव्य शास्त्रीय अनुशासनों के अन्तर्गत विकसित हो रही थी । केशव के कृतित्व और काव्य-साधना का संबंध इसी परम्परा से था ।

केशव कवि शिक्षक आचार्य थे । उनकी साधना सरस-सुबोध काव्यशास्त्रीय पाठक-ग्रंथ प्रस्तुत करने की थी । वस्तुत: स्वरचित उदाहरणों की रचना का दायित्व कवि-कर्म और आचार्य कर्म का समन्वय कर देता है । केशव का कवि-कर्म काव्यशास्त्रीय प्रभाव और प्रेरणा को ग्रहण करके चला है । केशव की दृष्टि चमत्कारपूर्ण शिल्प की सिद्धि की है। इस विधान में भाव-योजना प्रमुख नहीं रह पाती । केशव का कवि, उनके आचार्य के अनुशासन में चलता है ।

केशव की काव्य साधना अनेक काव्य रसों में हुई है । शास्त्रीय काव्य रूपों में तो केशव की रूचि थी ही, कुछ लौकिक काव्यरूपों का प्रयोग भी उन्होंने किया ।

(1) मुक्तक काव्य: भक्तिकाल में कृष्ण भक्ति शाखा के काव्यों में मुक्तकों और गेयका प्राधान्य हा है । यह परम्परा रीतिकालीन साहित्य धारा का आधार बनी । रीतिकालीन साहित्य में यह परम्परा लौकिक अभिप्रायों से युक्त होकर चली । केशव की 'रसिक प्रिया' में इसी प्रकार के उदाहरणों की योजना है । ये मुक्तक काव्यशास्त्रीय रस, रीति और भक्ति क्षेत्रीय रति-रीति में सामंजस्य उपस्थित करते हैं ।

मुक्तक प्रबंधकाव्य: रतनबावनी : रतनबावनी काव्य का आधार भी मुक्तक है । 'बावनी' अर्थात् बावन मुक्तकों की एक श्रृंखला । वस्तुत: मुक्तकों की श्रृंखला का आधार पहले वर्णमाला था। वर्णमाला के बावन वर्णों के आधार पर बावनी की रचना की जाती थी । यही वर्ण-क्रम ' बावनी' की सूत्रबद्धता का आधार है । केशव की 'रतनबावनी' शास्त्रीय अभिप्रायों से युक्त है। इसमें शुद्ध वीरपूजा- भाव की निवृति मिलती है । इस काव्य रूप को मुक्तक प्रबन्ध का नाम भी दिया जा सकता है । देशकाल कार्य सम्बन्धी एक उसकी विशेषता है ।

बारहमासा काव्य: केशव का बारहमासा काव्यरूप 'कविप्रिया - में विशेष रूप में देखने को मिलता है । इस काव्य का आधार मुक्तक है । बारह मुक्तक मास-क्रम में निबद्ध होकर बारहमासा बनते हैं । केशव ने उदाहरण रूप में लोक प्रचलित काव्यरूप का प्रयोग किया है । लोक-स्रोत से आगत इस काव्यरूप का स्थान केशव-साहित्य में महत्वपूर्ण है । '

नख-शिख काव्य: यह काव्य मुक्तक पर आधारित लोकप्रिय काव्यरूप है । मुक्तकों की योजना अंग-प्रत्यंग-क्रम में रहती है । कथा सूत्र का लेश भी इसमें नहीं, फिर भी अंग क्रम के निश्चित होने के कारण इसमें कुछ प्रबन्धत्व आ जाता है । वस्तुत इस काव्यरूप का स्रोत शास्त्रीय रूढ़ियों की एक श्रृंखला ही प्रतीत होती है । केशव ने पहली बार 'नखशिख' काव्यरूप को महाकाव्य से स्वतन्त्र करके, लक्षण-ग्रन्थ का भाग बनाया । इस प्रयोग से आचार्य केशव की प्रयोगशीलता सिद्ध होती है ।

चरितकाव्य: वस्तुत: केशव कृत 'वीरसिंहदेव चरित' एवं ' जहांगीर-जस-चन्द्रिका' ग्रंथ चरित-काव्यों की परम्परा के भक्तिकालीन अवशेष हैं । जिस प्रकार चरित-काव्यों में चरित्र-नायक की प्रशस्ति, पांडित्यपूर्ण विशद वर्णन आदि का समावेश रहत था । उसी प्रकार केशव के चरित-काव्यों में भी है । केशव ने चरित काव्य लौकिक दृष्टि से लिखे, यद्यपि उनकी भूमि में आधिदैविक तत्वों का समावेश भी है ।

महाकाव्यरामचन्द्रिका : केशव की 'रामचन्द्रिका' संस्कृत के महाकाव्यों की कालिदसोत्तर परम्परा में आती है जो छन्दगत और अलंकारगत चमत्कार, चमत्कारवादी प्रबन्ध- विधा की परम्परा को अक्षुण्ण रखे हुए है ।'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध में रूढ़ वर्णनों की भरमार से पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति सिद्ध होती है । कवि की दृष्टि भाव की पूर्णता पर उतनी नहीं है जितनी शिल्पगत चमत्कार पर । भक्ति काल में संस्कृत के चमत्कारपूर्ण, महाकाव्यों की परम्परा केशव की 'रामचन्द्रिका' के आधार पर ही जीवित कही जा सकती है ।

रूपक : नाटयकाव्य: 'विज्ञानगीता' : केशव की 'विज्ञानगीता' रूपक-विधा के अन्तर्गत आती है । इसमें विविध संवाद नियोजित हैं । यद्दपि इस ग्रंथ का प्रमुख आधार ' प्रबोध-चन्द्रोदय' ही है, तथापि केशव ने शुद्ध नाट्य रूपक विधा को ग्रहण न करके, इसे संवाद बहुत काव्य का रूप दिया है । कथा का आरम्भ भी नाटकीय शैली में है । फिर भी विधान का बाह्म रूप प्रबन्ध काव्य के समान ही माना जाएगा । इसे एक नवीन नाम दिया गया है 'रूपक काव्य'। केशव की प्रयोगशीलता इसमें स्पष्ट हे ।

अत: कहा जा सकता है कि केशव आचार्यों की श्रेणी में प्रथम थे तो कविकर्म का प्रभाव भी बेजोड़ और प्रभावशाली था ।

13.9 केशव का काव्य सौष्ठव :

'कठिन काव्य के प्रेत' की उपमा से अलंकृत आचार्य केशव केवल पाण्डित्य प्रदर्शन व चमत्कारों के प्रदर्शन के अधीन रहने वाले आचार्य मात्र नहीं थे वरन् वे एक सह्दयकवि भी थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी लौह-लेखनी से केशव पर जो अनेक प्रकार के प्रहार किए थे, उनमें से एक प्रहार केशव की सह्दयता पर भी था । उनके अनुसार 'केशव, को कवि ह्दय नहीं मिला था, उनमें वह सह्दयता और भावुकता न थ जो एक कवि में होनी चाहिए ।

वास्तविकता यह है कि केशवदास दरबारी कवि थे । उन्होंने जितनी रूचि वीरता, राजनीति, सभा- चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य आदि के प्रसंगों में दिखाई है, उतनी मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में नहीं । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि केशव सह्दय नहीं थे अथवा उन्हें मार्मिक स्थलों की पहचान न थी । वस्तुत' जब भाव एवं चमत्कार के बीच संघर्ष होता है और चमत्कार की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है तो मार्मिक उक्तियों का प्रभाव भी सीमित हो जाता है । अत: इस दृष्टि से केशव को सह्दयकवि न कहना अनुचित होगा । उनकी सह्दयता के अनेक प्रसंग 'रामचन्द्रिका' में मिलते हैं ।

(अ) श्रृंगार वर्णन : केशव रीतिकाल के आचार्य कवि हैं । भक्तिकालीन श्रृंगारिकता की परिपाटी को काव्य में नए रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय केशव को है । श्रृंगार वर्णन केशव का अदभूत और अनोखा है । ' रामचन्द्रिका','कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन देखने को मिलता है ।

संयोग श्रृंगार : केशव की चितवृत्ति संयोग- श्रृंगार में ही निवास करती थी । 'रामचन्द्रिका' में केशव ने राम और सीता के सौन्दर्य का वर्णन कुछ इस तरह से किया है-

विपिन मारग राम विराज ही । सुखद सुन्दरिसोदर भ्राजहीं ।
विविधश्रीफल सिद्धमनों फल्यो । सकल साधन सिद्धिहिं लै चल्यो ।

सीता के सुकोमल सौन्दर्य को देखकर ग्रामवासी कहते हैं-

एकै कहै अमल कमल मुख सीताजू को
एकै कहै चन्द्र सम आनन्द को कंद री ।

सीता का 'नख-घ्ङशिखं वर्णन' दासियों द्वारा हुआ है, इसे केश, कबरी, शिरोभूषण, नेत्र नासिका से लेकर चरण, महावर और कंचुकी का वर्णन किया गया है ।

वियोग श्रृंगार : 'रामचन्द्रिका' में वियोग श्रृंगार का वर्णन मिलता है । सीताहरण के पश्चात् वियोग की पीड़ा का भार राम और सीता दोनों सहते हैं । सीता राम को पुकारती है ।

हा राम! हा रमन! हा रघुनाथ धीर ।

लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि वीर ।।

केशवदास ने वियोग वर्णन में वियोग की दसों दशाओं का निर्वाह कर अपनी नई-नई उद्भावनाएं प्रस्तुत की हैं।

(2) प्रकृति चित्रण : केशवदास ने अपनी कृतियों में प्रकृति वर्णन की सभी शैलियों को अपनाया है । आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में किया है । केशव ने सरोवर के वर्णन में कमलों, भ्रमरों, पक्षियों तथा जलचरों का वर्णन किया है । अयोध्या के सरोवर का वर्णन निम्नानुसार प्रस्तुत किया है -

सुभसर सौभे, मुनि-मन लोभै ।

सरसिज फूले, अलि रसभूले ।।

जलचर डोलै, बहु खग बोलैं ।

बरनि न जाहीं उर उरझाहीं ।

'रामचन्द्रिका' के आरम्भ में सूर्य की प्रातःकालीन अरूणिया की शोभा का चित्रण देखिए-

अरून गात अतिप्रात पद्मिनी प्राननाथमय ।

मानहु 'केसवदास को कोकनद प्रेममय ।।

यह ललित लाल कैधौं लसत दिगभामिनी के भाल को ।

(3) काव्यरूप : केशव ने प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएं की हैं । भक्ति एवं रीतिकाल में संभवत: ये. पहले कवि हैं जिन्होंने ब्रजभाषा में मुक्तकों के साथ साथ प्रबन्ध काव्यों की रचना भी की हैं । 'विज्ञान गीता', 'वीरसिंह देवचरित', 'जहाँगीर जसचन्द्रिका', 'रतनबावनी', 'रामचन्द्रिका', प्रबन्ध काव्य है । इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है 'रामचन्द्रिका' जिसमें महाकाव्य की शैली अपनाई गई है । मुक्तक काव्यों में 'रिसक प्रिया', 'कविप्रिया', 'नखशिख' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं ।

(4) वर्णनात्मकता : केशव के काव्यों में वर्णनात्मकता अधिक मिलती है । वर्णनात्मकता का आधिक्य होने के कारण पाठक गण केशव के काव्य को प्राय: हृदय में नहीं उतार पाते हैं । अयोध्या वर्णन जनकपुरी वर्णन, धनुषयज्ञशाला वर्णन, रामराज्य वर्णन आदि वर्णन ' रामचन्द्रिका' के उल्लेखनीय वर्णन है, किन्तु ये वर्णन इतिवृत्तात्मक लगते हैं-

अयोध्या वर्णन : कवि कुल विधाधर, सकल कलाधर, राज राज वरवेश बने ।

गणपति सुखदायक, पशुपति लायक, सूर सहायक कौन गने ।।

13.10 अभिव्यंजनापक्ष

अभिव्यंजना की दृष्टि से केशव साहित्य कुछ शिथिल माना जाता है । डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में 'उसमें न तो भावों के अनुकूल गुण और रीति का उपयोग किया गया है और न शब्दों का ही यथार्थ प्रयोग हुआ है । वस्तुओं के रूप रंग आकार आदि को स्पष्ट करने के लिए जिन

उपमानों की अपेक्षा होती है उनको प्रस्तुत करने पर भी विषयों को अस्पष्ट अथवा हास्यास्पद बना दिया गया है । भावों की मौलिकता की भी इनमें न्यूनता है । अधिकांश विदग्ध उक्तियां संस्कृत की उक्तियों का ब्रजभाषा में रूपान्तरण मात्र है । फिर भी यह मानना होगा कि यदि केशव का अभिर्भाव न होता ता रीतिकालीन कवि अपने युग की कविता को कला शिल्प से मूल्यवान बना सकते इसमें संदेह है ।

अलंकार : केशव की दृष्टि में अलंकार काव्य का अनिवार्य अग है । अलंकार के अन्तर्गत काव्य के सभी शोभा-विधायक उपकरण आ जाते हैं । केशव की दृष्टि में कविता-कामिनी बिना इन उपकरणों के शोभा नहीं पा सकती । इनके काव्यों में अलंकारों की छटा देखी जा सकती है। उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, विभावना, संदेह, विरोधाभास, उपमा, अनुप्रास, वक्रोक्ति, परिसंख्या, अतिश्योक्ति आदि का अत्यधिक प्रयोग हुआ है ।

रूपक का उदाहरण :-

'चढ्यो गगनतरू दिनकर बानर अरून मुख ।

कीन्हों झुकि अहराय, सकल तारका कुसूम बिन ।।

छन्दयोजना : छन्द योजना में केशव हिन्दी में अपनी बराबरी नहीं रखते । उन्होंने वर्णन एवं मात्रिक दोनों ही छन्दों का प्रयेग किया है । अकेले 'रामचन्द्रिका' ग्रन्थ में इन्होंने इक्यावन प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा, सोरठा, चौपाई, गीतिका, त्रिभंगी, छप्पर, चामर आदि छन्दों का शास्त्रीय प्रयोग किया है जिससे इनका महाकाव्य'रामचन्द्रिका' छन्दों का अजायबघर मात्र बनकर रह गया, ऐसी मान्यता है ।

(3) संवाद योजना : केशव को संवाद योजना में सर्वाधिक सफलता मिली है । उन्होंने रामचन्द्रिका में संक्षिप्त, पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल चरित्र प्रकाशक, घटना को माड़ देने वाले, वक्रता और विदग्धतापूर्ण संवादों की योजना की है । इनके संवादों पर संस्कृत में रचित 'हनुमत्राटक' और 'प्रसन्नराघव' नाटकों के संवादों का प्रभाव देखा जा सकता है । ' रामचन्द्रिका' में लक्ष्मण राम भरत परशुराम संवाद, रावण-हनुमान संवाद, रावण- अंगद संवाद, भरत-कैकेयी संवाद अत्यन्त सुन्दर हैं ।

'रे कपि कौन तूं" अक्ष को घातक दूत बली रघुनन्दन जू का ।

'को रघु नन्दन रे?" त्रिसिरा खरदूषण-दूषण भूषण भू को ।

सागर कैसे तरयो? जसगोपद, काज कहा? सियचोरहि देखो ।

कैसे बंधायो? जु सुन्दरी तेरी हुई दृग सोबत पातक लेखो ।

भाषा : - केशव के काव्य की भाषा ब्रज है । पद रचना की ओर विशेष ध्यान देने के कारण केशव का भाषा के परिमार्जन की ओर विशेष ध्यान इसलिए नहीं गया कि वे पद रचना पर विशेष सोचते विचारते रहे । इस संदर्भ में उन्होंने अपना मत यों व्यक्त किया है-

'चरण धरत चिन्ता करत नींद न भावत शोर ।

सुवरण को सोधत फिरत कवि व्यभिचारी चोर । '

इनके श्रृंगार प्रधान ग्रन्थों की भाषा में माधुर्य, प्रसाद, ओज आदि गुणों की प्रतिष्ठा हुई है। केशव के लिए कहा जाता है कि जहां उनकी दृष्टि छन्द योजना की ओर रही है, वे भाषा को

समृद्ध नहीं बना सके हैं । केशव ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है इसलिए उनकी भाषा कठिन हो गई है । काव्य रचना में शब्दों की तोड़-मरोड़ भी खूब की गई है । व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी पर्याप्त है । केशव ने बुंदेलखण्डी शब्दों का प्रयोग बहुत सुन्दर ढंग से किया है । केशव के सवैयों की भाषा में अधिक प्रवाह आ गया है । कहीं-कहीं व्यंग्य विनोद भी भाषा की सुन्दरता को बढ़ा देते हैं । वस्तुत: केशव अपनी ही भाषा के प्रतिनिधि हैं, जिनकी भाषा साहित्यिक तो है किन्तु भावाभिव्यक्ति को दिशा देने में असमर्थ है, ऐसी आलोचकों की मान्यता है ।

13.11 व्याख्याएँ :

अरूण गात अति प्रात पद्मिनी प्राननाथमय ।
मानहुँ 'केशवदास' कोकनद कोकप्रेम मय परिपूरन सिंदूरपूर कैधों मंगलघट ।
किधौं सक्र को छत्र मंड्यो मानिकमयूष पट
कै श्रोनितकलित कपाल यह किल कापालिक काल को ।
यह ललित लाल कैधों लसत दिगभामिनी के भाल को ।
(रामचन्द्रिका)

व्याख्या : लक्ष्मण सूर्य का वर्णन कर रहे हैं प्रातःकाल सूर्यबिम्ब अरूण वर्ण है । ऐसा लगता है कि चक्रवात और कमल के प्रेम से युक्त होने से ही वह अरूण हो गया है अथवा पूर्णत सिन्दूर से रंगा हुआ वह (सूर्यबिम्ब कोई मंगल घट है अथवा वह माणिक्य की किरणों से मण्डित इन्द्र का छत्र है । अथवा यह कालरूपी कापालिक के हा में किसी का रक्तरंजित मुण्ड है अथवा पूर्वदिशारूपी स्त्री के प्रशस्त भाल पर यह सुन्दर माणिक्य है ।

काव्यांश:

(2) मेघ-मंदाकिनी चारू सौदामिनी,
रूप रूरे लसैं देहधारी मनौ-
भूरि भागीरथी भारती हंसजा
अंसके हैं मनौ भाग भारे भनौ ।।
देवराजा सिये देवरानी मनौ
पुत्र संयुक्त भूलोक में साहिए ।
पक्ष दू संधि संध्या सधी है मनौ,
लच्छिये स्वच्छ प्रत्यच्छ ही मोहिए ।।

व्याख्या : राम, लक्ष्मण और सीता एक साथ वन-गमन करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानों मेघ, आकाश-गंगा और बिजली प्रत्यक्ष देह धारण करके शोभित हो रहे हैं अथवा यह कहा जा सकता है कि अनेक गंगा, सरस्वती और यमुना के ये अंश है जो देह धारण करके विराजमान हैं । (अत:) जो लोग उनका दर्शन प्राप्त कर रहे हैं उनका परम सौभाग्य है (क्योंकि गंगा, यमुना और सरस्वती के प्रत्यक्ष दर्शन से, तीर्थ के दर्शन से भी अधिक फलप्राप्त हो सकता है) अथवा देवराज इन्द्र अपनी पत्नी इन्द्राणी और पुत्र जयन्त के साथ भूलोक में शोभित हैं अथवा यह कहा जा सकता है कि कृष्णा या शुक्ल पक्ष के सन्धि काल- अमावस अथवा पूर्णिमा की तीनों

संध्याएं (प्रातः, दोपहर और सायंकाल) एकत्र स्थित हो गई हैं जिनके निर्मल रूप को प्रत्यक्ष देखकर मन मुग्ध हो रहा है ।

काव्यांश :

(3) धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की सिरवा
कै धूमजोनि मध्यरेखा सुधाधाम की ।
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहिं
संवर छड़ाइ लई कामिनी कै काम की,
पाखंडी की श्रद्धा की मठेस बस एकादसी ।
लीनी कै स्वपचराज साख सुद्ध साम की ।
केसव अदृष्ट साथ जीवजोति जैसी तैसी,
लंकनाथ हाथपरी छाया जाया रामकी ।।

व्याख्या : रावण के वश में पड़ी हुई सीता की स्थिति कैसी है? कवि कल्पना करता है वह कहता है कि रावण के वश में पड़ी हुई सीता को देखकर लगता है कि धूम राशि में अग्नि की शिखा है अथवा बादलों के बीच में चन्द्रमा की रेखा है अथवा विशाल बवंडर के बीच में कोई सुन्दर चित्र है, अथवा संबरासुर द्वारा हरण की जाती हुई काम की स्त्री रति है अथवा पाखंडी व्यक्ति के हृदय में स्थित श्रद्धा है, अथवा मठधीश (जो वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करता है) के वश में पड़ी हुई एकादशी है, अथवा चाण्डालराज द्वारा ग्रहण की गई शुद्ध सामवेद की शाखा है, अथवा प्रारब्ध (संचित कर्म) के वश में पड़ा हुआ ईश्वर का अंश (जीव) है । (तात्पर्य यह है कि सीता विवश होकर अनुचित रूप से रावण के हाथ पड़ गई है और वह भी उनका वास्तविक रूप नहीं है, मायामयरूप है । राम की मन्त्रणा से उन्होंने ' छाया शरीर से ही' मृग की अभिलाषा की थी ।)

13.12 सारांश

अस्तु आचार्य केशवदास सच्चे अर्थो में राजकवि थे । वे पण्डित, आचार्य, कवि, राजनीतिज्ञ और कदाचित् भक्त भी थे । केशव की इन विशेषताओं में रचनाओं का काव्यरूप, आचार्यत्व, लोक परम्परा व महत्व की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी के बाद तीसरा स्थान प्रदान किया गया है ।

13.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
3. केशव और उनका साहित्य- डॉ. विजयपालसिंह

13.14 अभ्यास के प्रश्न

1. 'रीति' शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिये ।
2. रीतिकालीन प्रमुख कवियों की संक्षिप्त जानकारी दीजिये ।

3. केशवदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिये ।
4. रीतिकालीन कवियों में केशवदास का स्थान निर्धारित कीजिये ।
5. केशवदास की रीतिकाल को क्या देन है?

इकाई - 14

बिहारी का काव्य

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 युग परिवेश

14.3 बिहारी और उसका साहित्य

14.3.1 जीवन परिचय

14.3.2 साहित्य एवं उसका भाव पक्ष

14.3.2.1 बिहारी सतसई का श्रृंगार पक्ष

14.3.2.2 बिहारी सतसई का भक्ति पक्ष

14.3.2.3 बिहारी सतसई का नीति पक्ष

(बोध प्रश्न)

14.4 अभिव्यंजना शिल्प

14.4.1 काव्य रूप

14.4.2 काव्य भाषा

14.4.3 छन्द विधान

14.4.4 अलंकार विधान

(बोध प्रश्न)

14.5 चुने हुए दोहों की व्याख्या व विवेचना

(बोध प्रश्न)

14.6 सारांश

14.7 कठिन शब्द

14.8 संदर्भ ग्रन्थ

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.0 उद्देश्य :

इस इकाई में रीति काल के प्रमुख कवि बिहारी को रीति सिद्ध काव्य धारा की पृष्ठ भूमि में प्रस्तुत किया गया है । साथ ही यह प्रयत्न किया गया है कि आप बिहारी के काव्य सौन्दर्य का आस्वादन कर सकें । इस इकाई के अध्ययन में आप : रीतिकालीन परिवेश, बिहारी के जीवन एवं कृति, बिहारी की भक्ति, नीति, रीति व दार्शनिक विचार, भाव पक्ष विशेषताएँ तथा बिहारी के काव्य के शिल्प का सौन्दर्य की महत्ता जानेंगे । रीति काल के संदर्भ में बिहारी का महत्व कतिपय विशिष्ट दोहों की व्याख्या एवं विवेचना कर सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम रीति काल के प्रमुख कवि बिहारी तथा उनके साहित्य के बारे में चर्चा करेंगे। बिहारी रीति काल के प्रमुख रीति सिद्ध कवि थे । जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के दरबारी कवि बिहारी के काव्य में रीति (श्रृंगार) नीति और भक्ति तीनों की धाराओं का सामंजस्य प्रभावपूर्ण ढंग से देखा जा सकता है । इस पाठ में हम आपको बिहारी के जीवन और उसके साहित्य से भी परिचित कराएंगे । संवत् 1692 में बिहारी ने जिस सतसई नामक ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ किया था वह लगभग संवत् 1719 में पूरा हो पाया । 727 दोहों की यह रचना जिस विशेष दोहे के कारण प्रारम्भ हुई वह दोहा है -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल ।
अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौनु हवाल ।।

प्रस्तुत पाठ में बिहारी के रीति, नीति, भक्ति के इन्हीं दोहों के दार्शनिक तत्वों पर विचार एवं विवेचन किया जाएगा । साथ ही उनकी काव्य भाषा के विविध पक्षों की जानकारी भी प्राप्त होगी । बिहारी सतसई के कुछ विशिष्ट दोहों का वाचन एवं व्याख्या भी इस उद्देश्य से दी गई है कि आप दोहों के अर्थ एवं व्याख्या करना जान सकें । आइये अब हम बिहारी तथा उनके साहित्य पर विस्तार से चर्चा करें ।

14.2 युग परिवेश :

कवि कोई भी हो जिस परिवेश में वह रहता है उसकी उपेक्षा करके जीना उसके लिए सम्भव नहीं हो पाता । यों भी मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज से टूट कर यदि कोई अपने अस्तित्व को कायम रखना चाहता है तो वह निश्चित रूप से असफल होता है । समाज से जुड़े रह कर अपने अस्तित्व और अपनी अवधारणाओं के प्रति सतर्क रहना तो समझ में आता है किन्तु समाज निरपेक्ष रह कर जीवन यापन करना असम्भव भले ही न हो कठिन निश्चित रूप से होता है । यह बात इसलिए कही जा रही है कि अनेक समीक्षकों ने बिहारी पर यह आरोप लगाया है कि वे समाज से कटे हुए थे । उनके दोहे, रंगरलियों विलास भावनाओं और नायक-नायिकाओं की प्रणय-क्रीड़ाओं का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो प्राय: सभ्य समाज में दिखाई नहीं देते । परन्तु बिहारी जिस परिवेश में रहे, जिस समाज को उन्होंने जिस रूप में देखा उसकी उपेक्षा करना उनके लिए सम्भव नहीं था । बिहारी ने स्पष्टत: अपने समय की किसी समस्या का निरूपण अपने दोहों में नहीं किया किन्तु उनके दोहों में उस समय के परिवेश की पनप रही वृत्तियों, विकृतियों और स्थितियों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । एक कवि तो वह होता है जो सीधे समाज से जुड़ कर कविता करता है और एक कवि वह होता है जो व्यक्ति के माध्यम से समाज का सूक्ष्म निरीक्षण करता है तथा सांकेतिक शैली में उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है । यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाए तो बिहारी एक ऐसे कलाकार हैं जो एक कोने में बैठ कर समाज को ध्यानपूर्वक देखते रहे । अपने परिवेश पर नजर गढ़ाए रहे । उसी परिवेश को जिसमें अधिकांशत: विलास भाव फैला हुआ था, अपने साहित्य में प्रस्तुत करते रहे । यही कारण है कि उन्होंने बीच-बीच में उस पथभ्रष्ट समाज को समझाने के लिए नीतिपरक बातें भी कही । भक्ति रस से पूर्ण दोहों की रचना भी की । प्रकृति की उन्मुक्त

सूक्ष्म छवियाँ भी प्रस्तुत की । ऐसी स्थिति में बिहारी को समाज निरपेक्ष कहना और मानना उचित । प्रतीत नहीं होता । ' बिहारी सतसई' ' का मूल्यांकन करने से पूर्व हमें यह जानना आवश्यक है कि बिहारी जिस युग में थे उस समय का समाज, धर्म, राजनीति और साहित्य की स्थिति कैसी थी? लोगों की मनःस्थिति कैसी थी? वे किस प्रवाह में बहे जा रहे थे? ये सभी बातें जानना बिहारी को जानने से पहले आवश्यक हैं । क्योंकि इसी परिवेश में उन्होंने अपने साहित्य का सृजन किया था ।

बिहारी का जन्म सम्राट अकबर के राज्यकाल (सं. 1613 से 1662) के अन्तिम दिनों में हुआ था । उनका अधिकांश समय जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में व्यतीत हुआ । वे मुगलों से जुड़े रहे । अकबर से लेकर औरंगजेब के राज्यकाल तक का समय उन्होंने देखा था । अकबर के समय में भारत के विशाल राज्य की नींव स्थापित हो चुकी थी । अकबर की दूरदर्शिता से मुगलों के कट्टर शत्रु राजपूत मुगलों के परम मित्र हो गए थे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति एक हो गई थी । अकबर के उदार व्यक्तित्व के कारण ही यह सब सम्भव हो पाया । मुगल बादशाहों ने साम्राज्य की शांति और सुरक्षा के निमित्त राजपूत राजाओं की राजकुमारियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए थे । आमेर के राजा भारमल की पुत्री अकबर से ब्याही गई थी । भारमल के पुत्र ने भी अपनी कन्या का विवाह जहाँगीर से किया था । इन वैवाहिक सम्बन्धों के कारण राजपूत राजाओं को मुगल सेना में उच्च पद प्राप्त हुए थे। मानसिंह और जयसिंह मुगल साम्राज्य के प्रधान सेनापति थे, परन्तु अकबर के पश्चात् धीरे-धीरे स्थिति में बदलाव आता गया । बिहारी ने अपनी सतसई में ऐसे दोहों को प्रस्तुत किया है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि राजा जयसिंह ने मुगलों के लिए बहुत कुछ किया था । एक बार शाहजहाँ की आज्ञानुसार औरंगजेब ने बलक पर चढ़ाई की थी । उसके साथ राजा जयसिंह भी थे । उस चढ़ाई में उन्हें सफलता तो नहीं मिली किन्तु घोर संकट का सामना अवश्य करना पड़ा । संकट की इस घड़ी में शत्रुओं से घिरी हुई सेना को सुरक्षित बचा लाना जयसिंह का ही काम था -

यों दल काढ़े बलक तैं तैं, जयसिंह भुवाल ।
उदर अधासुर कैं परै ज्यों हरि गाइ, गुवाल ।

डॉ. नगेन्द्र ने इस विषय में लिखा है - संवत् 1700 में भारत के सिंहासन पर सम्राट शाहजहाँ आसीन था, मुगल-वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुका था... जहाँगीर ने जो साम्राज्य छोड़ा था, शाहजहाँ ने उसकी और भी श्री-वृद्धि एवं विकास कर लिया था । दक्षिण में अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुर राज्यों में बुगलों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और उत्तर पश्चिम में संवत् 1796 में कंधार का किला मुगलों के हाथ में आ गया था । अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार उसका साम्राज्य सिन्ध के लाहिरी बन्दरगाह से लेकर आसाम के सिलहट तक और अफगान प्रदेश के बिस्त के किले से लेकर दक्षिण में औसा तक फैला हुआ था । देश में अखण्ड शांति थी । हिन्दुस्तान की कला अपने चरम वैभव पर थी । मयूर सिंहासन और ताजमहल का निर्माण हो चुका था । कहने का अभिप्राय यह है कि अकबर ने राजपूतों से सम्बन्ध बनाने की जिस नीति को अपनाया था वह जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल तक मधुर परिणाम देती रही । हाँ बाद में जहाँगीर और शाहजहाँ की विलासिता और अपव्यय

के परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था । मुगल कालीन राजनैतिक व्यवस्था निरंकुश राजतंत्रीय थी । उस समय शासक ही राष्ट्र का विधाता होता था । सम्पूर्ण शक्तियाँ शासक के हाथ में होती थीं । शासक के विजातीय होने के कारण असहिष्णुता से मिल कर निरंकुशता और बढ़ जाती थी । इस सब का प्रभाव साहित्यकार पर पड़ना स्वाभाविक था । यदि हम इस पृष्ठ भूमि में बिहारी के युग पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता -है कि मुगल शासन का अधिकांश भाग इनसे सम्बन्धित है । मुगल शासन का जो भाग बिहारी के युग से सम्बन्धित था वह राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में शांति और सुव्यवस्था का काल कहा जा सकता है जब राज्य में शांति और सुव्यवस्था होती है तब राज शक्तियाँ साहित्य, कला, संस्कृति के प्रति आकर्षित होती थी । राज-दरबारों में इसी भावना से कवि कलाकारों का सम्मान होता था । अकबर के दरबार में कवियों, विद्वानों और कलाकारों का सम्मान होना यह प्रमाणित करता है कि राजनैतिक सुव्यवस्था के अभाव में साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रगति नहीं हो सकती ।

रीति कालीन समाज में सामंतवादी व्यवस्था थी । इसी व्यवस्था के कारण सम्राट का स्थान सर्वोपरि था । इसके पश्चात उच्च वर्ग में राजा, अधिकारी और सामंत आते थे । इन लोगों को समाज में न केवल सम्मान प्राप्त था बल्कि कुछ विशिष्ट अधिकार भी प्राप्त थे । एक दूसरा वर्ग शाही कर्मचारियों का था जिसे मध्यवर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता था । व्यापारी, साहूकार आदि भी इसी वर्ग में आते थे । निम्न वर्ग में कृषक, मजदूर आदि को रखा जाता था । समग्रत: यह कहा जा सकता है कि समाज दो ही वर्गों में बँटा था, एक उत्पादक वर्ग दूसरा उपभोक्ता वर्ग । शाही दरबार के अन्तर्गत सुख, समृद्धि और विलास का बोलबाला रहता था । वे विलासिता में डूबे रहते थे । उनके दरबारों में सुरा और सुन्दरियों की बहार रहती थी। जहाँगीर के बारे में तो प्रसिद्ध है कि वे आध सेर कबाब और एक सेर शराब के बदले में अपनी पूरी सल्तनत नूरजहाँ को दे चुके थे । अकबर अपेक्षाकृत कम विलासी थे । मनोरंजन के साधन यही सुरा और सुन्दरी हुआ करते थे । मुगल परिवारों में रत्नों और मणियों के अतिरिक्त सुन्दर स्त्रियाँ भी रलो की श्रेणी में आती थीं । रूप सौन्दर्य से भरी हुई स्त्रियाँ भोग-विलास का माध्यम थीं । विलासिता इतनी अधिक थी कि उस समय के अधिकांश कवियों ने अपने काव्य में काम तत्त्व को प्रधानता प्रदान की । इस विलासिता का प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर पड़ रहा था । नारियों ने भी लज्जा और मर्यादा को त्याग कर अपने को ऐसे ही परिवेश में डाल लिया था । डॉ. नगेन्द्र ने ठीक हीं लिखा है कि सचमुच इस समय के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े थे, इन्हीं के आँसू और रक्त की बूँदें जम कर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थी । 2. तत्कालीन परिवेश में स्थिति यह हो गई थी कि श्रमिक वर्ग उपभोक्ता वर्ग के हाथों का खिलौना बना हुआ था । सामाजिक दृष्टि से हिन्दू और मुस्लिम दोनों स्वतंत्र थे । यह अलग बात है कि जाति भेद बढ़ने लग गया था परन्तु हिन्दू अपने समस्त त्यौहारों को मनाने के लिए स्वतंत्र थे । अच्छे मुगल सम्राटों ने भेद-भाव रहित स्वतंत्र जीवन बिताने की छूट सामाजिकों को दे रखी थी किन्तु इसके विपरीत जो कामुक, विलासी और स्वार्थी मुगल शासक थे उन्होंने शोषण और अत्याचारों को बढ़ावा दे रखा था। निम्न वर्ग प्राय: उपेक्षित ही

था । इन सामाजिक स्थितियों को उस समय के कवि कलाकारों ने देखा और अनुभव किया। बिहारी भी इस परिवेश के प्रत्यक्ष दृष्टा रहे और इन विषयों पर अपनी कलम चलाई ।

बिहारी कालीन धार्मिक परिवेश भी उपेक्षणीय नहीं है । 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक प्राय: सभी प्रकार के प्रमुख आन्दोलन धार्मिक क्षेत्र में अपनी सफलता प्राप्त कर चुके थे । ये धार्मिक आन्दोलन 13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुके थे । इस प्रकार इन तीन सौ वर्षो का समय धार्मिक आन्दोलनों का युग था । हिन्दी साहित्य विशेषकर जिन धार्मिक मतों से प्रभावित हुआ है वे हैं संत मत, सूफी मत, राम भक्ति और कृष्ण भक्ति । इसी धार्मिक परिवेश का प्रभाव तत्कालीन साहित्यकारों पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है । इसी समय में राधा और कृष्ण भक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी । चैतन्य, बल्लभ, राधाबल्लभी, हरिदासी और निम्बार्क आदि सम्प्रदायों ने भी इस काल में राधा के व्यक्तित्व को प्रमुख रूप से स्वीकार किया । विक्रम की 16वीं और 17वीं शताब्दी में भारत पर मुगल शासकों का साम्राज्य था और यही वह काल था जब समाज में अनेक मत और मतान्तर प्रचलित हो रहे थे । इस प्रकार धार्मिक परिवेश पर्याप्त समृद्धिपूर्ण दिखाई देता था । बिहारी भी अपनी सतसई में राधा-कृष्ण के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर संकेत करते हैं । रीति काल को सामान्यत: विकृतियों का काल माना गया है । यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि रीति काल में नैतिकता हवा हो चुकी थी और धर्म का एक स्वच्छ स्वरूप नहीं रहा था । धर्म न केवल अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं से जुड़ कर जीवन को रस प्रदान करने में अक्षम था बल्कि स्थिति यहाँ तक थी कि धर्म भी पाखण्ड और विलासिता से जुड़ने लगा था । डॉ. भागीरथ मिश्र ने लिखा है कि वैष्णव धर्म में विशेष रूप से बल्लभ सम्प्रदाय की जिस माधर्योपासना में सभी निमज्जित थे वह अब राधा-कृष्ण के स्थूल मांसल श्रृंगार का रूप धारण करने लगी थी। अब तो राधिका-कन्हाई' स्मरण मात्र थे । राधा तो परकीया नायिकाओं के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत होती थी । 'ब्रह्म की इस आल्हादिनी शक्ति राधा के केवल तन की झाँई' ही 'हरि दुति' के लिए पर्याप्त थी । कृष्ण ओर राधा की 'तन की द्युति' पर किया जाने वाला अनुराग तीर्थराज प्रयाग से श्रेष्ठ माना जाता था । ' बिहारी ने लिखा है -

मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होइ ।।

धर्म के क्षेत्र में भ्रष्टाचार बढ़ने लगा था । देवालय भोग-विलास के केन्द्र बन गए थे । बिहारी सतसई में ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं । बिहारी ने तो यहाँ तक लिखा है कि रुचि पुराण में नहीं पौराणिक में रहती थी । भक्ति में से भाव तत्व लुप्त हो गया था तथा स्थूल काम चेष्टाओं में ही भक्तिपरक ग्रन्थों की अभिव्यक्ति की जाने लगी थी । कृष्ण की लीलाओं का आध्यात्मिक भाव समाप्त हो गया था और वे रसिक नायक के रूप में देखे जाने लगे थे । कृष्ण सम्प्रदाय के अलावा अन्य सम्प्रदायों में भी स्थिति कमोबेश ऐसी थी । इस प्रकार कह सकते है कि बिहारी पर उस युगीन परिवेश का सीधा-सीधा असर दिखाई देता है जो उसके साहित्य में स्पष्ट रूप से झलकता है ।

14.3 बिहारी और उसका साहित्य :

14.3.1 जीवन परिचय :

प्राप्त तथ्यों के आधार पर सभी यह स्वीकार करते हैं कि बिहारी का जन्म विक्रम संवत् 1652 में ग्वालियर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । बाल्यावस्था बुंदेलखण्ड में बिता कर ये मथुरा में अपनी ससुराल में आकर बस गए थे । बिहारी के कुल और उनके पिता को लेकर साहित्य इतिहासकार एक मत नहीं हैं । कुछ साहित्यकारों का मानना है कि बिहारी सनाढ्य ब्राह्मण थे और रीति काल के प्रसिद्ध आचार्य केशव राय के पुत्र थे । जबकि कुछ अन्य विद्वानों का यह मानना है कि वे माथुर ब्राह्मण थे तथा केशवदास के शिष्य थे । मिश्र बन्धुओं के अनुसार वे 'ककोर' कुल में उत्पन्न हुए थे । उन्होंने जनश्रुतियों के आधार पर कृष्ण कवि को बिहारी का पुत्र माना है । शिवसिंह सेंगर, महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध तथा डॉ. ग्रियर्सन ने बिहारी को माथुर चौबे तथा चतुर्वेदी वंश में उत्पन्न माना है । अन्तिम मत के अनुसार बिहारी 'घरबारी' वंश में उत्पन्न माने जाते हैं । कुछ विद्वानों ने समस्त उपर्युक्त मान्यताओं को नकारते हुए बिहारी को सनाढ्य ब्राह्मण ही बताया है । इसके पीछे शायद यह तर्क रहा है कि वे उन्हें आचार्य केशवदास का पुत्र सिद्ध करना चाहते हैं । बिहारी कवि केशवदास के पुत्र नहीं थे, यह बात स्पष्ट है । हाँ यह अवश्य है कि उनके अपने दोहे में भी केशवराय का नाम अवश्य आया है । वे कहते हैं कि

प्रगट भए द्विजराजकुल सुबस बसे ब्रज आइ ।
मेरो हरौ कलेसु सब केसौ कैसौ राइ ।।

इस दोहे के आधार पर कतिपय विद्वान बिहारी को रीति काल के प्रसिद्ध कवि केशवदास का पुत्र मानते हैं । कुछ विद्वानों का मत इसके विपरीत भी है । 'केसौ राइ शब्द से स्पष्ट नहीं हो पाता कि ये आचार्य केशवदास ही हैं अथवा कोई दूसरे केशवराय । हालांकि उनके पिता का नाम भी यही था जिसकी पुष्टि बिहारी सतसई के प्रथम टीकाकार ने रस चन्द्रिका' में दे दी है । उनके दीक्षागुरु स्वामी नरहरिदास थे । जिनका जन्म गुढ़ौ नामक ग्राम में हुआ था और कालान्तर में ब्रज भूमि में आकर बस गए थे । संवत् 1675 में सम्राट जहाँगीर ने ब्रज प्रदेश की यात्रा की । इसी समय वे स्वामी नरहरिदास से भी मिले । स्वामी जी की कीर्ति दूर-दूर तक फैली थी। सम्राट के साथ युवराज शाहजहाँ भी थे । उसी समय संयोगवश बिहारी भी नरहरिदास के यहाँ पधारे । नरहरिदास ने बिहारी की प्रतिभा का परिचय शाहजहाँ को दिया । शाहजहाँ बिहारी के साहित्य एवं संगीत कला पर मुग्ध हो गया । परिणामस्वरूप बिहारी को मुगल दरबार में स्थान प्राप्त हो गया ।

श्री नरहरि नरनाह कौ दीनी बाँह गहाइ ।
सगुन आगरै आगरें रहत आह सुख पाइ ।।

कुछ समय पश्चात् साम्राज्ञी अर्जुमन्दबानो के गर्भ से राजकुमार दारा का जन्म हुआ । पुत्रजन्म के महोत्सव पर शाहजहाँ ने भिन्न-भिन्न रजवाड़ों के 52 राजाओं को आमंत्रित किया । इस अवसर पर बिहारी ने आगत राजाओं के समक्ष अपने साहित्य और काव्य का प्रदर्शन किया । जिससे प्रभावित हो आगत राजाओं का भी बिहारी को विशेष स्नेह प्राप्त हुआ । बिहारी ने

जब दरबार में अपना काव्यपाठ किया तो बादशाह सहित समस्त राजाओं ने उसे ।स्वर्ण मुद्रिकाओं से ढक दिया और प्रसन्न हो बिहारी को वार्षिक वृत्ति देना प्रारम्भ कर दिया । बिहारी अधिकतर राजधानी में ही रहते थे परन्तु समय-समय पर वृत्ति लेने वे दूसरे राज्यों में भी जाते थे । यह सिलसिला अधिक नहीं चल पाया । शाहजहाँ ने गद्दीनशीं होते ही बिहारी को उपेक्षित कर दिया और बिहारी मथुरा आकर रहने लगे । संवत् व 1692 में बिहारी अपनी वार्षिक वृत्ति लेने जयपुर गए । इस समय यहाँ पर जयसिंह का राज्य था । राजा जयसिंह ने नया-नया विवाह किया था और नवोधा के प्रेम में डूब कर अपनी पटरानी अनन्तकुँवरि और राज्य की गतिविधियों को भुला दिया था । पटरानी को जब यह ज्ञात हुआ कि बिहारी आए हुए हैं तो उन्होंने बिहारी के सामने राज्य की करुण दशा का वर्णन किया । महारानी जानती थी कि बिहारी ही राजा को सही मार्गदर्शन दे सकते हैं । चूँकि बिहारी मुगल सम्राट के कवि हैं इसलिए भी राजा उनकी बात का उल्लंघन नहीं कर सकते। अत: रानी और राज्य की करुण दशा देख कर बिहारी ने एक दोहा लिख कर राजा के पास भेजा । वह दोहा था -

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिकाल ।
अली कली ही सौं बंध्यो, आगै कौनु हवाल ।।

महाराज जयसिंह ने दोहे को पढ़ कर उसके रचियता की खोज कराई । जब उन्हें बिहारी का पता चला तो मुगल सम्राट तक अपनी विलासिता की बात पहुँच जाने के भय से उन्होंने विलासित छोड़ दी । शीघ्र राजकार्य की ओर ध्यान दिया तथा बिहारी को सम्मानित कर और दोहे लिखने की प्रार्थना की तथा प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्ण मुद्रिका देने का वचन दिया । राजा जयसिंह से इतना स्नेह और सम्मान पाकर बिहारी यहीं रह गए और उन्होंने अनुमानत: संवत् 1692 में सतसई नामक ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया । जो संवत् 1719 में समाप्त हुआ । कुछ समय पश्चात् रानी चौहानी के गर्भ से कुँवर रामसिंह का जन्म हुआ । जिसके 7 वर्ष के होने पर शिक्षा-दीक्षा का सम्पूर्ण भार बिहारी पर ही डाल दिया गया । बिहारी ने उनको शिक्षा प्रदान करने के लिए सतसई के अलावा अन्य रचनाएँ भी की । वह प्रति अब भी उपलब्ध है जिस पर बालक कुँवर रामसिंह के हाथ से खेची गई अनेक बाल-सुलभ रेखाएँ तथा टेढ़े-मेढ़े अक्षर अंकित हैं । संवत् 1721 में बिहारी का देहावसान हो गया । अपने जीवन के सांध्यकाल में वे पूर्ण रूप से भक्त हो गए थे । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अपने समय के अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न, रसप्रवण मेधावी कवि थे बिहारी । उनकी एकान्तकृति 'बिहारी सतसई' उनकी अक्षय कीर्ति के लिए पर्याप्त प्रमाण स्वरूप हिन्दी में चिरस्मरणीय रहेगी ।

14.3.2 साहित्य एवं उसका भाव पक्ष :

बिहारी ने अपने जीवन में केवल एक ही कृति लिखी 'बिहारी सतसई' । परन्तु विक्रम संवत् व 1691 में बिहारी जोधपुर के राजा जसवंत सिंह के यहाँ अपनी वार्षिक वृत्ति लेने गए थे । राजा जसवंत सिंह वीरता के साथ-साथ काव्य-कला में भी निष्णात थे । उन्होंने एक विपुलकाय अलंकार-ग्रन्थ की रचना की थी । कुछ विद्वानों का मत है कि उक्त ग्रन्थ की रचना बिहारी ने की थी न कि जसवंत सिंह ने । यदि यह सत्य है तो फिर यह भी सत्य है कि यह रचना 'सतसई' से पूर्व की रचना होगी । क्योंकि शैली की दृष्टि से यह ग्रन्थ 'सतसई' की कोटि में कदापि नहीं ठहर पाता । जोधपुर में एक विशाल 'दूहा-संग्रह' भी बताया जाता है जिसमें 15-

16 सौ दोहों का संकलन है । इसके अधिकांश दोहे सतसई में भी प्राप्त हैं । सम्भवत: ये दोहे भी बिहारी कृत हैं । इसके अतिरिक्त पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी कृत कतिपय कवित्तों का भी शोध किया है । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सतसई' के अतिरिक्त भी बिहारी ने विपुल साहित्य की रचना की थी ।

बिहारी का काव्य अपने भाव सौन्दर्य के कारण साहित्य जगत् में अलग महत्त्व रखता है । उन्होंने श्रृंगार रस पर विशेष रूप से लिखा है परन्तु बीच-बीच में शांत रस पर भी अपनी कलम चलाई है । श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का विस्तृत विवेचन बिहारी ने किया तो भक्ति में भी भक्ति कालीन कवि से किसी भी माने में कम नहीं रहे । वहीं समाज में फैली हुई बुराइयों पर नैतिकता की बात कहते नीतिपरक साहित्य में भी उन्होंने महारत हासिल की । बिहारी के साहित्य को भक्ति, रीति और नीति की त्रिवेणी इसीलिए कहा जाता है क्योंकि उनका भाव सौन्दर्य समकालीन अन्य कवियों के भाव सौन्दर्य से कुछ अलग दिखाई देता है।

14.3.2.1 सतसई के श्रृंगार तत्व :

बिहारी के काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का विस्तृत विवेचन हुआ है । संयोग में आलम्बन का रूप और उसकी चेष्टाओं का वर्णन होता है दूसरे शब्दों में नख, शिख और हास-विलास वर्णन की प्रमुखता संयोग श्रृंगार में रहती है । बिहारी ने नख, शिख वर्णन में परम्परागत कोई बात नहीँ छोड़ी । नख, शिख में उन्होंने सबसे अधिक ध्यान नेत्र वर्णन पर दिया है । सूर की भाँति नेत्रों पर उन्होंने उद्भावनाएँ भी की हैं लेकिन नेत्रों के वर्णन में भी उनका ध्यान उनकी अनिर्वचनीयता पर रहा था -

अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान ।।

प्रेम के संयोग पक्ष में हास-विलास, क्रीड़ा, कौतुक की कोई बात छूट नहीं पाई । कहीं नायिका नायक की पतंग की परछाई के साथ-साथ अपने आँगन में दौड़ रही है तो कहीं उसके ऊँचे उड़ने वाले कबूतर की प्रशंसा कर रही है । कभी बातों के रस के लालच में लाल की मुरली छिपा कर उसे परेशान कर रही है तो कहीं दोनों आँख-मिचौनी खेल रहे हैं, कहीं होली की मस्ती का आनन्द ले रहे हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि बिहारी ने श्रृंगार के किसी भी पक्ष को नजरअन्दाज नहीं किया है । उन्होंने संयोग श्रृंगार में सौन्दर्य दीप्ति और कोमलता का भी विशेष ध्यान रखा है

लिखनि बैठि जाकी छबी, गहि गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।

चेहरे की दीप्ति का वर्णन करते हुए उन्होंने एक जगह नायिका के सौन्दर्य की तुलना पूर्णिमा में चाँद से कर दी और इतना अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया कि पंडित लोग भी उस चाँद की रोशनी से भ्रमित होकर पूर्णिमा का भ्रम पाल बैठे-

पत्राही तिथि पाइये, वा घर के चहुं पास ।
नितप्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास ।

सौन्दर्य के साथ-साथ बिहारी ने नायिका के सुकुमारता का भी विशेष वर्णन किया है । श्रृंगार वर्णन में बिहारी ने विपरीत रति का भी वर्णन किया है । परन्तु इसमें वे अश्लीलता के दोष से बच नहीं पाए हैं -

राधा हरि हरि राधिका, बन आए संकेत ।

दम्पति रति विपरीत सुख, सहज सुरत ही लेत ।।

बिहारी ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत नायिका के अभिसार का ही बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है । जब कोई नायिका शुक्ल पक्ष की रात्रि में चाँदनी के अन्तर्गत अपने प्रिय से मिलने जाती है तब वह शुक्लाभिसारिका कहलाती है। बिहारी ने ऐसी नायिका का वर्णन इस तरह से किया

जुवति जोन्ह में मिलि गई नैंक न होति लखाइ ।

सौंधे के डोरैं लगी अली चली सँग जाइ ।।

इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की रात्रि में प्रिय से अभिसार करने वाली नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है । बिहारी ने उसका वर्णन करते हुए कहा है -

अरी खरी सरपट पर बिधु आधे मग हेरि ।

संग लगे मधुपनि लई भागति गली अँधेरि ।।

बिहारी ने अपने काव्य में नायक-नायिका सौन्दर्य, क्रीड़ा व्यापार के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक सांकेतिक चित्रण भी किए हैं जिनके द्वारा नायक और नायिका इशारों ही इशारों में अपने प्रेम का इजहार कर लेते थे -

कहत, नटत, रीझत, खिजत मिलत, खिलत लजियात ।

भरे भौन मैं करत हैं, नैनन ही सौं बात ।।

कहने का अभिप्राय यह है कि बिहारी के संयोग श्रृंगार में अनेक ऐसे संदर्भ हैं जो पूरी तरह से पाठक के मन में संयोग और उससे सम्बन्धित भावनाओं को जगा देते हैं । डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का यह कथन ग्राह्य है । इन वर्णनों में सौन्दर्य-चेतना को उद्बुद्ध करने की अपूर्व क्षमता के साथ ही हृदय पर प्रभाव डालने की अद्भुत शक्ति है । इसी कारण सौन्दर्य के सरस चित्र अंकित करने में बिहारी सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं । "

बिहारी ने अपने काव्य में संयोग के साथ-साथ वियोग वर्णन भी उत्कृष्ट कोटि का किया है। कुछ विषयों में तो उनका वियोग उनके संयोग से अधिक श्रेष्ठ बन गया है । वियोग वर्णन की दृष्टि से बिहारी ने पूर्व राग, मान, प्रवास और करुण इन चारों प्रकार के विरहों का वर्णन किया है । उनके विरह वर्णन में ऊहात्मक व्यंजना का समावेश हुआ है जो फारसी के प्रभाव के कारण है । विरह में नायिका इतनी क्षीण हो गई है कि साँस के साथ छह-सात हाथ आगे आती और पीछे जाती है । मानो हिन्डोले पर झूल रही हो -

इत आवति, चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ ।

चढ़ी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासन साथ ।।

तो वहीं दूसरी ओर नायिका विरह के ताप की स्थिति यह है कि जाड़े की रात्रि में भी सखियाँ उसे गीले कपड़े से ढक कर उसके विरह को शांत करने का प्रयास करती हैं तो दूसरी ओर उसके विरह के ताप को शीतल करने के लिए जब उसके ऊपर गुलाब जल छिड़का जाता । है तो वह भी छन्न की आवाज के साथ उड़ जाता है -

औंधाई सीसी सु लखि, बिरह बरति बिललात ।
बीचहिं सूखि गुलाब को, छींटो छुओ न गात ।।

यही नहीं विदेश में बैठा नायक पथिक के मुँह से विरहिनी के गाँव में लुएँ चलने की बात सुन कर उसे जीवित समझ लेता है -

सुनत पथिक मुँह माह निसि, लुएँ चलत वहि गाम ।
बिन बूझे बिन ही कहैं, जियत पियारी बाम ।।

बिहारी ने वियोग श्रृंगार में मान, प्रवास आदि भावों के भी दोहे लिखे हैं । उन्होंने नायिका की विभिन्न विरह जनित भाव दशाओं का सुन्दर वर्णन किया है । उन्होंने अपने विरह को प्रगाढ़ता प्रदान करने के लिए प्रकृति का भी सहारा लिया है । इसलिए उनके साहित्य मे प्रकृति वर्णन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है । प्रकृति वर्णन की दृष्टि से ऋतु, चन्द्रमा, पवन आदि का वर्णन उद्दीपन के रूप में ही हुआ है पर जहाँ स्वतंत्र रूप से प्रकृति चित्रण हुआ है वहाँ बिहारी ने मौलिकता का प्रदर्शन किया है । सच तो यह है कि उनका स्वतंत्र प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप के प्रकृति चित्रण से श्रेष्ठ है । उन्होंने मुक्त प्रकृति चित्रण में व्यंजना शक्ति से बड़ा काम लिया है । जेठ की दुपहरी की भयंकरता का आभास निम्न दोहे से भली-भाँति हो जाता है-

बैठि रही अति सघन बन, बैठि सदन तन-माहि ।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहहुँ चाहत छाँह ।।

अत: संक्षेप में कह सकते हैं कि बिहारी का संयोग वर्णन न केवल उनके समय का प्रतिबिम्ब है बल्कि उनकी मानसिकता का द्योतक भी है । संयोग और वियोग दोनों ही क्षेत्रों में बिहारी ने जो अभिव्यक्तियाँ की हैं वे अधिकांशत: चमत्कारपूर्ण हैं और साथ ही साथ मन को बाँधने में अधिक सफल हुई हैं । फिर भी बिहारी के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी अभिव्यक्त कलात्मकता ने आज भी उनकी सतसई को प्रासंगिक बना रखा है । श्रृंगार वर्णन कितने ही कवियों ने किया है किन्तु सभी का श्रृंगार बिहारी जैसा हो यह आवश्यक नहीं । कालिदास भी श्रृंगार वर्णन करते हैं, प्रसाद ने भी श्रृंगार के क्षेत्र में हस्तक्षेप किया किन्तु इनकी रसिकता में सहृदयता का अंश अधिक है । बिहारी का संयोग उनके वियोग की तुलना में अधिक प्रभावी करता है तो कभी वियोग संयोग पर भारी पड़ता है ।

14.3.2.2 सतसई में भक्ति पक्ष :

बिहारी राजभक्त कवि नहीं थे । वे एक भक्त कवि ही थे । रीति काल के वैष्णव बिहारी अपनी सतसई का प्रारम्भ मंगलाचरण के रूप में इस दोहे से करते हैं -

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि साइ ।
जा तन की झाई परै स्याम हरित दुति होई ।।

भक्ति भावना की दृष्टि से हम भक्तों को दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं एक तो वे भक्त कवि हुए, जिन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के आदि से अन्त तक ब्रह्म, माया और जीव का ही गुणगान किया जैसे शंकराचार्य। दूसरी श्रेणी में उन भक्त कवियों को लिया जा सकता है जिन्होंने मूलत: श्रृंगार आदि रसों में काव्य रचना की। परन्तु साथ ही साथ यदा कदा भक्ति भावना से अभिभूत होकर राम अथवा कृष्ण का चरित्र गान भी किया है। इस वर्ग के अन्तर्गत

सूर, तुलसी, बिहारी, देव तथा पदमाकर आदि को लिया जा सकता है । द्वितीय श्रेणी के भक्त कवियों ने अपने मानसिक, परिष्कार एवं आध्यात्मिक शांति लाभ के लिए ही भक्ति भावपूर्ण रचनाओं का निर्माण किया । किसी आश्रयदाता आदि के मनोरंजन के लिए नहीं । इनकी भक्ति किसी विशेष मतवाद अथवा साम्प्रदायिक सिद्धान्त से बँध कर नहीं चली है । इसका कारण भी स्पष्ट है सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक प्रतिपादन बुद्धि के क्षेत्र की वस्तु है । कवि हृदय का धनी होता है । भक्ति का सम्बन्ध हृदय से होता है अत: इन कवियों की भक्तिपरक रचनाओं में जो भी सिद्धान्त जहाँ कहीं प्रतिपादित हुआ है वह अनायास ही हुआ है। इसका यह आशय कभी नहीं निकालना चाहिए कि भक्त कवियों ने ज्ञान का खण्डन किया है । तुलसी, सूर, कबीर आदि अनेक भक्त कवियों के ऐसे दोहे तथा पद गिनाए जा सकते हैं जिनमें उच्च कोटि के दार्शनिक मतों का प्रतिपादन किया गया है । उदाहरणार्थ बिहारी का यह सोरठा देखा जा सकता है -

हौं समुझयो निरधार, यह जगु काँचौ काँच सौ ।
एकै रूपु अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु तहाँ ।।

अनेक समीक्षक इसी दोहे के आधार पर बिहारी को प्रतिबिम्बवादी मानते हैं परन्तु बिहारी में ऐसा कोई पूर्वाग्रह नहीं है । वो तो मूलत: कृष्णभक्त हैं । कृष्ण भक्ति का उनका इतना व्यापक परिप्रेक्ष्य है जिसमें सभी साम्प्रदायिक एवं दार्शनिक मत समाहित हो जाते हैं -

अपने अपने मत लगे, वादि मचावत सोरु ।
त्यौं त्यौं सबको सेइबौ, एकै नन्दकिशोर ।।

इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी के यहाँ ज्ञान और भक्ति में दार्शनिक निकटता एवं साम्प्रदायिक मतों में तथा निर्गुण एवं सगुण में कोई ऊँच-नीच की स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है । वे निर्गुण की व्यापकता के विषय में कहते हैं -

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तारन काल ।
प्रगटन निरगुन निकट रुहि चंग रंग गोपाल ।।

इसके विपरीत दूसरी ओर सगुण पक्ष में वे इतना बलपूर्वक कहते हैं कि उनके यहाँ मुक्ति भी धूलि सात हो जाती है -

जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकुति मुँह दीन ।
जो लहियै सँग सजन तौ धरत नरकहूँ की न ।।

उसे तो मोक्ष तभी अभीष्ट हो सकता है जबकि भगवान् स्वयं अपने सगुण रूप में आकर उससे मिलें । वहाँ ऐसे मोक्ष अथवा ब्रह्म की अपेक्षा नहीं की गई है जो अतीन्द्रिय एवं लोकातीत है-

मोहू दीजै मोषु, जो अनेक अधमनु दियौ ।
जौ बाँधै ही तौषु तो बाधै अपने गुननु ।।

यद्यपि रीति काल के अधिकांश कवियों पर राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा है । परिणामस्वरूप ब्रज बिहारी श्रीकृष्ण और राधा तथा गोपिकाओं का ही वर्णन उन्होंने अपना अभीष्ट माना । तथापि कुछ कवियों ने राधा कृष्ण के साथ ही साथ सीता राम की उपासना भी की । यह परम्परा सूर, तुलसी के समय से चली आ रही थी । सेनापति, पदमाकर, देव

और बिहारी ने भी उसी परम्परा का निर्वाह किया । बिहारी ने कृष्ण और राम दोनों की ही लीलाओं को अपना विषय बनाया -

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होइ ।।
तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुरागु ।
जिहि ब्रज केलि निकुँज मृगु, पग-पग होत प्रयागु ।।

अब उनकी रामचन्द्र के प्रति जो आस्था है, उसका वर्णन भी देखिए -

बन्धु भए का दीन के, को तारयो रघुराइ ।
तूठे-तूठे फिरत हौं, झूठे विरुद कहाई ।।
यह तिरिया नहिं और की, तू करिया वहि सोधि ।
पावन नाव चढ़ाइ जिहि, कीन्हे पार पयोधि ।।

इतना सब कुछ होने पर भी यदि आलोचक बिहारी को केवल कृष्ण भक्त कहते हैं तो वह उनकी मानसिक संकीर्णता ही है । वास्तव में तो बिहारी जब अपने आराध्य में लीन होते हैं तो वे राम और कृष्ण का भेद ही भूल जाते हैं और कह बैठते हैं -

कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिवौ मुरारि ।
बीवे मौसो आइकैं, गीधे गीधहि तारि ।।

यहाँ मुरारी श्रीकृष्ण का विशेषण है और गीध उतारने वाले श्रीराम । स्थूल रूप में देखने पर दोनों अलग-अलग परन्तु सूक्ष्मत: दोनों ही भगवान् विष्णु के अवतार हैं और बिहारी इसी सूक्ष्म तत्व को महत्त्व देते हैं । बिहारी से पूर्व भक्तिकालीन कवि सूर और तुलसी भी इस भेद को मिटा चुके हैं ।

कबीर की भाँति बिहारी ने भी भक्तों के बाह्म आडम्बर की खुल कर भर्त्सना की है । जप, माला, छापा, तिलक आदि को उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया । वे अन्तःकरण की शुद्धता को महत्त्व देते थे । उनका मानना था कि जब तक अन्तःकरण पवित्र नहीं होगा तब तक भक्त कभी भगवान् की शरण प्राप्त नहीं कर सकता । प्रवेश द्वार यदि कपटों के कपाटों से बन्द रहेगा तो उसमें हरि अथवा ब्रह्म प्रवेश कैसे कर पाएगा -

जप माला छापै तिलक, सरै न एकौ कामु ।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु ।।
सौ लगि या मन सदन में, हरि आवै किहि बाट ।
निपट विकट जी ली लगे, खुले न कपट कपाट ।।

बिहारी के भक्तिपरक दोहों में हास्य एवं सखाभाव की स्तुतियाँ भी देखने को मिलती हैं । जहाँ उन्होंने दास्य भाव की रचना की है वहाँ स्वभावत: सूरसागर' एवं 'विनय पत्रिका के पदों की सी दीनता, करुणा एवं पापकर्मों का स्पष्ट उल्लेख करने की ओर भी प्रवृत्त हुए हैं -

कीजै चित सोई तरे, जिहि पतितन के साथ ।
मरे गुन-औगुन-गुननु गनौ न गोपीनाथ ।।
हरि कीजतु तुम्सौं यहै, विनती बार हजार ।

जिहि तिहि भाँति डरयौ रहौं, परयौ रहौं बरबार ।।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी मूलत: श्रृंगारी कवि होने के साथ ही एक सहृदय भक्त कवि थे । भक्ति को दार्शनिकता के क्षेत्र से भिन्न करने का कोई मापदण्ड नहीं है । वस्तुत: भक्ति का अगला सोपान ही दर्शन का क्षेत्र है । बिहारी ने शुद्धान्त:करण होकर इस जीव और ब्रह्म के झमेले को इस प्रकार अपने दोहों में अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत कर दिया है कि उसकी हम मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं -

जगतु जनायौ जिहि सकतु, सो जगु जान्यौ नाहिं ।
ज्यौं आँखनि सब देखिये, आँखि न देखी जाहि ।।

या भव पारावार कौं, उलेघि पार को जाइ ।
तिय छवि छाया-आहिनी असै बीच ही आइ ।।

बिहारी तो यहाँ तक कहते हैं कि ईश्वर का स्मरण केवल दु:ख में ही नहीं करना और सुख में उसे भूल नहीं जाना चाहिए । उसे सदैव अपने मन में संजोकर रखना चाहिए -

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साइँहि न भूलि ।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि ।।

अत: ये कहा जा सकता है कि बिहारी की भक्ति भावना भक्तिकाल के किसी भी भक्त कवि से कम नहीं है। वह अलग बात है कि वे एक श्रृंगारी कवि के रूप में जाने जाते हैं । परन्तु यह निश्चिंत है कि उनकी भक्ति भावना रीति काल के कवियों में सर्वश्रेष्ठ है ।

14.3.2.3 सतसई में नीति तत्व :

बिहारी सतसई की रचना से पूर्व ही हिन्दी, अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत भाषा के साहित्य में नीतिपरक काव्य का पर्याप्त सृजन हो चुका था । काव्य शास्त्र की दृष्टि से नीतिपरक कविता में काव्य के उत्तम स्वरूप को उपदेशों की नीरसता आक्रान्त कर देती है । यही बात बिहारी के ऊपर भी शत-प्रतिशत लागू होती है । नीति शब्द जिन अर्थो में प्रयुक्त होता है उन सभी के मूल में यह भाव निहित है कि जीवन यात्रा को संयम और सुखपूर्वक कैसे आगे बढ़ाया जाए। नीति का अर्थ ही है ले जाना या आगे बढ़ाना । हमारे यहाँ धर्म को भी जीवन को आगे बढ़ाने वाला प्रेरक तत्व माना गया है । धर्म के अन्तर्गत लौकिक लाभ-हानि अथवा व्यवहार की दृष्टि सदैव कोई प्रतिमान बन कर नहीं आती है । उसके स्वरूप में चिरन्तनता है किन्तु नीति में चिरन्तनता नहीं है । बिहारी भी नीतिपरक दोहे लिख कर यह विवेचन करने के लिए प्रेरित हैं कि उनके दोहों में नीति का उल्लेख हुआ है । वस्तुत वे एक श्रृंगारी कवि थे । अत: करते श्रृंगार के अतिरिक्त जो भी विषय उनके दोहों में उद्वेलित है वह भक्ति और नीति है । बिहारी के नीतिपरक दोहे भी अपवाद स्वरूप लिखे गए हैं । जितने भी थोड़े-बहुत दोहे हैं वे उन्हें नीतिकार सिद्ध नहीं करते । ही यह अवश्य है कि उनकी नीति और भक्ति के साथ मिल कर वे उनके काव्य को भक्ति, रीति और नीति की त्रिवेणी बना देते हैं । बिहारी की नीतिपरक उक्तियाँ विदुर और चाणक्य की नीतिपरक उक्तियों के समान नहीं हैं । वे भोग-विलास, राग-रंग और सामान्य जीवन के लिए आपेक्षित व्यवहार को परिभाषित करती हैं । उनकी नीति में भी नेपथ्य से श्रृंगार झाँकता दिखाई देता है -

सम्पति केस सुदेस नर नमत दुहुक इक जानि ।
विभव सतर कुच नीच ना परम विभव की हानि ।।
जेतौ संपति कुपनि की तेती सूमति जोर ।
बढ़त जात ज्यों-ज्यों उरज त्यों-त्यों होत कठोर ।।
संगति दोषु लगे सबनु कहेति साँचे बैन ।
कुटिल बक भ्रू संग भए कुटिल बंक गति नैन ।।

इन दोहों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग प्रत्येक दोहे के मूल में श्रृंगार है । नीति तो जैसे गौण हो गई है । इसी प्रकार बिहारी के वे दोहे जैसे - 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु' ' और ' 'दिन दिन देखे वे कुसुम, ' भी श्रृंगार प्रेरित हैं । बिहारी ने राजनैतिक पराधीनता एवं समाज तथा व्यक्ति के जीवनादर्शों की पतनशीलता के प्रति सजग दृष्टि थी। हिन्दू राजाओं ने पराधीन वृत्ति के कारण उनमें विवेकशून्यता बढ़ गई थी । यही कारण था कि वे जहाँ एक ओर अपने ही लोगों को शोषण के चक्र में पीसते रहते थे और अपने को शूरवीर समझते थे वहीं दूसरी ओर निष्क्रियता और जड़ता ने उनके मनो मस्तिष्क को शिथिल कर दिया था । ऐसे राजाओं को सम्बोधित करते हुए बिहारी ने कहा था -

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग बिचारि ।
बाज पराये पानि परि तू पच्छिनु न मारि ।।
दुसह दुराज प्रजानि कौ, क्यों न बढ़े अति द्वंद्व ।
अधिक अंधेरौ जग करै, मिलि मावस रवि चन्द ।।

इन दोहों के माध्यम से वे शोषक राजाओं को चेतावनी देते हुए प्रतीत होते थे । बिहारी के दोहों में संगति का दोष, नीच का प्रभाव, धन का अहंकार, गुणो का आदर, वैभव से बिगड़ा स्वभाव, सच्चे प्रेमी का स्वभाव, समय का फेर, पद का लोभ आदि विषयों पर नीतिपरक उक्तियाँ कही-

मरतु प्यास पिंजरा परयौ, सुआ समै के फेर।
आदरु दै दै बोलियत, बायसु बलि की बेर ।।
गहै न नैकौ गुन-गरबु, हँसौ सबै संसारु ।
कुच उच पद-लालच रहै, गरैं परै हूँ हारु ।।
नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जाइ ।
जे तौ नीचौ ह्वै चलै, ते तौ ऊँचौ होइ ।।
अरे परेखै को करै, तुही विलोकि विचारि ।
किहि नर, किहि सर राखियैं, खरैं बढै परिवारि ।।
को कहि सके बड़ेनु सों, लखे बड़े हू भूल ।
दीनै दई गुलाब की, इनु डारनु ये फूल ।।
बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
भलौ भलौ कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जपु दानु ।।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिहारी सतसई श्रृंगार से ओतप्रोत रचना है । इसमें भक्ति और नीति के दोहे भी आए हैं परन्तु इस आधार पर उन्हें भक्त कवि या नीतिकार नहीं कहा जा सकता। समीक्षक भले ही कहें कि बिहारी सतसई में श्रृंगार, भक्ति और नीति की त्रिवेणी प्रवाहित है परन्तु मूलत: यह श्रृंगार की सरिता ही है । जिस प्रकार नदी के किनारों पर विविध प्रकार की वनस्पति उग आती है वैसे ही श्रृंगार की नदी के किनारों पर भक्ति और नीति की वनस्पतियाँ यत्र तत्र उग आई हैं । फिर भी निष्पक्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि बिहारी सतसई में एक भक्त एक नीतिज्ञ और एक रसिक तीनों की कवि रूपों के दर्शन हो जाते हैं ।

बोध प्रश्न

सही उत्तर पर निशान लगाए.

(1) बिहारी का जन्म कब हुआ था?

(क) 1652 ई. में

(ख) 1750 ई. में

(ग) 1610 ई. में

(घ) 1952 ई. में

(2) बिहारी ने किस दोहे से राजा जयसिंह को नई रानी के मोह से मुक्त किया और क्यों?

.....

.....

.....

(3) बिहारी के दीक्षा गुरु कौन थे?

(क) नरहरिदास जी

(ख) वल्लभाचार्य जी

(ग) तुलसीदास जी

(4) बिहारी के काव्य को भक्ति, रीति और नीति की त्रिवेणी क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

14.4 अभिव्यंजना शिल्प :

'बिहारी सतसई ' हिन्दी साहित्य के उन अनमोल रत्नों में से है जो वस्तु, उदात्त शैली और अभिव्यंजना कौशल के बल पर आज भी अपनी महत्ता बनाए हुए है । इसमें मुक्तक काव्य की समग्र विशेषताएँ अपने उच्चतम रूप में दिखाई देती हैं । यह वह कृति है जिसके अन्तर्गत काव्य के दोनों पक्ष अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष का समुचित सामंजस्य देखने को मिलता है । कवि जो अनुभव करता है उसे अपनी अनुभूति में ढाल कर अभिव्यक्ति के द्वार तक ले जाता हे । अनुभूति कितनी ही परिपक्व हो यदि अभिव्यक्ति शिथिल है तो काव्य प्रभावी

नहीं बन सकता अत: अनुभूति का खरापन जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यकता अभिव्यक्ति की प्रसन्नता की भी है ।

'बिहारी सतसई ' एक श्रृंगार प्रधान रचना है परन्तु इसमें भक्ति और नीति के दर्शन भी होते है । बिहारी रीति काल के एक ऐसे कवि थे जो उस काल के अन्य कवियों की भाँति वाणीगत कौशल, उक्ति-वैचित्रय भाषा के खरेपन, उसकी मधुरता, अलंकृति और चित्रमयता मे विश्वास करते थे । जहाँ एक ओर रीति बद्ध कवियों की जमात है वहीं भले ही कुछ लोगों ने बिहारी को रीतिसिद्ध नाम दे दिया हो किन्तु वे रीति परम्परा के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं । उनके काव्य में भाषा अलंकार, छन्दवैभव, काव्य रूप, बिम्ब विधान आदि प्रमुख हैं । हम 'बिहारी सतसई के कलात्मक सौन्दर्य का निरूपण करने के लिए इन्हीं बिन्दुओं पर प्रकाश डाल रहे है ।

14.4.1 काव्य भाषा :

बिहारी सतसई ' एक ऐसे कवि की रचना है जो ब्रज भाषा का कुशल कवि कहा जा सकता है। भाषा का निर्माण, शब्दों के योग से होता है और शब्द कई प्रकार के हो सकते हैं । 'बिहारी सतसई ' का शब्द विधान भी एक जैसा नहीं है । शब्दावली भले ही ब्रज भाषा की हो किन्तु अन्य भाषाओं के शब्द भी सतसई में देखने को मिलते हैं और उनकी संख्या कम नहीं है । 'बिहारी सतसई' में मुख्य रूप से ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है । ये शब्द भी दो प्रकार के हैं साहित्यिक और बोलचाल के या ग्रामीण । जैसे- चुनरी, विठौना, जोबन, आँखि, रह्यौ, परयौ, लह्यौ, भौन, छवि- छाक बिजुरी, चितवनि मुसकाइ बतियाँ आदि साहित्यिक ब्रज भाषा के शब्द हैं जबकि मरक, पजरै, पून्यौ, बुरै, गोरटी, गदराने औटे आदि ग्रामीण एवं बोलचाल के शब्द हैं जिनका बिहारी ने अपने साहित्य में प्रचुरता से प्रयोग किया है । ब्रज भाषा के साथ-साथ बिहारी ने संस्कृत शब्दों का भी खुल कर प्रयोग किया है । संस्कृत के तत्सम और तद्भव दोनों रूप की भाषा में दिखाई देते हैं । जैसे- विषम, चित्त, अनुरागी, सम्पत्ति, भृकुटि, कुण्डल, किंकिणी, तन्त्रीनाद, रति, पावत, पत्रा, तिथि, अद्वैता, प्रेम पयोधि आदि तत्सम शब्द हैं जबकि परस, उर्वशी, सरद, श्यामल, सीतकर, जतन, तरुन, सिरमौर, ग्रीषम आदि तद्भव शब्द बिहारी के काव्य में देखे जा सकते हैं । इसके अलावा बिहारी ने तत्कालीन विभाषाओं के शब्दों को भी अपने साहित्य में यत्र-तत्र उकेरा है जिनमें अवधि, बुन्देलखण्डी, खड़ी बोली आदि के शब्द प्रमुख हैं । जैसे- अवधी के लीन, कीन, दीन, लजियात आदि बुन्देलखण्डी के स्यों(साथ), घैरूं (बदनामी की बात), चाला (द्विरागमन), बीधे (उलझे) आदि शब्द तथा खड़ी बोली के चली, बैठी, उठी, उड़ी आदि शब्द उनके काव्य में मिल जाते हैं । ये वे शब्द हैं जो प्राय: सभी -ब्रजभाषी कवियों के काव्य में देखने को मिलते हैं । इसके अतिरिक्त सभी, गरूर, इजाफा, कबूल, रोज, बदरा, बाज, गुलाब, खूनी आदि अरबी फारसी शब्दों को भी 'बिहारी सतसई' में देखा जा सकता है ।

बिहारी की भाषा की यह विशेषता है कि उसमें भावों का अनुवर्तन होता चलता है । परिणाम यह निकलता है कि व्यापक शब्द भण्डार शब्द की आत्मा तक का परिचय चित्रोपम शैली के

माध्यम से पाठक या श्रोता तक पहुँचा देते हैं । बिहारी के काव्य को एक और विशेषता है वह है नाद सौन्दर्य । दोहे को पढ़ कर या इन कर ही एक संगीत-सा वातावरण में घुलता महसूस होता है । जैसे -

रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधुनीर ।
मंद-मंद आवत चल्यो, कुंजर-कुंज समीर ।।
ज्यौं-ज्यौं आवति निकट निसि, ज्यौं-त्यौं खरी उताल ।
झुमकि-झुमकि टहलैं करे, लगी रहचटैं लाल ।।

बिहारी की भाषा की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसमे लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग सहज ही हो जाता है । इसके लिए कवि को पृथक से कोई प्रयास नहीं करना पड़ता जैसे- पानी में का लोनु कान की पातरी दई-दई करना, आँख लगना, पीठ देना, दृढ़ लगना, लट्टू होना, चित्त चढ़ना, नाक चढ़ी रहना आदि मुहावरे तथा ' जीभ निबौरी क्यों लगै बौरी चखि अंगूर", "मुकुट को पाँव में पहनना' ' आदि लोकोक्तियाँ बिहारी के काव्य में सहज ही आ जाते हैं । इसके अतिरिक्त ध्वनि सिद्धान्त तथा 'भाषा की सामासिकता का प्रयोग भी बिहारी की काव्य भाषा में दिखाई देता है ।

बिहारी अपने युग के श्रेष्ठ कवि बन सके इसका मुख्य कारण उनकी भाषा और उसकी समाशक्ति तथा कल्पना की समाहार शक्ति ही है । वस्तुतः कहा जा सकता है कि अपनी भाषा के दम पर ही बिहारी ने रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में अपना नाम अंकित किया है ।

14.4.2 अलंकार सौन्दर्य :

संस्कृत काव्य शास्त्र में जितने भी सम्प्रदाय विकसित हुए उन सभी ने अपनेअपने सिद्धान्तों को काव्य की आत्मा कहा है । गम्भीरतापूर्वक देखने से दो प्रकार के विचारक सामने आते हैं । एक तो वे जो काव्य की आत्मा रस'और 'ध्वनि' को मानते हैं और दूसरे वे जो 'अलंकार, रीति और वक्रोक्ति को काव्यात्मा स्वीकार करते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन सबका अपना-अपना महत्त्व है । किन्तु यह निर्विवाद है कि जिस प्रकार मानव शरीर में आत्मा का महत्त्व है उसी प्रकार काव्यों में अलंकारों का महत्त्व है । बिना अलंकार के काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती । हिन्दी के रीतिकालीन कवि अलंकारवादियों से बहुत प्रभावी रहे हैं । यही कारण है कि बिहारी सतसई' में भी अलंकार के दोनों रूपों का (शब्दालंकार और अर्थालंकार) का प्रयोग चमत्कारपूर्ण ढंग से हुआ है। बिहारी ने अपनी सतसई में अनुप्रास, यमन, श्लेष, वक्रोक्ति और वीप्सा आदि अलंकारों का प्रयोग अधिकता से किया है । उदाहरणार्थ

अनुप्रास :

रससिंगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन ।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन ।।

यमक :

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान ।
तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी-समान ।।

श्लेष :

अजौं तरयौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक-रंग ।
नाक-बास बेसरि लह्यो बसि मुकुतनु कैं संग ।।

श्लेष-मिश्रित वक्रोक्ति :

चिरजीवौं जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर ।
को घटि, ए बृषभनुजा, वे हलधर के बीर ।।

इसी प्रकार अर्थालंकारों में बिहारी ने उपमा, रूपक, स्मरण, सन्देह, भ्राँतिमान, उत्पेक्षा, अतिशयोक्ति, दीपक, दृष्टान्त, व्यतिरेक, समासोक्ति, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग अपनी सतसई में किया । उदाहरणार्थ -

उपमा :

छती नेहु कागर हियैं, भई लखाइ न टाँकु ।
बिरह-तचैं उघरयौ सु अब सेंहुड़ केसो आँकु ।।

स्मरण :

सघन कुंज-छाया सुखद सीतल सुरभि-समीर ।
मनु ह्वै जातु अजौ वहै उहि जमुना के तीर ।।

रूपक :

तिय-तिथि तरुन-किसोर-वय पुन्यकाल-सम दोनु ।
काहूँ पुन्यनु पाइयतु वैस सन्धि-सन्क्रोनु ।।

सन्देह :

चकी जबी सी ह्वै रही बूझैं बोलति नीठि ।
कहूँ डीठि लागी लगी कै काहू की डीठि ।।

भाँति या भ्रम :

नाचि अचानक हीं उठे बिनु पावस बन मोर ।
- दित करी यह दिसि नन्द किसोर ।।

उत्प्रेक्षा :

मोरमुकुट की चंद्रिकनु यौं राजत नंदनंद ।
मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सत चंद ।।

अतिशयोक्ति :

छाले परिबे कैं डरतु सकैं न हाथ छुवाइ ।
झझकत हियैं गुलाब कैं झंवा झँवैयत पाइ ।।

दृष्टान्त :

कीनैं हूँ कोटिक जतन अब कहि काढै कौनु ।
भो मन मोहन रूप मिलि पानी मैं कौ लौनु ।।

विरोधाभास :

तो लीख मो मन जो लही, सो गति कही न जाति ।
ठोड़ी-गाड़ गडयौ तऊ उड्यौ रहै दिन रात ।।

समग्र विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि बिहारी की अलंकार योजना में कहीं-कहीं भले ही कल्पना और चमत्कारप्रियता दिखाई देती हो किन्तु अधिकांशत: उनके दोहों में सहज अलंकार ही स्थान पाते नजर आते हैं। अलंकार सौन्दर्य की दृष्टि से बिहारी का साहित्य अपने समकालीन साहित्य में श्रेष्ठ है ।

14.4.3 छन्द विधान :

छन्द शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी ने मुख्यत: 'दोहा' छन्द में ही रचना की है । कहीं-कहीं पर सोरठा नामक छन्द का भी उन्होंने प्रयोग किया है जो दोहे से मिलता- जुलता है। यह सभी जानते हैं कि दोहे को यदि उलटा कर दिया जाए तो वह सोरठा बन जाता है। दोनों ही मात्रिक छन्द हैं । दोनों में कुल मिला कर 48 मात्राएँ होती हैं । दोहे में 13 तथा 11 तथा सोरठे में 11 तथा 13 मात्रा पर यति होती है । दोहे के दूसरे तथा चतुर्थ एवं सोरठे के प्रथम तथा तृतीय चरण में अन्त्यानुप्रास होता है । बिहारी एक मुक्तक रचनाकार हैं । मुक्तक कविता की यह पहली शर्त होती है कि उसमें छोटे से छोटे छन्द का प्रयोग होना चाहिए इसलिए बिहारी ने दोहा और सोरठा छन्द ही अपने काव्य के लिए चुना । दूसरी बात यह है कि इसमें भाव व्यक्त करने की क्षमता अधिक होती है । थोड़े से शब्दों में बड़ी बात कह दी जाती है । इसीलिए बिहारी के दोहों के लिए कहा जाता है -

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक तीर ।
देखन में छोटे लगें,. घाव करैं गम्भीर ।।

बिहारी और छन्दों में भी कविता लिख सकते थे परन्तु दोहे की विशेषता ओर उसके प्रति बिहारी के मोह ने उसे दोहे के आसपास ही रखा । प्रश्न होता है कि बिहारी के दोहों में वे कौनसी विशेषताएँ हैं जो "घाव करें गम्भीर' ' को युक्ति युक्ति सिद्ध - करती है । इसका स्पष्ट उत्तर है बिहारी की समास-प्रधान पदावली तथा कल्पना की समाहार शक्ति । जिसके माध्यम से कवि ने 'गागर -में सागर' भरने का उद्योग किया है । वे एक रस सिद्ध कवि थे । उनके मनो-मस्तिष्क में विपुल कल्पनात्मक उदभाविका शक्ति थी । वे जब भी किसी भाव को दोहे में निबद्ध करते थे तो अनेक सुकुमार कल्पनाएँ आकर उनके दोहों का श्रृंगार करने लगती थीं । बिहारी ब्रज भाषा के अद्वितीय कवि थे । बड़े से बड़े तथ्य को दोहों की दो पंक्ति में व्यक्त करने की कुशलता उनमें थी । तभी तो मार्ग भ्रमित राजा जयसिंह को दो पंक्तियों के दोहे से वे सही मार्ग पर ले आए -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहि विकास इहि काल ।
अली कली ही सौ बाँध्यों, आगे कौन हवाल ।।

बिहारी के दोहे छन्द शास्त्र के नियमों से कसे हुए हैं । उनके पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों के दोहों से ऐसा गठन और ऐसी कसावट प्राय: नहीं मिल पाती । कबीर, तुलसी, वृन्द, रसनिधि आदि कवियों के दोहों में न्यून पदत्व तथा आधिक पदत्व दोष मिल सकता है किन्तु बिहारी के दोहों में यह दोष ढूँढने पर भी नहीं मिल सकते । अन्य कवियों के दोहों में गति एवं यति सम्बन्ध दोष पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं पर बिहारी के दोहों में यह दोष नहीं है । इसका स्पष्ट कारण है कि बिहारी के दोहों की भाषा इतनी सशक्त, प्रांजल एवं अर्थगर्भा है कि वही

पर अन्य दोषों के लिए अवकाश ही नहीं मिलता । यही कारण है कि किसी अन्य कवि के दोहों में यदि ऐसी प्रांजलता और सशक्तता दिखाई देती है तो लोग भ्रमवश उसे बिहारी का दोहा मान लेते हैं । अत: अन्त में यह कहा जा सकता है कि छन्द की दृष्टि से बिहारी का साहित्य अपनी पूर्ण समृद्धि के साथ आज भी रसज्ञों को आनन्द से सराबोर करता है ।

बोध प्रश्न ख

सही उत्तर पर निशान लगाएँ

(1) बिहारी के काव्य की प्रमुख भाषा कौनसी है?

(क) ब्रज

(ख) अवधि

(ग) खड़ी बोली

(घ) मैथिली

(2) बिहारी के काव्य को गागर में सागर क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

(3) बिहारी किस काव्यधारा के कवि हैं?

(क) रीतिबद्ध

(ख) रीतिमुक्त

(ग) रीतिसिद्ध

(4) बिहारी के काव्य में ब्रज भाषा के अतिरिक्त और किन-किन भाषाओं के शब्द प्रयुक्त हुए है ?

.....

.....

.....

.....

14.5 बिहारी के दोहों का वाचन एवं व्याख्या :

1. मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
   जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ ।।

शब्दार्थ : भवबाधा- सांसारिक कष्ट । नागरि- चतुर । झाँई - प्रतिबिम्ब । परै- पड़ने से । हरित-प्रसन्न ।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारी कृत 'बिहारी सतसई से लिया गया है।

प्रसंग : इस दोहे में बिहारी ने राधा और कृष्ण से विशेष रूप से राधा से प्रार्थना की है ।

व्याख्या : बिहारी रीतिबद्ध कवि थे । उस समय के कवि अपनी रचना प्रारम्भ करने से पूर्व ईश्वर की आराधना करते थे । बिहारी ने भी मंगलाचरण के रूप में राधा से प्रार्थना करते हुए कहा है कि हे राधा नागरी जिसके तन की परछाहीं अर्थात् आभा पड़ने मात्र से श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरे रंग की द्युति वाले हो जाते हैं । ऐसी राधिके मुझे भी भव-बन्धनों से मुक्त करो। अर्थात् गौर वर्ण राधिका और श्याम वर्ण कृष्ण दोनों के रंगों के मेल से हरा रंग बनना लोक प्रसिद्ध है । इस भाव को कवि ने अपने दोहे में प्रस्तुत किया है । दूसरे अर्थ में वे कहते हैं कि हे राधा नागरि जिसके तन की झाँई अर्थात् झलक आँखों में पड़ने मात्र से ही कृष्ण प्रसन्न-वदन हो जाते हैं ऐसी राधिका मेरी भी भव-बाधाओं को हरो । इस अर्थ से कवि श्री राधिका जी से श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रेमपात्री होने की प्रशंसा करता हुआ उनसे अपनी भव-बाधा निवारण की प्रार्थना करता है । तीसरे अर्थ में वे कहते हैं हे राधा नागरि जिसके रूप का ध्यान पड़ने से ही भक्त के हृदय में आने वाले काले रंग अर्थात् कलुषित पातिक भावनाएँ अपना दुःखद प्रभाव छोड़ देती हैं तथा प्रसन्नता अपना स्थाई घर बना लेती हैं ऐसी राधिके मुझे भी इस सांसारिक बन्धनों से मुक्त करें ।

विशेष : कवि पर राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है अत: राधा की उपासना पर कवि ने विशेष बल दिया है । बिहारी सतसई के अन्य दोहों में भी राधिका कृष्ण के साथ प्रमुखता से दिखाई देती है ।

प्रस्तुत दोहा मंगलाचरण के रूप में भी सतसई में माना जा सकता है ।

2. नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहि काल ।
   अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगै कौन हवाल ।।

शब्दार्थ : पराग-सौरभ । विकास-खिलना या प्रस्फुटि होना । अली-भ्रमर, मित्र । हवाल-हालात।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारी कृत 'बिहारी सतसई' से गया है ।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहा सवाई राजा जयसिंह को मुग्धा नायिका की आसक्ति से मुक्त करा ' राज्य कार्य में संलग्न करने के लिए कवि ने रचा था ।

व्याख्या : इस दोहे में महाकवि बिहारी किसी मुग्धा नायिका में आसक्त नायक को शिक्षा देते हुए कह रहे हैं कि न तो अभी इस कली में पराग ही आया है न ही मधुर मकरन्द ही, न ही अभी इसके विकास का क्षण ही आया है । अरे भंवरे अभी तो यह एक कली मात्र है तुम अभी से इसके मोह पाश में बंध कर अन्धे हो गए हो। जब यह कली खिल कर फूल बन जाएगी और अपने पराग कणों से वातावरण को महकाएगी तब तुम्हारी क्या दशा होगी? अर्थात् जब नायिका यौन सम्पन्न सरसता से प्रफुल्लित हो जाएगी तब नायक की दशा क्या होगी? स्पष्ट है कि तब तो उसकी आसक्ति और मोह और अधिक बढ़ जाएगी ।

विशेष :

1. कली मुग्धा नायिका और अली नायक के लिए प्रयुक्त हुआ है ।
2. इस दोहे की भाषा ब्रज है ।
3. अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

4. इसके विषय में महाराजा जयसिंह का अपनी नवोधा रानी के विलास में लिप्त हो राज कार्य भूलने की अन्तर्कथा है जिसे बिहारी ने उक्त दोहे के माध्यम से पुन: राज्यानुमुख किया था ।

3. बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय ।
   सौंह करै, भौंहनि हँसै, देन कहै नटि जाय ।।

शब्दार्थ : बतरस-बातचीत का आनन्द । लाल-प्रियतम, कृष्ण । मुरली-बाँसुरी । लुकाय-छिपा कर । सौंह करे-कसम खाती है । नटि जाय-इनकार कर देती है ।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारी कृत 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे में राधा ने कृष्ण से बातचीत का आनन्द लेने के लिए उसकी मुरली छिपा कर रख ली ।

व्याख्या : राधा ने कृष्ण से आनन्द विनोदपूर्वक बातचीत करने के लोभ में उसकी मुरली छिपा कर कहीं रख दी । कृष्ण जब मुरली ढूँढते हुए उससे पूछते हैं कि क्या मुरली तूने छिपाई है तो वह कभी कसम खाती है कि मैंने नहीं छिपाई तो कभी भौंहों ही भौंहों में हँसने लगती है। जिससे कृष्ण को यह संदेह हो जाता है कि अवश्य ही वह मुरली राधिका ने ही छिपाई है । फिर राधिका कृष्ण को मनाती हुई कहती है कि अच्छा मैं मुरली दे दूँगी परन्तु कुछ देर बाद ही वह मुरली देने से इनकार कर देती है और कहती है कि मैंने छिपाई ही नहीं । राधा और कृष्ण का यह रास देखते ही बनता है ।

विशेष :

1. प्रस्तुत दोहा ब्रज भाषा में है ।
2. दीपक और स्वाभावोक्ति अलंकार का इसमें प्रयोग हुआ है ।
3. नायक और नायिका के मनोविनोद को कवि ने इसमें प्रस्तुत किया है ।
4. कनक कनक ते सौं गुनी, मादकता अधिकाय ।
   या खाये बौराय है, या पाये बौराय ।।

शब्दार्थ - कनक-स्वर्ण, धतूरा । मादकता-नशीलापन । बौराय-पागल हो जाना ।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारी कृत 'बिहारी सतसई' से लिया गया है।

प्रसंग : कवि ने इस दोहे के माध्यम से सोने और धतूरे के गुणों के साम्य को प्रस्तुत करते हुए सोने को धतूरे से अधिक नशीला बताया ।

व्याख्या : कवि बिहारी कहते हैं कि सोना धतूरे से अधिक नशीला है । या कहें कि सौ गुना अधिक नशीला है क्योंकि धतूरे को तो मनुष्य खाने से ही पागल होता है परन्तु सोने को तो पाकर ही मनुष्य पागल हो जाता है अर्थात् मनुष्य मानवता से गिर जाता है ।

विशेष :

1. प्रस्तुत दोहे में ब्रज भाषा का प्रयोग है ।
2. यमक और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग है ।
3. नीतिपरक दोहा है ।

बोध प्रश्न ग

निम्न दोहों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ ।।

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहि काल ।
अली, कली ही सौं बंध्यौ, आगै कौन हवाल ।।

14.6 सारांश :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि 'बिहारी सतसई' में कविवर बिहारी ने न केवल श्रृंगार रस का दृष्टिपोषण किया, अपितु उसमें बहुमुखी जीवन और जगत् के रूपों का वर्णन किया है । बिहारी मूलत: कवि थे । वे अनेक शस्त्रज्ञ अथवा पंडित थे तथापि उनके सम्मुख यह लक्ष्य कभी नहीं रहा कि वे अपनी बहुज्ञता का विज्ञापन करते । यत्रतत्र ज्योतिष, गणित, वैद्यक अथवा पुराणों की कथाओं का जो प्रयोग उन्होंने किया है, वह उसी के लिए ही, पाठकों को चमत्कार-विजडित के लिए नहीं ।

बिहारी अपने युग के एक सुशिक्षित, अध्ययनशील एवं जागरूक कवि थे, अत: उनकी कविता का परिप्रेक्ष्य अन्य अनेक रीतिकालीन कवियों के समान संकुचित नहीं रह सका, बहुभाषाविज्ञता अलंकार-चातुर्य, काव्यशास्त्र निपुणता, श्रृंगार, शांत एवं यत्र-तत्र हास्य तथा वीर रस 'आदि की व्यंजना ने उनकी सतसई' को हिन्दी काव्य-साहित्य का एक उज्ज्वल आलोकस्तम्भ बनाने की चेष्टा की है । सारांश यही है कि बिहारी प्रारम्भ से ही सुसंस्कृत वातावरण में रहे थे, अत: उनके अनुभव तथा ज्ञान की सीमाओं में इतना विस्तार आ गया था, जिसको उन्होंने अपनी प्रतिभा के सहारे काव्य-श्रृंखला में अनुस्यूत कर दिया ।

14.7 शब्दावली :

भव बाधा-सांसारिक विघ्न बाधाएँ आदि, नागरि-चतुर, झाई-परछाई अर्थात् आभा, हरित दुति-प्रसन्नचित्त, सनि-शनिचर नामक ग्रह, कंजल-काजल, चख-चक्षु, झाख-झष अर्थात् मछली, सुदिन-श्रेष्ठ घड़ी, महामुनि मैन-कामदेव रूपी महामुनि, काननु-वन प्रदेश, नैन-नेत्र, संयम रखने वाला योगी, पातरी-सुकुमार, यहाँ इसका आशय कान की कच्ची से है, आक-कली - मदार नामक वृक्ष की कली, झुलमुली-कानों में धारण किया जाने वाला आभूषण, ओप-कांति चिलक-चमक, आतप-रोसु - कष्टप्रद मान करना सूर्य के ताप की प्रचण्डता, तरयौना-कान का आभूषण, ज्ये तर न पाया हो, करि-हाथी, तरहरि-नीचे, समुहाति-सामना करती है, तारि-तारना पराग-पुष्प की रज, व्याल-दशा, केसरि-आड-गरु - केसर का तिरछा लगा हुआ तिलक वृहस्पति है, लहि-लेकर रसमय-अनुरागपूर्ण, जल से परिपूर्ण अहेरी-शिकारी, कुचैन-व्याकुल, करबर-चीता, पैठि-घुसकर, होमती-आहुती देती है, लाल-नायक, बरजीते-बलपूर्वक जीत लिया है,

मैनके-कामदेव के, टेरत-पुकारना गुहार लगाना, जगनाइक-संसार के नायक, जग-बाइ - संसार की हवा ।

14.8 संदर्भ ग्रन्थ :

बिहारी सतसई : बिहारी

हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

मध्यकालीन काव्य भाषा : रामस्वरूप चतुर्वेदी

रीति काव्य की भूमिका : डॉ. नगेन्द्र

अकबर : द ग्रेट मुगल : जे. एस. हॉलेन्ड

बिहारी और उनका साहित्य : डॉ. हरवंशलाल शर्मा

बिहारी वैभव : डॉ. भागीरथ मिश्र

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न :

(1) "बिहारी एक बहुज्ञ कवि थे ।' पठित अंशों के आधार पर इसकी विवेचना कीजिए ।

(2) "बिहारी श्रृंगार के श्रेष्ठ कवि थे ' उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।

(3) "बिहारी के काव्य में भक्ति नीति और श्रृंगार की त्रिवेणी प्रवाहित होती है । ' इस कथन पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 15

घनानंद का काव्य

ईकाई की रुपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 'रीति' का अर्थ तथा रीतिकाल का तात्पर्य
15.3 रीतिकाल की सामान्य परिस्थितियाँ
15.3.1 राजनीतिक परिस्थिति
15.3.2 सामाजिक परिस्थिति
15.3.3 सांस्कृतिक परिस्थिति
15.4 रीतिकालीन साहित्य का वर्गीकरण
15.4.1 रीतिबद्ध
15.4.2 रीति सिद्ध
15.4.3 रीति मुक्त
15.4.4 अवान्तर काव्य धारा
15.5 रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्य धारा के प्रमुख कवि
15.6 घनानंद जन्म और व्यक्तित्व
15.6.1 घनानंद का रचना संसार
15.7 घनानंद के काव्य का भाव सौन्दर्य
15.7.1 प्रेम व्यंजना
15.7.2 विरह भावना
15.7.3 भक्ति भावना
15.8 घनानंद के काव्य का शिल्प सौन्दर्य
15.9 व्याख्याएँ
15.10 सारांश
15.11 संदर्भ ग्रन्थ
15.12 अभ्यास के प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्य धारा के प्रमुख तथा सर्वश्रेष्ठ कवि घनानंद को उनके संपूर्ण वैशिष्टय के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

1. रीतिकाल के अर्थ, नामकरण व वर्गीकरण का भी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा साथ में घनानंद के युगीन परिवेश को भी जान सकेंगे ।
2. घनानंद के जीवन व उनकी कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
3. घनानंद के काव्य में भाव सौन्दर्य व शिल्प सौन्दर्य को समझ सकेंगे
4. रीतिकाल के परिप्रेक्ष्य में घनानंद के काव्य के महत्व को प्रतिपादित कर सकेंगे ।
5. विशिष्ट दोहों की व्याख्या व विवेचना कर सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

सामान्य तौर पर रीतिकाल का नाम आते ही हिन्दी साहित्य का विद्यार्थी ऐसे काव्य और कवियों के रचना संसार की कल्पना करता है जहां केवल कल्पना की क्रीड़ा है, भाव तथा अनुभूति गौण किंतु भाषा व अभिव्यक्ति का चमत्कार अधिक है । छन्दों की छटा है और अलंकारों की घटा है । आश्रयदाताओं की प्रशंसा है एवं काव्य के लक्षण निरुपित करने वाले आचार्यो की भीड़ है । जहाँ काव्य बुद्धि को चमत्कृत तो करता है लेकिन हृदय को समग्र नहीं कर पाता। इस इकाई में रीतिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों के संदर्भ में ही एक ऐसे रीतिमुक्त स्वच्छंद भावों के वर्चस्वी कवि घनानंद का परिचय दिया गया है जो मुगल दरबार में रहते हुए भी स्वच्छंद भावनाओं के कवि हैं । प्रेम की पवित्रता तथा प्रिय का स्मरण ही उनके काव्य का चरम लक्ष्य था । इसीलिए उन्हें 'सुजान सनेही' तथा 'महानेही' कहा गया है । उनके अनन्य प्रशंसक ब्रजनाथ ने तो यहाँ तक कहा है-

"समुझै कविता घनआनंद की,
हिय ऑखिन नेह की पीर तकी ।।"

15.2 'रीति' का अर्थ तथा रीतिकाल का तात्पर्य

'रीति' शब्द व्याकरण के अनुसार 'रीड' धातु में क्तिच प्रत्यय के योग से बना है, जिसका शब्दार्थ है-प्रणाली, मार्ग, पंथ, शैली, पद्धति इत्यादि । संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति शब्द दो अर्थो में प्रयुक्त हुआ है-प्रथम काव्य रचना के मार्ग या पद्धति के अर्थ में तथा दूसरा संस्कृति एक सम्प्रदाय के अर्थ में । रीति सम्प्रदाय के पोषक आचार्य वामन ने रीति को परिभाषित करते हुए कहा-

'विशिष्ट पद रचना रीति' ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के पश्चात रीतिकाल वि.सं. 1700 से वि.सं. 1900 की अवधि के मध्य रचित साहित्य सृजन की प्रवृतियों का युग कहा जाता है । यह काल भक्तिकालीन आध्यात्मिक संस्कारों के विपरीत स्थूल श्रृंगारिक तथा चमत्कारपूर्ण काव्य सृजन, काव्यशास्त्रीय चिंतन तथा राजाओं के संरक्षण में रचित प्रशंसामूलक काव्य रचना का युग है। यह युग जहाँगीर के सौंदर्य प्रेम, शाहजहाँ के स्थापत्य कला अनुराग तथा औरंगजेब आलमगीर की साम्प्रदायिक नीतियों का है तो दूसरी ओर परवर्ती काल में मुहम्मद शाह 'रंगीला' तथा नवाब वाजीद अलीशाह जैसे शासकों का है तो दक्षिण में छत्रपति शिवाजी, पंजाब में गुरुगोविन्द सिंह जैसे स्वातंत्रयवीर शासकों का भी है । मुगल साम्राज्य का पतन तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी

के कुशासन तथा उसके विरुद्ध भारतीय जनता के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के शंखनाद का भी युग यही रीतिकाल है । यहीं से भारतीय इतिहास का पुर्नजागरणकाल व आधुनिक चेतना का युग करवट लेता है । इस काल खण्ड के दो शताब्दियों के साहित्य सृजन की प्रवृत्तियों के आधार पर इसे आचार्य पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'श्रृंगारकाल', मिश्र बन्धुओं ने 'अलंकृतकाल', डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने 'कलाकाल', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'रीतिकाल' के नाम से संबोधित किया है |

15.3 रीतिकालीन सामान्य परिस्थितियाँ

15.3.1 राजनीतिक परिस्थिति

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल सं. 1700 से 1900 वि. माना गया है । राजनैतिक स्तर पर यह काल जहांगीर,शाहजहां तथा औरंगजेब के अधीन रहा । जहांगीर ने विशेष राजनैतिक उपलब्धि तो प्राप्त नहीं की, किंतु सुरा' और सुन्दरी के प्रति अत्यधिक रुझान तथा असंतुलित आकांक्षा अपने उत्तराधिकारियों को भेंट स्वरुप अवश्य प्रदान की । शाहजहां का काल सुख, समृद्धि विलासिता का काल था । शाहजहां स्वयं कला प्रेमी व धर्म सहिष्णु था । परिणामस्वरूप वैभव प्रदर्शन की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिसका प्रभाव कला व साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक ही था । औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता व साम्राज्य विस्तार की लालसा ने राजा व प्रजा के मध्य भेद को बढ़ावा दिया । इसी कारण प्रजा में असंतोष व विरोध का स्वर अधिक हो गया । सामन्त वर्ग स्वतंत्र व निरंकुश हो जनता के दायित्व से विमुख ऐश्वर्य और विलास में निमग्न हो गये । नादिरशाह व अहमदशाह अब्दाली के हमलों से औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया । संपूर्ण देश में अशांति, अराजकता, असंतोष व्याप्त हो गया । सामन्त व जमींदार स्वार्थवश वर्ग भी अपने वैभव, विलास के लिए कालान्तर में अंग्रेजों के हाथों की कठपुतलियाँ बनकर रह गये ।

5.3.2 सामाजिक परिस्थिति

विलासी तथा निरंकुश शासन के आधीन समाज के बौद्धिक स्तर व मनोबल का ह्रास हुआ । राजप्रासाद में सुरा और सुन्दरी के प्रभाव ने नारी की गरिमा को खंडित किया । नारी केवल विलास व मनोरंजन की सामग्री बनकर रह गयी । जनसाधारण में जाति भेद, बाल विवाह, टोने टोटके, अंधविश्वास और अनैतिकता हावी हो गयी । धार्मिक विपन्नता के कारण पंडितों, पुजारियों की पवित्रता देवदासियों की मांसलता में विलुप्त हो गयी । सर्वत्र विलासिता, श्रृंगारिकता, ऐश्वर्य, वैभव प्रदर्शन ने सामाजिक व्यवस्था को खोखला कर दिया ।

15.3.3 सांस्कृतिक परिस्थिति

रीतिकाल की सांस्कृतिक चेतना दरबारों तक ही सिमट कर रह गयी । राजाओं, नरेशों, सामन्तों ने संगीत कला, नृत्य कला, स्थापत्य कला और चित्रकला को प्रश्रय प्रदान किया. । फलस्वरूप साहित्य क्षेत्र में 'स्वामिन: सुखाय' की भावना से प्रेरित चमत्कार प्रदर्शन, अलंकारों की

अतिशयता, वैभव प्रदर्शन ,श्रृंगारिकता, नायक-नायिका भेद ही अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया । भगवान श्री कृष्ण व राधा के पवित्र प्रेम को सांसारिक स्थूल मांसलता का परिधान पहनाकर रीतिकालीन कवियों ने कहा-

'आगे के सुकवि रीझि हैं तो कीठताई, न तो राधिका कान्ह सुमिरन को बहानो है ।'

रीतिकालीन राजाओं द्वारा कला व साहित्य को दिये गये प्रश्रय से भले ही कला व साहित्य में वैभव प्रदर्शन, प्रवृत्ति तथा श्रृंगारिकता का प्राधान्य हो गया हो किंतु इन्हीं प्रवृत्तियों ने स्थापत्य कला, संगीत कला व चित्रकला के ऐसे विलक्षण, अद्भुत नमूने प्रदान किये जो आज भी अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं । शाहजहां की कलाप्रियता ने तो जैसे इमारतों में जान ही डाल दी । ताजमहल, मयूर सिंहासन, जामा मस्जिद, मकबरे, अढ़ाई दिन का झौंपड़ा, लाल किला इत्यादि इमारतें इस काल की स्थापत्य कला के उत्कृष्ठ नमूने हैं ।

संगीत के क्षेत्र में भारतीय व फारसी संगीत का मिश्रण हुआ । इस युग में चतुरंग शैली में ख्याल, तराना, और रसगम के मिश्रण से संगीत की रसीली व वैचिन्यपूर्ण रचना की गयी। साहित्य में जो काव्यशास्त्र ग्रंथ संस्कृत में लिखे जाते रहे हैं उनका हिन्दी साहित्य में अनुकरण प्रवेश रीतिकाल की ही देन रही है । इस काल में रीतिशास्त्र सम्मत उत्कृष्ठ रीतिग्रंथों की रचनाएं हुई है |

15.4 रीतिकालीन साहित्य का वर्गीकरण

रीतिकाल के अन्तर्गत मुख्यत: दो प्रकार की रचनाएं मिलती हैं । प्रथमत: वे रचनाएं जिनमें काव्यशास्त्र सिद्धांतों रस, छंद, रीति, वृत्ति, शब्द- शक्ति, अलंकार, नायक-नायिका भेद, नाटक, गुण चमत्कार आदि के आधार पर लिखी गयी तथा दूसरे वर्ग में वे रचनाएं जिनमें स्वच्छंद काव्य भाषा, भाव और शैली से लक्षण ग्रंथों से मुक्त लिखी गयी-रीति काव्य कहलाती है । रीतिकाल को अलंकृत काल, रीतिकाव्य, श्रृंगारकाल, कलाकाल इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है ।

संस्कृत काव्य शास्त्र में काव्यांगों रस, अलंकार, ध्वनि, रीति व वक्रोक्ति को आधार बनाकर काव्य संबंधी सभी अंगों का चित्रण लक्षण व उदाहरण के साथ प्रयुक्त हुआ है । कृपाराम का 'हितरंगिणी', अर्ब्दुरहमान का 'संदेश रासक', कुशललाभ का 'ढोला मारु का दूहा', नंददास की 'रसमंजरी', रहीम की 'बरवै नायिका भेद' तथा सूरदास की साहित्य लहरी इत्यादि रचनाओं में रीतिकाव्य की परम्परा का निर्वाहन हुआ है ।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल को काव्य सृजन के आधार पर तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है-

(1) रीतिबद्ध (2) रीतिसिद्ध (3) रीतिमुक्त्ता

15.4.1 रीतिबद्ध काव्य

संस्कृत काव्य शास्त्र में वर्णित लक्षण व लक्ष्य ग्रंथों को आधार बनाकर लिखा गया रीति युगीन काव्य रीतिबद्ध कहलाया । रीतिबद्ध काव्य पाण्डित्य प्रदर्शन, आचार्यत्व भावना, आश्रयदाता की प्रशंसा के प्रयोजनार्थ लिखा गया । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार, ' रीतिबद्ध

कवि वे हैं जिन्होंने लक्षण और उदाहरण दोनों पर आधारित रचनाएं की । इन्होंने संस्कृत के काव्य शास्त्र के आधार पर काव्यांगों के लक्षण देते हुए उनके सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये। इन कवियों ने अपने आपको कवि शिक्षक भी कहा है । इन कवियों का उद्देश्य किसी प्रकार के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करना नहीं था । ये तो काव्य शास्त्र द्वारा निर्मित बंधी बंधाई परिपाटी का अनुकरण करके लक्षण एवं लक्ष्य ग्रंथ लिखते रहे । ऐसे कवियों को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'रीति बद्ध कवि' कहा है जबकि डॉ. नगेन्द्र ने इन्हें 'रीतिकार' या ' आचार्य कवि' के नाम से अभिहित किया । हिन्दी साहित्य के वृहद् इतिहास के अनुसार इन्हें 'रीति ग्रन्थकार कवि' माना गया है । रीतिबद्ध काव्यधारा में केशव 'रसिक प्रिया' 'कवि प्रिया', 'रामचन्द्रिका', चिन्तामणि की 'कविकुल कल्पतरु', ' श्रृंगार मंजरी', 'काव्य प्रकाश', जसवन्त सिंह 'भाषा भूषण', ' आनंद विलास', ' मतिराम', 'ललित ललाम', ' रस राज', ' अलंकार पंचाशिका', कुलपति मिश्र ' रस रहस्य', 'नख शिख', 'देव शब्द रसायन', 'सुख सागर' 'रस विलास भिखारीदास', ' काव्य निर्णरु', 'रस सारांश', 'श्रृंगार निर्णय', इत्यादि प्रमुख कवि एवं काव्य है ।

15.4.2 रीतिसिद्ध काव्य

रीतिसिद्ध कवियों ने रीतिबद्ध काव्य के समान लक्षण व उदाहरण ग्रंथ प्रस्तुत नहीं किये अपितु इन लक्षण व लक्ष्य ग्रंथों का आधार ग्रहण कर अपनी स्वतंत्र काव्य रचनाएं प्रस्तुत की अर्थात् ऐसे कवि जिन्होंने रीतिकाव्य की परम्परा का निर्वाहन तो किया किंतु लक्षण ग्रंथों की रचना न करके स्वतंत्र रुप से उदाहरणों की रचना की । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे मध्यम मार्ग का काव्य माना है क्योंकि इसमें न तो लक्षण उदाहरण की आचार्यवादी परम्परा है न ही रीतिमुक्त काव्य का स्वच्छंद भावावेग ही । इस वर्ग के कवि ' शास्त्रकायोमय कवि' माने गये हैं जो रीति से बंधे भी हैं और स्वच्छंद भी ।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार केवल लक्षण ग्रंथों की रचना करने वाले अर्थात् सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले रीतिबद्ध कवि हैं और लक्षण व उदाहरण जुटाने वाले रीतिसिद्ध कवि ।

'हिन्दी साहित्य के वृहद् इतिहास के छठे भाग में रीतिबद्ध कवि बिहारी, बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, नेबाज, द्विजदेव आदि को माना है ।

रीतिसिद्ध परम्परा के शीर्षस्थ कवि बिहारी का समस्त काव्य सृजन दरबारी काव्य परम्परा की प्रशंसा प्रयोजनार्थ किया गया । जयपुर नरेश जयसिंह के दरबारी कवि बिहारी की एक ही रचना 'सतसैया' या 'सतसई' नाम से मिलती है जिसमें श्रृंगार, नीति व भक्ति से संबंधित 713 दोहे संकलित हैं ।

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।
भरे भौन मैं करत है, नैननु ही सौं बात ।।
इन दुखिया अंखियानु कौं, सुख सिरज्यौई नाहिं ।
देखैं बनै न देखते, अनदेखे अकुलाहिं ।।

उपर्युक्त दोहे श्रृंगार अधिष्ठाता कवि बिहारी की श्रृंगारिक भावना को लक्षित करते हैं तो भक्ति एंव नीति संबंधी निम्न उदाहरण दृष्टव्य हैं-

मेरी भय बाधा हरौ, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झांई परै, स्यामु हरित दुति होय ।।
बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय ।
कहत धतुरे सौं कनक, गहनों गढ़यो न जाय ।

15.4.3 रीतिमुक्त काव्य

रीतिकाल में काव्यशास्त्रीय रीतिबद्ध परम्पराओं से मुक्त स्वच्छंद स्वानुभूतिमयी आत्मभिव्यंजना का साहित्य रीतिमुक्त काव्य कहलाया । हिन्दी साहित्य के वृहद इतिहास के अनुसार, इस धारा प्रेम और श्रृंगार के सभी कवि है । 'इन कवियों के मन में जहां एक ओर शास्त्रीय काव्य परम्परा के प्रति विद्रोह था, वहीं इनके अन्तर्मन ने सामाजिक मर्यादाओं और रुढ़ियों के प्रति भी परवाह न करते हुए स्वच्छंद प्रेम का मार्ग ग्रहण किया और प्रेम और श्रृंगार की मर्मस्पर्शी रचनाएं प्रस्तुत की । एक प्रकार से रीतिमुक्त काव्य का नामकरण इन्हीं रचनाओं के आधार पर हुआ ।' (1)

आचार्य शुक्ल के अनुसार, 'ये वे कवि हैं, जिन्होंने प्रयत्न करके कविता नहीं लिखी हैं, कविता इनके हृदय से फूट पड़ी है । रीतिबद्ध कवियों ने चमत्कार की अभिव्यक्ति के लिए बुद्धि प्रेरित कविता लिखी जबकि रीतिमुक्त कवियों ने भाव भावित कविता लिखी है । रीतिमुक्त कवियों ने काव्य को साधन रुप में नहीं, साध्य रुप में ग्रहण किया है ।

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत ।

डॉ. बहादुरसिंह के अनुसार, 'रीतिकालीन युग के कवि जिन्होंने साहित्य शास्त्र द्वारा सुझाई गई परिपाटी से बद्ध होकर काव्य रचना न करे स्वतंत्र रुप से अपने उन्मुक्त भावों की अभिव्यक्ति की, उन्होंने किसी प्रकार के लक्षण ग्रंथों का निर्माण नहीं किया वे रीति मुक्त कहलाए । ऐसे कवियों में आलम, बोधा, ठाकुर, घनानंद प्रमुख हैं । भले ही इनके द्वारा रचित काव्य में रीति का आगमन अनायास होता रहा हो । ये तो भाव को प्रमुख बनाकर रचना कर रहे थे न कि काव्यांगों की चिंता में ।

15.4.4 अवान्तर काव्य धारा

रीतिकाल जिसे अलंकरण काल तथा श्रृंगारकाल कहा गया है उसमें ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने वीरों के यशोगान को अपने काव्य का विषय बनाय है उनमें भूषण, सूदन, गोरेलाल, पदमाकर, खुमान, जोधराज आदि उल्लेखनीय है । वीर काव्य के साथ भक्ति काव्य में दरिया साहब, चरनदास, पलटूनाहब, तुलसी साहब प्रेमाख्यानक काव्य में नूरमुहम्मद, बोधा, कासिमशाह, शेख निखार, दुखहरदास कृष्ण भक्त कवियों में नागरीदास हित वृन्दावन, अलबेली अली । रामभक्ति कवि भगवन्तराय खीची, लालदास, गुर गोविन्द सिंह, जानकी रसिक शरण तथा नीतिकाव्य धारा के गिरिधर कविराय, बैताल, दीनदयाल गिरि, साहिब सिंह मृगेन्द्र प्रमुख कवि हैं ।

15.5 रीतिमुक्त स्वच्छंद काव्य धारा के प्रमुख कवि

'रीतिकालीन साहित्य के वे कवि जिन्होंने रीति परम्परा की ओर ध्यान देते हुए, अर्थात् रीति परम्परा की साहित्यिक रूढ़ियों, परम्पराओं, नियमों आदि से मुक्त हो स्वतंत्र रूप से अपनी स्वानुभूति को चित्रित कर रहे थे रीतिमुक्त कवि कहलाए । इन्होंने जानबूझ कर रीति परम्परा के नियमों का पालन नहों किया, अनायास रूप में रीति का निर्वाह हुआ तो कोई परवाह नहीं की । ऐसे कवियों में घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि का नाम उल्लेखनीय है । '(4)

आलम : - औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम शाह के दरबारी कवि आलम जाति से ब्राह्मण थे किन्तु एक रंगरेजिन शेख के प्रेम में वशीभूत हो मुसलमान हो गये और शेख से विवाह कर लिया। शेख और आलम के प्रेम से सम्बद्ध एक कथा प्रसिद्ध है । एक बार आलम की अपनी पगड़ी के खूंट में एक कागज का टुकड़ा बंधा रह गया, जिसमें दोहे की आधी पंक्ति लिखी हुई थी- 'कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन' शेख रंगरेजिन भ अच्छी कविता करती थी । उसने भक्त दोहे अर्द्धाली को पूरा करके 'कीट को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धीर दीन' लिखकर उस कागज को ।

यथावत रख पगड़ी लौटा दी । इस प्रकार दोहे की एक पंक्ति ही उनके मध्य प्रेम का कारण बनी । आलम की रचनाओं में बहुत सी रचना शेख की भी मानी जाती है । आचार्य शुक्ल के अनुसार, आलम की एक मात्र रचना 'आलम केलि' उपलब्ध होती है । ये प्रेमोन्मत कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार काव्य रचना करते थे । इनके काव्य में हृदय तत्व की प्रधानता है । 'प्रेम की पीर' या 'इश्क का दर्द' इनके एक एक वाक्य में भरा पाया जाता है । '

प्रेमरंग- पगे जगमगे जगे जामिनी के, जोबन की जोति जग जोर उमगत है ।

बोधा : - रीतिमुक्त कवि बोधा राजापुर के ब्राह्मण थे । इनका मूल नाम बुद्धिसेन था । बाल्यावस्था में ही पन्ना चले गये । वहां के महाराज के इन्हें 'बोधा' नाम से अभिहित किया तभी से ये बुद्धिसेन स बोधा हो गये । सुभान नामक वेश्या से इन्हें प्रेम हो गया । इस पर क्रोधित महाराज ने इन्हें छः महीने के लिए देश से निष्कासित कर दिया । इन छः महिनों में सुभान के वियोग में 'विरह वारीश' नामक ग्रंथ की रचना की तथा छः माह पश्चात् दरबार में ' विरह वारीश' की कुछ पंक्तियाँ महाराज को सुनाई तब प्रसन्न हो महाराज ने बोधा से कुछ मांगने को कहा । इस पर बोधा ने 'सुभान अल्लाह' कह । महाराज ने प्रसन्नता से बोधा को सुभान भेंट स्वरूप प्रदान कर दी । 'विरह वारीश' के अतिरिक्त बोधा ने 'इश्कनामा' की रचना भी की । 'इश्कनामा' में बोधा ने संयोग वियोग की अनुभूतियों के साथ राधा कृष्ण की भक्ति से संबंधित पदों की भी रचना की ।

'ड्घरौ बारनै तो पै बुधा बरही पुरहूत के पूरन भोगिया रे ।

बसु रे बसु राधे के पांयन में मन जोगिया प्रेमवियोगिया रे ।।'

ठाकुर : - रीतिमुक्त कवि ठाकुर रचित 'ठाकुर शतक' व 'ठाकुर शतक' प्रमुख ग्रंथ है । इनके' काव्य में प्रेम, सौन्दर्य, श्रृंगार के साथ भक्ति भावना का मणिकांचन संयोग मिलता है । आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, 'ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे । इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं । न तो कहीं व्यर्थ शब्दाडम्बर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष । भावों को यह कवि स्वाभाविक भाषा में उतार देता है । बोलचाल की चलती भाषा में भावों को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य है ।' (5) एक उदाहरण दृष्टव्य है-

'पावस तें परदेस तें आय मिले पिय औ मनभाई भई है ।
दादुर मोर पपीहरा बोलत, ता पर आनि घटा उनई है ।
ठाकुर वा सुखकारी सहावनी दामिनी क्रोध कितै को गई है ।
रौ अब तौ घनघोर घटा गरजौ वरसौ तुम्है धूर दई है ।।'

15.6 घनानंद, : जन्म और व्यक्तित्व

जीवन वृत्त : - डॉ. सभापति मिश्र लिखते हैं- 'कविवर घनानंद का जीवन चरित उनकी कविता की भांति गूढ़ एवं रहस्यमय है ।" (घनानंद की काव्य साधना पृ. 11) घनानंद के जन्म और मृत्यु वर्ष को लेकर आज भी हिन्दी जगत् में विवाद है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त घनानंद का समय सं. 1746 से सं. 1786 तक माना हे । शिवसिंह सरोज में वृंदावन वाले घनानंद का समय सं. 1715 कहा गया है । पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इनका जन्म वि. 1730 के आसपास माना है । 'विवेच्य घनानंद वृंदावन के आनंदघन है ।... ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का मूल नाम घनआनंद ही रहा होगा । छन्दात्मक लयात्मकता के कारण यह स्वयं घनानंद से घनानंद हो गये होंगे । (डॉ. सभापति मिश्र) श्री वियोगी हरि ने भी इनका जन्मकाल सं. 1746 ही स्वीकार की । मुगल दरबार में रहकर घनानंद प्रतिष्ठित भी हुए । वहीं पर सुजान नामक वेश्या से उनका प्रेम प्रसंग, बादशाह द्वारा दरबार से निष्कासन एवं सुजान की निठुरता से विरक्त बने घनानंद वृंदावन कासी हो गये । घनानंद ने करीब 250 बार सुजान शब्द का प्रयोग किया है । घनानंद की मृत्यु अहमद शाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण संवत् 1817 में हुई । रीतिमुक्त काव्य धारा के शिखर कवि घनानंद जति से कायस्थ, प्रेमी हृदय और कर्मफलक परस्वच्छंद मनोवृत्ति के कवि हैं । घनानंद के जीवन संबंधी प्रसंगों की अनेक किंवदतियां प्रचलित हैं । घनानंद मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले केदरबार में मीर मुंशी थे । कहा जाता है कि वे बादशाह के दरबार में अपूर्व सौन्दर्य मूर्ति सुजान नामक वेश्या के प्रेम में अनुरक्त थे । घनानंद को संगीत से बहुत लगाव था । वे बादशाह के प्रिय थे । इसी कारण कुछ ईर्ष्यालु दरबारियों ने बादशाह से कहा- घनानंद बहुत अच्छा गाते हैं किन्तु यह भी सत्य है कि वे आपके कहने से तो नहीं गायेंगे । उनकी प्रेमिका सुजान के कहने पर अवश्य ही गा देंगे । दूसरे दिन इस बात पर बादशाह ने घनानंद को गाने को कहा किन्तु उन्होंने नहीं गाया । जब सुजान को बुलाया गया । तभी घनानंद ने सुजान की तरफ मुँह और बादशाह की तरफ पीठ कर गाना गाया । बादशाह इसे अपना अपमान समझ कर घनानंद को दरबार एवं देश से निष्कासित कर दिया । घनानंद ने सुजान को साथ चलने को कहा पर वह नहीं गई इस पर घनानंद दिल्ली छोड़ कालान्तर में वृंदावन आ गये और निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होकर वैष्णवी भाव से श्री कृष्ण की उपासना में समर्पित हो गये । "

'गोस्वामी श्री राधाचरण ने इनके संबंध में एक छप्पय लिखा है' -

'दिल्लीश्वर नृप निमित्त एक पद नहिं गायी ।
पै निजप्यारी कहे सभा को रीझै रिझायो ।
कुपित होय नृप दिये निकाल वृन्दावन आये ।
परम सुजान सुजान छाप पद कवित्त बनाये ।
नादिरशाही ब्रजरज मिले किय न नेक उधार मन ।
हरिभक्ति बेलि सिंचन करी घनानंद आनंदघन । ' (6)

घनानंद का काव्य स्वच्छ, मार्मिक एवं अनुभूति प्रवण है । उन्होंने न तो राजाओं की प्रसन्नता के लिए काव्य की रचना की ओर न ही पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए । घनानंद एक सबे कवि के रूप में प्रस्तुत हुए उनकी अनुभूतियाँ प्रखर हैं । 'इसलिए वे भावों के अनुरूप शब्दों की तलाश नहीं करते, बल्कि शब्द स्वयं उनके सामने आते रहे हैं और घनानंद ने सहज भाव से उन्हें समेट लिया है' (7) स्वयं घनानंद कहते हैं

'लोग है लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत ।'

महाकवि घनानंद रीतिकालीन स्वच्छंद काव्य चेतना के शीर्षस्थ कवि हैं । सुजान के प्रति अनन्य भाव से आसक्त तथा प्रेम की पीर के अमर गायक घनानंद ने प्रेम की गढ़ अन्तर्गदशा का जैसा चित्रण किया है वैसा अन्य रीतिकालीन श्रृंगारिक कवि ने नहीं किया । ये वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्त कवि हैं । आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'घनानंद ने न तो बिहारी की तरह विरह ताप को बाहरी माप से मापा है न उछल कूद दिखाई है । जो कुंद हलचल है,तो भीतर की है । बाहर से यह वियोग प्रशान्त व गम्भीर है । न इसमें करवट बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है और न उछल-उछल कर भागना है । उनकी 'मौन मधि' पुकार है ।

15.6.1 घनानंद का रचना संसार

घनानंद के कवित्त एवं छन्दों का संकलन 'सुजान शतक' में किया गया है । प. रामनरेश त्रिपाठी ने घनानंद की 'सुजानसागर' 'घनानंद कवित्त' 'रसकेलिबल्ली','कृपाकंद निबन्ध', 'कोकसार' तथा 'विरहलीला' कृतियों का 'कविता कौमुदी' में उल्लेख किया है ।

घनानंद की रचनाओं को भाव पक्ष के आधार पर दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है- लौकिक श्रृंगारपरक रचनाएं और भक्तिपरक रचनाएं । लौकिक श्रृंगारपरक रचनाएं कवित्त में लिखी गई हैं | जबकि भक्ति परक रचनाएं पदों और चौपाइयों में ।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानंद की कृतियों की प्रमाणिकता के आधार पर 'घनानंद ग्रंथावली' में प्रकाशित किया है । ये कृतियां हैं- सुजान हित, कृपाकंद, वियोग बेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिप्रवास, प्रेम पत्रिका, प्रेम सरोवर, ब्रज विलास, सरस बसन्त, अनुभव चन्द्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, वृषभानुपुर सुषमा वर्णन, गोकुल गीत, नाम माधुरी, गिरि पूजन, विचार सभा, दानघआ, भावना प्रकाश, कृष्ण कौमुदी, धाम चमत्कार, प्रिया प्रसाद, वृंदावन मुद्रा, ब्रज प्रसाद, गोकुल चरित्र, प्रेम पहेली,रसना यश, गोकुल विनोद, मुरलिकामोद, मनोरथ मंजरी, ब्रजस्वरूप, । त्रिभंगी, परमहंस, वंशावली, प्रकीर्णका

15.7 घनानंद क काव्य का भाव सौन्दर्य

15.7.1 प्रेम व्यंजना

घनानंद की प्रेम व्यंजना रीतिकालीन रूढ़िवादिता से मुक्त स्वच्छंद, स्वानुभूत तथा स्वाभाविक है । स्वच्छंद होने पर भी उनके प्रेम में कहीं अश्लीलता तथा वासना तृप्ति नहीं है बल्कि तन्मयता, सूक्ष्मता, तरलता तथा तीव्रता है । आचार्य शुक्ल ने घनानंद की उत्कृष्ट प्रेम व्यंजना के संबंध में लिखा है- प्रेमदशा का उद्घाटन जैसा इनमें है वैसा हिन्दी के अन्य श्रृंगारी कवि में नहीं । प्रेम की अनिवर्चनीयता का आभास घनानंद ने विरोधाभास द्वारा दिया है । प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक जबांदानी का दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ ।'

घनानंद का स्वच्छंद प्रेम स्थूल, शारीरिक एवं ऐन्द्रिक न होकर भावात्मक था । इनकी दृष्टव्य 'सुजान' (प्रेयसी) तथा 'सुजान' (राधा कृष्ण) के अंग प्रत्यंगों पर न ठहर कर उनकी सम्पूर्ण छवि के अंकन तथा उसके रूप गुण में गहराई और व्यापकता है, संयोग श्रृंगार वर्णन में गहराई ओर व्यापकता है, संकीर्णता तथा ओछापन नहीं है, पवित्रता और भव्यता ही इनके प्रेम का आदर्श है-

छवि को सदन गोरो बदन, रूचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसकानि मैं ।

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार, 'अपने प्रिय का रूप चित्र खींचने में घनआनंद ने रीतिबद्ध कवियों की स्थूल, अप्रधान यौन अंगों के आकार और व्यापार का वर्णन नहीं प्रस्तुत किया है । वे मुख्यतः प्रिय के तरल सौन्दर्य पर रीझे हुए हैं । "

लट लोल कपोल कलोल करैं कलकंठ बनी जलजावलि व्दै ।
अंग अंग तरंग उठै दूति की पीरहै मनो रूप अबै धर च्वै। ।

घनानंद प्रेम का मार्ग अत्यन्त सरल मानते हैं । प्रेमी पाण्डित्य पूर्ण चतुराई को विस्मृत करके ही प्रेम पथ पर अग्रसर हो सकता है-

अति सुधो सनेह को मारग है जहां नेकु सयापन बांक नहीं ।
वहां साच चलै तीज आपुनपौ झिझकै कपटी जे निसांक नहीं ।।

पूर्ण रूपेण प्रिय पर आसक्ति से ही प्रेम साधना में स्थिरता आती है-

भौर तें सांझ लौ कानन ओर
निहारति बाबरी नैकु न हारति ।
सांझ तें भोर लौं तारनि ता किलो,
तारनि सों इनतार न टारति । ।

घनानंद ने प्रेम में आसक्ति की अनिवार्यता के साथ 'अभिलाषा' को 'मनोरथ' का नाम दिया है-

रावरे रूप की रीति अनूप
नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै ।

त्यों इन आंखिन यानि अनोखी,

अघानि कहूं नहि आन निहारियै ।।

शुक्ल जी के अनुसार, जब मन साथ रहते-रहते किसी में पच जाता है तब ऐसा परिचय जन्य अथवा साहचर्यगत प्रेम ही वस्तुत: जीवन की आस्था का प्रेम है किन्तु प्रथम दर्शन के प्रेम का महत्व भी कम नहीं है । घनानंद का प्रेम भी प्रथम दर्शन जन्य है-

जब तें निहारे घनआनंद सुजान प्यारे,

तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की ।

सारांशत: घनानंद की प्रेम भावना में रसिकता नहीं है बल्कि उनके काव्य में 'आत्मा की पुकार', 'प्रेम की व्यथा', 'गहरी पीर' की प्रधानता है । उनकी प्रेम व्यंजना में सांसारिक मर्यादाओं की कोई सीमा नहीं है । उनकी प्रेम भावना उच्च उदात्त भाव की है ।

15.7.2 विरह भावना

घनानंद प्रेम पीर के कवि हैं । उनका जीवन संयोग की अपेक्षा वियोग में अधिक व्यतीत हुआ है । यही कारण है कि उनके वियोग वर्णन में जितनी तल्लीनता, अनुभूति की गहनता तथा अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता है उतनी संयोग वर्णन में नहीं । यद्दपि घनानंद के काव्य में वियोग की प्रधानता है उन्होंने संयोग व मिलन के क्षणों को भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है ।

आचार्य शुक्ल के शब्दों में घनानंद वियोग श्रृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं ।' प्रेम की पीर लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव

हुआ । प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जवांदानी का दावा रखने वाला ब्रज भाषा का ऐसा दूसरा कवि नहीं हुआ । 'इस संबंध में एक उदाहरण प्रस्तुत है-

अंतर उदेग दाह आँखिन प्रवाह आंसू

देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है ।

सोयबो न जागिबो ही, हँसिबो न रोयबो हूँ

खोयखोय आपही मैं चटक लहनि है ।

घनानंद की दृष्टि में मीन व शलभ का विरह उत्कृष्ट कोटि का नहीं है क्योंकि दोनों वियोग की अग्नि को सह न कर सकने के कारण प्राण त्याग देते हैं-

'हीन भएं जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समाने ।

नीर सनेही को लाय कलंक निरास व्है कायर त्यागत प्रानै ।

प्रीति की रीति सु क्यौ समुझै जड़ मीन कै पानि परे को प्रमानै ।

या मन की जु दसा घनानंद जीव की जीवनि जान ही जानै । '

घनानंद ने विरहाग्रि में जलते तड़पते जीवन यापन में ही प्रेम का आदर्श माना है । किसी कवि ने सत्य ही कहा है-

'पत्थर ही पिघला न कहो

करूण की कहानी ही क्या

यदि टुकड़े हुए दिल के नहीं

तो बहा आँखों से नीर ही क्या । '

वर्तमान का वियोग ही अतीत के सुख की स्मृति कराता है । सुजान की स्मृति ही घनानंद के जीवन की सम्पूर्ण पूँजी है ।

'पहिले घन- आनंद सीचि सुजान कीं बतियाँ अति प्यार पगी ।

अब लाय वियोग की लाय बलाय, बढ़ाय ,विसास दगानि दगी ।'

'घनआनंद आपने चातिक को गुन बांधि लै मोह न छोरियै जू ।

रस प्याय कै जाय, बढ़ाय कै आस, बिसास मै यौ विस घोरि जू ।'

'घनआनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख साज समाज टरे ।

तय हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परै ।'

काव्य में दूत और दूती के माध्यम से प्रिय तक सन्देश भेजने की काव्य रूढ़ि को घनानंद ने अपने काव्य में प्रयोग करते हुए अति प्राचीन परम्परा का निर्वाह किया है । वे मेघ, पवन, दूत और पत्र द्वारा प्रिय के समक्ष संदेश सम्प्रेषण किया है: -

'परकाजाहिं देह को धारि फिरौ परजन्य जनारथ बै दरसौ ।

निधि नीर सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौ ।

घ्ज्ञनआनंद जीवन दायक हौ कछू मेरियौ पीर हिये परसौ ।

कबहूं वा बिसासी सुजान के आंगन मो अंसुवानि हूं ले बरसौ । "

एरे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन, बीरी

तो सों और कौन मनै ठरकौहीं बानि दै ।

विरह बिथाहि मूरि आँखिन में राखौ पूरि ।

धूरि तिन पायन की हाहा ! नेकु आनि दै ।।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इनकी 'प्रेम की पीर' को सूफी कवियों से प्रभावित मानते हुए कहा है 'लौकिक पक्ष में इनका विरह निवेदन फारसी काव्य वेदना की निवृत्ति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों की प्रेम की पीर से ।'

श्री रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं- प्रेम और विरह तो घनानंद की पूँजी ठहरा । विरह के जो स्वर उनके हृदय से निकले है, वे रीतिकाल तो क्या सूर की कविता में भी दुर्लभता से मिलते हैं । रीतिकाल की बौद्धिक विरहानुभूति की निष्प्राणता और कुंठा के वातावरण में घनानंद की पीड़ा की टीस सहसा ही हृदय को चीर देती है और मन सहज ही यह मान लेता है कि दूसरों क लिए किराए पर आँसू बहाने वालों के बीच यह एक ऐसा कवि है जो सचमुच अपनी ही पीड़ा से रो रहा है ।"

15.7.3 भक्ति भावना

घनानंद मूलत: प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं । सुजान के प्रति उनका प्रेम विख्यात रहा है । सुजान की निष्ठुरता के कारण घनानंद की विरह भावना उदात्त होकर भक्ति में परिणित हो गई । ऐसी मान्यता है कि सुजान के निष्ठुर व्यवहार से उनके मन में विराग उत्पन्न हुआ और वृंदावन में जाकर उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की । लाला भगवान दीन तथा डॉ. मनोहर लाल गौड़ उन्हें सखि सम्प्रदाय में दीक्षित मानते हैं । घनानंद को श्री वियोगी

हरि ने वैष्णव, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रेम मार्गी तो शम्भू प्रसाद बहुगुण ने प्रेम रहस्योन्मुखी संत कहा है । भक्त शिरोमणि नागरीदास से भी उनका गहरा संबंध रहा है । इसी संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने घनानंद की इन पंक्तियों को उद्धृत किया है: -

'गुरनि बतायौ राधा मोहन हू गायौ सदा,

सुखद सुहायौ वृंदावन गाढ़े गहिये ।'

'जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,

पावन पुलिन पै पहित पीर रहि ।।'

घनानंद के भक्त हृदय की समग्र करूणा इन पंक्तियों से स्पष्ट होती हे-

'अब मेरी तुमसो पुकार है हो,

ब्रज मोहन प्रान अधार पुकार है हो ।'

'दीन पपीहन के आनंदघन आनि लीजियै बेगि सम्हार ।'

वात्सल्य भक्ति रस से परिपूर्ण पंक्तियाँ भी दृष्टव्य है-

'अति आरति सौं बदन निहारै ।

लै बलाय औचर मुख पोंछती प्रेम पुच कारनि बरसति प्यारै ।।'

घनानंद ने श्री कृष्ण को भी सुजान की संज्ञा से संबोधित किया है कहीं कहीं पर वात्सल्य भाव की भक्ति भी इन पंक्तियों में दर्शित होती है-

'भागनि भरी जसोदा मैया मन को मोद कहौ ।

गोद लिये लालहिं दुलरावति यह सुख देखि रहौ ।

याही के पायनि प्रसाद को लेस असेस लहो ।

गोकुल चंद नंद नंदन को निसिदिन उदौ चहौ ।'

तात्पर्य यह है कि घनानंद केवल प्रेमी हृदय तथा वियोगी हृदय ही नहीं वरन् अत्युच्च कोटि के आध्यात्मिक उदात्त संस्कार एवं भावनाओं के भक्ति रस में आकण्ड निमज्जित कवि भी हैं ।

15.8 घनानंद : काव्य का शिल्प सौन्दर्य

ब्रजभाषा प्रवीण घनानंद ने ब्रजभाषा का परिष्कार कर उसे रमणीयता प्रदान की । ब्रजभाषा में उनके जैसा लालित्य व मधुरता पहले नहीं मिलती । घनानंद के प्रशस्तिकार 'ब्रजनाथ' ने उनके काव्य के संदर्भ में लिखा है-

'नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै ।

जोग वियोग की रीति मैं कोबिद, भावना भेद स्वरूप को ठानै ।

चाह के रंग में भीज्यौ हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै ।

भाषा प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै ।'

घनानंद के काव्य में ब्रजभाषा के साथ पंजाबी, अरबी, राजस्थानी, खड़ी बोली तथा संस्कृत के शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिसके कारण उनकी भाषा में ध्वनयात्मकता की प्रधानता है तथा उक्ति चमत्कार और वाग्वैदग्ध्य का सहजाकर्षण ।

'घनानंद के उक्ति वैचित्रय की सबसे बड़ी विशेषता है, विरोधाभास के माध्यम से प्रस्तुतिकरण। उसमें मुहावरे भी मिलते हैं ओर लाक्षणिकता भी । मुहावरों के प्रयोग में घनानंद बेजोड़. है। '(8)

घनानंद की भाषा शक्ति से प्रभावित आचार्य शुक्ल ने लिखा- ' इनकी सी विशुद्ध, सरस ओर शक्त शालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ । विशुद्धता के साथ्साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व है ।

'भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा ओर किसी कवि का नहीं । भाषा मानो इनके हृदय क साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे । '(9)

घनानंद के काव्य में कवित्त, सवैया, छन्दों की प्रधानता है । उनका कवित्त छंद के प्रति अत्यधिक लगाव था अत: 'घनानंद कवित्त' नामकरण उनके कवित्त छंद के प्रति अत्यन्त रूचि को प्रकट करता है । ठनके अतिरिक्त उन्होंने चौपाई, दुर्मिल, छप्पय, पद, त्रिभंगी, शोभन इत्यादि छंदों का प्रयोग किया है ।

उनके काव्य में अलंकार उनकी कलात्मक उच्चता तथा प्रतिभा के परिचायक के रुप में प्रस्तुत हुए हैं न कि प्रदर्शन के विनियोग के लिए । उनकी मान्यता थी की %

"लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत ।"

घनानंद के जीवन में विरोधाभास के आधिक्य से उनके काव्य में विरोधी अप्रस्तुतों की योजना अधिक हुई है । डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा के अनुसार, "स्पष्ट ही उनके काव्य में विरोध ने जिस अलंकारिक सौन्दर्य की सृष्टि की है, उसका मूल उत्संग उनका हृदय, उनके विचार, उनका जीवन है, जो विषमता का कोष था । उनका जीवन विषम परिस्थितियों और मनःस्थितियों का केन्द्र हो गया था ।

15.9 व्याख्याएं

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी,
लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं ।
छवि को सदन गोरो बदन,रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं ।
दसन दमक फैलि हिये मोती माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं ।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि जानि मैं ।।

प्रसंग : - रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की स्वच्छंद काव्य धारा के शीर्ष कवि घनानंद प्रेम पीर के अमर गायक हैं । रीतिकाल भक्तिकालीन आध्यात्मिक परम्पराओं तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों से भिन्न भौतिक तथा प्रेम व्यंजना का युग है । यह युग दरबारी संस्कृति से प्रभावित कला प्रधान साहित्य सर्जना का है । दरबारी विलासिता से प्रभावित छंदों की छटा व अलंकरणों की अति रंजना से युक्त युग में रीति मुक्त कवि घनानंद का काव्य मौलिक स्थान रखता है।

संदर्भ: - घनानंद मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीला के दरबार में मीर मुंशी पद पर नियुक्त थे । वहां दरबार में अपूर्व सौंदर्य मूर्ति सुजान के प्रति घनानंद आसक्त हैं । उसके अनुपम सौन्दर्य का अंकन करते हुए घनानंद जी कहते हैं-

व्याख्या: - सुजान लज्जा में निमग्न, रहस्यात्मक भावों से युक्त, चंचल नयनों की तिरछी अदा से शोभित, सौन्दर्य निकेतन, गोरे मुख तथा रोचक, आकर्षक मस्तक वाली है । उसके मुख से मधुर मोहक मुस्कान से रस छलक रहा है । जिसकी दंत पंक्तियों की चमक फैलकर हृदय पर मानो मोतियों की माला के रुप में प्रदीप्त हो रही है । वह अपने प्रिय ललक कर बातें करती है फलस्वरूप उसकी दृपति अत्यंत ही प्रकाशमान हो रही है । आनंदमयी तथा सौन्दर्यमयी नायिका सुजान का अंग प्रत्यंग जगमगा रहा है । इस जगमगाहट की छटा का उतंग शिखर नायिका के मुड़कर जाने पर उसकी रस युक्त बंकिम छटा और भी सम्मोहक होती है ।

विशेष: - सुजान सौन्दर्य के चित्रण में घनानंद ने स्थूल उपमानों के स्थान पर अमूर्त उपमानों की योजना की है । यहां नायिका के अंग प्रत्यंगों, हाव भाव, चेष्टाओं के वर्णन द्वारा उसके बाह्य सौन्दर्य का उदात्त चित्रण किया गया है ।

1. अनुप्रास व उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ मनहरण कवित्त छन्द का प्रयोग किया गया है ।

भाव साम्य: - "कहत, नटत, रीझत, खींझत, खिलत, मिलत, लजियात ।
भरै भौन में करत हैं नैनन हीं सौ बात ।। "
(बिहारी)

झलकैं अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै ।
हँसि बोलन मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है व्है ।।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै ।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहि मनौ रुप अबै धर च्वै ।।

प्रसंग : - पूर्ववत ।

संदर्भ: - पूर्ववत्

व्याख्या : - नायिका का अत्यंत सुन्दर गोरा मुख दीप्ति के प्रकाश से झिलमिला रहा है । उसके मुख पर कानों को छूते हुए यौवन में मद मस्त नेत्र सुशोभित हो रहे हैं । नायिका के हंसते हुए बोलने पर मुख से मानों सौन्दर्य के पुष्पों की वृष्टि हो रही है । उसके बोलने पर गालों पर चंचल बालों की लटें हिलने लगती है साथ ही उसके सुन्दर कंठ में मोतियों की दोहरी माला भी हिलने लगती है । ऐसा लगता है मानों सौन्दर्य दीप्ति की यह लहरें शरीर के अंग प्रत्यंगों से लहराती हुई पृथ्वी पर गिरने ही वाली हैं ।

विशेष : -

1. उत्प्रेक्षा-वस्तुत्प्रेक्षा, पुनरुक्तिप्रकाश, अनुप्रास अलंकार तथा सुमुखी सवैया छन्द का प्रयोग।
2. सुजान के सौन्दर्य का उदात्त चित्रण है ।

भाव साम्य : -

वरदंत की पगंत कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की ।
चपला चमकै धन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की ।

घुंघरानि लटा लटकै मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की ।
नेवछावीर प्रान करै 'तुलसी' बलि जाऊं लला इन बोंलन की ।।

(तुलसी)

अति सूधो सनेह को मारग है जहां नेकु सयापन बांक नहीं ।
वहां साच चले तीज आपनपौ झिझकै कपटी जे निसांक नहीं ।।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहां एक तें दूसरी आंक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटांक नहीं ।।

प्रसंग : - पूर्ववत

संदर्भ : - पूर्ववत

व्याख्या : - प्रेम का मार्ग अत्यंत सरल है । इसमें कहीं भी चतुरता या टेढ़ापन नहीं है । इस मार्ग पर अहम् का विसर्जन कर चुके सच्चे प्रेमी ही चल सकते हैं । कपटी, चतुर स्वार्थी इस पर नहीं चल सकते । घन आनंद कहते हैं कि ज्ञान सम्पन्न, चातुर्य युक्त सुजान! इस प्रेम मार्ग पर प्रिय के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रवेश नहीं है । तुम ऐसी कौनसी पट्टी पढ़े हुए हो जिसमें तुमने मन (40 सेर) भर लेना ही सिखा है । उसका छटांक (सोलहवां भाग) देना भी नहीं सिखा । अर्थात् मैंने तो अपना सर्वस्व ही तुम पर न्यौछावर कर दिया और तुम बदले में तनिक भी मेरी ओर नहीं देखती हो ।

विशेष: -

1. परिवृत्ति अलंकार, अनुप्रास अलंकार का प्रयोग ।
2. अति सुधो टेढ़ी बहुरि प्रेम पन्थ अनिवार

(रसखान)

3. यह घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं ।

(कबीर)

4. घनानंद की इन पंक्तियों में सम्पूर्ण रीतिमुक्त कवियों की प्रेम संबंधी भावना अभिव्यक्त होती है । जहां रीतिबद्ध कवियों की काव्य सर्जना नायक नायिकाओं के भेद प्रभेद तथा चमत्कार पूर्ण अभिव्यंजना पर केन्द्रित थी । वहीं रीतिमुक्त कविश्रेष्ठ घनानंद ने प्रेम मार्ग को 'अतिसुधो' तो कहा परंतु साथ ही में यह शर्त भी रखी है कि इस मार्ग पर वही चल सकता है जो निष्कपट व शंका रहित हो ।

5. प्रेम मार्ग अत्यंत ही सरल व स्पष्ट होता है । इसमें कहीं भी दुराव, छुपाव नहीं होता । प्रेमी का प्रिय के प्रति अनन्य समर्पण ही प्रेम की कसौटी है । इसीलिये ब्रजनाथ ने घनानंद को 'महानेही' कहा है ।

6. मध्यकाल में 40 सेर का एक मन तथा 16 छटांक का एक सेर होता था । यह वजन करने का मानदण्ड था । आजकल ग्राम किलोग्राम प्रयुक्त होते हैं ।

15.10 सारांश

इस इकाई की सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी साहित्य सृजन में युगीन परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य

के इतिहास के उत्तर मध्यकाल में घोर श्रृंगारिक भावना, चाटुकार्यरता तथा पांडित्य प्रदर्शन की भावना की प्रधानता थी फिर भी कुछ ऐसे कवि भी थे जो दरबारी संस्कृति की चमक दमक से अप्रभावित होकर स्वच्छंद भावों से पूरित होकर काव्य की सर्जना में लीन थे । इन कवियों में घनानंद, आलम, बोधा अहि ठाकुर का शीर्ष स्थान है । घनानंद मुगल बादशाह मुहम्मद शाह 'रंगीला' के दरबार में मीर मुंशी थे । सुजान नामक वैश्या पर अनुरक्त घनानंद बाद में उस की निष्कुटता से व्यथित हुए । कालान्तर में जीवन पर्यन्त सुजान वियोगी ही बन गये । घनानंद ने सुजान का रुप वर्णन अत्यन्त ही उदात्त भाव से प्रस्तुत किया तो विरह वेदना की अभिव्यक्ति में मानसिक पीडा का सहज व स्वाभाविक चित्रण किया । उनके काव्य में पांडित्य प्रदर्शन करके स्वामिक सुखाय भाव की प्रवृत्ति नहीं थी । वे प्रेम पीर के अमर गायक हैं । उनका ब्रज भाषा पर अपूर्व अधिकार था तथा भाव- अभिव्यक्ति में अलंकारों का सहज प्रयोग उन की प्रमुख विशेषता है ।

15.11 संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (सप्तम भाग सं. भागीरथ मिश्र)
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 104
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास : बहादुर सिंह पृ. 342
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास : बहादुर सिंह
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल पृ. 211
6. हिन्दी साहित्य कोश : भाग 2 सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
8. घनानंद की काव्य साधना पृ. 137
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल पृ. 187

15.12 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिकालीन राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए ।
2. रीतिकाल की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर विचार कीजिए ।
3. 'रीति' शब्द का अर्थ बतलाइये ।
4. रीतिकालीन साहित्य का प्रवृत्तिमूलक वर्गीकरण कीजिए ।
5. रीतिबद्ध तथा रीतिसिद्ध काव्य से क्या तात्पर्य है?
6. रीतिकालीन अवान्तर काव्यधारा का परिचय दीजिए ।
7. रीतिमुक्त स्वछंद काव्य धारा का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।
8. निम्नलिखित कवियों पर सारगर्भित टिप्पणी लिखिए : -
   (1) बोधा (2) आलम (3) ठाकुर
9. निम्न पद की सप्रसंग व्याख्या कीजिए-
   लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी,

लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं ।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं ।
दसन दमक फैलि हिये मोती माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं ।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि जानि मैं ।।

इकाई-16

रस, अलंकार व भेद

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 रस-अर्थ व स्वरूप

16.3 रस के अव्यय

16.3.1 स्थायी भाव

16.3.2 विभाव

16.3.3 अनुभाव

16.3.4 संचारी भाव

16.4 रस के भेद - (1) श्रृंगार रस (2) हास्य रस (3) करूण रस (4) वीर रस (5) रोद्र रस (6) भयानक (7) वीभत्स (8) अद्भुत रस (9) शान्त रस

16.5 अलंकार - परिभाषा व भेद

16.5.1 शब्दालंकार - (1) अनुप्रास (2) यमक (3) श्लेष (4) वक्रोक्ति

16.5.2 अर्थालंकार - (1) उपमा (2) रूपक (3) भ्रान्ति मान (4) सन्देह (5) विरोधाभास (6) विभावना

16.6 छंद - परिभाषा, छन्द के उपकरण गणविधान

16.7 छंद के भेद -

16.7.1 वर्णिक छन्द - (1) उपेन्द्रवज्रा (2) इन्द्रवज्रा (3) मालिनी

16.7.2 मात्रिक छन्द - (1) चौपाई (2) रोला (3) दोहा (4) बरवै (5) सोरठा (6) छप्पय (7) कुण्डलिया ।

16.8 काव्य में रस, अलंकार व छन्द का महत्त्व

16.9 सारांश

16.10 संदर्भ ग्रन्थ

16.11 बोध प्रश्न

16.0 उद्देश्य

आप हिन्दी ऐच्छिक पाठ्यक्रम के खण्ड-5 की 16वीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं । इस इकाई में काव्य के अंगों (रस, अलंकार व छन्द) का परिचय लक्षण-उदाहरणों के साथ दिया है । साथ ही काव्य में रस, अलंकार व छन्द के महत्त्व का विवेचन भी किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

(1) रस का अर्थ, स्वरूप तथा रस के भेदों को स्पष्ट कर सकेंगे ।

(2) रस के सभी भेदों के लक्षण उदाहरण बता सकेंगे ।

(3) अलंकार की परिभाषा, भेद व उनके लक्षण-उदाहरण स्पष्ट कर सकेंगे तथा पदों की व्याख्या करते समय अलंकारों को पहचानते हुए उनका विश्लेषण कर सकेंगे ।

(4) छन्द की परिभाषा, उपकरण, गणविधान व छन्द के भेद को स्पष्ट कर सकेंगे ।

(5) काव्य में प्रयुक्त छन्द को पहचान कर उसका विश्लेषण कर सकेंगे ।

(6) काव्य में रस, अलंकार व छन्द का महत्त्व समझा सकेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

काव्य में शब्द और अर्थ की प्राथमिक आवश्यकता सभी को स्वीकार्य है । शब्द और अर्थ में से जब कोई भी एक दूसरे से कम या अधिक प्रभावशाली हो जाता है तब रचना या अभिव्यक्ति का संतुलन नष्ट हो जाता है । काव्य में इसके लिए रस, अलंकार, गुण, छन्द, रमणीयता पर विशेष ध्यान रखा जाता है । काव्य के अंग शब्द व अर्थ में परस्पर सन्तुलन बनाए रखने में आवश्यक होते हैं । काव्य में शब्दार्थ का सन्तुलन अत्यन्त आवश्यक है । हिन्दी के महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी शब्द व अर्थ की ऊपरी तौर पर दिखने वाली भिन्नता और उनकी अन्तरंग अभिन्नता का इन शब्दों में वर्णन किया है - 'गिरा-अरथ जल-विधि सम कहियत भिन्न न भिन्न' अर्थात् जिस प्रकार जल व लहर का आपसी सम्बन्ध है उसी प्रकार काव्य में गिरा या पानी अथवा शब्द व अर्थ में गहन सम्बन्ध है ।

हम इस खण्ड में सर्वप्रथम 'रस' जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्यांग का विवेचन विश्लेषण कर रहे हैं । रस-भावना का आरम्भ आनन्द की अनुभूति से है इसीलिए परमात्मा को रसरूप ही कहा गया है और वही आनन्द प्रदान करने वाला है । काव्य का आनन्द भी सार्वजनीन, सार्वकालिक व शाश्वत सत्य है और वही रस है । रस का अर्थ, स्वरूप - भेदों के लक्षण-उदाहरण की विवेचना के बाद इस खण्ड में अलंकार की परिभाषा व भेदों पर चर्चा की गई है । शब्दालंकार व अर्थालंकार में विभाजित अलंकारों के उदाहरण सहित लक्षण बताए गए हैं । अलंकार काव्य का सौन्दर्य बढ़ाने वाले उपादान हैं । काव्य की आत्मा रस मानी गई है और इस आत्मा रूप रस के उत्कर्ष में अलंकार एक सहायक उपादान है ।

मात्रा, वर्ण, यति, लय आदि के संघटन से युक्त एक विशेष छन्द एक विशेष अनुभूति को उकसाने, एक विशेष भाव को समझाने और एक विशेष रस की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं इसलिए इस खण्ड में छन्द को स्थान देते हुए छन्द की परिभाषा छन्द के उपकरण, गणविधान तथा भेदों की भी चर्चा की गई है । अन्त में काव्य में रस, अलंकार तथा छन्द के महत्त्व की विवेचना की गई है ।

16.2 रस का अर्थ व स्वरूप

'रस' शब्द. रस धातु से बना है जिसका अर्थ है 'आस्वाद लेना । सामान्य अर्थों में भी रस का यही अर्थ लिया जाता है । वैदिक संहिताओं में 'रस' को जल के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । तैत्तरीय उपनिषद में रस' को ब्रह्मानन्द का पर्याय बताया गया है । साहित्य शास्त्र व काव्य शास्त्र में 'रस' का प्रयोग सर्वाधिक होता है । काव्य के पठन श्रवण व दर्शन से पाठक,

श्रोता व दर्शक के हृदय में जो अवर्णनीय व अलौकिक आनन्द होता है वही 'रस' है । यह आनन्द लोकोत्तर (लोक में इतर) होता है इसलिए रस' को **'ब्रह्मानन्द सहोदर** कहा गया है ।

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ 'साहित्य दर्शन' में रस के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा है कि यह "**अखण्ड स्वरूप**" है क्योंकि विभाव, अनुभाव व संवारी भाव परस्पर संचालित होकर ही रस रूप में आकर आनन्द की अनुभूति देते हैं । रस "**स्वयं प्रकाश**" है और "**चिन्मय**" है अर्थात सचेतन व प्राणवान आनन्द है । रस "**वैद्यान्तर स्पर्श शून्य**" है अर्थात् जिस समय रस रूप आनन्द की अनुभूति होती है उस समय किसी अन्य प्रकार के ज्ञान का स्पर्श या दखल नहीं होता । 'रस' **"ब्रह्म स्वाद सहोदर"** है अर्थात् ब्रह्म से साक्षात्कार करने पर जो आनन्द प्राप्त होता है, वैसा ही है, पर वह नहीं है ।

"लोकोत्तर चमत्कार प्राण" एवं "आनन्दमय'' है अर्थात् रस लौकिक आनन्द नहीं, लोकोत्तर (लोक से परे) आनन्द है । रस "चमत्कार प्राण" है अर्थात् चमत्कार रसरूप अनुभव का प्राण तत्त्व है और अन्त में रस **"आस्वाद्यत्वात्"** है अर्थात् इसका केवल आस्वाद ही किया जा सकता है |

कविता या साहित्य के क्षेत्र में जब सहृदय पाठक या श्रोता किसी पुस्तक, नाटक या मंथन को पढ़ने, सुनने या देखने के बाद अनायास ही कह देता है कि - 'स्वाद आ गया', 'आनन्द आ गया' अथवा "रस आ गया" तो इसका तात्पर्य उपलब्ध 'आस्वाद' से ही होता है । वह उस आस्वाद को अनुभव (महसूस) तो करता है किन्तु उसको यथावत् अभिव्यक्त नहीं कर सकता। यही अनिवर्चनीय अकथनीय आनन्द 'रस' कहलाता है । तभी तो कहा गया है कि रस "गूंगे के गुड" की भाँति केवल अनुभूति का विषय है ।

आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रस की परिभाषा इस प्रकार की है -

'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगा द्रस निष्पति"

अर्थात् विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है ।

16.3 रस के अव्यय

रस के चार अव्यय माने गए हैं । (1) स्थायी भाव (2) विभाव (3) संचारी तथा (4) अनुभाव मानव हृदय में अनेक भाव स्थित रहते हैं लेकिन ये भाव सुप्तावस्था में रहते हैं और विशेष कारण से जाग्रत होते हैं । हमारे जीवन में हर्ष, शोक, घृणा, क्रोध आदि भावों के जाग्रत होने का विशेष कारण भी होता है, उनको उत्तेजित करने में कई सहायक कारण भी होते हैं और जब भाव जाग्रत हो जाता है तो हम भावसूचक चेष्टाएँ भी करते हैं । काव्य में यही 'कारण' 'सहायक कारण और 'चेष्टा' क्रमश: विभाव 'संचारी' और 'अनुभव' कहलाते हैं । स्थायी भाव, इन्हीं विभाव, संचारी और अनुभावकों के संयोग से पुष्ट होकर 'रस' की अवस्था तक पहुँचता है ।

16.3.1 स्थायी भाव

मानव हृदय के ये मूल भाव हैं । ये स्थायी भाव स्थायी रूप से चित्त में स्थिर रहते हैं । मानव हृदय में वासना रूप स्थित मनोविकारों को काव्य में स्थायी भाव की संज्ञा दी गई है । इनको

कोई भी विरोधी भाव छिपा नहीं सकता । इसी कारण इन्हें स्थायी भाव कहा जाता है । अधिकांश आचार्यों ने स्थायी भावों की संख्या नौ मानी है । इन नौ स्थायी भावों का नाम सहित विवेचन इस प्रकार है-

(1) रति - स्त्री-पुरूष के पारस्परिक अनुराग या प्रेम को रति कहते हैं । जब यह स्थायी पुष्ट होकर अभिव्यक्त होता है तो **श्रृंगार रस** कहलाता है ।

(2) हास - अंग, वचन, क्रिया या रूप की विचित्रता से हँसी आ जाना 'हास' स्थायी भाव कहलाता है । यह पुष्ट होकर **'हास्य रस'** का प्रतिनिधित्व करता है ।

(3) शोक - (प्रियजन) इष्ट का अनिष्ट या विनाश होने पर 'शोक' स्थायी भाव जन्म लेता है । इसका रस **करूण** है ।

(4) उत्साह - किसी शुभ कार्य को उल्लास अथवा आदेश में करने पर ही स्थायी भाव उत्साह की अभिव्यंजना होती है । यह पुष्ट होकर **वीर रस** कहलाता है ।

(5) क्रोध - अनिष्ट अथवा अनुचित कार्य करने वाले व्यक्ति के प्रति तीक्ष्ण भाव 'क्रोध' स्थायी भाव की अभिव्यंजना कराता है । इसका रस **रौद्र** है ।

(6) भय - विनाशकारी वस्तुओं के दर्शन से उत्पन्न चित्त की व्याकुलता 'भय' की अभिव्यंजना करती है । इसका रस **'भयानक'** कहलाता है ।

(7) जुगुप्सा - घृणित वस्तु को देखने अथवा उसकी प्रतीति से उत्पन्न होने वाला भाव 'जुगुप्सा' कहलाता है और यही भाव पुष्ट होकर वीभत्स' रस की अभिव्यंजना करता है ।

(8) विस्मय - अलौकिक या चमत्कार पूर्ण वस्तु या दृश्य को देखने से उत्पन्न भाव 'विस्मय' कहलाता है । यह पुष्ट होकर 'अद्भुत रस' में अभिव्यक्त होता है ।

(9) निर्वेद - सांसारिक नश्वरता के ज्ञान से उत्पन्न होने वाला स्थायी भाव 'निर्वेद' या 'शम' कहलाता है और यही पुष्ट होकर शान्त रस में परिणत होता है ।

16.3.2 विभाव

मानव के हृदय में स्थित काम, क्रोध, भय या रति आदि भावों को जाग्रत करने के जो कारण होते हैं - उन्हें 'विभाव' कहते हैं ।

रति आदि स्थायी एवं संचारी भाव सामाजिकों के हृदय में वासना के रूप में अत्यन्त सूक्ष्मता से सदैव स्थिर रहते हैं । भावों को ये आस्वादन योग्य बनाते हैं अत: रस के कारण होने से इनको विभाव कहा जाता है । विभाव के तीन प्रकार होते हैं -

(1) आलम्बन - 'आलम्बन' का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है - 'सहारा' जिनका आलम्बन लेकर रति, क्रोध आदि स्थायी भाव जाग्रत या उत्तेजित होते हैं उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं । उदाहरणार्थ - जंगल में भयानक शेर को देखकर हृदय में स्थित भाव 'भय' की जाग्रति होती है अत: यहाँ भयानक शेर, आलम्बन है । प्रत्येक रस के आलम्बन इस प्रकार भिन्न-भिन्न होते हैं । श्रृंगार रस में रति रूप स्थायी भाव के नायक-नायिका आलम्बन होते हैं ।

(2) आश्रय - जिस व्यक्ति के हृदय में रस या भाव जाग्रत होता है उसे आश्रय कहा जाता है । उदाहरणार्थ - जंगल में शेर को देखकर भयभीत होने वाला व्यक्ति 'आश्रय' है जिसके हृदय में 'भयानक' रस की जाग्रति हुई । श्रृंगार रस में यदि नायिका 'आलम्बन' है तो नायक आश्रय होगा और नायक 'आलम्बन' है तो नायिका 'आश्रय' होगी

(3) उद्दीपन - 'उद्दीपन' का अर्थ है - उद्दीप्त करना या बढ़ाना । वे वस्तुएँ अथवा वातावरण जिनसे उत्पन्न भाव को और भी उत्कर्ष या बढ़ावा मिले - वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं।

भाव को अधिक उद्दीपन करने के कई कारण होते हैं जिनको चार कोटियों में बाँट सकते हैं-

(1) आलम्बन के गुण - रति भाव के अन्तर्गत सौन्दर्य आदि ।

(2) आलम्बन की चेष्टाएँ - रति' के अन्तर्गत प्रेमपूर्ण चेष्टाएँ आदि ।

(3) आलम्बन के अलंकार - रति' के अन्तर्गत ही मोहक सौन्दर्यवर्धक आभूषण ।

(4) प्रकृति - मादक चाँदनी, उपवन, मोर नृत्य, काली घटाएँ आदि ।

प्रत्येक रस के आलम्बन विभाव व उद्दीपन विभाव अलग-अलग होते हैं । एक ही व्यक्ति आश्रय-भेद के कारण विभिन्न भावों का आलम्बन भी हो सकता है । उदाहरणार्थ - धनुष यज्ञ में सम्मिलित श्रीराम या सीता के लिए पति' भाव के आलम्बन हैं, तो वही श्रीराम जनक के लिए वात्सल्य' के और कुटिल जनों के लिए 'भय' के भी आलम्बन हे । इसी प्रकार एक ही व्यक्ति या वस्तु परिस्थिति भेद से विभिन्न उद्दीपनों का कारण बन सकता है यथा-नायक का चित्र नायक की अनुपस्थिति में नायिका के लिए रति' भाव के उद्दीपन का कारण बनेगा तो वही चित्र नायक की मृत्यु के पश्चात् 'शोक' भाव के उद्दीपन का कारण बनेगा ।

16.3.3 अनुभाव

काव्यशास्त्र में स्थायी भाव का अनुभाव कराने वाले 'अनुभव कहलाते हैं । आश्रय के हृदय में जब भावों का उद्‌वेग हो जाता है तो भाव सक्रिय हो जाता है और तब वह कुछ चेष्टाएँ (क्रियाएँ) करता है - ये क्रियाएँ ही अनुभाव कहलाती है । विभिन्न रसों के अनुभाव भी भिन्न-भिन्न होते हैं । उदाहरणार्थ - रति नामक भाव में - पारस्परिक आमोद-प्रमोद कटाक्ष, आलिंगन इत्यादि। 'हास' में - दाँत किटकिटाना, मुट्ठी भींचना, आँखें लाल करना, नथुने-फुलाना आदि ।'शोक' में - रोना, पछाड़ खाकर गिरना आदि । जुगुप्सा में - मुँह फेर लेना, नाक - भी सिकोड़ना, थूकना आदि । इसी प्रकार निर्वेद में - शान्तिपूर्वक ध्यान करना, आँखें बन्द करना, पाठ-पूजा में लगे रहना आदि । इन्हीं चेष्टाओं तथा क्रियाओं से हृदय में स्थित भावों का अनुभव होता है तथा ये रस की अभिव्यंजना में सहायक होते हैं ।

अनुभावों के भेद - आचार्यो ने अनुभाव के चार प्रमुख भेद माने हैं -

(1) कायिक - शरीर के अंगों से संबंधित चेष्टाएँ कायिक कहलाती है । जैसे कटाक्ष करना, दाँत पीसना आदि ।

(2) मानसिक - अन्तःकरण की वृत्ति से उत्पन्न होने वाले प्रमोद हर्ष, ईर्ष्या को मानसिक अनुभाव कहते हैं । ये अनुभाव अकृत्रिम होते हैं ।

(3) सात्विक - ये अनुभाव सत्वगुण से उत्पन्न होने के कारण सात्विक अनुभाव कहलाते हैं। जो चेष्टाएँ भाव के उत्पन्न होने पर स्वत: ही हो जाएँ और जिन पर आश्रय का नियन्त्रण न रह पाये, वे सात्विक अनुभाव में आते हैं जैसे हर्ष, शोक, भय, लज्जा से नेत्रों में जल भर आना, रोमांचित होना आदि ।

(4) आहार्य - आरोपित की गई वेशभूषा को आहार्य अनुभाव कहते हैं जैसे नायिका का सजधज कर नायक से मिलने जाना आदि ।

16.3.4 संचारी भाव

मानव हृदय में कुछ भाव ऐसे होते हैं जो सदैव स्थिर रहते हैं - इन्हें स्थायी भाव कहते हैं किन्तु कुछ भाव ऐसे होते हैं जो अल्पसमय में ही उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं । ये संचारी भाव कहलाते हैं । संचारी बल अर्थ है संचरण करने वाला । ये स्थायी भाव को पुष्ट करने के लिए होते हैं । एक ही स्थिति में कई भाव उभरते हैं और मिटते हैं तथा कई भाव परिस्थितियों के अनुसार उत्पन्न होते हैं या विलीन होते हैं । ये संचारी भाव 33 माने गए हैं जो कि रस निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होते हैं जो इस प्रकार हैं -- **अमर्ष, अपस्मृति, अवहित्था, असूया, आलस्य, आवेग, उत्सुकता, उन्माद, उग्रता, ग्लानि, गर्व, चिन्ता, चापल्य, जड़ता, त्रास, दैन्य, धैर्य, निद्रा, निर्वेद, मति, मद, मरण (मूर्छा) मोह, विबोध, विषाद, वितर्क, व्रीड़, व्याधि, शंका, स्मृति, स्वप्न, श्रय और हर्ष आदि ।** इनकी संख्या और अधिक हो सकती है क्योंकि संचारी भाव वक्र की अस्थिर वृत्तियाँ हैं और चित्तवृत्तियाँ असंख्य हो सकती हैं । (इनकी विस्तार से चर्चा बी.ए. प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों के लिए आवश्यक नहीं है)।

16.4 रस के भेद

इससे पूर्व स्थायी भाव के अन्तर्गत उनसे पुष्ट होने वाले रस' का उल्लेख किया गया था । भारतीय काव्यशास्त्र के सर्वप्रथम आचार्य भारतमुनि ने सर्वप्रथम आठ रसों का विवेचन किया है तथा उन्होंने 'शान्त' रस की ओर भी संकेत किया है । इन नौ रसों के अतिरिक्त कुछ आचार्यों ने वात्सल्य व भक्ति-रस को भी पृथक रस माना है । नव-रसों को ही अधिकांश आचार्यों ने मान्यता दी है जिनके लक्षण उदाहरण की विवेचना इस प्रकार है -

(1) श्रृंगार रस - विभाव, अनुभाव व संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त होने वाला (पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, नायक-नायिका) का रति स्थायी भाव श्रृंगार, कहलाता है । रति इसका स्थायी भाव होता है । श्रृंगार रस के आलम्बन नायक-नायिका, उद्दीपन, चाँदनी, भ्रमणगुल्जार, शीतल नन्द बयार आदि, अनुभाव भू-भंगिमा, कटाक्ष आदि प्रेम. हर्ष आदि संचारी भाव इसके पोषक होते हैं ।

मिलन व वियोग के अनुसार श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं -

(क) संयोग श्रृंगार

(ख) वियोग श्रृंगार

(क) संयोग श्रृंगार - नायक-नायिका के परस्पर दर्शन स्पर्श श्रवण व आलिंगन द्वारा जाग्रत रति नामक स्थायी भाव संयोग श्रृंगार कहलाता है । उदाहरणार्थ -

"देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने । ।
थके नयन रघुपति छवि देखे । पलकन्ह हूँ परिहारी निमेखे । । "
यहाँ पर आश्रय है सीता और आलम्बन है बाग । राग का मनोहर रूप, छवि उद्दीपन है, लोचनों का ललचाना अपलक दृष्टि आदि अनुभाव तथा हर्ष, व्रीड़ा आदि संचारी भाव हैं।

(ख) वियोग श्रृंगार - परस्पर प्रगाढ़ प्रेम में अनुश्वत नायक-नायिका का जहाँ मिलन न हों वहाँ वियोग श्रृंगार होता है । इसका स्थायी भाव भी रति है । उदाहरणार्थ -
मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप
'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त
यहाँ उर्मिला आश्रय है, प्रवासी लक्ष्मण आलम्बन है । प्रियतम की मूर्ति उद्दीपन विभाव तथा स्मृति, जड़ता आदि संचारी भाव है । इन सभी के संयोग से रति भाव परिपक्व होकर वियोग श्रृंगार में परिणत होता है ।

(2) हास्य रस - सहृदय के हृदय में स्थित 'हास' नामक स्थायी भाव का विभाव, अनुभाव व संचारी भाव से संयोग होने पर 'हास्य रस' अभिव्यक्त होता है ।
इस रस में केवल आलम्बन के वर्णन से ही रसानुभूति तो जाती है, आश्रय का वर्णन प्राय: नहीं होता, आश्रय पाठक, श्रोता या दर्शक ही रहता है -
उदाहरणार्थ - एक कबूतर देख हाथ में पूछा कहाँ अपर है
उसने कहा अपर कैसा? वह उड़ गया स-पर है ।
उत्तेजित हो पूछा उसने, उड़ा? अरे वह कैसे?
'फड़' से उड़ा दूसरा, बोली उड़ा देखिए ऐसे । नूरजहाँ, 'गुरूभक्तिसिंह ।
यहाँ कबूतर आलम्बन विभाव, कबूतर का उड़ना उद्दीपन, उत्तेजन, हर्ष, उत्सुकता संचारी भाव है ।

(3) करूण रस - सहृदय के हृदय में स्थित शोक नामक स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव व संचारी भाव में संयोग करता है तो वहाँ करूण रस अभिव्यक्त होता है । करूण रस में प्रिय व्यक्ति या वस्तु के नष्ट हो जाने पर विषाद की अनुभूति होती है । उदाहरणार्थ-
"सुन सुग्रीव ! साँचे हूँ मो-पर फेरयो बदन विधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हैं । तज्यो लखन सो भ्राता ।"
यहाँ पर राम आश्रय लक्ष्मण-आलम्बन, ग्लानि, चिन्ता, सोच आदि संचारी भाव है ।

(4) वीर रस - उत्साह नामक स्थायीभाव का विभाव अनुभाव व संचारी भावों से संयोग वीर रस कहलाता है । उदाहरणार्थ-
भारत माता एक, एकता का रिश्ता न कभी तोड़ो ।
बोटी-बोटी कर जाओ पर, पैर न पीछे को मोड़ो ।।
चढ़ जाओ यूँ कूद लुटेरे, हत्यारों की छाती पर ।
हाथ लगाने कभी न पाए, शिवशंकर की थाती पर ।।

(5) रौद्र रस - अपना अनिष्ट या अपमान होने के कारण उत्पन्न क्रोध से रौद्र-रस की व्यंजना होती है । उदाहरणार्थ -

"श्री कृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध में जलने लगे'

सब शोक अपना भूलकर, करतल युगल मलन लगे (जयद्रथ वध) ।

यहाँ क्रोध स्थायी भाव है । अर्जुन 'आश्रय' व जयद्रथ 'आलम्बन' है । श्रीकृष्ण के वचन उद्दीपन विभाव तथा करतल युगल मलना अनुभाव जलना, आवेग, उग्रता आदि संचारी भाव है ।

(6) भयानक रस - विभाव, अनुभाव व संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त 'भय' नामक स्थायी भाव से 'भयानक रस' की निष्पत्ति होती है । उदाहरणार्थ -

हय हिहिनात भागे जात, घहराज, गज

भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि हारही (युद्ध के समय का भयानक वर्णन है) (कवितावली)

(7) वीभत्स रस - रुधिर, अस्थि, माँस, मज्जा आदि घृणित वस्तुओं को देखने अथवा श्रवण करने से उत्पन्न हुई जुगुप्सा (घृणा) वीभत्स रस को उत्पन्न करती है । उदाहरणार्थ -

गीध जाँघ को खोदि-खोदि के माँस उभारत ।

स्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खात बिदारत ।।

यहाँ शव आलम्बन है । जाँघ को खोदना, माँस उभारना आदि उद्दीपन है । आवेश संचारी भाव है ।

(8) अद्भुत रस - अद्भुत रस का प्राण चमत्कार होता है । किसी अलौकिक, आश्चर्यजनक वस्तु या घटना को देखकर विस्मय नामक स्थायी भाव के उत्पन्न होने पर 'अद्भुत रस' की निष्पत्ति होती है । अलौकिक दृश्य या वस्तु आलम्बन होते हैं । इसमें आलम्बन की विस्मयकारी क्रियाएँ उद्दीपन तथा रोमांच होना, गद्गद् होना या नेत्र विस्तारित करना अनुभाव होता है ।

उदाहरणार्थ -

सारी बिच नारी है कि नारी बिच सारी है ।

कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है ।

यहाँ द्रोपदी का चीर' आलम्बन है ।

(9) शांत रस - निर्वेद स्थायी भाव जब तत्व ज्ञान आत्मचिंतन, गुरूपदेश अथवा लोककल्याण से जागृत होता है तो उस समय सहृदय के मन में अलौकिक शान्ति का संचार होता है और तब 'शान्त रस की निष्पत्ति होती है । इस रस में आलम्बन असार संसार, शरीर, तीर्थाटन, चिन्तन आदि होते हैं ।

संत वचन, आश्रम, एकान्तवास, संसार और दुखजन्य स्थितियाँ आदि उद्दीपन तथा रोमांच, भीरूता, तल्लीनता, निरपेक्षता, उदासीनता आदि अनुभाव होते हैं ।

उदाहरणार्थ -

"ग्वाल' कवि कहे मोह, काहू मैं न रह्यौ मेरो,

क्योंकि काहू के न संग गयो तन धन है ।

कीन्हे मैंने एक विचारि एक ईश्वर ही सत्य नित्य
अलख अपार चारू चिदानन्द धन है । "
अन्य उदाहरण -
"पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जात ।
देखत ही छुप जाएगा, ज्यों तारा बिच प्रभात ।।"

16.5 अलंकार - परिभाषा व भेद

'अलंकार' शब्द की- व्युत्पत्ति 'अलम्' तथा 'कार' दो शब्दों से हुई है । अलम् का अर्थ है भूषण, सजावट अर्थात् जो अलंकृत या भूषित करे वह उपादान अलंकार है । स्त्रियाँ अपने साज- श्रृंगार के लिए आभूषणों का प्रयोग करती है । अतएव आभूषण अलंकार कहलाते हैं । ठीक उसी प्रकार कविता कामिनी अपने श्रृंगार और सजावट के लिए जिन तत्त्वों का उपयोग-प्रयोग करती है वे अलंकार कहलाते हैं । जिस प्रकार 'हार' आदि अलंकार रमणी के नैसर्गिक सौन्दर्य में चार-चाँद लगा देते हैं, उसी प्रकार अनुप्रास, यमक और उपमा आदि अलंकार काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं । वस्तुतः अलंकार वाणी के श्रृंगार हैं तथा काव्य के शोभा कारक धर्म हैं । आचार्य दण्डी ने माना है -

"काव्य शोभा करान धर्मानलंकारान् प्रचक्षते ।

आचार्य भामह ने शब्द और अर्थ के वैचित्य को अलंकार माना है -

'वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृति :। "

किन्तु यह परिभाषा अलंकार को सिर्फ वैचित्य उत्पन्न करने का माध्यम मानती हैं । पं. रामचन्द्र शुक्ल अलंकार को रमणीयता का विधायक' मानते हैं केवल चमत्कार का नहीं । कभी-कभी कोई अलंकार विहीन कथन भी अपनी सहजता व सादगी में मनोरंजन करता है और यदि उसे अलंकारों से लाद दिया जाए तो उसकी स्थिति ऐसी ही हो सकती है जैसे किसी नैसर्गिक रूप से सुन्दर युवती को आभूषणों से लादकर भौंडी और कुरूप बना दिया गया हो। कविवर **'सुमित्रानन्द पन्त'** अलंकार का स्वरूप प्रकट करते हुए लिखते हैं- "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं है, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं । भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है । "

अलंकार के भेद - भाषा व साहित्य का -सारा कार्य व्यापार शब्द और अर्थ पर ही निर्भर है। विशिष्ट शब्द - चमत्कार और अर्थ-वैशिष्ट्य ही कथन के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करता है । इसी आधार पर अलंकार के दो भेद किए गए हैं -

(1) शब्दालंकार

(2) अर्थालंकार

16.5.1 शब्दालंकार

जहाँ किसी कथन में विशिष्ट शब्द के प्रयोग के कारण चमत्कार या सौन्दर्य छा जाता है, वहाँ शब्दालंकार होता है । शब्द को बदलकर उसके स्थान पर उसका पर्याय रखने पर यह चमत्कार समाप्त हो जाता है । **चारू चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही थी थल कल में** उपर्युक्त पंक्ति

में यदि 'चारू', 'चन्द्र' और 'चंचल' शब्दों के स्थान पर यदि सुन्दर, मयंक और अस्थिर कर दे तो पहले वाला नादात्मक सौन्दर्य नष्ट हो जाएगा ।

राजा भोज ने अपने नथ 'सरस्वती कण्ठाभरण में शब्दों के वैचित्य द्वारा काव्य को अलंकृत करने वाले उपादानों को शब्दालंकार कहा है ।

कुछ प्रमुख शब्दालंकार का विवेचन इस प्रकार है -

(1) अनुप्रास - जहाँ वाक्य में वर्णों की आवृत्ति एक से अधिक बार हो, चाहे उसमें स्वर समान न हो, वहाँ अनुप्रास होता है । जैसे -

"कल कानन कुंडल मोर पखा, उर पे बनमाल बिराजति है ।"

इस काव्य पंक्ति में 'क' वर्ण की तीन बार और 'ब' वर्ण की दो बार आवृति होने से चमत्कार आ गया है । अन्य उदाहरण-

(क) संसार की समरस्थली में धीरता धारण करे ।

(ख) सुरभित सुंदर सुखद सुमन तुम पर खिलते हैं । ('स' वर्ण की आवृति)

(ग) तरनि तनुजा तट तमाल तरूवर बहु छाए । ('त' वर्ण की आवृत्ति)

(2) यमक - जब एक ही शब्द दो या दो से अधिक बार आए और उसका अर्थ हर बार भिन्न हो वहाँ यमक अलंकार होता है । जैसे -

"भजन कह्यौ ताते भज्यौ, भज्यौ न एको बार।

दूरि भजन जाते कह्यौ, सो तू भज्यौ गँवार ।। "

प्रस्तुत दोहे में 'भजन' व 'भज्यो' शब्दों की आवृत्ति हुई है । 'भजन' शब्द के दो अर्थ हैं- भजन-पूजन और भाग जाना, इसी प्रकार 'भज्यौ' शब्द के भी दो अर्थ हैं - 'भजन किया' और 'भाग गया' कवि अपने मन को फटकारता हुआ कहता है- हे मेरे मन! जिस परमात्मा का मैंने, तुझे भजन करने को कहा, तू उससे भाग खड़ा हुआ और जिन विषय वासनाओं से भाग जाने को कहा, तू उन्हीं की आराधना करता रहा । इस प्रकार इन भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति से दोहे में सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया है ।

अन्य उदाहरण -

(1)"तू मोहन के 'उरबसी' ह्वै उरबसी समान" (उरबसी-उर में बसी, उखसी-उर्वशी नामक अप्सरा)

कनक - कनक तै सो गुनी, मादकता अधिकाय वा खाए बौराए जग, या पाए बौराय ।। कनक-सोना, कनक-धतूरा)

(3) श्लेष - श्लेष का अर्थ है 'चिपकना' । जहाँ शब्द एक ही बार प्रयुक्त होने पर एक से अधिक अर्थ दे वहाँ 'श्लेष' अलंकार होता है । जैसे -

'चरन धरत, चिंता करत, फिर चितवत चहुँ ओर ।

'सुबरन' को ढूँढत फिरत कवि, व्यभिचारी, चोर ।। "

प्रस्तुत दोहे में 'सुबरन' का प्रयोग किया गया है जिसे कवि, व्यभिचारी व चोर - तीनों ढूँढ रहे हैं । यहाँ सुबरन के तीन अर्थ हैं (क) कवि 'सुबरन' अर्थात् अच्छे शब्द, खव्य

भिचारी सुबरन' अर्थात् अच्छा रूप-रंग और (ग) चोर भी 'सुबरन' अर्थात् 'स्वर्ण' ढूँढ रहा है । अत: यहाँ श्लेष है ।

अन्य उदाहरण - (1) मंगन को देखि पट देत बार-बार है । (पट-वस्त्र पट-किंवाड़)

(2) मधुबन की छाती को देखो सूखी कितनी इसकी 'कलियाँ' कलियाँ-खिलने से पूर्व की दशा कलियाँ-यौवन से पहले की अवस्था

(4) वक्रोक्ति - जहाँ वक्ता के कथन का श्रोता द्वारा चमत्कार पूर्ण भिन्न अर्थ लगाया जाए वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है । उदाहरणार्थ -

"कौ तुम ? हम घनश्याम । वौ बरसो कित जाए" यहाँ कृष्ण व राधा का सुन्दर परिहास है । बन्द दरवाजे के भीतर से राधा कृष्ण से पूछती है कौन तुम, कृष्ण उत्तर देते हैं घनश्याम है । राधिका घनश्याम का अर्थ बादल लगा कर कहती है घनश्याम है तो कहीं जाकर बरसो।'

16.5.2 अर्थालंकार

जहाँ कथन विशेष में सौन्दर्य तथा अर्थ चमत्कार विशिष्ट शब्द प्रयोग पर आश्रित न होकर अर्थ ' की विशिष्टता के कारण आया हो वहाँ अर्थालंकार होता है जैसे -

"कनक से दिन मोती सी रात"

यहाँ दिन को कनक के समान बताने तथा रात को माती के समान बताने से जो अर्थगत चमत्कार है उससे काव्य में सौन्दर्य आ गया है । प्रमुख अर्थालंकारों का विवेचन इस प्रकार है-

(1) उपमा - अत्यन्त सादृश्य के कारण सर्वथा भिन्न होते हुए भी जहाँ एक वस्तु या प्राणी की तुलना दूसरी वस्तु या प्राणी से की जाती है, वही उपमा अलंकार होता है । जैसे - 'मंजुल मुख शशि के समान है सुन्दर'

यहाँ मंजुल मुख की सुन्दरता की तुलना शशि (चन्द्रमा) से की गई है ।

उपमा के चार अंग होते हैं - उपमेय अर्थात् जिसका वर्णन हो रहा हो, उपमान अर्थात् जिससे उपमेय की तुलना की जाए, साधारण धर्म' अर्थात् उपमेय व उपमान का परस्पर समान धर्म व गुण तथा वाचक शब्द अर्थात् उपमा अलंकार की पहचान सूचक शब्द जैसे । 'सा' , 'सी' सम आदि । उदाहरण में मंजुल मुख-उपमेय, शशि-उपमान, सुन्दर-साधारण धर्म तथा समान - वाचक शब्द है ।

अन्य उदाहरण -

(1) हरिपद कोमल कमल से ।

(2) काम-सा रूप, प्रताप दिनेश-सा ।

(3) सोम-सा शील है, राम महीप का ।

(2) रूपक - जहाँ गुण की अत्यन्त समानता के कारण उपमेय में ही उपमान का अभेद आरोप कर दिया गया हो वहाँ रूपक अलंकार होता है । जैसे - अम्बर-पनघट में डुबो रही, तारा

घट उषा-नागरी । इस पंक्ति में अम्बर में पनघट का, तारों में घट का और ऊषा में नागरी का अभेद रूप से आरोप किया गया है ।

अन्य उदाहरण-

(1) एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ।

(2) भैया मैं तो चंद्र खिलौना लैहों ।

(3) भ्रान्तिमान - रूप, रंग, कर्म आदि की समानता के कारण जहाँ एक वस्तु में अन्य किसी वस्तु की चमत्कारपूर्ण भ्रान्ति कल्पित हो जाए वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार होता है, उदाहरणार्थ' -

समुझि तुम्हें घनश्याम हरि नाँच उठे वनमोर यहाँ मोर श्रीकृष्ण को बादल समझ कर नाचने लगे । अन्य उदाहरण -

"नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से,
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है ।
सोचता है अन्य शुक 'यह कौन है ।"

(4) सन्देह - रूप-रंग आदि का सादृश्य होने के कारण उपमेय में उपमान का संशय होने पर सन्देह अलंकार होता है । उदाहरणार्थ-

"यह हृदय का बिम्ब है या है गवाक्ष हृदय पटल का ।
श्वेत पाटल पर मधुप का या कि चुम्बन चिह्न-झलका ।।"

(5) विरोधाभास - वास्तविक विरोध न होते हुए भी जहाँ विरोध का आभास मालूम पड़े वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है । उदाहरणार्थ -

"या अनुरागी वित्त की गति समुझहि नहिं कोय ।
ज्यों-ज्यों बूढ़े श्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ।।"

यहाँ श्याम रंग डूबने पर उज्ज्वल होना विरोध मालूम पड़ता है लेकिन वास्तव में नहीं है श्याम रंग में डूबना का अर्थ है - कृष्ण के ध्यान में मग्न होना ।

(6) विभावना - जहाँ पर कारण के बिना ही कार्य हो जाए वहाँ विभावना अलंकार होता है । उदाहरण-

'नाचि अचानक ही उठे, बिनु पावस बन मोर' में बिना वर्षा के ही मोर के नाचने का कार्य हो गया है अत: विभावना अलंकार है ।

16.6 छन्द - परिभाषा, छन्द के उपकरण व गणविधान

छन्द - परिभाषा - कविता में प्रयुक्त होने वाले वर्ण, मात्रा, यति, गति, गण, लय व चरण आदि की उचित व्यवस्था का नाम 'छन्द' है । संस्कृत के कवियों ने 'छन्द' की ओर विशेष ध्यान दिया है । जिस प्रकार संगीत में किसी विशेष समय में एक विशेष राग ही हृदय को अधिक प्रभावित कर सकता है, उसी प्रकार एक विशेष रस के लिए एक विशेष छन्द कविता को प्रभावित कर सकता है । छन्द का अस्तित्व ऋग्वेद की भाँति ही प्राचीनतम है । सामवेद

में तो अनेक छन्दों का वर्णन है । वेदों को यदि पुरूष माना गया है तो छन्द उसके चरण माने गए हैं - 'छन्द पादो तु वेदस्य ।

छन्द के उपकरण - चरण मात्रा, गति, यति, तुक तथा गुण को छन्द के उपकरण माने गए हैं क्योंकि इनकी उचित व्यवस्था का नाम ही छन्द है । उनका विवेचन अग्रलिखित है -

चरण - प्रत्येक छन्द, कुछ पंक्तियों से बनता है जैसे रोला' छन्द में चार पंक्तियाँ अर्थात् चार चरण होते हैं ।

मात्रा - किसी स्वर के उच्चारण करने में जो समय है उस अवधि को मात्रा कहते हैं । ह्रस्व स्वर के उच्चारण मैं कम समय लगता है तो उसकी एक मात्रा तथा दीर्घ स्वर के उच्चारण में ज्यादा समय लगता है तो उसकी -दो मात्राएँ मानी जाती है ।

ह्रस्व स्वर अ, इ, उ, तथा ऋ लघु तथा आ, ई, अ ए, ऐ, ओ औ अं, गुरू, या दीर्घ । स्वर कहलाते हैं । लघु मात्रा का संकेत खड़ी पाई **(1)** तथा दीर्घ मात्रा का संकेत - **(S)** माना जाता है । व्यंजनों की मात्राओं का विचार उनसे मिले हुए स्वर के अनुसार किया जाता है । जैसे क, कि, कु, कू के आदि ।

विसर्ग से युक्त वर्ण (दुःख) संयुक्त: अक्षरों के पूर्व वर्ण (मन्द, युधिष्ठिर) को गुरू माना जाता है चन्द्रबिन्दु (ँ) के उच्चारण करते समय भार नहीं पड़ता इसलिए इसकी लघु मात्रा मानी जाती है ।

गति - गति का अर्थ, है - प्रवाह अर्थात् छन्द को पढ़ते समय कहीं भी व्यवधान नहीं आना चाहिए । कविता में वर्ण मात्रा के साथ गति का भी ध्यान रखना चाहिए ताकि पढ़ने में आनन्द आए ।

यति - छन्द को पढ़ते समय नियमित वर्ण संख्या अथवा मात्रा के बाद बीच में थोड़ी देर के लिए रुकना पड़ता है । इस रुकने की क्रिया या विराम को 'यति' कहते हैं । यदि यति नियमानुसार निश्चित स्थान पर न हो तौ अर्थ का अनर्थ हो जाता है ।

तुक - छन्दों के प्रत्येक चरण के अन्त में समान रबर वाले वर्ण का होना तुक कहलाता है। तुकान्त, छन्द का प्रचलन हिन्दी कविता में अधिक हुआ है। अंग्रेजी साहित्य में भी तुकान्त छन्द अधिक प्रचलित है । जैसे-

मानुष की भाषा में गाऐं,
सूरज प्रेम किरण बरसाऐ,
ऐसी कोई सुबह दिखाऐ,
आओ मिलकर गीत बनाऐ ।

गण विधान - छन्द में तीन-तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं । गण के भेद को जानने और याद करने के लिए एक सरल सूत्र हैं -

यमाताराजभानसलगा

इसके अनुसार तथा लघु व दीर्घ वर्ण के विचार से गणों की संख्या आठ मानी गई है । नीचे दी गई तालिका में गणों के नाम, उनकी मात्रा (रूप) व उदाहरण शब्द दिए गए है ।

क्र.सं.	नाम	रूप	सूत्र रूप	उदाहरण शब्द
1.	यगण	SS	यमाता	सितारा
2.	मगण	SSS	मातारा	सैनानी
3.	तगण	SSSS	ताराज	दातार
4.	रगण	SIS	राजभा	केतकी
5.	जगण	ISI	जभान	पराग
6.	भगण	SII	भानस	राघव
7.	नगण	III	नसल	नमन
8.	सगण	IIS	सलगा	कमला

'यमाताराजभानसलगा इस सूत्र के अनुसार जिस गण का रूप (मात्रा) जानना हो उसके अक्षर के पश्चात् दो वर्ण और जोड़ दीजिए जैसे मगण का रूप जानने के लिए मा के आगे दो वर्ण 'ता' 'रा' को जोड़ने से **मातारा** वर्ण समूह बना जिसमें तीनों वर्ण गुरू (दीर्घ) है अत: मगण का रूप हुआ (SSS) आदि मध्य व अन्तु गुरू जैसा कि उपर्युक्त सारणी में स्पष्ट है ।

16.7 छन्द के भेद

छन्द के तीन प्रमुख भेद माने जाते हैं - **(1) वर्णिक छन्द (2) मात्रिक छन्द (3) लयात्मक छन्द** हम यहाँ वर्णिक छन्द तथा मात्रिक छन्द की ही चर्चा करेंगे ।

16.7.1 वर्णिक छन्द-

जहाँ चरणों में मात्रा का विधान न होकर वर्णो की संख्या का समान विधान होता है, उसे वर्णिक छन्द कहते हैं । जैसे

	वर्ण संख्या
"जिसे जन्म की भूमि भाती नहीं है ।	12
जिसे देश की याद आता नहीं है ।।	12
कृतघ्नी भला कौन ऐसा मिलेगा ।	12
उसे देख जी क्या किसी का खिलेगा ।।"	12

उक्त छन्द में मात्राओं की संख्या प्रत्येक चरण में बराबर नहीं है लेकिन वर्णों की संख्या प्रत्येक चरण में 12 ही है ।

पाठ्यक्रम में निहित वर्णिक छन्दों की विवेचना इस प्रकार है -

(1) उपेन्द्र वज्रा - इसके प्रत्येक चरण में क्रमश: एक जगण एक तगण, एक जगण और दो गुरू होते हैं । एक चरण में कुल वर्ण संख्या 11 होती है । जैसे -

बिना विचारे जब काम होगा । - 11 वर्ण
कभी न लाभ परिणाम होगा । - 11 वर्ण

यहाँ तीन-तीन वर्णों का समूह बनाकर गण की पहचान कर गुणों के आधार पर उपेन्द्र वज्रा छन्द का उदाहरण समझाया गया है, विद्यार्थी इसी तरह अन्य छन्दों के उदाहरण समझें ।

(2) इन्द्रवजा - इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जाण और दो गुरू (दीर्घ) स्वर का प्रयोग होता है । वर्ण की संख्या प्रत्येक चरण में 11 होती है । उदाहरण -

होता उन्हें केवल धर्म प्यारा ।
सत्कर्म ही जीवन का सहारा । ।

(3) मालिनी - इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो नगण, दो मगण तथा एक यगण होता है। वर्ण संख्या 15 और यति आठवें वर्ण पर होती है ।

"प्रमुदित मथुरा के, मानवों को बना के । - वर्ण संख्या- 15
सकुशल रह के औ, विघ्न बाधा बचा के ।।
निज प्रिय सुत दोनों साथ लेके सुखी हो ।
जिस दिन पलटेंगे, गेह स्वामी हमारे ।।"

16.7.2मात्रिक छन्द

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या नियमित व निश्चित हो तथा वर्षो की संख्या नियमित व निश्चित हो तथा वर्णो की संख्या के नियम का पालन न किया गया हो वहाँ मात्रिक छन्द होता है । मात्रिक छन्द में मात्राओं का नियमित विधान होता है ।

उदाहरणार्थ -

शशि मुख पर घूंघट डाले आँचल में दीप छिपाए । मात्रा-24
जीवन की गोधूलि में कौतूहल से तुम आए ।। मात्रा-24

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ समान और नियमित रूप से है किन्तु वर्णो की संख्या नियमित नहीं है । अत: यह मात्रिक छन्द का उदाहरण है ।

पाठ्यक्रम में निहित मात्रिक छन्दों की विवेचना अग्रलिखित है -

(1) चौपाई - यह मात्रिक सम छन्द है ।

प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं । चरण के अन्त में गुरू, लघु नहीं होना चाहिए।

"कातिक सरद चन्द उजियारी ।
जग शीतल हौं बिरहै जारी ।।
चौदह करा चाँद परगासा ।
जन्तु जरै सब धरति अकासा ।। "

(2) रोला - यह भी मात्रिक सम छन्द है । इसके प्रत्येक चरण में 11 और 13 विराम से ' 24 मात्राएँ होती हैं । जैसे-

"नर की सन्तति सदा, हीन नर तुल्य रहेगी ।
यों ही अत्याचार, असुर के विवश सहेगी ।।"

(3) दोहा - यह मात्रिक अर्धसम छन्द है । इसके प्रथम तथा वृत्तीय चरण में 13 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में ।। मात्रा होती है । चरण के अन्त में लघु होना आवश्यक है । जैसे-

मेरी भव बाधा हरौ 13 मात्रा
राधा नागरि सोई । 11 मात्रा

जा तन की झाई परै 13 मात्रा
स्याम हरित दुति होई 11 मात्रा

(4) बरवै - इसके विषम चरणों (प्रथम व तृतीय) में 12 मात्रा तथा सम चरणों में 7 मात्रा होती है और चरण के अन्त में लघु होना आवश्यक है । जैसे -

"प्रेम प्रीत को बिखा , - 12
चले लगाय - 7
सींचनन की सुधि ली जो - 12
मुरझि न जाय - 7

(5) सोरठा - इसमें विषम- चरणों में 11 तथा सम चरणों में 13 मात्राएँ होती हैं । मात्राओं को दृष्टि से दोहे छन्द का विपरीत है । जैसे -

फूले फले न बेंत, यद्यपि सुधा बरसहिं जलद ।
11 13
मूरख हृदय न चेत, जो गुरू मिलहि विरंचि सम ।।
11 13

(6) छप्पय - यह मात्रिक विषम छन्द है । इस छन्द में छः चरण होते हैं । प्रथम चार चरण रोला छन्द के तथा अन्तिम दो चरण उल्लाला छन्द के होते हैं । जैसे -

नीलाम्बर परिधान, हरित पट पर सुन्दर है ।
सूर्य चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है ।।
नदियाँ प्रेम प्रवाह, फूल तारे मण्डल हैं ।
बन्दीजन खगवृन्द, शेष फन सिंहासन है ।।
करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस वेष की ।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ।।

(7) कुण्डलियाँ - यह भी मात्रिक विषम छन्द है तथा मिश्रित छन्द है । यह दोहा व रोला छन्द के मिश्रण से बना है । इसमें चरणों की संख्या छः होती है । प्रथम दो चरण दोहे तथा अन्तिम चार चरण रोला छन्द के होते हैं । जैसे -

साईं अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजै त्रास ।
पलक दूर नहीं कीजिए, सदा रखिए पास ।।
सदा रखिए पास, त्रास कबहुँ नहिं दीजै ।
त्रास दियो लंकेश, ताहि की गति सुनि लीजै ।।
कह गिरधर कविराय, राम सौ मिलिगौ जाई ।
पाप विभीषण राज, लंक पति बाज्यौ साई ।।

16.8 काव्य में रस, अलंकार व छन्द का महत्त्व

काव्य में रस का महत्त्व

भारतीय काव्य शास्त्रियों ने रस' को काव्य का प्राण माना है । आचार्य भरत मुनि ने बहुत पहले ही रस के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि रस के बिना किसी अर्थ की प्रवृत्ति

भी नहीं हो सकती । आचार्य दण्डी, भामह, थार नरेश भोज व जयदेव, जैसे आचार्य अलंकारवादी होते हुए भी काव्य में रस की रसात्मकता को आवश्यक शर्त बताते हैं । पण्डित राज विश्वनाथ ने तो रसात्मक वाक्य काव्यम्' कहकर रस को स्पष्ट ही काव्य का सर्वस्व बना दिया है । भावों की अनुभूति ही कविता को जन्म देती है । पहले हृदय में भावों का ज्वार उठता है फिर शब्दों में साकार होकर कविता का रूप धारण करता है । अत: यह स्पष्ट है कि भाव ही पहली वस्तु है, उसके बाद अभिव्यक्ति का स्थान है । अत: भाव रस ही काव्य की आत्मा है जिसके प्रकटीकरण में भाषा, अलंकार आदि उपादान के रूप में आते हैं । इस प्रकार रस साध्य है और अभिव्यक्ति के माध्यम - अलंकार, छन्द, भाषा, बिम्ब, शैली आदि साधन है । रसात्मक होने के कारण ही काव्य के आनन्द को विद्वानों ने ब्रह्मानन्द सहोदर माना है । अत: रस का काव्य में सर्वाधिक महत्त्व है।

(ख) काव्य में अलंकारों का महत्व

कविता के सुन्दरता की वृद्धि अलंकारों द्वारा होती है । उत्कृष्ट काव्य वही कहा जाता है जो पाठकों को अधिक से अधिक प्रभावित कर सके । अलंकारों के प्रयोग से कवि की उक्ति में वह शक्ति आ जाती है कि उसे पढ़कर या सुनकर फौरन ही पाठक उसकी ओर आकृष्ट होकर उसमें तन्मय हो जाता है । काव्योत्कर्ष में विधायक होने के कारण अलंकारों को काव्य में बहुत महत्त्व दिया गया है । भामह से पूर्व तो अलंकार काव्य के बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों को अलंकृत करने वाले उपादानों के लिए प्रयुक्त किया जाता था अत: पहले अलंकार-शास्त्र साहित्य-शास्त्र का पर्यायवाची माना जाता था । किन्तु बाद में अलंकार काव्य का एक अंग मान लिया गया तथा उसके साथ रस, गुण आदि का भी महत्व आका गया । बहुत पहले ही महर्षि व्यास ने अग्नि पुराण में अलंकारों के उद्देश्यों के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए अलंकारों से रहित कविता को विधवा के समान बताया था-

'अलंकार रहिता विधवेद सरस्वती । '

हिन्दी के आचार्य केशवदास भी इसी मत के पोषक थे । उन्होंने ही अलंकारों से रहित काव्य में काव्यत्व मानने में हिचकिचाहट प्रकट की है -

'अदपि सुजाति सुलक्षणी सुबरन सरस सुवृत्त ।

भूषण बिनु न बिराजई, कविता अनिता मित्त । ।

आचार्यों ने अलंकारों को आभूषणों की भाँति वृद्धि के सहायक उपादान के रूप में स्वीकृत किया है अतएव उनकी स्थिति की अनिवार्य एवं स्थायी नहीं माना जा सकता । रस तथा गुण जहाँ काव्य के नित्य धर्म के रूप में स्वीकृत किये गए हैं वहाँ अलंकारों को काव्य का नित्य धर्म कहा गया है । स्वन्यालोक-लोचनकार ने स्पष्ट ही लिखा है कि निर्जीव लाश में जिस प्रकार कुण्डल आदि भूषण शोभा नहीं देते । उसी प्रकार रस रहित काव्य में अलंकार भी निरर्थक हैं। रस-रहित काव्य में केवल अलंकारों की सजावट कोई मूल्य नहीं रखती । अलंकारों से युक्त कविता तभी प्रभावोत्पादक होगी जबकि वह रससिक्त हो । अत: काव्य में अलंकारों का स्थान रस की भाँति प्रधान रूप में न होकर गौण रूप में है । वे काव्य के अनित्य धर्म है, नित्य धर्म हैं । उनकी स्थिति काव्य में आवश्यक तो है लेकिन अनिवार्य नहीं ।

काव्य में छन्द का महत्त्व

पद्य का सम्बन्ध अपेक्षाकृत हृदय से अधिक होता है जबकि गद्य को हम वृद्धि प्रधान कह सकते हैं । पद्य का झुकाव हृदय की रागात्मक वृत्ति की ओर होने के कारण लय की ओर उनका आग्रह रहता है । कला का सम्बन्ध हृदय से होता है । अत: संगीत, चित्र और काव्य-कला में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है । यही कारण है कि काव्य में चित्रात्मकता एवं संगीतात्मकता को आवश्यक बताया है । 'लय' संगीत की देन है और छन्द में लय का ही विधान होता है। अत: छंदोबद्ध कविता में काव्य और संगीत का अपूर्व संगम रहता है । काव्य में छन्द का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । सम्पूर्ण पंच-साहित्य का मूलाधार छंद ही है । कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने कविता और छंद के सम्बन्ध को निम्न पंक्तियों में बहुत अच्छी तरह दर्शाया है - 'कविता और छन्द में घनिष्ठ सम्बन्ध है । कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है । जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं - जिसके बिना वह अपनी ही बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है - उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग की स्पंदन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रीड़ों में एक कोमल, सजल कलत्व भर उन्हें सजीव बना देते हैं । वाणी की अनियन्त्रित सांसें नियन्त्रित हो जातीं, तालयुक्त हो जाती, उसके स्वर में प्राणायाम, रोजों से स्फूर्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध झंकारें एक वृत में बँध जातीं, उनमें परिपूर्णता आ जाती। अत: यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि पद्य स्वत: ही छन्दोबद्ध होता है । आज के बहुत से प्रयोगवादी और प्रगतिवादी कवि छन्द के बन्धन को हेय मानकर मुक्त छन्द में कविता करते हैं किन्तु यह धारणा भ्रामक है । मुक्तछन्दों की भी एक विशेष लय होती है, लय के बन्धन से मुक्त कविता नीरस निबन्ध का अनुच्छेद मात्र हो सकता है उसे कविता की संज्ञा कभी भी नहीं दी जा सकती । अत: कविता में छन्द एक अनिवार्य तत्त्व कहा जा सकता है।"

16.9 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान गए हैं कि -

रस आनन्द स्वरूप है इसीलिए उसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा जाता है ।

स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव व संचारी भाव से परिपक्व होकर रस रूप ग्रहण करता है । नौ पारम्परिक रसों, उनके स्थायी भाव तथा विभाव, अनुभाव व संचारी भाव का रसोद्रेक में योगदान ही सहृदय को काव्य में आनन्द की अनुभूति कराता है ।

अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म हैं । काव्य की आत्मा 'रस' है और उसकी प्राप्ति में अलंकार एक सहायक उपादान है । शब्दालंकार व अर्थालंकार के अन्तर्गत सम्मिलित अलंकारों के लक्षण उदाहरण को समझते हुए काव्य में अलंकार की महत्ता, अभिव्यक्ति को सशक्त व प्रभावी बनाने में है । काव्य में अलंकार प्रयोग स्वाभाविक होना चाहिए, अनिवार्य नहीं ।

मात्रा, यति, गति, वर्ण, गण व तुक के नियमों से बंधी रचना को छंद या पिंगल कहा जाता है । लयबद्ध व छन्दबद्ध रचना सहृदय को आनन्दित करती है । छन्द बन्द रचना में काव्य व संगीत का अपूर्व संगम रहता है ।

काव्य मे रस का स्थान सर्वोपरि है । रस साध्य है और अलंकार व छन्द रस निष्पत्ति के साधन मात्र हैं ।

अन्त में इस इकाई में निहीत रस, अलंकार व छन्द के वर्गीकरण को इस रेखाचित्र के माध्यम से समझा जा सकता है-

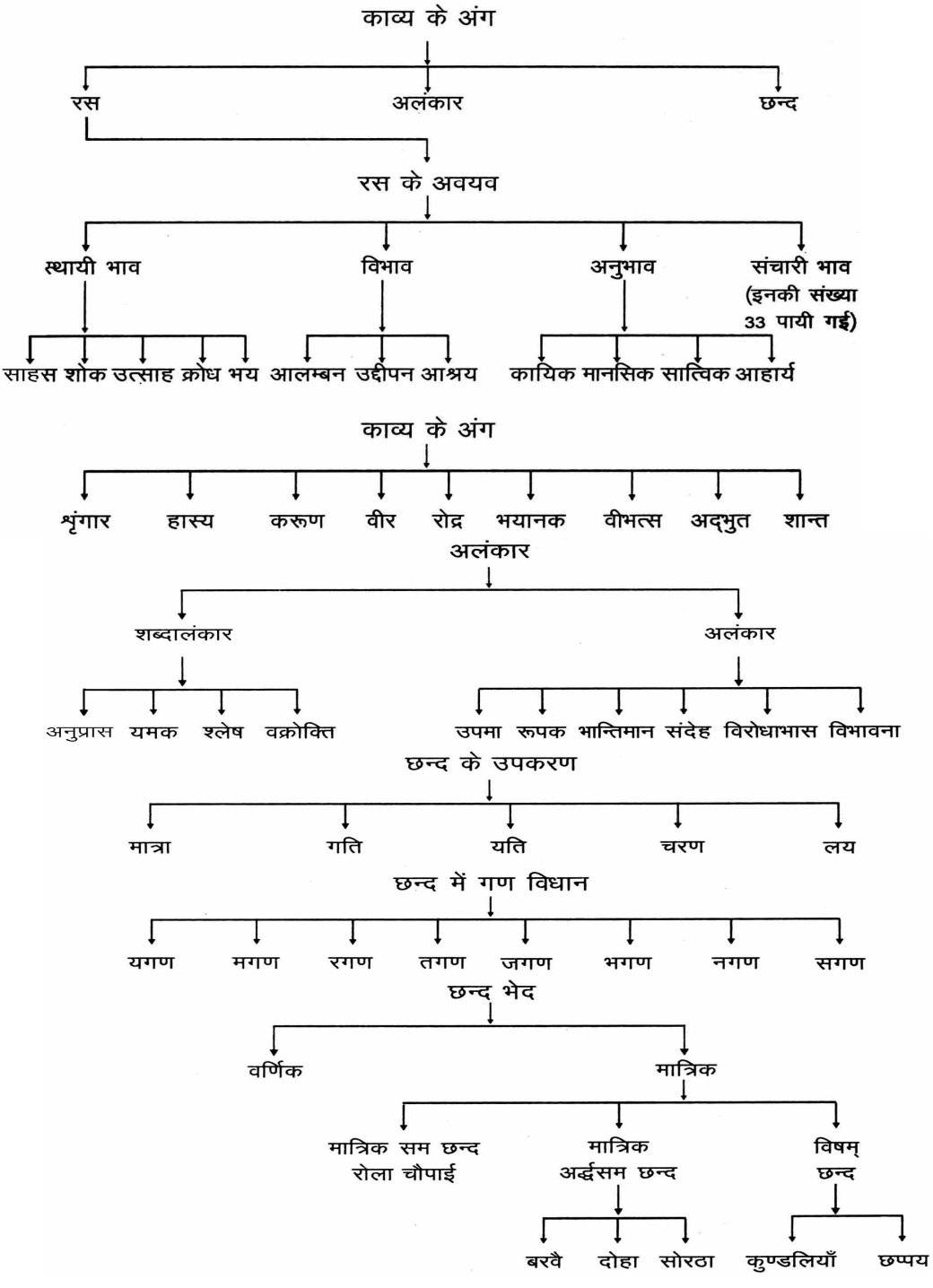

16.10 संदर्भ ग्रन्थ

(1) भारतीय काव्य शास्त्र - डॉ. भागीरथ मिश्र

(2) भारतीय काव्य शास्त्र का इतिहास - बलदेव उपाध्याय

(3) काव्यांग विवेचन - डॉ. भागीरथ मिश्र एवं डॉ. बलभद्र तिवारी

(4) रस सिद्धान्त - डॉ. नगेन्द्र

(5) हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्रग शुक्ल

16.11 अभ्यास प्रश्न / बोध प्रश्न

(1) काव्य में शब्द व अर्थ के मध्य परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए?

(2) काव्य में रस' क्या है? इसे परिभाषित कीजिए ।

(3) स्थायी भाव किस प्रकार से रस रूप में परिणत होता है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

(4) स्थायी भाव व संचारी भाव में क्या अन्तर है?

(5) आलम्बन व आश्रय विभाव का सोदाहरण वर्णन कीजिए?

(6) निम्नलिखित रसों के लक्षण - उदाहरण की विवेचना कीजिए ।

(7) (1) श्रृंगार रस (2) हास्य रस (3) रौद्र रस

(8) 'काव्य में रस' साध्य तथा 'अलंकार व 'छन्द' साधन । इस कथन की पुष्टि कीजिए? शब्दालंकार व अर्थालंकार में क्या अन्तर है?

(9) उपमा व रूपक अलंकार में अन्तर सोदाहरण लिखिए?

(10) निम्न अलंकारों की उदाहरण सहित परिभाषा लिखिए?
(1) अनुप्रास (2) यमक (3) भ्रान्तिमान

(11) निम्न छन्दों के लक्षण तथा उदाहरण लिखिए -
(1) इन्द्रवज्रा (2) दोहा (3) सोरठा

(12) कुण्डलियाँ छन्द किन दो छन्दों के योग से बनता है?

(13) दोहा व सोरठा में उदाहरण देते हुए अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

इकाई - 17

शब्द शक्ति, गुण एवं दोष

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 शब्द शक्ति क। अर्थ व प्रकार

17.2.1 अभिधा 17.2.2 लक्षणा 17.2.3 व्यंजना

17.3 काव्य गुण परिभाषा व प्रकार

17.3.1 ओज गुण 17.3.2 प्रसाद गण 17.3.3 माधुर्य गुण

17.4 काव्य दोष परिभाषा व भेद

17.4.1 श्रुतिकटुत्व

17.4.2 च्युत संस्कृति

17.4.3 ग्राम्यत्व

17.4.4 अश्लीलत्व

17.4.5 क्लिष्टत्व

17.4.6 अक्रमत्व

17.4.7 दुष्क्रमत्व

17.4.8 पुनरूक्त

17.4.9 अप्रतीत्व

17.4.10 संदिग्ध

17.5 सारांश

17.6 संदर्भ ग्रन्थ

17.7 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्देश्य

ऐच्छिक हिन्दी की इस अन्तिम इकाई में आप एक अन्य दृष्टि से शब्दों और उनसे प्राप्त होने वाले अर्थों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे । यह दृष्टि काव्यशास्त्रीय है । अत: इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- शब्द शक्ति का अर्थ बतलाते हुए उसकी परिभाषा तथा
- भेदों का उल्लेख कर सकेंगे,
- शब्द के तीन प्रकारों-वाचक, लक्षक और व्यंजक को समझने के साथ आप
- वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को बता सकेंगे,
- शब्द की अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना शक्ति का परिचय दे सकेंगे

- काव्य गुण की परिभाषा व महत्ता समझ सकेंगे
- ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का परिचय दे सकेंगे
- काव्य दोष की परिभाषा, अर्थ एवं भेदों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- श्रुतिकटुत्व, ग्राम्यत्व, क्लिष्टत्व, च्युत संस्कृति आदि गुणों को जान सकेंगे ।

17.1 प्रस्तावना

श्रुति कहती है - 'कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भू:' । अर्थात् कवि ऐसा मनीषी है जो शब्द के माध्यम से एक नयी सृष्टि की रचना कर लेता है । यह सृष्टि ही काव्य संसार है । कवि कर्म को 'काव्य संसार' कहा गया है और कवियों को इस संसार का स्रष्टा या प्रजापति । तभी 'अग्निपुराण' में कहा गया है - 'अपारे काव्य संसारे कविदेव: प्रजापति:' ।

काव्य संसार का आधार शब्द है एवं शब्द की महिमा अनन्त है इसीलिए शब्द को ब्रह्म भी कहा गया है । शब्द अपने आपमें कुछ नहीं होता किन्तु इससे ध्वनित ने होने वाला अर्थ इसे जीवन प्रदान करता है । काव्य की गुणवत्ता का मूल्यांकन भी उसके अर्थ की मनोरमता गहराई, विविधता, गम्भीरता आदि पर निर्भर है । शब्द काव्य में प्रयुक्त होकर जिन माध्यमों से अर्थ की प्रतीति कराता है उनमें छंद, अलंकार, शक्ति, गुण आदि प्रमुख हैं । इन्हें अच्छी तरह समझे बिना न तो कवि काव्य रचना कर सकता है न पाठक या श्रोता उसका रसास्वादन कर सकता है । सारी सावधानियों के बावजूद कवि द्वारा निर्मित काव्य में कुछ दोष रह जाते हैं जिनका विवेचन होता रहता है ताकि पाठक या श्रोता काव्य की कवि प्रतिभा को समझ सके और आगे के कवि काव्य दोषों से दूर रहें । काव्य के इन उपकरणों को समझना काव्यास्वाद के लिए आवश्यक है ।

शब्द और अर्थ को काव्य मानने की परम्परा संस्कृत काव्यशास्त्र में दीर्घकाल तक प्रवर्तित रही । हिन्दी काव्य शास्त्र में भी उस परम्परा को ही मूलत: ग्रहण किया गया है । काव्य को जन्म देने वाले इन शब्द और अर्थ नामक तत्वों के शाश्वत सम्बन्ध के विवेचन के बिना काव्य के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कदापि सम्मव प्रतीत नहीं होता । इस कारण काव्यशास्त्र में आरम्भ से ही शब्द शक्ति के विषय पर व्यापक विचार हुआ है । शब्द और अर्थ का सम्बन्ध ही शब्द की शक्ति कहलाता है । प्रत्येक शब्द से जो अर्थ निकलता है । उस अर्थ का बोध शब्द शक्ति ही कराती है ।

17.2 शब्द शक्ति

शब्द में निहित अर्थ को प्रकट करने वाले व्यापार (कार्य) को शब्द शक्ति कहते हैं । शब्द शक्ति के तीन भेद होते हैं-

(1) अभिधा

(2) लक्षणा

(3) व्यंजना

17.2.1 अभिधा

शब्द के साधारण एवं व्यावहारिक अर्थ को प्रकट करने वाली शक्ति को अभिधा कहते हैं । यह शक्ति किसी के गुण जाति द्रव्य क्रिया का ज्ञान कराती है ।

उदाहरण - गधा - गधा शब्द का पशु रूप में अर्थ बताने वाली शक्ति को अभिधा कहा जाता है । इस शक्ति से निकलने वाले अर्थ को अभिधार्थ या वाच्यार्थ कहते हैं । अभिधा तीन प्रकार की होती है -

(1) समुदाय मात्र शक्ति (रूढ़ि)

(2) अवयवमात्र शक्ति (योग)

(3) समुदायावयवोमय शक्ति (योग रूढ़ि)

17.2.2 लक्षणा

जहाँ शब्द का मुख्य अर्थ से तो मूल अर्थ प्रकट न हो किन्तु उस मुख्य अर्थ से संबंध वाला कोई अन्य अर्थ प्रकट हो तो वह अन्य अर्थ देने वाला व्यापार, कार्य, लक्षणा शक्ति कहलाता है । जैसे - मोहित चौकन्ना हो गया ।

चौकन्ना - मुख्य अर्थ - चार कान वाला

अन्य अर्थ - किसी बात को ध्यान से सुनना सजग हो जाना

उदाहरण - दिलीप तो निरा गधा है

मुख्य अर्थ - जानवर - गधा - लम्बे कान वाला पशु विशेष

अन्य अर्थ - मूर्ख

यहाँ गधे का अर्थ मूर्ख है यह लक्षणा शक्ति के रूप में प्रकट हुआ है ।

लक्षणा के चार कारण बताए गए हैं -

(1) मुख्य अर्थ का बोध होना चाहिए

(2) मुख्यार्थ के साथ ही लक्ष्यार्थ का सम्बन्ध हो

(3) रूढ़ि

(4) प्रयोजन

इनमें से प्रथम दो का होना तो लक्ष्यार्थ ज्ञान के लिए परम आवश्यक है । इस प्रकार लक्षण प्रवृति में तीन कारण हुए (1) मुख्यार्थ बोध (2) मुख्यार्थ सम्बन्ध, (3) रूढ़ि और प्रयोजन में से कोई एक । लक्षणा शब्द शक्ति अर्पिता है - ईश्वर के द्वारा रचित न होकर मनुष्यों के द्वारा कल्पित है ।

लक्षणा शब्द शक्ति के भेद - (1) रूढ़ि लक्षणा, (2) उपादान लक्षणा

रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण - कलिंग साहसी है । अर्थात् कलिंग देश में रहने वाले वहाँ के निवासी (पुरुष) साहसी है । गंगा में घोष है अर्थात् गंगा नदी के तट पर ग्राम का होना लक्षणा का बोध कराता है ।

उपादान लक्षणा में - श्वेत दौड़ रहा है । किसी व्यक्ति ने किसी अवसर पर किसी अन्य व्यक्ति से पूछा - कौनसा घोड़ा दौड़ रहा है? उसने उत्तर दिया- श्वेत दौड़ रहा है । इसी प्रकार भाले लेकर किसी स्थान पर सैनिकों के प्रवेश करने पर किसी ने दूसरे से पूछा - कौन जा रहे हैं?

तब दूसरे ने उत्तर दिया- भाले प्रवेश कर रहे हैं । भाले धारण करने वाले पुरुष सैनिकों से आशय है ।

काव्य प्रकाश में लक्षणा के 6 भेद दर्शाए गये हैं -

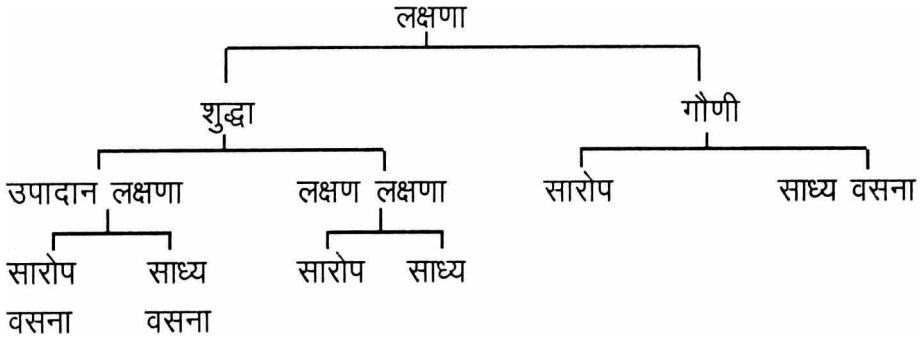

17.3.3 व्यंजना

शब्द के जिस व्यापार से मुख्य और लक्ष्य अर्थ से भिन्न अर्थ का पता लगे उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं । व्यंजना शक्ति से निकलने वाले अर्थ को व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ भी कहते हैं । व्यंजना शक्ति किसी नये अर्थ को प्रकट करती है जो न तो उसके मुख्य अर्थ संबंधित होता है और न उसके लक्ष्यार्थ से ही । व्यंग्यार्थ पाठक या श्रोता पर निर्भर करता है । व्यंजना शक्ति केवल अर्थ का संकेत इशारा भर देती है । बाकी अर्थ कल्पना शक्ति के आधार पर श्रोता या पाठक ही लगाता है ।

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून

पानी गये न उबरै, मोती, मानुष चून

पानी के तीन अर्थ हैं - चूने के अर्थ में जल, मानुष के अर्थ में इज्जत, मोती के अर्थ में चमक है । पानी से इज्जत का अर्थ व्यंग्यार्थ है । यह व्यंजना है ।

अन्तर

अभिधा	लक्षणा	व्यंजना
1. शब्द का साधारण व्यावहारिक अर्थ मिलता हुआ अर्थ	शब्द का साधारण अर्थ का विरोध किन्तु उससे अर्थ।	अभिधा और लक्षणा से भिन्न कोई अन्य
2. अभिधार्थ का निश्चित अर्थ होता हैंकल्पना , आवश्यकता नहीं।	अर्थ निश्चित नहीं होता किन्तु अर्थ की दिशा निश्चित होती हैं। थोड़ी कल्पना की जरुरत पड़ती हैं।	अर्थ संदर्भ से स्वत : अपना रूप लेता हैं। कल्पना की पूर्ण आवश्यकता होती हैं ।
3. अभिधार्थ के लिए किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं।	लक्ष्यार्थ के लिए अभिधा भी आधार बनता है	व्यंजना के लिए अभिधार्थ लक्ष्यार्थ दोनों आधार बनते हैं।
4. अभिधा पाठक श्रोता	लक्षणा कुछ अर्थ तो पाठक	व्यंजना कुछ संकेत भर

को वास्तविक अर्थ पूरा बता देती है । पर छोड़ देती है।	श्रोता की समझ पर छोड़ देती है ।	देती और सारा ही अर्थ पाठक श्रोता की बौद्धिक क्षमता
5. गद्य में प्रयुक्त गद्य होता हैं।	गद्य के अलावा काव्य में भी प्रयुक्त होती हैं ।	काव्य में विशेष रूप से प्रयुक्त होती है ।

17.3 काव्य गुण

रस को काव्य की आत्मा माना गया है । रस के उत्कर्ष में सहायक तत्वों को काव्य गुण कहा जाता है ।

जिस प्रकार आत्मा के शूरता, कायरता आदि धर्म या गुण होते हैं उसी प्रकार रस के धर्म गुण कहे जाते हैं । ये काव्य के नित्य धर्म होकर रस का उत्कर्ष बढ़ाते हैं ।

इनके प्रयोग से काव्य की सरसता में वृद्धि होती है तथा गुणों का अभाव काव्य में दोष उत्पन्न करता है । गुणहीन काव्य अधम कोटि का काव्य माना गया है ।

आचार्य वामन के अनुसार - विशेष प्रकार की पद रचना को रीति कहते हैं । यह रीति गुणों पर आश्रित होती है । आचार्य विश्वनाथ पदों के संयोजन या संगठन को रीति कहते हैं । यह रसों का उपकार करने वाली होती है ।

निष्कर्ष

दोषों का अभाव, रस के आश्रित रहने वाले काव्य के कारक धर्म तथा रस के उत्कर्ष के कारणों को काव्य गुण कहते हैं।

भरत मुनि ने काव्य गुणों की संख्या दस निर्धारित की है- (1) श्लेष, (2) प्रसाद, (3) समता, (4) समाधि (5) माधुर्य (6) ओज (7) सौकुमार्य (8) अर्थ शक्ति (9) उदारता (10) कान्ति। आचार्य दण्डी भी इन्हीं दस गुणों को काव्य के गुण मानते हैं । आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में सभी गुणों का समाहार तीन गुणों में किया है-

(1) ओज (2) प्रसाद (3) माधुर्य

17.3.1 ओज

ओज शब्द का अर्थ है - तेज, प्रकाश, दीप्ति । जो रचना सुनने वाले के मन में उत्साह, वीरता, आवेश, आदि जागत करने की क्षमता रखती है उसे ओज गुण कहा जाता है ।

भरत मुनि ने समास युक्त पदों वाली, गम्भीर अर्थ युक्त, श्रवण सुखद पदावली को ओजगुण के उपयुक्त बताया है । दण्डी ने समास युक्त पदों की बहुलता से पूर्ण रचना को ओजगुण से युक्त माना है । आचार्य वामन की मान्यता में संयुक्त अक्षरों व संश्लिष्ट पदों का संयोग आवश्यक है । मम्मट ने वीर रस, वीभत्स रस, रौद्र रस में ओज गुण को उत्तरोत्तर अधिक माना है । विश्वनाथ के अनुसार ओज गुण युक्त रचना में

(1) महाप्राण वर्ण - कठोर व क्लिष्ट वर्णों (ट वर्ण)

(2) संयुक्ताक्षर प्रयोग - संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है - क र्क, र्द्र, ग्ध आदि

निष्कर्ष

जिस काव्य रचना को सुनने या पढ़ने से भावक के चित्त का विस्तार हो, और मन में तेज उत्पन्न हो, वहाँ ओज गुण अभिव्यंजित होता है ।

इससे चित्त में दीप्ति व आवेग उत्पन्न होते हैं । इसमें द्वित्व वर्णों, संयुक्त वर्णों, लम्बे-लम्बे समासों तथा मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है ।

युद्ध वर्णन, वीरों के स्वभाव, वेशभूषा प्रकृति के विराट दृश्यों की उद्भावना के लिए ओज गुण का प्रयोग किया जाता है ।

<u>उदाहरण</u> -

1. गिर गिर कर भू पर रूण्ड उठे
   कर अट्टहास अरिमुण्ड उठे
   कोलाहल घोर प्रचण्ड उठे
   रण नाथ पिशाची झुण्ड उठे
2. महाप्रलय की महानिशा हो उग्र घटायें नम में छाये
   ज्वाला मुखी फट पड़े व्यग्र हो, मनुष्य अनल में जल जाये ।
   जलते बहते मनुज धरा के फल कर्मों का अपना पाये ।
   विनाश की इस वेदी पर रखे मनुजता की नींव रे ।
3. हयरूण्ड गिरे, गज झुण्ड गिरे
   कट कट अवनी पर शुण्ड गिरे
   भू पर हय विरल वितुण्ड गिरे
   लड़ते लड़ते अरिझुण्ड गिरे ।
4. बढ़ो करो वीर! स्व जाति का भला
   अपार दोनों विधि लाभ है हमें
   किया स्व कर्तव्य उबार जो लिया
   सुकीर्ति पायी यदि भस्म हो गये ।

17.3.2 प्रसाद गुण

प्रसाद का शाब्दिक अर्थ होता है - प्रसन्नता । जिस रचना में सुबोधता, स्वच्छता हो अर्थात् अर्थ सुनते ही समझ में आ जाए । ऐसी रचना प्रसाद के गुण से युक्त मानी जाती है । जिस प्रकार अग्नि सूखे ईंधन में तत्काल व्याप्त हो जाती है उसी प्रकार चित्त में तुरन्त व्याप्त होने वाली रचना में प्रसाद गुण होता है । (मम्मट- काव्य प्रकाश)

आचार्य दण्डी के मतानुसार - प्रसाद गुण वहाँ होता है जहाँ सुनते ही शब्द का अर्थ समझ में आ जाए । प्रसाद गुण में सरल, सहज, भाव व्यंजक शब्दों का प्रयोग किया जाता है । अर्थ की सुबोधता या सुस्पष्टता इसकी विशेषता है । प्रसाद गुण सभी रसों में विद्यमान रहता है। भिखारी दास ने इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है

मन रोचक अक्षर परे
सो है सिथिल शरीर ।
गुण प्रसाद जल सूक्ति ज्यों,

प्रघटै अरध गम्भीर । ।

उदाहरण -

1. वह आता
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता ।

2. हीनता हो स्वत्व कोई और त्याग
तप से तू काम ले, यह पाप है ।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
तेरी तरफ बढ़ रहा जो हाथ है ।।

3. वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैन
हरिनी के नैनान ते, हरि नीके यै नैन ।

4. जाकी रही भावना जैसी
प्रभु मूरति देखि तिन तैसी
देखहिं भूप महा रनधीरा
मनहुँ वीर रस धरे सरीरा ।

5. पुरवासिन देखे दोउ भ्राता
नर भूषण लोचन सुखदाता

6. देखि सुदामा की दीन दसा
करूना करिकै करूनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं
नैनन के जल सौं पग धोये ।।

7. विनती सुन लो हे भगवान
हम सब बालक हैं नादान
विद्या बुद्धि नहीं कुछ पास
हमें बना लो अपना दास ।

8. जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिय ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।

17.3.3 माधुर्य गुण

जिस काव्य रचना के पढ़ने या सुनने से पाठक या श्रोता का चित्त द्रवित हो उठता है वहाँ माधुर्य गुण होता है ।

अर्थात अन्तःकरण को आनंद, उल्लास, से द्रवित करने वाली कोमल मधुर वर्णों से युक्त रचना में माधुर्य गुण होता है । माधुर्य शब्द का अर्थ है - शहद जैसा मीठा । श्रृंगार या करूण रस के प्रसंगों में सहृदय सामाजिक का मन द्रवीभूत हो उठता है । भिखारी दास ने इसका लक्षण इस प्रकार बताया है

अनुस्वार औ वर्गजुत,

सवै वरन अटवर्ग,
अचार जा में मृदु परै,
सौ माधुर्य निसर्ग ।

माधुर्य गुण - (1) अनुस्वार वर्णो वाला, (2) कोमल वर्णो वाला, (3) ट वर्ग से रहित होता है तथा सामान्य महाप्राण ध्वनियाँ पद में कम होती है ।

सामान्य विशेषताएँ -

1. ट वर्ग (ट, ठ, ड, ढ. ण) को छोड़कर क से म तक के वर्णों से युक्त
2. आनुनासिक वर्णों की अधिकता
3. अल्प समास या समास का अभाव
4. कान्त पदावली युक्त, श्रुति मधुर शब्दों का प्रयोग होता है ।

उदाहरण -

1. पगली हाँ ! सम्हाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल
देख बिखराती है, मणिराजी अरे, उठा बेसुध चंचल ।

2. फटा हुआ नील वसन क्या,
औ यौवन की मतवाली ।
देख अकिंचन जगत लूटता,
छवि तेरी भोली भाली । ।

3. सखि निरख नदी की धारा
ढलमल ढलमल चंचल अंचल
झलमल झलमल तारा ।

4. नील सरोरूह स्थान, तरून अरून बारिज नयन ।
करहु सो यो उद धाम, सदा सीर क्षीर सागर सयन ।।

17.4 काव्य दोष

दोष वह तत्व है जो गुणों की क्षति करता है । काव्य या साहित्य में गुणयुक्तता रसोन्मीलन एवं उत्तम काव्यत्व की दृष्टि से अत्यावश्यक मानी गयी है । अत: रस के धर्म गुणों के विघातक अर्थात् उन्हें नष्ट करने वाले दोष में न आ जाये इसका पूर्ण ध्यान एक अच्छे कवि या साहित्यकार को रखना चाहिए । कविता कामिनी के शरीर का सौन्दर्य अलंकारों से निखरता है किन्तु सौन्दर्य का विकास गुणों से होता है । यदि उसमें दोष उत्पन्न हो जाये तो उसके सौन्दर्य का अवमूल्यन हो जाता है । काव्य में जो तत्व रस का उपकर्ष करता है उसे काव्य दोष कहते हैं ।

जहाँ भाव ग्रहण करने में कोई बाधा उत्पन्न हो जाय या गतिरोध आ जाय तो साहित्य शास्त्र की भाषा में उसे दोष कहा जाता है । अर्थात् - जो काव्य के आस्वादन में उद्वेग उत्पन्न करता है अथवा किसी वस्तु के द्वारा कविता के मुख्य अर्थ को समझने में बाधा पहुँचती है या उसकी सुन्दरता में कमी आती है तो उसे काव्य दोष कहा जाता है । काव्यास्वादन में वर्ण, शब्द,

वाक्य गठन, अलंकार, रस, छन्द आदि का समुचित प्रयोग नहीं होने पर बाधा उपस्थित होती है और रचना का सौन्दर्य एवं महत्व घट जाता है ।

काव्य दोष के प्रकार

(1) शब्द गत दोष, (2) अर्थगत दोष (3) रसगत दोष

17.4.1 श्रुतिकटुत्व दोष

कवि जहाँ कठोर वर्णों का प्रयोग करता है और जो सुनने में अच्छे नहीं लगते अथवा कानों में खटकते हैं तो उसे श्रुतिकटुत्व दोष कहते हैं ।

1. कब की इकटक डटि रही टरिया अंगुरिन टारि ।
   श्रृंगार रस के वर्णन में ट वर्ण की अधिकता के कारण श्रृंगार रस के आस्वादन में बाधा पहुँचती है ।
2. कवि के कठिनतर कर्म की करते नहीं हम धृष्टता
   पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता
   इसमें धृष्टता, विषयोत्कृष्टता, विचारोत्कृष्टता जैसे कर्ण कटु शब्दों का प्रयोग होने से कर्ण कटुता अनुभव होती है अत: यहाँ श्रुति कटुत्व दोष है ।
3. पावन पद वन्दन करके प्रभु कब कार्त्तार्थ्य मिले मुझको ।
   कार्तार्थ्य शब्द कर्ण कटु प्रतीत होता है ।
4. कटर कटर तण्डुल चबात हरि हँसि हँसि कै
   हियरा चटकात हरि रूकमिन महारानी कै
   ट वर्णों का प्रयोग कर्ण कटु है ।

17.4.2 च्युत संस्कृति दोष

जब कोई शब्द व्याकरण के नियमों के विरूद्ध प्रयुक्त होता है तब भाषा के संस्कार के गिर जाने (च्युत होने) के कारण वहाँ च्युत संस्कृति दोष होता है-

1. क्षण भर रहा <u>उजाला</u> में
   उजाला के स्थान पर उजाले कर देने से दोष का परिहार हो जाता है ।
2. <u>उमडते</u> पड़ते सर वृन्द थे
   उमड़ते के स्थान पर उमड़े होना चाहिए ।
3. <u>राजे</u> विराजे मख भूमि में थे
   राजे के स्थान पर राजा होना चाहिये ।
4. अरे अमरता के चमकीले पुतलों. <u>तेरे</u> वे जयनाद
   तेरे के स्थान पर तुम्हारे होना चाहिये ।

17.4.3 ग्राम्यत्व दोष

जब कवि अपनी भाषा में गंवारू या बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग करता है तो उसमें प्रान्तीय या देशज शब्द आ जाने से ग्राम्यत्व दोष कहलाता है ।

1. स्वर्ण शालियों की कलमें थी, दूर दूर तक फैल रही

शरद इंदिरा के मंदिर की, मानो कोई गैल रही ।

गैल शब्द ग्रामीण है ।

2. टूटी खाट पर टपकत टरियो टुटि

टरियो शब्द ग्रामीण है जो रचना को विकृत कर देता है ।

3. हेरत हेरत हरि थक्यौ रसखाने बतायौ न

लोग लुगाइन

लुगाइन शब्द गंवारू है ।

4. मूँड़पे मुकुट धरे सोहत है गोपाल

मूंड शब्द गंवारू है जिसका प्रयोग प्राय: शिष्ट समाज में नहीं होता है ।

5. कैसे कहते हो इस दुआर पर फिर से कभी न आऊँ ।

दुआर शब्द ग्रामीण बोलचाल का है ।

17.4.4 अश्लीलत्व दोष

जब कवि घृणास्पद, लज्जास्पद, या अमंगल सूचक शब्दों का प्रयोग कर देता है, जिससे काव्य में फूहड़पन और भद्दापन आ जाता है, वहाँ अश्लीलत्व दोष होता है ।

1. लगे थूककर चाटने अभी अभी श्रीमान् ।

थूक कर चाटना अभद्र प्रतीत होता है ।

2. रावण के दरबार में स्थिर अंगद का पाद

पाद शब्द (अपान वायु से जुगुप्सा या घृणा का भाव पैदा होता है ।

17.4.5 क्लिष्टत्व दोष

जहाँ किसी शब्द का अर्थ तुरन्त समझने में कठिनाई हो वहाँ क्लिष्टता दोष होता है ।

1. हेम सुता पति वाहन प्रिय, तुम इसमें रत्ती न फेर

यहाँ "हेम सुता पति वाहन" का अर्थ सहज ही ज्ञात नहीं हो जाता । इसका अर्थ है- हिमालय की सुता अर्थात् पार्वती के पति शिव के वाहन अर्थात् बैल । बैल भी व्यंजना में है अर्थात् मूर्ख।

2. सारंग[1] ' ले सारंग[2] चल्यों, सारंग[3]' पूग्यो आय

सारंग[4] सारंग[5] में दियो, सारंग[6] सारंग[7]' माय

सारंग शब्द के अर्थ कई रूपों में प्रयुक्त हुए हैं (1) घड़ा, (2) सुन्दरी, (3) बादल (वर्षा), (4) वस्त्र (धोती), 5. घड़ा, (6) सुन्दरी, (7) सरोवर । अर्थ- घड़ा लेकर सुन्दरी चली । इतने में बादल घिर आये, वर्षा होने लगी । सुन्दरी ने अपने वस्त्र घड़े में रख दिए और स्वयं पानी (सरोवर) में चली गयी ।

3. लंका पुरि पति को जो भ्राता, तासु प्रिया नहिं आवति

लंकापुरी का पति रावण, उसका भाई कुम्भकरण, उसकी प्रिया अर्थात् निद्रा । अत: यहाँ क्लिष्टत्व दोष है ।

17.4.6 अक्रमत्व दोष

जब वाक्य में शब्द का क्रम वाक्य रचना की दृष्टि से दूषित या अनुचित हो, तब अक्रमत्व दोष होता है -

1. अमानुषी भूमि अवानरी करौ ।
   अर्थात भूमि को मनुष्य और वानरों से हीन कर दूंगा ।
   यहाँ अमानुषी शब्द भूमि से पहले नहीं अपितु बाद में आना चाहिये । अन्यथा इसका अर्थ होगा - मनुष्य हीन भूमि वानरों से रहित कर दूंगा । अत: यह अक्रमत्व दोष है ।
2. सीताजू रघुनाथ को, अमल कमल की माल
   पहिरायी जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल
   यहाँ की विभक्ति प्रत्यय भूपाल शब्द के पश्चात आनी चाहिये ।
3. घंटों ले के जननि- हरि को गोद बैठती थी ।
   यहाँ जननि हरि शब्द हरि जननि के पूर्व होना चाहिए ।
   राधा जी हरि की जननि यशोदा जी को घंटों गोद में लेकर बैठी रहती थी ।
4. थे मानवता से भाई दोनों हीन हुए ।
   थे का स्थान हुए के पश्चात् और दोनों का प्रयोग भाई से पूर्व होना चाहिए । तभी अर्थ सहजता से स्पष्ट हो सकता है।
5. नहीं शिशुपाल के वध से मिटा था मान उनका
   दुबक कर रहा था धुँधुआ द्विगुण अभिमान उनका
   यहाँ था रहा क्रिया का प्रयोग क्रम विरूद्ध है ।

17.4.7 दुष्क्रमत्व दोष

जब क्रम शास्त्र अथवा लोक की दृष्टि से दूषित या अनुचित हो वहाँ दुष्क्रमत्व दोष होता है-

1. मारूत नन्दन मारूत को, मन को, खगराज को वेग लजायो ।

खगराज (गरूड़) का प्रयोग मारूत (पवन) से अधिक, पर मन से कम होता है । अत: खगराज का उल्लेख मन के पूर्व होना चाहिए । अन्यथा जब मन के वेग को लज्जित कर दिया तो **फिर** गरूड़ के वेग का उल्लेख युक्ति संगत नहीं रहता । अत: दुष्क्रमत्व दोष है ।

2. चातक, मोर, चकोर सभी हैं पावस के अनुरागी ।

यहाँ चातक को पावस (वर्षा ऋतु का अनुरागी कहा जाना लोक परम्परा के विरूद्ध है क्योंकि वह चन्द्रमा का अनुरागी है ।

3. मन की तो क्या चले
   पवन भी हार मानता है गति से

पवन जो कि मन की तुलना में कम वेगापान है, मन से आगे कर दिया गया है । अत: उत्तरोत्तर तीव्रता का क्रम भंग कर दिया गया है ।

17.4.8 पुनरूक्त दोष

जब अर्थ की पुनरूक्ति हो अर्थात् जब वही बात दूसरे शब्दों द्वारा फिर कही जाए तब पुनरूक्ति दोष होता है ।

1. दृश्य बड़ा था रम्य, मंजु सुन्दर मनोहर

यहाँ मंजु, सुन्दर, मनोहर शब्द अनावश्यक है क्योंकि वे रम्य शब्द अर्थ की ही पुनरूक्ति करते हैं ।

2. कोमल वचन सभी को भाते, अच्छे लगते मधुर वचन

यहाँ अच्छे लगते सभी को भाते का ही अर्थ बताता है तथा कोमल वचन व मधुर वचन भी यही अर्थ दर्शाते है । अत: अच्छे लगते मधुर वचन से पुनरूक्त दोष हुआ है ।

विशेष

कई बार शब्द की पुनरूक्ति काव्य की शोभा बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते है । इसमें पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार का कारण भी बन जाता है ।

17.4.9 अप्रतीत्व

काव्य रस के आस्वादन में जो बाधक तत्व होते हैं उन्हें काव्य दोष कहा जाता है । जहाँ काव्य में सामान्य व्यवहार में प्रचलित शब्द की अपेक्षा अप्रचलित पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया जाता है जो केवल किसी शास्त्र विशेष में ही प्रयुक्त होता रहा है । जैसे - हियतल बसि दुख देते है । ये तेरे अनुभाव

यहाँ अनुभाव का अर्थ है - चेष्टाएँ, परन्तु इ स अर्थ में अनुभाव शब्द अलंकार शास्त्र में ही अधिक प्रचलित है । अप्रतीत्व दोष ऐसे शब्दों के प्रयोग से माना जाता है जिसका प्रयोग सामान्यतया कविता में न करके शास्त्रों में होता रहा है ।

17.4.10 संदिग्ध

इस दोष की गणना पद दोषों में की गई है । काव्य में जब कोई पद इस प्रकार का होता है जिसमें वर्ण्य विषय वस्तु के अतिरिक्त वह किसी अन्य अर्थ का भी बोध करवाने लगता है तो वहाँ संदेह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और काव्यास्वाद में बाधा उत्पन्न हो जाती है। काव्य प्रकाश के अनुसार जहाँ पर अनेक अर्थो में से एक भी निश्चयपूर्वक न कहा जा सके, वहाँ पर संदिग्ध दोष होता है । जैसे- केहिकारन कामिनी लिख्यो, शिवमूरति निज गेह । इस पंक्ति में यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि कामिनी ने काम के डर से शिव मूर्ति लिखी या अन्य किसी डर से, अत: यहाँ संदिग्ध दोष है ।

17.5 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत काव्य के भाव एवं कलात्मक सौन्दर्य में वृद्धि करने वाले एक महत्वपूर्ण उपादान शब्द शक्तियों तथा काव्य के गुणों की विस्तृत चर्चा की गई है । यह सत्य है कि कविता' में शब्द और अर्थ की सार्थक एवं रमणीय संगति से ही रसानुभूति की क्षमता बढ़ती है । काव्य के आस्वादन में शब्द की वाच्यार्थ, लक्षणार्थ तथा व्यंग्यार्थ की महत्वपूर्ण भूमिका

रहती है । जहाँ तक हम शब्द शक्तियों के कार्य व्यापार से परिचित नहीं होते तब तक काव्य का सम्पूर्ण मर्म तथा अर्थ सम्प्रेषित नहीं होता है इसीलिए काव्य शास्त्र के आचार्यों ने शब्द शक्तियों की विस्तार से विवेचना की है । इसके अतिरिक्त काव्य के गुण तथा अर्थ को बाधित करने वाले कतिपय दोषों की भी चर्चा की गई है । काव्य में ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुण अर्थ की गरिमा बढ़ाते है तो काव्य के दोष अर्थ के सम्प्रेषण में बाधक भी बन जाते हैं, इनसे हमारा परिचय प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है ।

17.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य कोश - भाग 1 सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग 1, डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत
3. रीतिकाव्य की भूमिका - डॉ. नगेन्द्र
4. भारतीय काव्य शास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
5. काव्य के रूप - बाबू गुलाबराय
6. कविप्रिया - आचार्य केशव दास
7. अलंकार पारिजात - नरोत्तम स्वामी
8. भारतीय काव्य शास्त्र का इतिहास - बलदेव उपाध्याय
9. भारतीय काव्य शास्त्र - टीकम सिंह तोमर
10. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट
11. साहित्य सिद्धान्त - सीताराम शास्त्री
12. साहित्य सागर - बिहारी लाल भट्ट
13. आचार्य केशव दास - विजय पाल सिंह

17.7 अभ्यास प्रश्न

1. काव्य की परिभाषा देते हुए काव्य के विभिन्न उपकरणों का परिचय दीजिए ।
2. काव्य रचना में शब्द का क्या महत्व है? शब्द कब काव्य बन जाता है ।
3. शब्द शक्ति से क्या तात्पर्य है? शब्द शक्ति का क्या कार्य है?
4. शब्द शक्ति कितने प्रकार की होती है ।
5. अभिधा शक्ति का अर्थ स्पष्ट करो तथा उदाहरण दीजिये ।
6. लक्षणा शक्ति किसे कहते हैं? उदाहरण सहित लक्षणा के भेदों की व्याख्या करो ।
7. व्यंजना शक्ति की परिभाषा दीजिये ।
8. काव्य गुण किसे कहते हैं? काव्य में गुणों का क्या महत्व है?
9. ओज गुण को सोदाहरण स्पष्ट करो?
10. प्रसाद गुण को सोदाहरण स्पष्ट करो ।
11. माधुर्य गुण को उदाहरण सहित स्पष्ट करो ।
12. काव्य दोष किसे कहते हैं? काव्य की गुणवत्ता के संदर्भ में इनका क्या महत्व है?

13. निम्न काव्य दोषों को उदाहरण सहित समझाइये -

(1) श्रुति कटुत्व (2) ग्राम्यत्व (3) अक्रमत्व (4) पुनरूक्त

ISBN-13/978-81-8496-084-6